अथ उत्तरतन्त्रम्[1]

प्रथमोऽध्यायः

अथात औपद्रविकमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥१॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे औपद्रविक अध्याय का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

अध्यायानां शते विंशे यदुक्तमसकृन्मया ।
वक्ष्यामि बहुधा सम्यगुत्तरेऽर्थानिमानिति ॥३॥

एक सौ बीस अध्यायों में मैंने जो बार बार यह कहा है कि "इन विषयों को उत्तरस्थान में विस्तार से कहूँगा"—उसे इस उत्तम उत्तर तन्त्र में कहता हूँ ॥३॥

इदानीं तत् प्रवक्ष्यामि तन्त्रमुत्तरमुत्तमम् ।
निखिलेनोपदिश्यन्ते यत्र रोगाः पृथग्विधाः ॥४॥
शालाक्यतन्त्राभिहिता विदेहाधिपकीर्तिताः ।
ये च विस्तरतो दृष्टाः कुमाराबाधहेतवः ॥५॥
षट्सु कायचिकित्सासु ये चोक्ताःपरमर्षिभिः ।
उपसर्गादयो रोगा ये चाप्यागन्तवः स्मृताः ॥६॥
त्रिषष्टी रससंसर्गाः स्वस्थवृत्तं तथैव च ।
युक्तार्था युक्तयश्चैव दोषभेदास्तथैव च ॥७॥
यत्रोक्ता विविधा अर्था रोगसाधनहेतवः ।

इसमें पृथग् प्रकार के रोग जहां सम्पूर्ण रूप से कहे गये हैं, जैसे—विदेहाधिप से कहे हुए शालाक्य तन्त्र के रोग, कुमारों को पीड़ा करनेवाले जो रोग विस्तार से देखे हैं, अग्निवेश, भेड़, जतूकर्ण, पराशर, हारीत और क्षारपाणि इन छः की काय चिकित्सा में ऋषियों ने जो रोग कहे हैं, अमानुषोपसर्गादि जो आगन्तुज रोग कहे हैं, रसों के तिरसठ संयोग, स्वस्थवृत्त, युक्तार्थ तन्त्रयुक्तियाँ, दोषभेद, रोग साधन के हेतु जो नाना प्रकार के अर्थ-विषय जिसमें कहे हैं, उस अन्तिम उत्तरतंत्र को कहता हूँ ॥४-७॥

महतस्तस्य तन्त्रस्य दुर्गाधस्याम्बुधेरिव ॥८॥
आदावेवोत्तमाङ्गस्थान् रोगानभिदधाम्यहम् ।
सङ्ख्यया लक्षणैश्चापि साध्यासाध्यक्रमेण च ॥९॥

इस अत्यन्त गम्भीर समुद्र के समान इस बड़े तंत्र में सबसे प्रथम शिर के रोगों को कहूँगा । इनकी संख्या, लक्षण, साध्य-विधि से कहूँगा ॥

चरक में—

"प्राणाः प्राणभृतां यत्र श्रिताः सर्वेन्द्रियाणि च ।
यदुत्तमांगमंगानां शिरस्तदभिधीयते ॥

अथर्ववेद में—

शिरस्ताल्वन्तरगतं सर्वेन्द्रियपरं मनः ।
तत्रस्थं तद्धिविषयानिन्द्रियाणां रसादिकम् ॥
समीपस्थान् विजानाति त्रीन् भावांश्च गच्छति ।
तन्मनःप्रभवं चापि सर्वेन्द्रियभवं बलम् ॥
ऊर्ध्वमूलमधःशाखं ऋषयः पुरुषं विदुः ।
मूलप्रहारिणस्तस्माद् रोगान् शीघ्रतरं जयेत् ॥
सर्वेन्द्रियाणि येनास्मिन् प्राणा येन च संश्रिताः ।
तेन तस्योत्तमांगस्य रक्षायामादृतो भवेत् ॥

वाग्भट्ट ॥

विद्याद्द्वयङ्गुलबाहुल्यं स्वाङ्गुष्ठोदरसंमितम् ।
द्व्यङ्गुलं सर्वतः सार्धं भिषङ्नयनबुद्बुदम् ॥१०॥
सुवृत्तं गोस्तनाकारं सर्वभूतगुणोद्भवम् ।

अपने अंगूठे के मध्यमाग के बराबर जो अंगुल है, उन दो अंगुल के बराबर नेत्र बुद्बुद के अन्तः प्रविष्ट नेत्र हैं । अक्षिगोलक लम्बाई और चौड़ाई में अढ़ाई अंगुल है । यह आँख सुन्दर गोलाकार, गाय के स्तन के समान, पृथ्वी आदि पांचों भूतों के गुणों से बनी है ।

वि० मन्तव्य—नयन बुद्बुद—इसे "डेला, कहते हैं यह नेत्र के गड्ढा में स्थापित रहता है और वर्त्म नेत्रछेदों से आच्छादित एवं सुरक्षित रहता है, यही चक्षुः इन्द्रिय का अधिष्ठान है, पानी के बुलबुला के समान आकृति होने के कारण इसे नयन का "बुद्बुद" कहते हैं । इसके द्वारा ही रूप का ज्ञान होता है । यह बुद्बुद सब नर नारियों में एक परिमाण का नहीं होता है, किसी का छोटा और बड़ा, नेत्रस्राव के कारण बड़े से छोटा भी हो जाता है देखिये "शुष्काक्षिपाक" और नेत्र का तर्पण करने से छोटे से बड़ा भी हो जाता है । इस श्लोक में जो बाहुल्य–स्थौल्य–मोटाई, चौड़ाई एवं लम्बाई

१—अतः परं स्वनाम्ना एव तन्त्रं उत्तरम् उच्यते ।श्रेष्ठत्वात् उत्तरं हि एतत् तन्त्रं आहुः महर्षयः । बहु अर्थसंग्रहात् श्रेष्ठं उत्तरं वा अपि पश्चिमम् । सू० अ० ३-४३ । अर्थात् इस प्रकरण का नाम ही उत्तरतन्त्र है अथवा बहुत अर्थो का एकत्र संग्रह होने के कारण श्रेष्ठ होने से अथवा ग्रन्थ का अन्तिम भाग होने से उत्तर तन्त्र कहलाता है । श्रीडल्लनाचार्य के शब्दों में इस संहिता के १२० अध्यायों को समाप्त करके उनके परिशिष्ट रूप में उत्तर-तन्त्र का प्रतिपादन किया है ।

बतलाई गई है वह मध्यम श्रेणी के बुद्बुद की है। यह तेजोमय अवयव है। इसमें पित्तवाहिनी १० सिरा पहुँचती हैं (सु० शा० अ० ७)। सर्वभूतगुणोद्भवम्-पृथ्वी आदि पञ्चमहाभूतों के सार-भाग से इसका निर्माण होता है। यह आलोचक पित्त का अधिष्ठान है। चक्षु के पाश्चात्य ध्रुव पर इस आन्तरिक संवेदनिक पटल के भीतरी पृष्ठ में एक गोल या अण्डाकार पीला धब्बा होता है इसको 'पीतविन्दु' कहते हैं पीत विन्दु का व्यास $\frac{1}{२४}$ से $\frac{1}{१२}$ इञ्च होता है उसके बीच में एक गढा होता है। जब हम कोई चीज देखते हैं तो अक्षिगोलक इस प्रकार गति करता है कि जिससे वह स्थान उस चीज के सम्मुख आ जावे ताकि प्रतिबिम्ब का कुछ भाग उस पर भी पड़े। इस गढ़े को पीतविन्दु नाभि कहते हैं। और स्थानों की अपेक्षा पीतविन्दु में देखने की शक्ति सबसे अधिक होती है (हमारे शरीर की रचना अ० २३)। हमारा दृढ़ विश्वास है कि आयुर्वेद का 'आलोचक पित्त' यही पीतविन्दु है ॥१०॥

पलं भवोऽग्नितो रक्तं वातात् कृष्णं सितं जलात् ।११।
आकाशादश्रुमार्गाश्च जायन्ते नेत्रबुद्बुदे ।

इस नेत्र बुद्बुद में माँस पृथ्वी से, रक्त अग्नि से, कृष्ण-भाग वायु से, श्वेत भाग जल से, अश्रुस्रोत आकाश से उत्पन्न होते हैं।

वि० मन्तव्य—नेत्र में मांस (द्वे नेत्रयोः सु० शा० अ० ५) दो मांस पेशियों के रूप में विद्यमान है। मांस के अतिरिक्त पटल आदि भी पार्थिव तत्त्व से निर्मित हैं। यह दो पेशियाँ नेत्र बुद्बुद की हैं। रक्त एवं पीतविन्दु अग्नितत्त्व से निर्मित हैं, कृष्ण मण्डल की कृष्णता वायु तत्त्व से निर्मित है, श्वेतमण्डल की श्वेतता और जलीयांश जलतत्त्व का भाग हैं और उसमें जो स्रोतस् हैं जिनमें से होकर रक्त एवं जल या अश्रु बहते हैं वे अकाश तत्त्व के भाग हैं। इस प्रकार यद्यपि नेत्र भी पाञ्चभौतिक है तथापि इसमें अग्नितत्त्वतेजस् गुण अधिक है यथा—चक्षुः तेजोमयं (अ० हृ० अ० २) तथा (च० सू० अ० ५) ॥११॥

दृष्टिं चात्र तथा वक्ष्ये यथा ब्रूयाद्विशारदः ॥१२॥
नेत्रायामत्रिभागं तु कृष्णमण्डलमुच्यते ।
कृष्णात् सप्तममिच्छन्ति दृष्टिं दृष्टिविशारदाः ।१३।

विदेह ने दृष्टि को जिस प्रकार कहा था, उसी प्रकार दृष्टि को कहता हूँ। नेत्र की लम्बाई का एक तिहाई भाग ($\frac{1}{3}$) कृष्णमण्डल का सातवां भाग ($\frac{1}{७}$) दृष्टि है, ऐसा शालाक्य विद्वान् कहते हैं ॥१२,१३॥

मण्डलानि च सन्धींश्च पटलानि च लोचने ।
यथाक्रमं विजानीयात् पञ्च षट् च षडेव च ॥१४॥

आँख में मण्डल पांच, सन्धियां छै और पटल छै हैं। दूसरे इनकी संख्या—

लोचने मण्डलान्यन्तान् संधींश्च पटलानि च ।
जानीयात् क्रमशः पञ्च चतुरः षड्षडेव च ॥

वि० मन्तव्य—घेरा अर्थात् यदि पद्म एवं वर्त्म समेत समस्त नेत्र को बिछा दिया जाय तो ५ मण्डल बन जाते हैं। सन्धि-इन मण्डलों (घेरों) की सन्धि अर्थात् जोड़। ५ मण्डलों की ४ सन्धियाँ और कनीनिका (अर्थात् कोया-नेत्र के समीप का कोना) और अपाङ्ग (अर्थात् नेत्र का बाहरी-पुटपुटी की ओर का कोना) की २ सन्धियाँ इस प्रकार ६ सन्धियाँ हैं। पटल-परदा दृष्टि को ढकनेवाला। यथा—२ वर्त्म नेत्रच्छद जो बुद्बुद को ढकते हैं और ४ बुद्बुद में जिनसे नेत्र बुद्बुद बना है। पद्म—वर्त्म पर के बाल और उनके कूप तथा वर्त्म का भीतरी तल। कनीनिका—अमरकोश, श्रीगणनाथ सेन का प्रत्यक्ष शारीरम् तथा त्रिलोकी नाथ वर्मा की हमारे शरीर की रचना कनीनिका शब्द से दृष्टि मण्डल मानते हैं परन्तु सुश्रुत कोका को कनीनिका मानता है ॥१४॥

पद्मवर्त्मश्वेतकृष्णदृष्टीनां मण्डलानि तु ।
अनुपूर्वं तु ते मध्याश्चत्वारोऽन्त्या यथोत्तरम् ॥१५॥

पाँच मण्डल—पद्ममण्डल, वर्त्ममण्डल, श्वेतमण्डल, कृष्णमण्डल, और दृष्टिमण्डल, ये पांच मण्डल हैं। इनमें आनुपूर्विक क्रम से अन्दर की ओर हैं। अर्थात् सबसे बाहर पद्म, उसके आगे वर्त्म, फिर श्वेतमण्डल, फिर कृष्ण और सबसे पीछे दृष्टि है। परन्तु उत्तरोत्तर क्रम में दृष्टि मण्डल के बाहर कृष्ण मण्डल, फिर श्वेतमण्डल, फिर वर्त्ममण्डल, फिर पद्म मण्डल है ॥१५॥

पद्मवर्त्मगतः सन्धिर्वर्त्मशुक्लगतोऽपरः ।
शुक्लकृष्णगतस्त्वन्यः कृष्णदृष्टिगतोऽपरः ।
ततः कनीनकगतः षष्ठश्चापाङ्गगः स्मृतः ॥१६॥

छै सन्धियां—पद्म और वर्त्म की सन्धि, वर्त्म और शुक्लभाग की सन्धि, शुक्ल और कृष्ण भाग की सन्धि, कृष्ण और दृष्टि भाग की सन्धि, कनीनिका भाग की (नासा समीप की), और छठी अपांग की सन्धि (आंख के बाह्य प्रान्त की कान के पार्श्व की) ॥१६॥

द्वे वर्त्मपटले विद्याच्चत्वार्यन्यानि चाक्षिणि ।
जायते तिमिरं येषु व्याधिः परमदारुणः ॥१७॥

छै पटल—आंख वर्त्म में पटल दो, शेष चार पटल हैं, जिन चार पटलों में अतिदारुण तिमिर रोग होता है ॥१७॥

तेजोजलाश्रितं बाह्यं तेष्वन्यत् पिशिताश्रितम् ।
मेदस्तृतीयं पटलमाश्रितं त्वस्थि चापरम् ॥१८॥

पञ्चमांशसमं दृष्टेस्तेषां बाहुल्यमिष्यते ।

चार पटल—इनमें बाह्यपटल–जलाश्रित तेज (सिराश्रित रक्त) है दूसरा पटल मांस में आश्रित है। तीसरा पटल मेद में आश्रित है, चौथा पटल अस्थि में आश्रित है। इन पटलों की मोटाई दृष्टि का पाँचवाँ भाग (⅕) है।

वि० मन्तव्य—बाह्य पटल में तेजस् अग्नितत्त्व एवं जल-तत्त्व अधिक होता है, श्री त्रिलोकी नाथ वर्मा के शब्दों में—बाह्यपटल-यह पीले और श्वेत सौत्रिक तन्तुओं से निर्मित है, और शेष दोनों पटलों की अपेक्षा अधिक मजबूत मोटा और सख्त होता है ॥१८॥

सिराणां कण्डराणां च मेदसः कालकस्य च ॥१९॥
गुणाः कालात् परः श्लेष्मा बन्धनेऽक्ष्णोः सिरायुतः ।

सिरा से आरम्भ करके कालकास्थि पर्यन्त यथोत्तर उत्कृष्ट प्रसाद (गुण) आंख को बनाने में (एक दूसरे भाग के साथ मिलाने में) मुख्य रूप से भाग लेते हैं। इससे कालकास्थि के समीप में स्थित श्लेष्मा सिराओं के साथ मिलकर आंखों को बांधती है। दूसरे आचार्यसिरा से लेकर मेद पर्यन्त गुण को आंख के कृष्ण भाग को बांधते हैं, ऐसा अर्थ करते हैं। कृष्ण भाग से अङ्गों, जो शुक्लका भाग है, उनको बांधनेवाली सिरायुत श्लेष्मा है। (कण्डरा का अर्थ स्नायु है) ॥१९॥

सिरानुसारिभिर्दोषैर्विगुणैरूर्ध्वमागतैः ॥२०॥
जायन्ते नेत्रभागेषु रोगाः परमदारुणाः ।

नेत्रस्थ सिराओं का आश्रय लेकर, विपरीत गतिवाले दोष ऊपर की ओर (सिर की तरफ) आकर नेत्र भागों में अतिशय भयानक रोगों को उत्पन्न करते हैं ॥२०॥

तत्राविलं ससंरम्भमश्रुकण्डूपदेहवत् ॥२१॥
गुरुषातोदरागाद्यैर्जुष्टं चाव्यक्तलक्षणैः ।
सशूलं वर्त्मकोषेषु शूकपूर्णाभमेव च ॥२२॥
विहन्यमानं रूपे वा क्रियास्वक्षि यथा पुरा ।
दृष्ट्वैव धीमान् बुध्येत दोषेणाधिष्ठितं तु तत् ॥२३॥

रोगों का पूर्वरूप—इनमें नेत्र गदला, शोथ युक्त, अश्रु-कण्डू-मल (गीध) युक्त, भारी, जलन तोद (चुभने का दर्द), सुर्खी आदि से युक्त, अस्पष्ट लक्षणों का होता है। पलकों के कोषों में थोड़ा दर्द, शूक (जौ आदि की बाल के रोग के समान) से भरे हुए पलक आँख क्रियाओं में या रूप को (प्रकाश को सहने में) देखने में पहले की भांति काम नहीं करती, इन लक्षणों को देखकर बुद्धिमान् आंख को दोष से युक्त समझे ॥२१–२३॥

तत्र संभवमासाद्य यथादोषं भिषग्जितम् ।
विदध्यान्नेत्रजा रोगा बलवन्तः स्युरन्यथा ॥२४॥

आंखों के उत्पन्न रोगों में पूर्वरूप देखकर वैद्य औषध करे। ऐसा न करने पर नेत्रजन्य रोग बलवान् हो जाते हैं ॥

संक्षेपतः क्रियायोगो निदानपरिवर्जनम् ।
वातादीनां प्रतीघातः प्रोक्तो विस्तरतः पुनः ॥२५॥

संक्षेप में संशमन, संशोधन क्रियाओं का सम्यग् योग यही है कि कारण का परित्याग करे (दोष कारक रोग कारक दोनों प्रकार के कारणों को छोड़ देवे)। फिर इसके पीछे वात आदि दोषों को, विस्तार से नष्ट करना कहा है ॥२५॥

उष्णाभितप्तस्य जलप्रवेशाद्-
दूरेक्षणात् स्वप्नविपर्ययाच्च ।
प्रसक्तसंरोदनकोपशोक-
क्लेशाभिघातादतिमैथुनाच्च ॥२६॥
शुक्तारनालाम्लकुलत्थमाष-
निषेवणाद्वेगविनिग्रहाच्च ।
स्वेदादथो धूमनिषेवणाच्च
छर्दैर्विघाताद्वमनातियोगात् ॥
बाष्पग्रहात् सूक्ष्मनिरीक्षणाच्च
नेत्रे विकारान् जनयन्ति दोषाः ॥२७॥

शरीर के गरम होने पर सहसा जल में घुस जाने से, दूर दृष्टि रखने से (जैसे ड्राईवर), नींद न आने से, निरन्तर रोना, क्रोध या शोक करते रहने से, क्लेश (मानसिक उद्विग्नता) से, चोट लगने से, अति स्त्री सेवन से, शुक्त-कांजी-खटाई-कुलत्थी-उड़द का सेवन करने से, मल मूत्रादि के उपस्थित वेगों को रोकने से, पसीने से, धूम्रपान करने से (विशेषकर नाक से धूम्र निकालने पर), वमन के रुक जाने से, वमन के अतियोग से, आँसुओं को रोकने से, बारीक काम (सीना, पिरोना, काढ़ना आदि) करने से दोष नेत्र में रोग उत्पन्न करते हैं ॥

वक्तव्य—

'दृष्टिस्तेजोमयी प्रोक्ता शुक्रं तेजश्च केवलं।
तस्माद् दृष्टिबलापेक्षी तेजोवृद्धिं समाचरेत् ॥२६,२७॥

वाताद्दश तथा पित्तात् कफाच्चैव त्रयोदश ।
रक्तात् षोडश विज्ञेया सर्वजाः पञ्चविंशतिः ॥२८॥
तथा बाह्यौ पुनर्द्वौ च रोगाः षट्सप्ततिः स्मृताः ।

आँख के रोग छिहत्तर हैं, यथा—वातजन्य दस, पित्त-जन्य दस, कफजन्य तेरह, रक्तजन्य सोलह, सर्वजन्य पच्चीस, बाह्यज-दो, इस प्रकार, नेत्र रोग छिहत्तर हैं ॥२८॥

हताधिमन्थो निमिषो दृष्टिर्गम्भीरिका च या ॥२९॥
यच्च वातहतं वर्त्म न ते सिध्यन्ति वातजाः ।
याप्योऽथ तन्मयः काचः साध्याः स्युः साध्यमारुताः ।
शुष्काक्षिपाकाधीमन्थस्यन्दमारुतपर्ययाः ॥३०॥

वातजन्य रोगों में—हताधिमन्थ, निमिष, गम्भीरिका दृष्टि, वातहत वर्त्म असाध्य हैं। वातजन्य काच रोग याप्य है। शुष्काक्षिपाक, अधिमन्थ, अभिष्यन्द, मारुतपर्यय और अन्यतोवात ये पांच रोग साध्य हैं ॥२९,३०॥

असाध्यो ह्रस्वजाड्यो यो जलस्रावश्च पैत्तिकः ॥३१॥
परिम्लायी च नीलश्च याप्यः काचोऽथ तन्मयः।
अभिष्यन्दोऽधिमन्थोऽम्लाध्युषितं शुक्तिका च या॥
दृष्टिः पित्तविदग्धा च धूमदर्शी च सिध्यति।

पित्तजन्य रोगों में—ह्रस्वजाड्य, जलस्राव ये दो रोग असाध्य हैं। परिम्लायिकाच और नीलकाच ये दो याप्य हैं। पित्तज अभिष्यन्द, अधिमन्थ, अम्लाध्युषित, शुक्तिका, पित्तविदग्ध दृष्टि और धूमदर्शि-ये छै, साध्य हैं ॥३१,३२॥

असाध्यः कफजः स्रावो याप्यः काचश्च तन्मयः ॥३३॥
अभिष्यन्दोऽधिमन्थश्च बलासग्रथितं च यत्।
दृष्टिः श्लेष्मविदग्धा च पोथक्यो लगणश्च यः ॥३४॥
कृमिग्रन्थिपरिक्लिन्नवर्त्मशुक्लार्मपिष्टकाः।
श्लेष्मोपनाहः साध्यास्तु कथिताः श्लेष्मजेषु तु ॥३५॥

कफजन्य रोगों में—कफजस्राव असाध्य है, कफजकाच याप्य है। अभिष्यन्द, अधिमन्थ, बलास, ग्रथित, श्लेष्मविदग्धदृष्टि, पोथकी, लगण, कृमिग्रन्थि, परिक्लिन्नवर्त्म, शुक्ल, अर्म, पिष्टक, श्लेष्मोपनाह, ये ग्यारह रोग साध्य हैं ॥३३-३५॥

रक्तस्रावोऽजकाजातं शोणितार्शोव्रणान्वितम्।
शुक्रं न साध्यं काचश्च याप्यस्तज्जः प्रकीर्तितः ॥३६॥
मन्थस्यन्दौ क्लिष्टवर्त्म हर्षोत्पातो तथैव च।
सिराजाताऽञ्जनाख्या च सिराजालं च यत् स्मृतम्॥
पर्वण्यथाव्रणं शुक्रं शोणितार्मार्जुनश्च यः।
एते साध्या विकारेषु रक्तजेषु भवन्ति हि ॥३८॥

रक्तजन्य रोगों में-रक्तस्राव, अजका, शोणितार्श, शतशुक्र ये चार रोग असाध्य हैं। रक्तजकाच याप्य है। अधिमन्थ, अभिष्यन्द, क्लिष्टवर्त्म, शिराहर्ष, शिरोत्पात, अञ्जना, सिराजाल, पर्वणी, अव्रणशुक्र, शोणितार्म और अर्जुन-ये ग्यारह रोग रक्तजन्य रोगों में साध्य हैं ॥३६-३८॥

पूयास्रावो नाकुलान्ध्यमक्षिपाकात्ययोऽलजी।
असाध्याः सर्वजा याप्याः काचः कोपश्च पक्ष्मणः॥
वर्त्मावबन्धो यो व्याधिः सिरासु पिडका च या।
प्रस्तार्यमाधिमांसार्म स्नायवर्मोत्सङ्गिनी च या॥४०॥
पूयालसश्चार्बुदं च श्यावकर्दमवर्त्मनी।
तथाऽर्शोवर्त्म शुष्कार्शः शर्करावर्त्म यच्च वै ॥४१॥
सशोफश्चाप्यशोफश्च पाको बहलवर्त्म च।
अक्लिन्नवर्त्म कुम्भीका बिसवर्त्म च सिध्यति ॥४२॥

सर्वज नेत्र रोगों में—पूयास्राव, नाकुलान्ध्य, अक्षिपाकात्यय, अलजी, ये चार रोग असाध्य हैं। काच, पक्ष्मकोप ये दो याप्य हैं। वर्त्मविबन्ध, सिरापिड़का, प्रस्तार्यर्म, अधिमांसार्म, स्नाय्वर्म, उत्संगिनी, पूयालस, अर्बुद, श्यावकर्दम, श्याववर्त्म, अर्शोवर्त्म, शुष्कार्श, शर्करावर्त्म, सशोफपाक, अशोफपाक, बहलवर्त्म, अक्लिन्नवर्त्म, कुम्भीका, और विसवर्त्म-ये उन्नीस रोग साध्य हैं ॥३९-४२॥

सनिमित्तोऽनिमित्तश्च द्वावसाध्यौ तु बाह्यजौ॥

बाह्यज रोगों में सनिमित्त और अनिमित्त ये दो रोग असाध्य कहे हैं ॥४२॥

षट्सप्ततिर्विकाराणामेषा संग्रहकीर्त्तना ॥४३॥

आंख के छिहत्तर रोग इस प्रकार संक्षेप में कह दिये॥

नव सन्ध्याश्रयास्तेषु वर्त्मजास्त्वेकविंशतिः।
शुक्लभागे दशैकश्च चत्वारः कृष्णभागजाः ॥४४॥
सर्वाश्रयाः सप्तदश दृष्टिजा द्वादशैव तु।
बाह्यजौ द्वौ समाख्यातौ रोगौ परमदारुणौ।
भूय एतान् प्रवक्ष्यामि सङ्ख्यारूपचिकित्सितैः ॥४५॥

सन्धि आश्रित नौ, वर्त्मजन्य इक्कीस, शुक्लभाग में ग्यारह, कृष्णभाग में चार, सर्वाश्रय सत्तरह, दृष्टिजन्य बारह, बाह्यजन्य दो रोग अति भयानक हैं। इन रोगों की संख्या, लक्षण और चिकित्सा फिर कहूँगा। (बाह्यज रोगों से अभिप्राय दृष्टिगत रोगों से है) ॥४४,४५॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे औपद्रविको नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः

अथातः सन्धिगतरोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे सन्धिगत रोगविज्ञानीय अध्याय का व्याख्यान किया जायेगा-जैसा भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था॥

पूयालसः सोपनाहः स्रावाः पर्वणिकाऽलजी।
कृमिग्रन्थिश्च विज्ञेया रोगाः सन्धिगता नव ॥३॥

सन्धिगत रोग नौ हैं, यथा—पूयालस, उपनाह, स्राव, पर्वणिका, अलजी और कृमिग्रन्थि (इनमें स्राव चार हैं) इस प्रकार से नौ रोग सन्धिगत हैं ॥३॥

पक्वः शोफः सन्धिजः संस्रवेद्यः
सान्द्रं पूयं पूति पूयालसः सः।
ग्रन्थिर्नाल्पो दृष्टिसन्धावपाकः
कण्डूप्रायो नीरुजस्तूपनाहः ॥४॥

कनीन सन्धिजन्य जिस शोफ के पकने पर घट्ट, दुर्गन्धयुक्त पूय बहती है, उसे पूयालस कहते हैं।

दृष्टि सन्धि में बड़ी, न पकने या थोड़ी पकनेवाली, कण्डु बहुल एवं वेदना रहित ग्रन्थि को उपनाह कहते हैं ॥४॥

गत्वा सन्धीनश्रुमार्गेण दोषाः
कुर्युः स्रावान् रुग्विहीनान् कनीनात् ।
तान् वै स्रावान् नेत्रनाडीमथैके
तस्या लिङ्गं कीर्तयिष्ये चतुर्धा ॥५॥
पाकः सन्धौ संस्रवेद्यश्च पूयं
पूयास्रावो नैकरूपः प्रदिष्टः ।
श्वेतं सान्द्रं पिच्छिलं संस्रवेद्यः
श्लेष्मास्रावो नीरुजः स प्रदिष्टः ॥६॥
रक्तास्रावः शोणितोत्थः सरक्त-
मुष्णं नाल्पं संस्रवेन्नातिसान्द्रम् ।
पीताभासं नीलमुष्णं जलाभं
पित्तास्रावः संस्रवेत् सन्धिमध्यात् ॥७॥

वातादि दोष अश्रु मार्ग से सन्धियों में पहुँचकर, वेदना रहित स्रावों को कनीनिका प्रदेश से (नाक के पार्श्व से) करते हैं। इन्हीं स्रावों कोई को नेत्र नाड़ी कहते हैं, इनके चार प्रकार लक्षण कहेंगे। सन्धि में पाक होने पर जिससे पूय बहे, उसे पूयस्राव कहते हैं, वह एक तरह का नहीं होता। जो स्राव श्वेत, सान्द्र (घट्ट), पिच्छिल, और वेदना रहित होता है, उसे श्लेष्मास्राव कहते हैं। रक्तजन्य रक्त का स्राव, रक्त-मिश्रित, उष्ण, बड़ी मात्रा में, पतला बहता है। पित्तास्राव-पीली झाँई का, नीला, उष्ण जल के समान स्राव कनीनिका सन्धि मध्य से होता है।

वि० मन्तव्य—चारों प्रकार के स्राव कनीनिका नामक सन्धि में से बहते हैं। इनको पञ्जाब में डलका और अन्यत्र पानी जाना या बहना कहते हैं। इस रोग में सर्वदा स्राव होता रहता है जल जैसा। इस विषय में विदेह का वचन अधिक स्पष्ट है—यथा—

अश्रुस्रावः सिरा गत्वा नेत्रसन्धिषु तिष्ठति ।
ततः कनीनकं गत्वा चाऽश्रुकृत्वा कनीनके ।
ततः स्रवति अथ आस्रावं यथा दोषं अवेदनम् ।

इसमें किसी प्रकार की वेदना नहीं होती, स्राव पानी का सा बहता है उसमें श्वेतता, रक्तता तथा पीतता अत्यन्त सूक्ष्म रहती हैं। इससे आगे चलकर दृष्टि घट जाती है और नेत्र बुदबुद छोटा हो जाता है ॥५-७॥

ताम्रा तन्वी दाहशूलोपपन्ना
रक्ताज्ज्ञेया पर्वणी वृत्तसोफा ।
जाता सन्धौ कृष्णशुक्लेऽलजीस्या-
त्तस्मिन्नेव ख्यापिता पूर्वलिङ्गैः ॥८॥

पर्वणी—ताम्रवर्ण की, पतली, दाह-शूल से युक्त, गोल, सूजनयुक्त-रक्त के कारण होती है। अलजी—कृष्ण और शुक्ल की सन्धि में पर्वणी के समान लक्षणोंवाली है। (पर्वणी-पतली और अलजी स्थूल होती है। तथा दोनों में स्थान भेद नहीं है)॥

कृमिग्रन्थिर्वर्त्मनः पक्ष्मणश्च
कण्डूं कुर्युः क्रमयः सन्धिजाताः ।
नानारूपा वर्त्मशुक्लस्य सन्धौ
चरन्तोऽन्तर्नयनं दूषयन्ति ॥९॥

सन्धि में उत्पन्न कृमि, कृमिग्रन्थि रोग करते हैं, जिससे पलकों में और बालों में खाज होती है। ये कृमि नाना प्रकार के आकार के, वर्त्म और शुक्ल की सन्धि में घूमते हुए आँख को दूषित करते हैं ॥९॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रे सन्धिगतरोगविज्ञानीयो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः

अथातो वर्त्मगतरोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

इसके आगे वर्त्मगतरोगविज्ञानीय अध्याय का व्याख्यान करेंगे—जैसा भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था।

वि० मन्तव्य—इस अध्याय में पक्ष्ममण्डल एवं वर्त्म-मण्डल के रोगों का वर्णन किया गया है ॥१,२॥

पृथग्दोषाः समस्ता वा यदा वर्त्मव्यपाश्रयाः ।
सिरा व्याप्यावतिष्ठन्ते वर्त्मस्वधिकमूर्च्छिताः ॥१३॥
विवर्ध्य मांसं रक्तं च तदा वर्त्मव्यपाश्रयान् ।
विकाराञ्जनयन्त्याशु नामतस्तान्निबोधत ॥४॥

जब पृथक् पृथक वातादि दोष या समस्त रूप में दोष अतिशय प्रकुपित होकर वर्त्म के मध्य में आश्रित सिराओं में फैलकर वर्त्म में स्थित होते हैं, तब मांस और रक्त को बढ़ाकर वर्त्म में आश्रित रोगों को शीघ्र उत्पन्न करते हैं, इनको नामों से सुनो ॥३,४॥

उत्सङ्गिन्यथ कुम्भीका पोथक्यो वर्त्मशर्करा ।
तथाऽर्शोवर्त्म शुष्कार्शस्तथैवाञ्जननामिका ॥५॥
बहलं वर्त्म यच्चापि व्याधिर्वर्त्मावबन्धकः ।
क्लिष्टकर्दमवर्त्माख्यौ श्याववर्त्म तथैव च ॥६॥
प्रक्लिन्नमपरिक्लिन्नं वर्त्म वातहतं तु यत् ।
अर्बुदं निमिषश्चापि शोणितार्शश्च यत् स्मृतम् ॥७॥
लगणो विसनामा च पक्ष्मकोपस्तथैव च ।
एकविंशतिरित्येते विकारा वर्त्मसंश्रयाः ॥८॥

उत्संगिनी, कुम्भीका, पोथकी, वर्त्मशर्करा, अर्शोवर्त्म, शुष्कार्श, अंजननामिका, बहलवर्त्म, वर्त्मबन्धक, क्लिष्टवर्त्म, श्यामवर्त्म, प्रक्लिन्नवर्त्म, अपरिक्लिन्नवर्त्म, वातहतवर्त्म, अर्बुद, निमेष, शोणितार्श, लगण, विसवर्त्म, पक्ष्मकोप, ये इक्कीस रोग वर्त्म में आश्रित हैं, इनको नाम से कह दिया है ॥५-८॥

नामभिस्ते समुद्दिष्टा लक्षणैस्तान् प्रचक्ष्महे ।
अभ्यन्तरमुखी बाह्योत्संगेऽधो वर्त्मनश्च या ॥९॥

विज्ञेयोत्सङ्गिनी नाम तद्रूपपिडकाचिता।

इनको लक्षणों से कहते हैं—जो पिड़का पलक के अन्दर मुख किये हुए, बाहर की ओर उभरी प्रतीत हो, पलक के नीचे उत्पन्न होती है। उसको उत्सङ्गिनी पिड़का कहते हैं, यह इसी प्रकार की छोटी पिड़काओं से व्याप्त रहती है। अन्यत्र इस पिड़का को सन्निपातजन्य कहा है यथा—

"वर्त्मोत्संगेप्यधो जन्तोः सन्निपातात् प्रजायते।
अभ्यन्तरमुखी स्थूला बाह्यतश्चापि दृश्यते॥
पिडका पिडकाभिश्च चिताऽन्याभिः समन्ततः।
उत्संगपिडका नाम कठिना मन्दवेदना।
सा प्रभिन्ना स्रवेत् स्रावं कुक्कुटाण्डरसोपमम्॥९॥

कुम्भीकबीजप्रतिमाः पिडका यास्तु वर्त्मजाः॥१०॥
आध्मापयन्ति भिन्ना याः कुम्भीकपिडकास्तु ताः।

वर्त्म में होनेवाली जो पिड़का कुम्भी के बीज के समान होती है, फूटने के पीछे फिर फूल जाती है (भर जाती है), उसे कुम्भीक पिड़का कहते हैं। (कुम्भीमकाकच्छदेशोद्भवा दाडिमफलाकार फलालता—तद्बीजेन प्रतिमा यासां ताः)॥

स्राविण्यः कण्डुरा गुर्व्यो रक्तसर्षपसन्निभाः।
पिडकाश्च रुजावत्यः पोथक्य इति संज्ञिताः॥११॥

पोथकी पिड़कायें—स्राववाली, कण्डुयुक्त भारी, लाल सरसों के आकार की, वेदना कारक होती हैं॥११॥

पिडकाभिः सुसूक्ष्माभिर्घनाभिरभिसंवृता।
पिडका या खरा स्थूला सा ज्ञेया वर्त्मशर्करा॥१२॥

वर्त्मशर्करा—सूक्ष्म, घनी पिड़काओं से जो खर (कर्कश), एवं स्थूल पिड़का घिरी रहती हैं। उसका नाम वर्त्म शर्करा है॥१२॥

एर्वारुबीजप्रतिमाः पिडका मन्दवेदनाः।
सूक्ष्माः खराश्च वर्त्मस्थास्तदर्शोवर्त्म कीर्त्यते॥१३॥

अर्शोवर्त्म—खीरे या ककड़ी के बीज के आकार की मन्दवेदनावाली, सूक्ष्म एवं खर, पिडका वर्त्म में स्थित रहती है, उसे अर्शोवर्त्म कहते हैं॥१३॥

दीर्घोऽङ्कुरः खरः स्तब्धो दारुणो वर्त्मसंभवः।
व्याधिरेष समाख्यातः शुष्कार्श इति संज्ञितः॥१४॥

शुष्कार्श—लम्बे अंकुर के समान, खर, कठिन, अतिकष्टदायक, पलक में उत्पन्न यह रोग शुष्कार्श नाम से कहा जाता है।

वि० मन्तव्य—अर्शोवर्त्म तथा शुष्कार्श नामक रोग नेत्रार्श ही हैं अर्थात् ये दोनों नेत्र के "अर्श" हैं दे० नि० अ० सू० १७। नेत्र में रक्तार्श भी होता है देखिये इसी अध्याय का श्लो० १६॥१४॥

दाहतोदवती ताम्रा पिडका वर्त्मसंभवा।
मृद्वी मन्दरुजा सूक्ष्मा ज्ञेया साऽञ्जननामिका॥१५॥

दाह, तोद (चुभने की वेदना) युक्त, ताम्रवर्ण, कोमल, मन्दवेदनावाली, सूक्ष्म पिड़का जो पलकों में होती हैं, उसे अंजननामिका (अञ्जनहारी) कहते हैं (जहाँ पर अञ्जन लगाया जाता है, वहाँ पर होनेवाली पिड़का, इसके होने पर अञ्जन नहीं लगा सकते)॥१५॥

वर्त्मोपचीयते यस्य पिडकाभिः समन्ततः।
सवर्णाभिः समाभिश्च विद्याद्बहलवर्त्म तत्॥१६॥

जिसका वर्त्म, समान वर्ण की आकार में समान पिड़काओं से सम्पूर्णरूप में भर जाता है, उसको बहलवर्त्म कहते हैं॥१६॥

कण्डूमताऽल्पतोदेन वर्त्मशोफेन यो नरः।
न समं छादयेदक्षि भवेद्बन्धः स वर्त्मनः॥१७॥

कण्डुयुक्त, थोड़ीवेदनावाले, पलक की सूजन के कारण जो मनुष्य आँख को सम्पूर्ण रूप से बन्द नहीं कर सकता, उसे वर्त्मबन्ध कहते हैं॥१७॥

मृद्वल्पवेदनं ताम्रं यद्वर्त्म सममेव च।
अकस्माच्च भवेद्रक्तं क्लिष्टवर्त्म तदादिशेत्॥१८॥

कोमल, थोड़ी वेदना युक्त, ताम्रवर्ण, समान वर्त्म अकारण ही सहसा लाल हो जाता है, उसे क्लिष्टवर्त्म कहते हैं। (इसका रंग दुपहरिया फूल के समान होता है)॥१८॥

क्लिष्टं पुनः पित्तयुक्तं विदहेच्छोणितं यदा।
तदा क्लिन्नत्वमापन्नमुच्यते वर्त्मकर्दमः॥१९॥

क्लिष्टरोग का आरम्भक कफ पित्त से मिले रक्त को जब विदग्ध कर देता है, तब उसमें क्लिन्नता उत्पन्न हो जाने पर इसे (क्लिष्टवर्त्म को) वर्त्मकर्दम कहते हैं॥१९॥

यद्वर्त्म बाह्यतोऽन्तश्च श्यावं शूनं सवेदनम्।
दाहकण्डूपरिक्लेदि श्याववर्त्मेति तन्मतम्॥२०॥

जो वर्त्म बाहर और अन्दर से काला, सूजा, वेदना युक्त, दाह-कण्डू, क्लेदवाला होता है, उसको श्याववर्त्म कहते हैं॥

अरुजं बाह्यतः शूनमन्तः क्लिन्नं स्रवत्यपि।
कण्डूनिस्तोदभूयिष्ठं क्लिन्नवर्त्म तदुच्यते॥२१॥

जो वर्त्म वेदना रहित, बाहर से सूजा, अन्दर से क्लिन्न (गला), जिसमें स्राव होता है, कण्डू और चुभने की दर्द अधिक रहती है, उसे क्लिन्नवर्त्म कहते हैं॥२१॥

यस्य धौतानि धौतानि संबध्यन्ते पुनः पुनः।
वर्त्मान्यपरिपक्वानि विद्यादक्लिन्नवर्त्म तत्॥२२॥

जिस रोगी के पलक धोने पर भी बार-बार चिपक जाते हैं, जिनमें पाक नहीं होता, उनको अक्लिन्नवर्त्म कहते हैं। (इसी को दूसरे पिल्ल रोग कहते हैं।) वाग्भट्ट ने कुकूणक आदि अट्ठारह रोगों को पिल्ल कहा है।

वि० मन्तव्य—भले ही इसमें किसी प्रकार का क्लेद नहीं होता और चिपकानेवाले पदार्थ को बार-बार

घ्रो भी दिया जाता है तथापि निमेष के समय जब दोनों वर्त्म मिलते हैं तब चिपक जाते हैं—सट जाते हैं और उन्मेष के समय वर्त्मों को खोलने के लिये प्रयत्न करना पड़ता है। देखिये इस रोग के किसी रोगी को और ध्यान दीजिये कि वह निमेष एवं उन्मेष कैसे करता है ॥२२॥

विमुक्तसन्धि निश्चेष्टं वर्त्म यस्य न मील्यते ।
एतद्वातहतं विद्यात् सरुजं यदि वाऽरुजम् ॥२३॥

सन्धि में ढीला होकर, बिना क्रिया के जिसके पलक नहीं बन्द होते, वेदना हो, या न हो उसे वातहत कहते हैं, यह असाध्य है ॥२३॥

वर्त्मान्तरस्थं विषमं ग्रन्थिभूतमवेदनम् ।
विज्ञेयमर्बुदं पुंसां सरक्तमवलम्बितम् ॥२४॥

जिस रोगी के पलक के अन्दर के भाग में—कष्टदायक, परन्तु वेदनारहित, ग्रन्थि के समान गाँठ हो जाती है, उसको अर्बुद कहते हैं, इसमें थोड़ी सी रक्तिमा (पित्त के कारण) रहती है ॥२४॥

निमेषिणीः सिरा वायुः प्रविष्टो वर्त्मसंश्रयाः ।
चालयत्यति वर्त्मानि निमेषः स गदो मतः ॥२५॥

पलक में स्थित निमेषिणी (पलक को बन्द करनेवाली) सिरा में पहुँची वायु, जब पलकों को अतिशय रूप में चलाती है, उसे निमेष रोग कहते हैं। इसमें रोगी जल्दी जल्दी पलक, चपकता रहता है ॥२५॥

छिन्नाश्छिन्ना विवर्धन्ते वर्त्मस्था मृदवोऽङ्कुराः ।
दाहकण्डूरुजोपेतास्तेऽर्शः शोणितसंभवाः ॥२६॥

पलक में स्थित कोमल अंकुर, बार बार काटने पर जो बढ़ जाते हैं, दाह एवं कण्डू से युक्त रहते हैं, इनको अर्श कहते हैं, ये रक्तजन्य होते हैं ॥२६॥

अपाकः कठिनः स्थूलो ग्रन्थिर्वर्त्मभवोऽरुजः ।
सकण्डूः पिच्छिला कोलप्रमाणो लगणस्तु सः ॥२७॥

लगण—न पकनेवाली, कठिन, स्थूल, वेदनारहित, पलक में उत्पन्न, बेर के समान ग्रन्थि को लगण कहते हैं, इसमें कण्डू और पिच्छलता रहती है ॥२७॥

शूनं यद्वर्त्म बहुभिः सूक्ष्मैश्छिद्रैः समन्वितम् ।
बिसमन्तर्जल इव बिसवर्त्मेति तन्मतम् ॥२८॥

जो वर्त्म सूजा हुआ एवं सूक्ष्म छिद्रोंवाले बहुत से छेदों से चारों ओर से भरा होता है, जैसा कि विष के अन्दर जल भरा रहता है, ऐसा पलक विषवर्त्म कहता है।

वि० मन्तव्य—विष—तन्मतम् के स्थान में—बिसवत्यन्तरुदकं बिसवत् बिसवर्त्म तत्। पाठ हो तो अच्छा हो और भाव प्रकाश में यही पाठ है। सम्भव है भावमिश्र के पास जो सुश्रुत की प्रति रही होगी उसमें पाठ यही हो ॥२८॥

दोषाः पक्ष्माशयगतास्तीक्ष्णाग्राणि खराणि च ।
निर्वर्तयन्ति पक्ष्माणि तैर्घुष्टं चाक्षि दूयते ॥२९॥
उद्धृतैरुद्धृतैः शान्तिः पक्ष्मभिश्चोपजायते ।
वातातपानलद्वेषी पक्ष्मकोपः स उच्यते ॥३०॥

पक्ष्माशय (बालों की जड़) में पहुँचे दोष पलकों के बालों को भीतर की ओर उगा देते हैं, आगे से तीक्ष्ण और कर्कश होते हैं, इनकी रगड़ पड़ने पर आँख दुखने लगती हैं। बार-बार बालों को उखाड़ने से रोगी को शान्ति मिलती है। रोगी वायु, धूप, अग्नि से द्वेष करता है, इस रोग को पक्ष्मकोप कहते हैं।

वि० मन्तव्य—नेत्र मण्डलों की गणना करते समय एक पक्ष्ममण्डल भी गिना है, देखिये उ० अ० १ का श्लो० १५। यह पक्ष्मकोप उसी मण्डल का रोग है। इसमें पक्ष्म नामक बाल भीतर की ओर उग जाता है, अथवा उगजाते हैं, निमेषोन्मेष होते समय ये बाल नेत्र बुद्बुद पर लगते हैं—रगड़ खाते हैं, फलतः नेत्र में कष्ट होता है, बुद्बुद लाल हो जाता है, अश्रु बहते हैं, रोगी दुःखी रहता है, इसको डल्लनाचार्य के समय में और पञ्जाब में आज भी "पड़िबाल" या परबाल कहते हैं। जब इनको मोचना (मुचुण्डी) द्वारा उखाड़ दिया जाता है, तब १–२–३ दिन के लिये शान्ति मिलती है, परन्तु यह पुनः उग आता है, और फिर वही कष्ट होने लगता है। भावमिश्रने अपने भाव प्रकाश में किसी ग्रन्थ का पाठ उद्धृत किया है जो अधिक स्पष्ट एवं सुभग है यथा—

यत् पक्ष्मदेहलीं मुक्त्वा वर्त्मनोऽन्तः प्रजायते ।
घर्षेत् पक्ष्म असिते श्वेते पक्ष्मकोपः स उच्यते ।१०३।

इसके अतिरिक्त आपने पक्ष्मशात नामक रोग का भी उल्लेख किया है, यथा—

वर्त्मपक्ष्माशय गतं पित्तं लोमानि शातयेत् ।
कण्डूं दाहं च कुरुते पक्ष्मशातं तम् आदिशेत् ।१०४।

ने० रो० ॥ पक्ष्मशात नामक रोग वह है जिसमें नेत्र लोम उखड़ जाते हैं और वह स्थान लाल लाल दिखाई पड़ता है। नेत्र असुन्दर हो जाते हैं। पक्ष्मकोप नामक रोग को याप्य माना है, देखिये अ० १ श्लो० ३६। परन्तु यह रोग उसी दशा में याप्य है, जब इसकी चिकित्सा बाल को मोचना से उखाड़ देना मात्र की जाती है, क्योंकि उस स्थान पर पुनः बाल उग आता है, परन्तु यदि अ० १६ के अनुसार छेदनकर्म, अग्निकर्म, क्षारकर्म अथवा प्रतिसारण कर्म किया जाता है, तब वह साध्य है, क्योंकि छेदनकर्म करने पर बाल उगने का स्थान ही नहीं रह जाता और अग्नि कर्म तथा क्षार कर्म करने पर बाल का कूप ही जल जाता है, और पक्ष्मा अथवा सुवरक

का प्रतिसारण करने पर बाल का मार्ग ही अवरुद्ध हो जाता है, अतः सदा के लिये उस रोग से मुक्ति मिल जाती है ॥२९,३०॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रे वर्त्मगतरोगविज्ञानीयो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

अथातः शुक्लगतरोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे शुक्लगत रोग विज्ञानीय अध्याय का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था।

वि० मन्तव्य—इस अध्याय में शुक्ल मण्डल के रोगों का वर्णन है ॥१,२॥

प्रस्तारिशुक्लक्षतजाधिमांस-
स्नाय्वर्मसंज्ञाः खलु पञ्च रोगाः।
स्युः शुक्तिका चार्जुनपिष्टकौ च
जालं सिराणां पिडकाश्च याः स्युः ॥३॥
रोगा बलासग्रथितेन सार्धं-
मेकादशाक्ष्णोः खलु शुक्लभागे।

आँख के शुक्ल भाग में ग्यारह रोग होते हैं, यथा—प्रस्तारिअर्म, शुक्लअर्म, क्षतअर्म, अधिमांसअर्म, स्नायुअर्म ये पाँच, शुक्तिका, अर्जुन, पिष्टक, सिराजाल, सिरापिडिका, और बलासग्रथित ये ग्यारह रोग आँख के शुक्ल भाग में होते हैं ॥३॥

प्रस्तारि प्रथितमिहार्म शुक्लभागे
विस्तीर्णं तनु रुधिरप्रभं सुनीलम् ॥४॥

प्रस्तारिअर्म—शुक्लभाग में—फैला हुआ पतला, रक्त की आभावाला थोड़ी सी नीली झाँई लिये होता है।

वि० मन्तव्य—अर्म नेत्र के शुक्ल मण्डल में (श्वेत भाग में होनेवाला चिह्न है। इसे समझने के लिये विदेह का वचन सहायक हो सकता है। यथा—

समन्तात् विस्तृतः श्यावो रक्तो वा मांससञ्चयः।
सन्निपातेन दोषाणां प्रस्तारि अर्म तत् उच्यते। ड० टी०

नेत्र के दूसरे पटल में मांस रहता है, वही विकृत हो जाता है, जो अर्म का रूप धारण कर लेता है। देखिये उ० अ० १ श्लो० १८ ॥ ४ ॥

शुक्लाख्यं मृदु कथयन्ति शुक्लभागे
सश्वेतं सममिह वर्धते चिरेण।

शुक्लअर्म—शुक्लभाग में ईषत् श्वेतवर्ण कोमल, समान, देर में बढ़ता है। साध्य है।

यन्मांसं प्रचयमुपैति शुक्लभागे
पद्माभं तदुपदिशन्ति लोहितार्म ॥५॥

जो मांस शुक्लभाग में बढ़ जाता है, लाल कमल के रंग का रहता है, उसको लोहितार्म कहते हैं ॥५॥

विस्तीर्णं मृदु बहलं यकृत्प्रकाशं
श्यावं वा तदधिकमांसजार्म विद्यात्।

जो अर्म—फैला हुआ, कोमल, मोटा, यकृत् के समान या काला होता है, उसको अधिक मांसजअर्म कहते हैं।

शुक्ले यत् पिशितमुपैति वृद्धिमेतत्
स्नाय्वर्मत्यभिपठितं खरं प्रपाण्डु ॥६॥

शुक्लभाग में जो मांस बढ़कर कर्कश एवं पाण्डुवर्ण हो जाता है, उसको स्नाय्वर्म कहते हैं ॥६॥

श्यावाः स्युः पिशितनिभाश्च बिन्दवो ये
शुक्त्याभाः सितनयने स शुक्तिसंज्ञः।

काले, मांस के समान (लाल), जो बिन्दु सिप्पी के समान (कुछ लम्बे) श्वेतभाग में होते हैं, उनको शुक्ति कहते हैं।

एको यः शशरुधिरोपमस्तु बिन्दुः
शुक्लस्थो भवति तमर्जुनं वदन्ति ॥७॥

शुक्ल भाग में, शशक के रक्त के सदृश अकेला ही जो एक बिन्दु होता है, उसको अर्जुन कहते हैं ॥७॥

उत्सन्नः सलिलनिभोऽथ पिष्टशुक्लो
बिन्दुर्यो भवति स पिष्टकः सुवृत्तः।

चावलों की पिठ्ठी के समान श्वेत, पानी के समान निर्मल, उठा हुआ बिन्दु होता है, उसे पिष्टक कहते हैं, यह गोल होता है। (कफजन्य एवं साध्य है)।

जालाभः कठिनसिरो महान् सरक्तः
सन्तानः स्मृत इव जालसंज्ञितस्तु ॥८॥

अनुलोम—विलोम रूप, फैले सिरा समूहों के कारण जाला की भाँति-कान्तिवाला, कठिन सिराओंसे युक्त, बड़ा, ईषत्रक्त, सिराओं के सन्तानयुक्त (एक-दूसरे से लगातार मिली सिराका) सिराजाल कहलाता है, यह रक्तज और साध्य है ॥८॥

शुक्लस्थाः सितपिडकाः सिरावृता यास्ता
विद्यादसितसमीपजाः सिराजाः।

शुक्ल भाग में काले भाग के समीप, सिराओं से घिरी जो श्वेत पिड़का है, उसे सिराज पिड़का कहते हैं।

कांस्याभो भवति सितेऽम्बुबिन्दुतुल्यः
स ज्ञेयोऽमृदुररुजो बलासकाख्यः ॥९॥

श्वेत भाग में जल बिन्दु के समान, कांसी की झाँईवाला, कठिन, वेदना रहित-बलासक कहाता है ॥९॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रे शुक्लगतरोगविज्ञानीयो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

पञ्चमोऽध्यायः

अथातः कृष्णगतरोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे कृष्णगतरोगविज्ञानीय अध्याय का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था।

वि० मन्तव्य—इस अध्याय में कृष्ण मण्डल के रोगों का वर्णन है। १,२॥

यत् सव्रणं शुक्र (क्ल) मथाव्रणं वा
पाकात्ययश्चाप्यजका तथैव ।
चत्वार एतेऽभिहिता विकाराः
कृष्णाश्रयाः संग्रहतः पुरस्तात् ॥३॥

सव्रणशुक्र, अव्रणशुक्र पाकात्यय और अजका, ये चार रोग कृष्ण भाग में होनेवाले पहले कह दिये हैं ॥३॥

निमग्नरूपं हि भवेत्तु कृष्णे
सूच्येव विद्धं प्रतिभाति यद्वै ।
स्रावं स्रवेदुष्णमतीव रुक् च
तत् सव्रणं शुक्र (क्ल) मुदाहरन्ति ॥४॥

कृष्ण भाग में अन्दर को दबा हुआ एवं सूई से विद्ध हुआ (गोल) प्रतीत होता है, अति उष्ण स्राव बहता है, वेदना होती है, इसको सव्रण शुक्र कहते हैं। (विदेह ने—इसे रक्त-राजीनिभं कृष्णे विद्रुमाभं प्रलक्ष्यते। सूच्यग्रेणैव तच्छुक्रमुष्णाश्रुस्रावि सव्रणम्) ॥४॥

दृष्टेः समीपं न भवेत्तु यच्च
न चावगाढं न च संस्रवेद्धि ।
अवेदनावन्न च युग्मशुक्रं
तत्सिद्धिमाप्नोति कदाचिदेव ॥५॥

जो शुक्र दृष्टि के समीप न हो और न तो बहुत गहरा हो, न उससे स्राव होता हो, किसी प्रकार की वेदना न हो और दो-एक साथ न हों (अकेला हो), वह सव्रण शुक्र कभी ठीक हो सकता है ॥५॥

विच्छिन्नमध्यं पिशितावृतं वा
चलं सिरासक्तमदृष्टिकृच्च ।
द्वित्वग्गतं लोहितमन्ततश्च
चिरोत्थितं चापि विवर्जनीयम् ॥६॥
उष्णाश्रुपातः पिडका च कृष्णे
यस्मिन् भवेन्मुद्गनिभं च शुक्रम् ।
तदप्यसाध्यं प्रवदन्ति केचि—
दन्यच्च यत्तित्तिरिपक्षतुल्यम् ॥७॥

जो शुक्र बीच से कटा हो (दो में विभक्त), या माँस से ढंपा हो, सिराओं में आसक्त हो, चिपका हो, हिलता रहता हो, देखने में बाधा करता हो, दो त्वचाओं के बीच में आया हो, किनारों से लाल हो, पुरातन हो, वह असाध्य है। जिस शुक्र में गरम आंसू झरते हों, कृष्ण भाग में पिड़िका हो, शुक्र मूँग के समान हो उसे भी कई असाध्य कहते हैं, इसी प्रकार जो शुक्र तीतर के पक्ष के समान (कई रंग का चित्त कबरा) होता है, वह भी असाध्य है ॥६॥

सितं यदा भात्यसितप्रदेशे
स्यन्दात्मकं नातिरुगश्रुयुक्तम् ।
विहायसीवाच्छघनानुकारि
तदव्रणं साध्यतमं वदन्ति ॥८॥

कृष्णभाग में जब सफेदी दीखती हो, जो सफेदी अभिष्यन्द के कारण से उत्पन्न हुई हो, जिसमें बहुत वेदना एवं बहुत अश्रु न हों, आकाश में निर्मल पतले मेघ के समान दीखता हो, वह अव्रण शुक्र साध्य है। (यह रक्तज है, साध्य है)।

वि० मन्तव्य—शुक्र—इसे फूला या फूली कहते हैं यह कृष्णमण्डल में श्वेत या श्वेताभ दिखाई पड़ता है। यह दो प्रकार का होता है—१—सव्रणशुक्र—यह आँख चुभने से होता है और २अव्रणशुक्र-यह आँख दुखने से हो जाता है। शीतला के कारण जो शुक्र होता है वह असाध्य होता है ॥८॥

गम्भीरजातं बहलं च शुक्रं
चिरोत्थितं चापि वदन्ति कृच्छ्रम् ।

जो शुक्र गहरा हो, मोटा हो, देर का उत्पन्न हो, वह (अव्रण) शुक्र भी कष्ट साध्य है।

संच्छाद्यते श्वेतनिभेन सर्वं
दोषेण यस्यासितमण्डलं तु ॥९॥
तमक्षिपाकात्ययमक्षिकोप-
समुत्थितं तीव्ररुजं वदन्ति ।

सफेदी के समान दोष से जिस पुरुष का सारा काला भाग ढांप लिया जाता है, जो कि आंख के दुखने से उत्पन्न होता है, अतिशय वेदना होती है उसे अक्षिपाकात्यय कहते हैं ॥९॥

अजापुरीषप्रतिमो रुजावान्
सलोहितो लोहितपिच्छिलाश्रुः ।
विदार्य कृष्णं प्रचयोऽभ्युपैति
तं चाजकाजातमिति व्यवस्येत् ॥१०॥

जो बकरी की मींगनी के समान आकार में, वेदना युक्त, थोड़ा लाल, लाल एवं पिच्छल, आंसू जिसमें बहते हों, कृष्ण-भाग को विदीर्ण करके, जो कि (भेद से) बढ़ता है, उसको 'अजका' कहते हैं। (कफजन्य एवं असाध्य है) ॥१०॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रे कृष्णगतरोगविज्ञानीयो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥

षष्ठोऽध्यायः

अथातः सर्वगतरोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥१॥ यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे सर्वगत रोगविज्ञानीय अध्याय का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वतरि ने कहा था।

वि० मन्तव्य—इस अध्याय में उन रोगों का वर्णन है जिनका प्रभाव नेत्र के सब अवयवों पर पड़ता है ॥१,२॥

स्यन्दास्तु चत्वार इहोपदिष्टा-
स्तावन्त एवेह तथाऽधिमन्थाः।
शोफान्वितोऽशोफयुतश्च पाका-
वित्येवमेते दश संप्रदिष्टाः ॥३॥
हताधिमन्थोऽनिलपर्ययश्च
शुष्काक्षिपाकोऽन्यत एव वातः।
दृष्टिस्तथाऽम्लाध्युषिता सिराणा-
मुत्पातहर्षावपि सर्वभागाः ॥४॥

सर्वगत रोगों में—अभिष्यन्द चार-चार ही अधिमन्थ, सशोफपाक, और अशोफपाक, ये दस रोग, हताधिमन्थ, वातपर्यय, शुष्काक्षिपाक, अन्यतोवात, अम्लाध्युषितदृष्टि, सिरोत्पात और सिराहर्ष ये सात, कुल मिलाकर सतरह रोग है।

वि० मन्तव्य—अभिष्यन्द—यह "आँख दुखना" "आँख आना" कहलाता है। अधिमन्थ—अभिष्यन्द की उचित चिकित्सा न होने पर अथवा मिथ्या आहार विहार से हो जाता है यह "सम्बल वायु" तथा पंजाब में "उल्लां" कहलाता है॥

प्रायेण सर्वे नयनामयास्तु
भवन्त्यभिष्यन्दनिमित्तमूलाः।
तस्मादभिष्यन्दमुदीर्यमाण-
मुपाचरेदाशु हिताय धीमान् ॥५॥

प्रायः करके आँख के सब रोग अभिष्यन्द के कारण से उत्पन्न होते हैं। इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य बढ़ते हुए अभिष्यन्द की चिकित्सा शीघ्र करे ॥५॥

निस्तोदनं स्तम्भनरोमहर्ष-
संघर्षपारुष्यशिरोभितापाः।
विशुष्कभावः शिशिराश्रुता च
वाताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥६॥

वाताभिष्यंन्द में—सूई चुभने की वेदना स्तब्धता, रोमांच, रगड़ का अनुभव, कठोरता, शिर में दर्द, आँख में शुष्कता, ठण्डे आँसुवों का आना होता है। (साध्य) ॥६॥

दाहप्रपाकौ शिशिराभिनन्दा
धूमायनं बाष्पसमुच्छ्रयश्च।
उष्णाश्रता पीतकनेत्रता च
पित्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥७॥

पित्ताभिष्यन्द में—दाह, पकना, शीत की चाह, धूम निकलने का अनुभव, अश्रु की अधिकता, आँसुओं का गरम होना, आँखों में पीलापन होता है (साध्य है) ॥७॥

उष्णाभिनन्दा गुरुताऽक्षिशोफः
कण्डूपदेहौ सितताऽतिशैत्यम्।
स्रावो मुहुः पिच्छिल एव चापि
कफाभिपन्ने नयने भवन्ति ॥८॥

कफाभिष्यन्द में—उष्ण की चाह, भारीपन, आँखों में सूजन, कण्डू, मैल का आना, सफेदी, बहुत शीतलता, बार-बार और पिच्छिल स्राव होता है ॥८॥

ताम्राश्रुता लोहितनेत्रता च
राज्यः समन्तादतिलोहिताश्च।
पित्तस्य लिङ्गानि च यानि तानि
रक्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥९॥

रक्ताभिष्यन्द में—आँसू लाली लिये, आँखों में सुर्खी, चारों ओर आँख में बहुत लाल रेखायें, तथा पित्त के अभिष्यन्द के लक्षण रहते हैं ॥९॥

वृद्धैरेतैरभिष्यन्दैर्नराणामक्रियावताम्।
तावन्तस्त्वधिमन्थाः स्युर्नयने तीव्रवेदनाः ॥१०॥

चिकित्सा न करने वाले मनुष्यों में यही अभिष्यन्द बढ़कर इतने ही (चार ही) अधिमन्थ करते हैं, जिनसे आँखों में तीव्र वेदना होती है ॥१०॥

उत्पाट्यत इवात्यर्थं नेत्रं निर्मथ्यते तथा।
शिरसोऽर्धं च तं विद्यादधिमन्थं स्वलक्षणैः ॥११॥

नेत्र बाहर निकलता (फटता) प्रतीत होता है, नेत्र और शिर का आधा भाग (जिधर की आँख हो) मथता हुआ प्रतीत होता है (वेदना बहुत होती है), ये अधिमन्थ के सामान्य लक्षण हैं ॥११॥

नेत्रमुत्पाट्यत इव मथ्यतेऽरणिवच्च यत्।
संघर्षतोदनिर्भेदमांससंरब्धमाविलम् ॥१२॥
कुञ्चनास्फोटनाध्मानवेपथुव्यथनैर्युतम्।
शिरसोऽर्धं च येन स्यादधिमन्थः स मारुतात् ॥१३॥

वातज अधिमन्थ में—नेत्र उखड़ता (बाहर आता) प्रतीत होता है, अरणी से मथने के समान नेत्र में पीड़ा, रगड़, तोद शस्त्र से चीरने की सी वेदना, सूजन, गदलापन, संकुचित होना (सिकुड़ना, प्रकाश में मिचना), फटना, आध्मान, कम्पन, आधे शिर में पीड़ा होती है ॥१२,१३॥

रक्तराजिचितं स्रावि वह्निनेवावदह्यते।
यकृत्पिण्डोपमं दाहि क्षारेणाक्तमिव क्षतम् ॥१४॥
प्रपक्वोच्छूनवर्त्मान्तं सस्वेदं पीतदर्शनम्।
मूर्च्छाशिरोदाहयुतं पित्तेनाद्यधिमन्थितम् ॥१५॥

पित्तज अधिमन्थ में—आँख लाल रेखाओं से भरी स्राव-युक्त, अग्नि की भांति जलती है, यह नेत्र यकृत् पिण्ड के समान (लाल-काला) जलनयुक्त, व्रण पर जैसे नमक मल दिया

हो—ऐसा जलता है, पका हुआ, किनारे सूजे हुए, पसीना-युक्त, पीला दीखता है, रोगी को मूर्च्छा, शिर में दाह रहता है ॥

शोफवन्नातिसंरब्धं स्रावकण्डूसमन्वितम् ।
शैत्यगौरवपैच्छिल्यदूषिकाहर्षणान्वितम् ॥१६॥
रूपं पश्यति दुःखेन पांशुपूर्णमिवाविलम् ।
नासाध्मानशिरोदुःखयुतं श्लेष्माधिमन्थितम् ॥१७॥

कफज अधिमन्थ में—आँख सूजी हुई, बहुत अधिक लाल नहीं, स्राव एवं कण्डूयुक्त, शीतल, भारी, पिच्छिलता, मैल (गीध), हर्ष (रोमाञ्चता पलकों के बाल खड़े) युक्त होती है। रूप को कठिनाई से देखती है, और जो देखती है, वह धुंधयाला-धूल से भरा मैला दीखता है। इसमें नासा का आध्मान, शिर में वेदना रहती है ॥१६,१७॥

बन्धुजीवप्रतीकाशं तास्यति स्पर्शनाक्षमम् ।
रक्तास्रावं सनिस्तोदं पश्यत्यग्निनिभा दिशः ॥१८॥
रक्तमग्नारिष्टवच्च कृष्णभागश्च लक्ष्यते ।
यद्दीप्तं रक्तपर्यन्तं तद्रक्तेनाधिमन्थितम् ॥१९॥

रक्ताधिमन्थ में—आँख दुपहरिया के फूल के समान लाल, धुंधयाली सी, देखने में असमर्थ, आँसू में लाली, चुभने की दर्द, चारों ओर आग लगी सी देखती है। आँख का काला भाग रक्त में लाल किये अरीठे की भांति दीखता है। दाह युक्त होता है किनारों पर लाली रहती है ॥१८,१९॥

हन्याद्दृष्टिं सप्तरात्रात् कफोत्थो-
ऽधीमन्थोऽसृक्संभवः पञ्चरात्रात् ।
षड्रात्राद्वै मारुतोत्थो निहन्यान्-
मिथ्याचारात् पैत्तिकः सद्य एव ॥२०॥

कफजन्य अधिमन्थ सात दिन में, रक्तजन्य अधिमन्थ पाँच दिन में, वातजन्य अधिमन्थ छै दिन में, पैत्तिक अधिमन्थ मिथ्या आचार से तुरन्त ही दृष्टि को नष्ट कर देता है।

वि० मन्तव्य—मिथ्याचारात्—अधिमन्थ मिथ्या आहार विहार करने से उक्त अवधि में दृष्टि को नष्ट करता है अन्यथा नहीं ॥२०॥

कण्डूपदेहाश्रुयुतः पक्वोदुम्बरसन्निभः ।
दाहसंहर्षताम्रत्वशोफनिस्तोदगौरवैः ॥२१॥
जुष्टो मुहुः स्रवेच्चास्रमुष्णशीताम्बु पिच्छिलम् ।
संरम्भी पच्यते यश्च नेत्रपाकः सशोफजः ॥२२॥

सशोफ पाक—जिस नेत्र पाक में-कण्डू, गीध का आना, आंसू, पके हुए गूलर के समान आंख (लाल), आंख में जलन, रगड़, लाली, सूजन, चुभने की सी दर्द, भारीपन के साथ उष्ण, या शीत पिच्छिल आंसू बार-बार बहते हों, सूजन-पक जाये, वह नेत्रपाक सशोफज है।

वि० मन्तव्य—नेत्रपाक-यह दो प्रकार का होता है, १—शोफजनित। इसमें नेत्र बुद्बुद फोड़ा बन जाता है और आगे चलकर नष्ट हो जाता है और "काना" हो जाता है। २—अशोफज-फोड़ा न होकर बुद्बुद सूख जाता है, कभी २ बहुत छोटा होकर रह भी जाता है ॥२१,२२॥

शोफहीनानि लिङ्गानि नेत्रपाके त्वशोफजे ।

अशोफज नेत्रपाक में सूजन से रहित सब लक्षण रहते हैं।

उपेक्षणादक्षि यदाऽधिमन्थो
वातात्मकः सादयति प्रसह्य ।
रुजाभिरुग्राभिरसाध्य एष
हताधिमन्थः खलु नाम रोगः ॥२३॥

वातज अधिमन्थ जब उपेक्षा करने पर आंख को बलात् सुखा देता है, इसमें अतिशय तीव्र वेदना होती हो, तब यह हताधिमन्थ नाम का रोग कहा जाता है!

वि० मन्तव्य—हताधिमन्थ-इसमें नेत्र की ज्योति-दृष्टि नष्ट हो जाती है और बुद्बुद सूखकर छोटा भी हो जाता है। इसके पश्चात् वेदना आदि शान्त हो जाते हैं। कभी २ कृष्ण-मण्डल श्वेत भी हो जाता है। हताधिमन्थ का वर्णन विदेह के शब्दों में सुनिये—

अन्तर्गतः सिराणां तु यदा तिष्ठति मारुतः।
स तदा नयनं प्राप्य शीघ्रं दृष्टिं निरस्यति।
तस्यां निरस्यमानायां निर्मन्थन् इव मारुतः।
नयनं निर्वमति-आशु शूलतोदाधिमन्थनैः।
अथवा शोषयेत् अक्षि क्षीणतेजो बलात् अयम्।
तत् पद्ममिव संशुष्कं अवसीदति लोचनम्।
हताधिमन्थं तं विद्यात् असाध्यं वातकोपतः ॥२३॥

अन्तःसिराणां श्वसनः स्थितो दृष्टिं प्रतिक्षिपन् ।
हताधिमन्थं जनयेत्तमसाध्यं विदुर्बुधाः ॥२४॥

जब वायु अन्दर की सिराओं में स्थित होकर दृष्टि को बाहर की ओर निकालती प्रतीत होती है (दृष्टि बाहर निकलती प्रतीत हो), तब यह हताधिमन्थ असाध्य है ॥२४॥

पक्ष्मद्वयाक्षिभ्रुवमाश्रितस्तु
यत्रानिलः संचरति प्रदुष्टः ।
पर्यायशश्चापि रुजः करोति
तं वातपर्यायमुदाहरन्ति ॥२५॥

दूषितवायु जिसमें दोनों पलक, आँख, भ्रू, में आश्रित होकर गति करती है, और कभी भ्रू में कभी आँख में कभी पलकों में वेदना करती है, इसको वातपर्याय कहते हैं ॥२५॥

यत् कूणितं दारुणरूक्षवर्त्म
विलोकने चाविलदर्शनं यत् ।

सुदारुणं यत् प्रतिबोधने च
शुष्काक्षिपाकोपहतं तदक्षि ॥२६॥

जिसमें पलक सिकुड़ी हुई, कठिन, रूक्ष होती है, देखने में धुंधलापन दिखाई दे, आँख को खोलने में जब अतिशय कठिनाई हो, उस आँख को शुष्काक्षिपाक कहते हैं ॥२६॥

यस्यावटूकर्णशिरोहनुस्थो
मन्यागतो वाऽप्यनिलोऽन्यतो वा ।
कुर्याद्रुजोऽति भ्रुवि लोचने वा
तमन्यतो वातमुदाहरन्ति ॥२७॥

जिसमें वायु-ग्रीवा के पिछले भाग, कान, शिर, हनु, या मन्या में स्थित, अथवा पीठ में स्थित होकर, भ्रू में और आँख में तीव्र वेदना करती है उसको अन्यतोवात कहते हैं ॥२७॥

अम्लेन भुक्तेन विदाहिना च ।
संछाद्यते सर्वत एव नेत्रम् ।
शोफान्वितं लोहितकैः सनीलै-
रेतादृगम्लाध्युषितं वदन्ति ॥२८॥

खटाई एवं विदाही भोजन के खाने से आंख सम्पूर्णरूप में शोफयुक्त, सुर्खी और थोड़े नीलेपन से ढँप जाती है। इस प्रकार की आँख को अम्लाध्युषित कहते हैं ॥२८॥

अवेदना वाऽपि सवेदना वा
यस्याक्षिराज्यो हि भवन्ति ताम्राः ।
मुहुर्विरज्यन्ति च ताः समन्ताद्
व्याधिः सिरोत्पात इति प्रदिष्टः ॥२९॥

वेदना के विना या वेदना के साथ जिसकी आंख की रेखायें ताम्रवर्ण हो जाती हैं, ये रेखायें बार-बार चारों ओर से सुर्खी रहित हो जाती हों, इस रोग को सिरोत्पात कहते हैं ॥

मोहात् सिरोत्पात उपेक्षितस्तु
जायेत रोगस्तु सिराप्रहर्षः ।
ताम्राच्छमस्रं स्रवति प्रगाढं
तथा न शक्नोत्यभिवीक्षितुं च ॥३०॥

अज्ञानवश सिरोत्पातरोग की उपेक्षा करने से सिराप्रहर्ष रोग होता है। इससे ताम्रवर्ण, निर्मल, गाढ़ा अश्रु बहता है। इसमें रोगी निरन्तर नहीं देख सकता।

वि० मन्तव्य—सिरोत्पात रोग में सिराओं में बार २ रक्त भर जाता है, फलतः वे लाल हो जाती हैं और रक्त लौट जाने पर पुनः पूर्ववत् हो जाती हैं। सिराप्रहर्ष में उन रक्तपूर्ण सिराओं में से रक्त चूने लगता है फलतः लाल अश्रु बहने लगते हैं ॥३०॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रे सर्वगतरोगविज्ञानीयो
नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

सप्तमोऽध्यायः

अथातो दृष्टिगतरोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे दृष्टिगत रोगविज्ञानीय अध्याय का व्याख्यान करेंगे-जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था।

वि० मन्तव्य—इस अध्याय में दृष्टिमण्डल के रोगों का वर्णन है ॥१,२॥

मसूरदलमात्रां तु पञ्चभूतप्रसादजाम् ।
खद्योतविस्फुलिङ्गाभामिद्धां तेजोभिरव्ययैः ॥३॥
आवृतां पटलेनाक्ष्णोर्बाह्येन विवराकृतिम् ।
शीतसात्म्यां नृणां दृष्टिमाहुर्नयनचिन्तकाः ॥४॥

दृष्टि-का प्रमाण मसूर के पत्ते के बराबर है, यह पृथ्वी आदि पांच भूतों के सार से उत्पन्न हुई है। जुगनू के एवं सूक्ष्म अग्निकण के समान चमकनेवाले, उपचय एवं अपचय रहित तेजसे युक्त, आंख के बाह्यपटल से ढँपी, गोल छेदवाली (बिल के समान), शीतलवस्तु के सात्म्यवाली मनुष्यों की दृष्टि है, ऐसा आंख को समझनेवाले कहते हैं।

वक्तव्य—कहा भी है—दृष्टिस्तेजोमयीप्रोक्ताः शुक्रं तेजश्च केवलम् । तस्माद् दृष्टिबलापेक्षी तेजोवृद्धिं समाचरेत् ॥ आंख को शीत सात्म्य है, इसीसे कहा है—"पद्मोत्पलपलाशैर्वा स्वेचः संवृत्य चक्षुषी ।" च० चि० सू० अ० १४ । पृथ्वी-अप-तेज का आपस में कोई विरोध नहीं, चूँकि ये एक साथ उत्पन्न होते हैं, और इनका कार्य भी एक है। अथवा प्रभाव के कारण—जल के अन्दर रहनेवाला तेज भी नष्ट नहीं होता (यथा वड़वानल-विद्युत्शक्ति)। इसीसे कहा है—"विरुद्धैरपि न त्वेते गुणैर्घ्नन्ति परस्परम् । दोषाः सहजसात्म्यत्वाद् विषं घोरम-हीनिव ॥ चरक० चि० अ० २६,२६३ ॥३,४॥

रोगांस्तदाश्रयान् घोरान् षट् च षट् च प्रचक्ष्महे ।
पटलानुप्रविष्टस्य तिमिरस्य च लक्षणम् ॥५॥

दृष्टि में आश्रित भयानक बारह रोगों के तथा पटल में प्रविष्ट तिमिररोग के लक्षणों को कहूँगा ॥५॥

सिराभिरभिसंप्राप्य विगुणोऽभ्यन्तरे भृशम् ।
प्रथमे पटले दोषो यस्य दृष्टौ व्यवस्थितः ॥६॥
अव्यक्तानि स रूपाणि सर्वाण्येव प्रपश्यति ।

दूषित हुए दोष सिराओं द्वारा बहुत अन्दर प्रविष्ट होकर दृष्टि में प्रथम पटल के अन्दर स्थित हो जाते हैं, तब रोगी सब रूपों को धुंधला सा देखता है ॥६॥

दृष्टिर्भृशं विह्वलति द्वितीयं पटलं गते ॥७॥
मक्षिका मशकान् केशाञ्जालकानि च पश्यति ।
मण्डलानि पताकांश्च मरीचीः कुण्डलानि च ॥८॥
परिप्लवांश्च विविधान् वर्षमभ्रं तमांसि च ।

दूरस्थान्यपि रूपाणि मन्यते च समीपतः ॥९॥
समीपस्थानि दूरे च दृष्टेर्गोचरविभ्रमात्।
यत्नवानपि चात्यर्थं सूचीपाशं न पश्यति ॥१०॥

दोष के दूसरे पटल में पहुँच जानेपर (मेद में आश्रित होनेपर) दृष्टि पहले पटल की अपेक्षा अधिक मलीन हो जाती है। रोगी आँखों के सामने मक्खी, मच्छर, बाल, जाले से, मण्डल, पताकायें, मृगतृष्णा की भाँति, कर्णकुण्डल, नक्षत्र आदि—अस्थिर नाना प्रकार की वस्तुएँ, वर्षा, अभ्र (बादल), अन्धकार को देखता है। दृष्टि का विभ्रम होने से समीप की वस्तु को दूर और दूर की वस्तु को समीप में स्थित मानता है। बहुत कोशिश करने पर भी सूई की नोक को नहीं देख सकता (सूई में धागा नहीं डाल सकता) ॥७–१०॥

ऊर्ध्वं पश्यति नाधस्तात्तृतीयं पटलं गते।
महान्त्यपि च रूपाणि च्छादितानीव वाससा ॥११॥
कर्णनासाक्षियुक्तानि विपरीतानि वीक्षते।
यथादोषं च रज्येत दृष्टिर्दोषे बलीयसि ॥१२॥
अधःस्थिते समीपस्थं दूरस्थं चोपरिस्थिते।
पार्श्वस्थिते तथा दोषे पार्श्वस्थानि न पश्यति ॥१३॥
समन्ततः स्थिते दोषे संकुलानीव पश्यति।
दृष्टिमध्यगते दोषे स एकं मन्यते द्विधा ॥१४॥
द्विधास्थिते त्रिधा पश्येद् बहुधा चानवस्थिते।

दोष के तीसरे पटल में स्थित हो जाने पर रोगी ऊपर देख सकता है, परन्तु नीचे नहीं देख सकता। बड़े भारी रूपों को भी कपड़े से ढँपा अनुभव करता है। कान, नाक, आँख से युक्त होनेपर भी इनको कान-नाक आँख से हीन मानता है। दोष के दृष्टि के निचले भाग में स्थित होनेपर समीपस्थ वस्तु को नहीं देखता है। दोष के ऊपर के भाग में (दृष्टि में) स्थित होने पर दूर की वस्तु को नहीं देखता है। दोष के पार्श्व में स्थित होने पर—पार्श्व की वस्तु को नहीं देखता। दोष के दृष्टि में चारों ओर स्थित होने पर वस्तु को संकुचित हुआ देखता है। दोष के दृष्टि के मध्य में स्थित होने पर एक वस्तु के दो भाग देखता है। दोष के दो स्थानों पर स्थित होने पर वस्तु को तीन प्रकार से (तीन भागों में) देखता है। दोष के चंचल होने पर अनेक प्रकार से—अनेक भागों में देखता है। इस दोष को तिमिर कहते हैं।

वि० मन्तव्य—जब तक दोष प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय पटल में रहता है तब तक उक्त (श्लो० ६-१४) लक्षण होते हैं—इस दशा का नाम "तिमिर" है। इसे पञ्जाब में "धुन्द" कहते हैं। यदि स्वस्थवृत्त के अनुसार—पञ्चरात्रे सप्तरात्रे वा स्रावणार्थं रसाञ्जनम्—पाँच सात दिन पर रात्रि के समय रसवत अथवा किसी भी स्रावण अञ्जन का प्रयोग होता रहे तो दृष्टि में दोष सञ्चय ही न हो और फलतः तिमिर नामक रोग भी न हो ॥११–१४॥

तिमिराख्यः स वै दोषः चतुर्थं पटलं गतः ॥१५॥
रुणद्धि सर्वतो दृष्टिं लिङ्गनाशः स उच्यते।
तस्मिन्नपि तमोभूते नाति रूढे महागदे ॥१६॥
चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रावन्तरीक्षे च विद्युतः।
निर्मलानि च तेजांसि भ्राजिष्णूनि च पश्यति ॥१७॥

चौथे पटल में पहुँचते ही दोष दृष्टि को सम्पूर्ण रूप में रोक देते हैं, इसको लिंगनाश कहते हैं। इस लिंगनाश में-अन्धेरा हो जाने पर, इस बड़े रोग के बहुत न बढ़ने पर, रोगी चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, अन्तरिक्ष में विद्युत, निर्मलतेज (अग्नि आदि), चमकनेवाले दूसरे रूपों को देख सकता है अन्य को नहीं।

वि० मन्तव्य—वही दोष (तिमिरोत्पादक दोष सञ्चय) जब चतुर्थ पटल तक भर जाता है तब "लिङ्गनाश" कहलाता है इस दशा में लिङ्ग—दृष्टि का नाश हो जाता है किन्तु इसकी प्रारम्भिक दशा में चन्द्र आदि चमकीली वस्तुएँ दिखलाई पड़ती हैं अन्य नहीं। यही 'मोतियाविन्दु' है। वाग्भट्ट के शब्दों में—लिङ्गनाशं मलः कुर्वन् छादयेत् दृष्टिमण्डलम्। अर्थात् मल (दोष सञ्चय) लिंगनाश को करता हुआ दृष्टिमण्डल को ढँक लेता है। दिखना बन्द हो जाता है। यह स्मरणीय है कि इस रोग में दृष्टि का सर्वथा नाश नहीं होता है केवल दोष उसे ढँक देता है। क्योंकि जब यह दोष दूर हो जाता है—दृष्टि के आगे से हट जाता है—अथवा हटा दिया जाता है तब दिखने लगता है। देखिये लिंगनाश की चिकित्सा अगले अ० १७ में। इस लिंगनाश के दो नाम हैं १—नीलिका-नीला-काला मोतिया और २—काच-श्वेत मोतिया। यह दोष सञ्चित होते-होते जब मोती का सा या मसूर की दाल का सा हो जाता है तब दिखना सर्वथा बन्द हो जाता है। वाग्भट के शब्दों में—वृद्धः काचो दृशं कुर्यात् रजोधूमाऽऽवृताम् इव। (वा० उ० अ० १२) ॥१५–१७॥

स एव लिङ्गनाशस्तु नीलिकाकाचसंज्ञितः।
इसी लिंगनाश को नीलिका, काच नाम से कहते हैं।

तत्र वातेन रूपाणि भ्रमन्तीव स पश्यति ॥१८॥
आविलान्यरुणाभानि व्याविद्धानि च मानवः।

वायु के कारण उत्पन्न तिमिर में—मनुष्य रूपों को घूमता हुआ, मलिन (धुंधलाया), लाल वर्ण का, और टेढ़ा-मेढ़ा देखता है ॥१८॥

पित्तेनादित्यखद्योतशक्रचापतडिद्गुणान् ॥१९॥
शिखबर्हविचित्राणि नीलकृष्णानि पश्यति।

पित्तज तिमिर में—सूर्य, जुगनू, इन्द्रधनुष, विद्युत के समान, या मोर की पिच्छा की भाँति विचित्र, नीला-काला देखता है ॥१९॥

कफेन पश्येद्रूपाणि स्निग्धानि च सितानि च ॥२०॥
गौरचामरगौराणि श्वेताभ्रप्रतिमानि च।
पश्येदसूक्ष्माण्यत्यर्थं व्यभ्रे चैवाभ्रसंप्लवम् ॥२१॥
सलिलप्लावितानीव परिजाड्यानि मानवः।

कफज तिमिर में—रूपों को चिकना, श्वेतचँवर के समान शुक्ल, श्वेतबादल की भाँति के देखता है। स्थूलरूपों को देखता है, बादलों रहित आकाश में भी बादलों का जाना देखता है, चारों ओर जल से भरे हुए—श्वेत, स्तिमित (जड़ बने) रूपों को देखता है ॥२०, २१॥

तथा रक्तेन रक्तानि तमांसि विविधानि च ॥२२॥
हरितश्यावकृष्णानि धूमधूम्राणि चेक्षते॥

रक्तज तिमिर में लाल, अन्धकारयुक्त, नानाप्रकार के हरे, श्यामवर्ण या कृष्ण, धुंवे से धुंधयालेपन रूप देखता है ॥२२॥

सन्निपातेन चित्राणि विप्लुतानि च पश्यति ॥२३॥
बहुधा वा द्विधा वाऽपि सर्वाण्येव समन्ततः।
हीनाधिकाङ्गान्यथवा ज्योतींष्यपि च पश्यति ॥२४॥

सन्निपातज तिमिर में—नानावर्ण के, विप्लुत (सब जगह बिखरे), बहुत (संख्या में कई), या दो में फटे, सब रूपों को हीन या अधिक अङ्गोंवाला, चमक (तारक) को चारों ओर देखता है ॥२३,२४॥

पित्तं कुर्यात् परिम्लायि मूर्छितं रक्ततेजसा।
पीता दिशस्तथोद्यन्तमादित्यमिव पश्यति ॥२५॥
विकीर्यमाणान् खद्योतैर्वृक्षांस्तेजोभिरेव च।

रक्त के तेज (प्रसाद) से मिला पित्त परिम्लायि रोग उत्पन्न करता है, इससे रोगी को दिशायें पीली दीखती हैं, उसे उगता हुआ सूर्य चारों ओर दीखता है। वृक्ष जुगनुओं से भरे प्रतीत होते हैं—चमक दिखाई देती है (जिस तिमिर में राग रंग आ जाता है, उसे काच कहते हैं। जिसमें राग नहीं होता है, उसे परिम्लायि कहते हैं। जिसमें थोड़ा दिखाई दे—वह लिंगनाश है)।

वि० मन्तव्य—तिमिर की दशा में जैसे ऐनक के शीशों—भिन्न-भिन्न वर्ण के शीशों में से भिन्न-भिन्न वर्ण दिखते हैं, वैसे भिन्न वर्ण दिखते हैं ॥२५॥

वक्ष्यामि षड्विधं रागैर्लिङ्गनाशमतः परम् ॥२६॥

राग-रंग दृष्टि से छः प्रकार का लिंगनाश इसके आगे कहता हूँ।

वि० मन्तव्य—वर्ण के भेद से लिङ्गनाश (मोतिया) ६ प्रकार का माना जाता है ॥२६॥

रागोऽरुणो मारुतजः प्रदिष्टः
पित्तात् परिम्लाय्यथवाऽपि नीलः।
कफात् सितः शोणितजस्तु रक्तः
समस्तदोषोऽथ विचित्ररूपः ॥२७॥

अरुण रंग वायु के कारण से, परिम्लायि (पीला) या नीलारंग पित्त से, श्वेत रंग कफ से, लाल रंग रक्त से तथा नानारंग सन्निपात से होते हैं।

वक्तव्य—ये पाँच काच (रंगवाले लिंगनाश हैं), छठा परिम्लायि रोग है, इसमें पीला रंग सात्यकी के वचन से मानकर छै काच होते हैं, ऐसा डल्हण का कहना है।

वि० मन्तव्य—अरुण आदि रङ्गों की अत्यन्त थोड़ी आभा होती है जो बहुत ध्यान देने पर ज्ञात होती है। नेत्रचिकित्सकों द्वारा निकाले गये बहुत से मोतियों को एक साथ रखकर देखा जाय तो अरुण आदि वर्णों की प्रतीति होती है ॥२७॥

रक्तजं मण्डलं दृष्टौ स्थूलकाचानलप्रभम्।
परिम्लायिनि रोगे स्यान्म्लायन्नीलं च मण्डलम् ॥२८
दोषक्षयात् कदाचित् स्यात्स्वयं तत्र च दर्शनम्।

छाया परिम्लायि (रंगवाला काच) रोग में—मण्डल दृष्टि में रक्त से उत्पन्न होता है। मोटे काच (शीशा) के समान, आग के समान (लाली लिये), घटनेवाला, तथा थोड़ी सी नीली झाँई का मण्डल होता है। कभी दोषों के क्षय से, स्वयं ही दृष्टि आ जाती है।

वि० मन्तव्य—परिम्लायी नामक लिङ्गनाश रक्त एवं पित्त के संसर्ग से होता है (देखिये श्लो० २५) इसलिये जिसमें रक्त बलवान् रहता है वह स्थूल (मोटे) कांच का सा तथा अरुणवर्ण की आभावाला होता है अन्यथा पित्त की प्रधानता रहने पर परिम्लायी नामक मण्डल (मोतिया) आनील—कुछ नीला होता है। इस रोग में पित्त एवं रक्त की अधिकता होने के कारण कभी कभी दोष अर्थात् संचित मल का स्वयं चिकित्सा के बिना ही क्षय—नाश हो जाने पर दर्शन—(दिखाई देना) हो जाता है अर्थात् पित्त की ऊष्मा से दोष संचय स्वयं भी कभी कभी पिघलकर विलीन हो जाता है फलतः दिखने लगता है ॥२८॥

अरुणं मण्डलं वाताच्चञ्चलं परुषं तथा ॥२९॥
पित्तान्मण्डलमानीलं कांस्याभं पीतमेव वा।
श्लेष्मणा बहलं स्निग्धं शङ्खकुन्देन्दुपाण्डुरम् ॥३०॥
चलत्पद्मपलाशस्थः शुक्लो बिन्दुरिवाम्भसः।
संकुचत्यातपेऽत्यर्थं छायायां विस्तृतो भवेत् ॥३१॥
मृद्यमाने च नयने मण्डलं तद्विसर्पति।
प्रवालपद्मपत्राभं मण्डलं शोणितात्मकम् ॥३२॥
दृष्टिरागो भवेच्चित्रो लिङ्गनाशे त्रिदोषजे।
यथास्वं दोषलिङ्गानि सर्वेष्वेव भवन्ति हि ॥३३॥

वायु के कारण मण्डल अरुण वर्ण, चंचल और कठोर होता है। पित्त के कारण मण्डल ईषत् नीला, काँसी की

झाँई का या पीला होता है। कफ के कारण मोटा, चिकना, शंख कुन्द (मोगरे का फूल) और चन्द्रमा के समान श्वेत, हिलते हुए कमल पत्र पर रक्खे पानी की बूंद के समान श्वेत, धूप में बहुत सिकुड़नेवाला, और छाया में फैलनेवाला मण्डल होता है। आँख के मलने पर यह मण्डल फैलता है। रक्तजन्य मण्डल कमल पत्र की चमक का या मूंगे की चमक का होता है। त्रिदोषजन्य लिंगनाश में दृष्टि में रंग नाना प्रकार के होते हैं। इन सब में अपने अपने दोष के अनुसार दोषों के लक्षण होते हैं।

वक्तव्य—यहाँ पर कुछ थोड़ा सा दीखने लगने पर परिम्लायि रोग होता है, इस प्रकार से छै लिंगनाश पूरे होते हैं ऐसा डल्हण का कहना है॥

वि० मन्तव्य—यह मण्डलों अर्थात् काचों—मोतियों पर वातादि दोषों से होनेवाले प्रभाव बतलाये गये हैं॥२६-३३॥

षड् लिङ्गनाशाः षडिमे च रोगा
दृष्ट्याश्रयाः षट् च षडेव च स्युः।
तथा नरः पित्तविदग्धदृष्टिः
कफेन चान्यस्त्वथ धूमदर्शी॥३४॥
यो ह्रस्वजाड्यो (त्यो) नकुलान्धता च
गम्भीरसंज्ञा च तथैव दृष्टिः।

यह छै लिंगनाश, कह दिये हैं, ये आगे कहे जानेवाले छै रोग हैं। इस प्रकार दृष्टि के बारह रोग हैं, ये छै-छै ही हैं। रोग—पित्तविदग्धदृष्टि, कफविदग्धदृष्टि, धूमदर्शी, ह्रस्वजाड्य, नकुलान्ध्य, और गम्भीरिका ये छै रोग हैं॥३४॥

पित्तेन दुष्टेन गतेन दृष्टिं
पीता भवेद्यस्य नरस्य दृष्टिः॥३५॥
पीतानि रूपाणि च मन्यते यः
स मानवः पित्तविदग्धदृष्टिः।
प्राप्ते तृतीयं पटलं तु दोषे
दिवा न पश्येन्निशि वीक्षते च॥३६॥
(रात्रौ स शीतानुगृहीतदृष्टिः
पित्ताल्पभावादपि तानि पश्येत्)

दूषित हुए पित्त के कारण जिस मनुष्य की दृष्टि पीली हो जाये, जो मनुष्य रूपों को पीला मानता हो, उस मनुष्य की दृष्टि पित्तविदग्ध दृष्टि होती है। दोष के तीसरे पटल में पहुँच जाने पर रोगी दिन में ठीक प्रकार से नहीं देखता, परन्तु रात को देखता है। (रात्रि में शीतलता के कारण दृष्टि के खुल जाने पर पित्त के कम हो जाने से वह देख सकता है।॥

तथा नरः श्लेष्मविदग्धदृष्टि-
स्तान्येव शुक्लानि हि मन्यते तु॥३७॥
त्रिषु स्थितोऽल्पः पटलेषु दोषो
नक्तान्ध्यमापादयति प्रसह्य।
दिवा स सूर्यानुगृहीतचक्षु-
रीक्षेत रूपाणि कफाल्पभावात्॥३८॥

कफ से विदग्धदृष्टिवाला मनुष्य उन्हीं रूपों को श्वेत मानता है। तीनों पटलों में थोड़ा स्थित दोष रात्र्यन्धता (रात में न दीखना) उत्पन्न कर देता है। दिन में सूर्य की दया से कफ के कम होने पर इसको दृष्टि मिल जाने पर यह देख सकता है॥३७,३८॥

शोकज्वरायासशिरोभितापै-
रभ्याहता यस्य नरस्य दृष्टिः।
सधूमकान् पश्यति सर्वभावां-
स्तंधूमकर्शीति वदन्ति रोगम्॥३९॥

शोक, ज्वर, परिश्रम (जैसा रेलवे ड्राईवर), शिर का दुखना आदि कारणों से जिस मनुष्य की दृष्टि आहत हो जाये, वह मनुष्य सब वस्तुओं को धुँधयाला देखता है, इस रोग को धूमदर्शी कहते हैं॥३६॥

स ह्रस्वजाड्यो दिवसेषु कृच्छ्रा-
द्ध्रस्वानि रूपाणि च येन पश्येत्।

जो मनुष्य दिन में कठिनाई से रूपों को छोटे आकार में देखता है, उसे ह्रस्वजाड्य कहते हैं।

विद्योतते येन नरस्य दृष्टि-
र्दोषाभिपन्ना नकुलस्य यद्वत्॥४०॥
चित्राणि रूपाणि दिवा स पश्येत्
स वै विकारो नकुलान्ध्यसंज्ञः।

दोषों से आक्रान्त होने पर जिस पुरुष की दृष्टि नेवले के समान चमकती है, वह दिन में सब दोषों के वर्णवाले रूपों को देखता है, इस रोग को नकुलान्ध्य कहते हैं॥४०॥

दृष्टिर्विरूपा श्वसनोपसृष्टा
संकुच्यतेऽभ्यन्तरतश्च याति॥४१॥
रुजावगाढा च तमक्षिरोगं
गम्भीरिकेति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः।

वायु से युक्त दृष्टि—विकृत रूपवाली, संकुचित, और अन्दर की ओर बैठती जाती है। इसमें अतिशय वेदना होती है, इस रोग को गम्भीरिका कहते हैं॥४१॥

बाह्यौ पुनर्द्वाविह संप्रदिष्टौ
निमित्ततश्चाप्यनिमित्ततश्च॥४२॥
निमित्ततस्तत्र शिरोभितापा-
ज्ज्ञेयस्त्वभिष्यन्दनिदर्शनैश्च।

बाहर से होनेवाले जो दो रोग—निमित्तजन्य और अनिमित्तजन्य हैं, उनमें निमित्तजन्य रोग—शिर के दुःख के कारण होता है, इसके लक्षण अभिष्यन्द के समान होते हैं॥

सुरर्षिगन्धर्वमहोरगाणां
सन्दर्शनेनापि च भास्वराणाम्॥४३॥
हन्येत दृष्टिर्मनुजस्य यस्य
स लिङ्गनाशस्त्वनिमित्तसंज्ञः।

तत्राक्षि विस्पष्टमिवावभाति
वैडूर्यवर्णा विमला च दृष्टिः ॥४४॥

अनिमित्तज लिंगनाश—देवता, ऋषि, गन्धर्व, बड़े साँप (अजगर) तथा सूर्य के देखने के कारण जिस मनुष्य की दृष्टि जाती रहती है, इस लिंगनाश को अनिमित्तज कहते हैं। इसमें आँख अतिशय निर्मल रहती है, दृष्टि स्वाभाविक वर्ण की एवं स्वच्छ रहती है, परन्तु दिखता नहीं है ॥४४॥

विदीर्यते सीदति हीयते वा
नृणामभीघातहता तु दृष्टयः ॥४५॥

चोट लगने से मनुष्यों की दृष्टि—फट जाती है, नीचे बैठ जाती है या कम हो जाती है ॥४५॥

इत्येते नयनगता मया विकाराः
संख्याताः पृथगिह षट् च सप्ततिश्च।
एतेषां पृथगिह विस्तरेण सर्वं
वक्ष्येऽहं तदनु चिकित्सितं यथावत् ॥४६॥

आँख के ये छिहत्तर रोग पृथग् पृथग् मैंने भली प्रकार से कह दिये हैं। इन्हीं की यहाँ पर पृथग् पृथग् चिकित्सा विस्तार से कहूँगा ॥४६॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे दृष्टिगतरोगविज्ञानीयो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अष्टमोऽध्यायः

अथातश्चिकित्सितप्रविभागविज्ञानीय-
मध्यायं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः (सुश्रुताय) ॥२॥

अब इसके आगे चिकित्सित प्रविभागविज्ञानीय अध्याय की व्याख्या करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥

षट्सप्ततिर्येऽभिहिता व्याधयो नामलक्षणैः।
चिकित्सितमिदं तेषां समासव्यासतः शृणु ॥३॥

नाम और लक्षणों से जो ये छिहत्तर नेत्र रोग कहे हैं, उनकी चिकित्सा को संक्षेप और विस्तार में सुनो ॥३॥

छेद्यास्तेषु दशैकश्च नव लेख्याः प्रकीर्तिताः।
भेद्याः पञ्च विकाराः स्युर्व्यध्याः पञ्चदशैव तु ॥४॥
द्वादशाऽशस्त्रकृत्याश्च याप्याः सप्त भवन्ति हि।
रोगा वर्जयितव्याः स्युर्दश पञ्च च जानता।
असाध्यौ वा भवेतां तु याप्यौ चागन्तुसंज्ञितौ ॥५॥

इन रोगों में ग्यारह रोग छेदन करने योग्य हैं। नौ लेखन के योग्य हैं, पाँच रोग भेदन के योग्य, और पन्द्रह रोग वेधन के योग्य, बारह रोग औषधसाध्य (शास्त्र कर्म से अयोग्य) और सात रोग याप्य या असाध्य होते हैं ॥४,५॥

अर्शोऽन्वितं भवति वर्त्म तु यत्तथाऽर्शः
शुष्कं तथाऽर्बुदमथो पिडकाः सिराजाः।
जालं सिराजमपि पञ्चविधं तथाऽर्म
छेद्या भवन्ति सह पर्वणिकामयेन ॥६॥

छेद्यरोग—अर्शोवर्त्म, शुष्कार्श, अर्बुद, सिरा पिड़का, जाल, पाँच तरह का अर्म (प्रस्तार्यर्म, शुष्कार्म, रक्तार्म, अधिमांसार्म, स्नाय्वर्म) और पर्वणिका, ये ग्यारह रोग छेद्य हैं ॥६॥

उत्सङ्गिनी बहलकर्दमवर्त्मनी च
श्यावं च यच्च पठितं त्विह बद्धवर्त्म।
क्लिष्टं च पोथकियुतं खलु यच्च वर्त्म
कुम्भीकिनी च सह शर्करया च लेख्याः ॥७॥

उत्संगिनी, बहलवर्त्म, कर्दमवर्त्म, श्याववर्त्म, बद्धवर्त्म (वर्त्मबन्ध), क्लिष्टवर्त्म पोथकी, कुम्भीका और वर्त्मशर्करा ये लेखन के योग्य हैं ॥७॥

श्लेष्मोपनाहलगणौ च बिसं च भेद्या
ग्रन्थिश्च यः कृमिकृतोऽञ्जननामिका च।

श्लेष्मोपनाह, लगण, बिसवर्त्म, कृमिकृतग्रन्थि और अंजननामिका ये पाँच भेद्य हैं।

आदौ सिरा निगदितास्तु ययोः प्रयोगे
पाकौ च यौ नयनयोः पवनोऽन्यतश्च ॥८॥
पूयालसानिलविपर्ययमन्थसंज्ञाः
स्यन्दास्तु यान्त्युपशमं हि सिराव्यधेन।

जिन दो रोगों के पहले सिरा शब्द कहा गया है, यथा—सिरोत्पात, सिराहर्ष, दो तरह का नेत्रपाक, अन्यतोवात, पूयालस, वात विपर्यय, अधिमन्थ (चार), और अभिष्यन्द (चार) पन्द्रह रोग शिरावेधन से शान्त होते हैं ॥८॥

शुष्काक्षिपाककफपित्तविदग्धदृष्टि-
ष्वम्लाख्यशुक्रसहिताऽर्जुनपिष्टकेषु ॥९॥
अक्लिन्नवर्त्महुतधुग्ध्वजदर्शिशुक्ति-
प्रक्लिन्नवर्त्मसु तथैव बलाससंज्ञे।
आगन्तुनाऽऽमययुगेन च दूषितायां
दृष्टौ न शस्त्रपतनं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥१०॥

शुष्काक्षिपाक, कफविदग्धदृष्टि, पित्तविदग्धदृष्टि अम्लाध्युषित, शुक्र, अर्जुन, पिष्टक, अक्लिन्नवर्त्म, धूमदर्शी, शुक्तिका, क्लिन्नवर्त्म, बलास, आगन्तुज दो रोगों के कारण दृष्टि के दूषित होने से ये बारह रोग शस्त्रकर्म के अयोग्य हैं ॥९,१०॥

संपश्यतः षडपि येऽभिहितास्तु काचा-
स्ते पक्ष्मकोपसहितास्तु भवन्ति याप्याः।

कहे हुए छै काच, जिनमें रोगी को दीखता रहता है, वे छै काच तथा सातवाँ पक्ष्मकोप ये सात रोग याप्य हैं।

चत्वार एव पवनप्रभवास्त्वसाध्या
द्वौ पित्तजौ कफनिमित्तज एक एव।
अर्धाष्टका रुधिरजाश्च गदास्त्रिदोषा-
स्तावन्त एव गदितावपि बाह्यजौ द्वौ ॥११॥

वातजन्य चार रोग (हताधिमन्थ, निमिष, गम्भीरदृष्टि, वाताहतवर्त्म), पित्तजन्य दो (ह्रस्वजाड्य और जल स्राव), कफजन्य एक (कफस्राव), रक्तज चार रोग (रक्तस्राव, अजकाजात, शोणितार्श, व्रणान्वितशुक्र), चार ही त्रिदोषजन्य (पूयस्राव, नकुलान्ध्य, अक्षिपाकात्यय, अलजी) बाह्यज दो (आगन्तुज) ये पन्द्रह रोग असाध्य हैं ॥११॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे चिकित्सितप्रविभागविज्ञानीयो नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नवमोऽध्यायः

अथातो वाताभिष्यन्दप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे वाताभिष्यन्द प्रतिषेध (चिकित्सा) का व्याख्यान करेंगे जैसा भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

पुराणसर्पिषा स्निग्धौ स्यन्दाधीमन्थपीडितौ ।
स्वेदयित्वा यथान्यायं सिरामोक्षेण योजयेत् ॥३॥
संपादयेद्वस्तिभिस्तु सम्यक् स्नेहविरेचितौ ।
तर्पणैः पुटपाकैश्च धूमैराश्च्योतनैस्तथा ॥४॥
नस्यस्नेहपरीषेकैः शिरोबस्तिभिरेव च ।

अभिष्यन्द और अधिमन्थवाले रोगी पुरातन घृत से (दस साल के) स्नेहन करके, स्वेदन देकर, जैसा ठीक हो, उस प्रकार सिरामोक्षण करे, स्निग्ध विरेचन देकर वस्तियाँ भली प्रकार बरते । तर्पण, पुटपाक, धूम, आश्च्योतन, नस्य, स्नेहपरिषेक, शिरोवस्ति देवे ।

वक्तव्य—ज्वर की भांति अक्षिरोगों में भी आम, निराम का विचार है । निराम अवस्था में ही स्नेहन और स्वेदन करना चाहिये । यथा—स्वेदः प्रलेपः तिक्तान्नं धूमो दिनचतुष्टयम् । लंघनं चाक्षिरोगाणां आमानां पाचनानि षट् ॥ अंजनं सर्पिषः पानं कषायं गुरुभोजनम् । नेत्ररोगेषु सामेषु स्नानं च परिवर्जयेत् ॥' जिस प्रकार ज्वर सात दिन में प्रायः निराम होता है, उसी प्रकार नेत्र रोग चार दिन में प्रायः निराम होते हैं । इसी से कहा है 'प्रागेवाद्यामये भक्तं त्रिरात्रमगुरु स्मृतम्। उपवासः त्र्यहं वा स्यात् नक्तं वाऽप्यशनं हितम् । ततश्चतुर्थे दिवसे व्याधौ संजातलक्षणे । यथोक्तास्तु क्रियाः कार्या नस्यसेकाञ्जनादिकाः ॥ वस्ति—मल से दोषों का पक्वाशय में अवरोध होने पर देवे । मलावृतवायु में निरूहवस्ति धातुक्षयज वायु में वस्ति देवे । सेक सुखोष्ण सेक, आश्च्योतन शीतल । यथा न्याय शब्द-स्नेहपान, सिरामोक्षण के साथ सम्बद्ध है । पुरातन घृत—एक साल पुराना डल्हण ने लिखा है । दृष्टि के समीप शिर पर हल्का स्वेद करे, या न करे, चूँकि यहां पर बसा नहीं है, इसी से कहा है—"वृषणौ हृदयं दृष्टिं स्वेदयेन्मृदु नैव वा ॥" चरक ॥३,४॥

वातघ्नानूपजलजमांसाम्लक्वाथसेचनैः ॥५॥
स्नेहैश्चतुर्भिरुष्णैश्च तत्पीताम्बरधारणैः ।
पयोभिर्वेसवारैश्च साल्वणैः पायसैस्तथा ॥६॥
भिषक् संपादयेदेतावुपनाहैश्च पूजितैः ।

भद्रदार्व्यादि वातनाशक, आनूपमांस, जलज (मछली आदि) मांस, आमला आदि अम्लद्रव्यों के क्वाथ इनसे सेचन करके, कपड़े की पोटलियों को उष्ण घी-तैलवसा-मज्जा में भिगो-भिगोकर, दूध से, वेसवार (क्रिमिया किये माँस से), साल्वण उपनाह द्रव्यों से, खीर से, तथा अन्य योग्य उपनाहों से वैद्य स्वेदन करके, इन रोगों में सिरामोक्षण आदि करे ॥

ग्राम्यानूपौदकरसैः स्निग्धैः फलरसान्वितैः ॥७॥
सुसंस्कृतैः पयोभिश्च तयोराहार इष्यते ।

भोजन में—ग्राम्यमांसरस, आनूपमांसरस, औदकमांसरस, स्निग्ध (घृत आदि युक्त), दाडिम आंवला के रस से मिश्रित मांस रसों से अथवा शतावरी, सोंठ आदि से भली प्रकार संस्कृत दूध के साथ भोजन देवे ।

वक्तव्य—सब अम्ल पित्तकारक हैं परन्तु आंवला और अनार पित्तकारक नहीं है, इसलिये इनको दे ॥७॥

तथा चोपरि भक्तस्य सर्पिः पानं (ने) प्रशस्यते ॥८॥
त्रिफलाक्वाथसंसिद्धं केवल जीर्णमेव वा ।
सिद्धं वातहरैः क्षीरं प्रथमेन गणेन वा ॥९॥
स्नेहास्तैलाद्विना सिद्धा वातघ्नैस्तर्पणे हिताः ।

भोजन करने के उपरान्त (रात्रि में) घृतपान करना उत्तम है । इसके लिये त्रिफला क्वाथ में सिद्ध किया अथवा असंस्कृत पुरातन घृत पीये । भद्रदार्व्यादि वातहरगण से या विदारी गन्धादि प्रथमगण से सिद्ध किया घृत पीये । वातघ्न एरण्ड आदि से सिद्ध किये तैल को छोड़कर दूसरे स्नेह (घी, वसा, मज्जा) तर्पण में उत्तम हैं ।

वक्तव्य—त्रिफला घृत—व्याधि प्रत्यनीक है, देवदारु आदि वातहर द्रव्यों से सिद्धघृत दोष प्रत्यनीक है । वायु का पित्त से अनुबन्ध होने पर बिदारीगन्धादि गण से सिद्ध घृत देवे । नेत्ररोगों में घृतपान रात में उत्तम है—इसी से त्रिफला-घृत की फलश्रुति में—"पीतमेतत् निशामुखे" यह पाठ दिया है॥

स्नैहिकः पुटपाकश्च धूमो नस्यं च तद्विधम् ॥१०॥
नस्यादिषु स्थिराक्षीरमधुरैस्तैलमिष्यते ।

स्नैहिक पुटपाक, स्नैहिक धूम, स्नैहिक नस्य एवं शालपर्णी, दूध और काकोल्यादि मधुरगण से सिद्ध किया तैल नस्य आदि में बरते ॥१०॥

एरण्डपल्लवे मूले त्वचि वाऽऽजं पयः शृतम् ॥११॥
कण्टकार्याश्च मूलेषु सुखोष्णं सेचने हितम् ।

एरण्ड के पत्ते, मूल, छाल से अथवा कण्टकारी के मूल से सिद्ध किया बकरी का दूध, सुहाता हुआ गरम-गरम सेक में उत्तम है। आश्च्योतन में दूध को ठण्डा करके बरते ॥११॥

सैन्धवोदीच्ययष्ट्याह्वपिप्पलीभिः शृतं पयः ॥१२॥
हितमर्धोदकं सेके तथाऽऽश्च्योतनमेव च।

सैन्धव, खस, मुलैहठी, पिप्पली इनसे, आधा पानी मिलाया दूध, सिद्ध करे। यह दूध परिषेक में, उत्तम है। (सैन्धव आदि की मात्रा दूध, से अष्टमांश) ॥

ह्रीबेरवक्रमञ्जिष्ठोदुम्बरत्वक्षु साधितम् ॥१३॥
साम्भश्छागं पयो वाऽपि शूलाश्च्योतनमुत्तमम्।

बालक, तगर, मजीठ, गूलर की छाल इनसे आधा पानी मिलाया बकरी का दूध सिद्ध करे। यह आश्च्योतन शूल के लिये उत्तम है। (डल्हण ने चार गुणा पानी मिलाने को कहा है) ॥१३॥

मधुकं रजनीं पथ्यां देवदारुं च पेषयेत् ॥१४॥
आजेन पयसा श्रेष्ठमभिष्यन्दे तदञ्जनम्।

मुलैहठी, हल्दी, हरड़, देवदारु, इनको बकरी के दूध से पीसकर अभिष्यन्द में अंजन करना उत्तम है। १४॥

गैरिकं सैन्धवं कृष्णां नागरं च यथोत्तरम् ॥१५॥
द्विगुणं पिष्टमद्भिस्तु गुटिकाञ्जनमिष्यते।

गेरू से सैन्धव दुगुना, सैन्धव से पिप्पली द्विगुण, पिप्पली से सोंठ द्विगुण लेकर पानी के साथ पीसकर गोली बनाये, इसका अंजन करे। (कई बकरी के दूध में पीसकर गोली बनाते हैं) ॥१५॥

स्नेहाञ्जनं हितं चात्र वक्ष्यते तद्यथाविधि ॥१६॥

विधिपूर्वक स्नेहांजन करना (अपतर्पण, सिरावेध आदि करके) उत्तम कहते हैं।

वक्तव्य—"ताम्रपात्रस्थितं मासं सर्पिः सैन्धवसंयुतम्"—इसको कोई स्नेहांजन करते हैं। दूसरे "वसा चानूप जलजा सैन्धवेन समायुता" इसको स्नेहांजन मानते हैं ॥१६॥

रोगो यश्चान्यतोवातो यश्च मारुतपर्ययः।
अनेनैव विधानेन भिषक् तावपि साधयेत् ॥१७॥

अन्यतोवात और वातपर्याय इन दो रोगों की भी वैद्य इसी विधि से चिकित्सा करे ॥१७॥

पूर्वभक्तं हितं सर्पिः क्षीरं वाऽप्यथ भोजने।
वृक्षादन्यां कपित्थे च पञ्चमूले महत्यपि ॥१८॥
सक्षीरं कर्कटरसे सिद्धं चात्र घृतं पिबेत्।
सिद्धं वा हितमत्राहुः पत्तूरार्तगलाग्निकैः ॥१९॥
सक्षीरं मेषशृङ्ग्या वा सर्पिर्वीरतरेण वा।

अन्यतो वात, और वातपर्यय में भोजन से पहले घृत पिलाये, या भोजन में दूध देवे। वन्दाक, कैथ, बिल्वादि महापंचमूल, दूध, केकड़े का मांसरस, इनसे सिद्ध किया घृत पीये। अथवा मछेछी, आर्त्तगल (झिंटी या सहचर), चित्रक, इनसे सिद्ध किया घी, या मेष शृङ्गी और दूध से अथवा वीरतर (वखेल) और दूध से सिद्ध घृत पिलाये ॥१८,१९॥

सैन्धवं दारु शुण्ठी च मातुलुङ्गरसो घृतम् ॥२०॥
स्तन्योदकाभ्यां कर्तव्यं शुष्कपाके तदञ्जनम्।
पूजितं सर्पिषश्चात्र पानमक्ष्णोश्च तर्पणम् ॥२१॥
घृतेन जीवनीयेन नस्यं तैलेन चाणुना।
परिषेके हितं चात्र पयः शीतं ससैन्धवम् ॥२२॥
रजनीदारुसिद्धं वा सैन्धवेन समायुतम्।
सर्पिर्युतं स्तन्यघृष्टमञ्जनं वा महौषधम् ॥२३॥
वसा वाऽऽनूपजलजा सैन्धवेन समायुता।
नागरोन्मिश्रिता किञ्चिच्छुष्कपाके तदञ्जनम् ॥२४॥

सैन्धव, देवदारु और सोंठ इनके कल्क से बिजौरे के रस, घी, दूध, और पानी इन द्रवों में रसक्रिया बनाकर शुष्कपाक में अंजन करना चाहिए। घी का पान और घी का आँखों में तर्पण करना उत्तम है। जीवनीय घृत से या अणुतैल से नस्य देवे। सैन्धव मिश्रित ठण्डा दूध परिषेक में उत्तम है। हल्दी, देवदारु, से सिद्ध दूध में थोड़ा नमक मिलाकर परिषेक करे। सोंठ को दूध में घिसकर—थोड़ा सा घी मिलाकर अंजन करे। भैंस आदि आनूप, मछली आदि जलज प्राणियों की वसा सैन्धव और थोड़ी सी सोंठ मिलाकर, शुष्क पाक में अंजन करना उत्तम है ॥२०-२४॥

पवनप्रभवा रोगा ये केचिद्दृष्टिनाशनाः।
बीजेनानेन मतिमान् तेषु कर्म प्रयोजयेत् ॥२५॥

वातजन्य जो रोग दृष्टि को नष्ट करते हैं, उन रोगों में बुद्धिमान् इस बीजरूप चिकित्सा से कर्म करे। (दृष्टिनाशनाः—तिमिरकाच आदि)।

"उत्पन्नमात्रे तरुणे नेत्ररोगे बिडालकः।
कार्यो दाहोपदेहाश्रु शोफरागनिवारणः॥
नागरं सैन्धवं सर्पिः मण्डेन च रसक्रिया।
निघृष्टं वातिके तद्वन्मधुसैन्धवगैरिकम्॥
तथा शावरकं लोध्रं घृतभृष्टं बिडालकः।
तद्वत् कार्यो हरीतक्या घृतभृष्टो रुजापहः ॥च० ॥२५॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे वाताभिष्यन्दप्रतिषेधो नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

दशमोऽध्यायः

अथातः पित्ताभिष्यन्दप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे पित्ताभिष्यन्द प्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे—जैसा भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

पित्तस्यन्दे पैत्तिके चाधिमन्थे
रक्तास्रावः स्रंसनं चापि कार्यम् ।
अक्ष्णोः सेकालेपनस्याञ्जनानि
पैत्ते च स्याद्यद्विसर्पे विधानम् ॥३॥

पित्ताभिष्यन्द में पित्तजन्य अधिमन्थ में—रक्तस्राव, विरेचन, आँखों पर परिषेक, आलेप, नस्य और अंजन करने चाहिये। पित्त विसर्प की चिकित्सा (उशीर, लामज्जक चन्दनानि-आदि) करे ॥३॥

गुन्द्रां शालिं शैवलं शैलभेदं दार्वीमेलामुत्पलं रोध्रमभ्रम् ।
पद्मापत्रं शर्करा दर्भमिक्षुं तालं रोध्रं वेतसं पद्मकं च ॥
द्राक्षां क्षौद्रं चन्दनं यष्टिकाह्वं
योषित्क्षीरं रात्र्यनन्ते च पिष्ट्वा ।
सर्पिःसिद्धं तर्पणे सेकनस्ये
शस्तं क्षीरं सिद्धमेतेषु वाजम् ॥५॥
योऽयो वर्गो व्यस्त एषोऽन्यथा वा
सम्यङ्नस्येऽष्टार्धसंख्येऽपि नित्यम् ।

गुन्द्रा (एरक, घावाजरिया–गुजराती), शाली, शैवल (सेवाल या दूर्वा), पाषाणभेद, दारुहल्दी, इलायची, कमल, लोध, मोथा, कमलपत्र, शर्करा, दाभ, इक्षु, ताल (मुसली या ताड़), लोध, वेत, पद्माख, द्राक्षा, मधु, चन्दन, मुलैहठी, धावन (स्त्री का दूध), हल्दी, सारिवा इनको पीसकर, ईख के रस में (द्रव कार्य ईख के रस से) घृत सिद्ध करे। यह घृत अक्षि तर्पण, सेक, नस्य में उत्तम है। इसी प्रकार इन द्रव्यों में सिद्ध किया बकरी का दूध भी उत्तम है। इन द्रव्यों को अलग अलग, या सब मिलाकर, चार प्रकार के नस्य में (प्रतिमर्ष, अवपीड़, नस्य, शिरोविरेचन) बरतना चाहिये ॥४,५॥

क्रियाः सर्वाः पित्तहर्यः प्रशस्ता-
स्त्र्यहाच्चोर्ध्वं क्षीरसर्पिश्च नस्यम् ॥६॥

इस पित्तज अभिष्यन्द में पित्तनाशक सब उपचार करे, तीन दिन के पीछे, दूध से निकाले घी का नस्य देवे ॥६॥

पालाशं स्याच्छोणितं चाञ्जनार्थे
शल्लक्या वा शर्कराक्षौद्रयुक्तम् ।

ढाक अथवा पलाश के रस में (ढाक के फूल के रस में) शर्करा और मधु मिलाकर अंजन करे।

रसक्रियां शर्कराक्षौद्रयुक्तां
पालिन्द्यां वा मधुके वाऽपि कुर्यात् ॥७॥

कालीनिशोथ या मुलैहठी की रसक्रिया बनाकर, शर्करा, मधु मिलाकर अंजन करे।

वक्तव्य—गृहीत्वा क्वाथकल्पेन क्वाथं पूतं पुनः पुनः ।
क्वाथयेत् फाणिताकारमेषा प्रोक्ता रसक्रिया ॥७॥

मुस्ता फेनः सागरस्योत्पलं च
कृमिघ्नैलाधात्रिबीजाद्रसश्च ।

मुस्ता, समुद्रफेन, कमल, वायविडंग, आंवला, विजयसार, इनके क्वाथ से रस क्रिया बनाये ॥

तालीशैलागैरिकोशीरशङ्खै-
रेवंयुक्त्याद्ञ्जनं स्तन्यपिष्टैः ॥८॥

तालीश, इलायची, गेरू, खस, शंख इनको धावन में पीसकर अंजन करे ॥८॥

चूर्णं कुर्यादञ्जनार्थे रसो वा
स्तन्योपेता धातकीस्यन्दनाभ्याम् ।

धातकी और स्यंदन इनको धावन में मिलाकर या इनसे रस क्रिया बनाकर अंजन करे।

योषित्स्तन्यं शातकुम्भं विघृष्टं
क्षौद्रोपेतं कैंशुकं चापि पुष्पम् ॥९॥

सुवर्ण को धावन में घिसकर, या ढाक के फूलों को मधु में मिलाकर (ताम्र पात्र में) अंजन करे ॥९॥

रोध्रं द्राक्षां शर्करामुत्पलं च
नार्याः क्षीरे यष्टिकाह्वं वचां च ।
पिष्ट्वा क्षीरे वर्णकस्य त्वचं च
तोयोन्मिश्रे चन्दनोदुम्बरे च ॥१०॥

लोध, द्राक्षा, शर्करा, कमल, मुलैहठी, वच इनको धावन में पीसकर अंजन करे। अमलतास की छाल को धावन में पीसकर अंजन करे। बालक, चन्दन, गूलर इनको वस्त्र की पोटली में बाँधकर पानी में भिगोकर आश्च्योतन करे ॥१०॥

कार्यः फेनः सागरस्याञ्जनार्थं
नारीस्तन्ये माक्षिके चापि घृष्टः ।
योषित्स्तन्ये स्थापितं यष्टिकाह्वं
रोध्रं द्राक्षां शर्करामुत्पलं च ॥११॥
क्षौमाबद्धं पथ्यमाश्च्योतने वा
सर्पिर्घृष्टं यष्टिकाह्वं सरोध्रम् ।
तोयोन्मिश्राः काश्मरीधात्रिपथ्या-
स्तद्वच्चाहुः कट्फलं चाम्बुनैव ॥१२॥

समुद्रफेन को धावन और मधु में घिसकर अंजन करे। मुलैहठी, लोध, द्राक्षा, शर्करा, कमल इनको धावन में रखकर (पीसकर) अंजन करे। अथवा इनको रेशम के (झीने) वस्त्र में बाँधकर धावन में भिगो-भिगोकर आश्च्योतन करे। मुलैहठी और लोध को घिसकर, घी मिलाकर (घी में भिगो-भिगोकर) आश्च्योतन करे। गम्भारी, आँवला, हरड़, इनकी पोटली पानी में भिगोकर आश्च्योतन करे। कायफल का जल से ही आश्च्योतन करे (पोटली में बाँधकर, पानी में भिगोकर आँख पर रक्खे) ॥११,१२॥

एषोऽम्लाख्येऽनुक्रमश्चापि शुक्तौ
कार्यः सर्वः स्यात्सिरामोक्षवर्ज्यः ।

अम्लाध्युषित और शुक्ति में भी यही सम्पूर्ण चिकित्सा करें, परन्तु सिरामोक्षण न करे।

सर्पिः पेयं त्रैफलं तैल्वकं वा
पेयं वा स्यात् केवलं यत् पुराणम् ।

त्रैफलघृत, तिल्वकघृत (संशोधनघृत) पीये, या पुरातनघृत पीये ॥

दोषेऽधस्ताच्छुक्तिकायामपास्ते
शीतैर्द्रव्यैरञ्जनं कार्यमाशु ॥१४।

शुक्तिका में विरेचन द्वारा दोषों को नीचे से निकालकर तुरन्त शीतल द्रव्यों से अंजन करे ॥१४॥

वैदूर्यं यत् स्फाटिकं वैद्रुमं च
मौक्तं शाङ्खं राजतं शातकुम्भम् ।
चूर्णं सूक्ष्मं शर्कराक्षौद्रयुक्तं
शुक्तिं हन्यादञ्जनं चैतदाशु ॥१५॥

विल्लौर, स्फटिक (मणि), मूंगा, मोती, शंख, सुवर्ण, चांदी इनका सूक्ष्म चूर्ण करके (घिसकर)–शर्करा मधु मिलाकर अंजन करने से शुक्ति शीघ्र नष्ट होती है ॥१५॥

युञ्ज्यात् सर्पिर्धूमदर्शी नरस्तु
शेषं कुर्याद्रक्तपित्ते विधानम् ।
यच्चैवान्यत् पित्तहृच्चापि सर्वं
तद्वीसर्पे पैत्तिके वै विधानम् ॥१६॥

धूमदर्शी रोगी घी का उपयोग करे, रक्तपित्त की चिकित्सा बरते । पित्तनाशक जो अन्य चिकित्सा है, वह करे, पित्तजवीसर्प की विधि बरते ॥१६॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे पित्ताभिष्यन्दप्रतिषेधो नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

एकादशोऽध्यायः

अथातः श्लेष्माभिष्यन्दप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे श्लेष्माभिष्यन्द प्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

स्यन्दाधिमन्थौ कफजौ प्रवृद्धौ जयेत् सिराणामथ मोक्षणेन ।
स्वेदावपीडाञ्जनधूमसेकप्रलेपयोगैः कवलग्रहैश्च ॥३॥
रूक्षैस्तथाऽऽश्च्योतनसंविधानै-
स्तथैव रूक्षः पुटपाकयोगैः ।
त्र्यहात्त्र्यहाच्चाप्यपतर्पणान्ते
प्रातस्तयोस्तिक्तघृतं प्रशस्तम् ॥४॥
तदन्नपानं च समाचरेद्धि
यच्छ्लेष्मणो नैव करोति वृद्धिम् ।

कफजन्य अभिष्यन्द और अधिमन्थ के बहुत बढ़ जाने पर सिरामोक्ष करके इनको शान्त करे । स्वेदन, अवपीड़न, अंजन, धूम, परिषेक, प्रलेप एवं कवलग्रह बरते । रूक्ष आश्च्योतन, रूक्ष पुटपाक, करे । उपवास के पीछे तीन तीन दिन के अन्तर से, प्रातःकाल में तिक्तघृत का पान उत्तम है । जो खान-पान कफ की वृद्धि नहीं करता, वह बरते ॥३,४॥

कुटन्नटास्फोटफणिज्झबिल्व-
पत्तूरबिल्वार्ककपित्थभङ्गैः ॥५॥
स्वेदं विदध्यात् अथवाऽनुलेपं
बर्हिष्ठशुण्ठीसुरकाष्टकुष्ठैः ।

कुटन्नट (केवड़ी मोथा या तगर), आस्फोट (आस्फोत-सारिवा), फणिज्झक (मरवा), बिल्व, पत्तूर (मछेछी), पिलु, आक, कैथ इनके पत्तों से स्वेद देवे ।

अथवा–वालक, सोंठ, देवदारु, और कूठ से लेप करे ॥५॥

सिन्धूत्थहिङ्गुत्रिफलामधूक-
प्रपौण्डरीकाञ्जनतुत्थताम्रैः ॥६॥
पिष्टैर्जलेनाञ्जनवर्तयः स्युः
पथ्याहरिद्रामधुकाञ्जनैर्वा ।
त्रीण्यूषणानि त्रिफला हरिद्रा
विडङ्गसारश्च समानि च स्युः ॥७॥
बर्हिष्ठकुष्ठामरकाष्ठशङ्ख-
पाठानलव्योषमनः शिलाश्च ।
पिष्टाऽम्बुना वा कुसुमानि जाति-
करञ्जशोभाञ्जनजानि युञ्ज्यात् ॥८॥
फलं प्रकीर्यादथवाऽपि शिग्रोः
पुष्पं च तुल्यं बृहतीद्वयस्य ।
रसाञ्जनं सैन्धवचन्दनं च
मनः शिलाले लशुनं च तुल्यम् ॥९॥
पिष्टाऽञ्जनार्थे कफजेषु धीमान्
वर्तीर्विदध्यान्नयनामयेषु ।

सैन्धव, हींग, त्रिफला, महुआ, प्रपौण्डरीक, अंजन, तुत्थ, ताम्रचूर्ण (या ताम्रपात्र में) इनको जल में पीसकर वर्ति बनावे । अथवा, हरड़, हल्दी, मुलैहठी, सुरमा इनको जल में पीसकर वर्ति बनाकर अंजन करे ।

पांच योग–(१) त्रिकटु, त्रिफला, हल्दी, वायविडंग ये समान भाग, (२) बालक, कूठ, देवदार, शंख, पाठा, नख, त्रिकटु, मैनसिल, (३) चमेली के फूल, करंज, सुहांजने के बीज, (४) करंज के फल, सहजन के फल, कटेरी और बड़ीकटेरी के फूल-समान भाग (५) रसौत, सैन्धव, चन्दन, मैनसिल हरताल और लहसुन सब समानभाग लेकर पानी से पीसकर कफज रोगों में बुद्धिमान् अंजन करने के लिये इनसे वर्ति बनाये ॥६-९॥

रोगे बलासग्रथितेऽञ्जनं ज्ञैः
कर्तव्यमेतत् सुविशुद्धकाये ॥१०॥
नीलान् यवान् गव्यपयोऽनुपीतान्
शलाकिनः शुष्कतनून् विदह्य ।
तथाऽर्कास्फोतकपित्थबिल्व-
निर्गुण्डिजातीकुसुमानि चैव ॥११॥

तत्क्षारवत्सैन्धवतुत्थरोचनं
पक्वं विदध्यादथलोहनाड्याम्।
एतद्बलासग्रथितेऽञ्जनं स्या-
देषोऽनुकल्पस्तु फणिज्झकादौ ॥१२॥

बलासग्रथित रोग में—सिरावेधन, विरेचन, शिरोविरेचन से शुद्ध देहवाले रोगी में कुशल वैद्य इस क्षाराञ्जन को बरते। अञ्जन—पक्व जौ को गाय के दूध में सात दिन या चौदह दिन भावित करके, इनको शूकों के (बाल में लगे काँटे) साथ, सुखाकर इनको, तथा अर्जक, आस्फोता (सारिवा), कैथ, बिल्व, निर्गुण्डी (सम्भालु), चमेली के फूल इनके साथ जला ले। यह भस्म एक प्रस्थ, गरम पानी एक आढ़क में घोलकर बार-बार छाने। जब क्षारोदक तीक्ष्ण, पिच्छिल और लाल हो जाये तब इस राख को छोड़कर, इस क्षारोदक में सैन्धव, तुत्थ, रोचना (गोरोचना) का प्रक्षेप (क्षारोदक का ३/४ वाँ भाग) मिलाकर पकाये। इसको लोहे के पात्र (नलिका) में रखकर बलास ग्रथित रोग में अञ्जन करे। फणिज्झक आदि के पुष्पों से भी इसी प्रकार अञ्जन बनाना चाहिये ॥१०-१२॥

महौषधं मागधिकां च मुस्तां
ससैन्धवं यन्मरिचं च शुक्लम्।
तन्मातुलुङ्गस्वरसेनपिष्टं
नेत्राञ्जनं पिष्टकमाशु हन्यात् ॥१३॥

सोंठ, पिप्पली, मुस्ता, सैन्धव, श्वेतमरिच, इनको बिजौरे के रस में पीसकर—आँखों में अञ्जन करने से पिष्टक रोग शीघ्र नष्ट होता है ॥१३॥

फले बृहत्या मगधोद्भवानां
निधाय कल्कं फलपाककाले।
स्रोतोजयुक्तं च तदुद्धृतं स्या-
त्तद्वत्तु पिष्टे विधिरेष चापि ॥१४॥

बड़ी कटेरी के फल जब पकनेवाले हों, तब उन फलों में पिप्पली का कल्क, सौवीरांजन के साथ भर देवे। सात दिन के पीछे इसको बिजौरे के रस में मिलाकर पिष्टक में अञ्जन करे।

वार्ताकशिग्र्विन्द्रसुरापटोल-
किराततिक्तामलकीफलेषु।

यही विधि—वार्ताक (बड़ी कटेरी या बैंगन), सुहांजना, इन्द्रायण, परवल, चिरायता और आँवले के फलों में भी करनी चाहिये।

कासीससामुद्ररसाञ्जनानि
जात्यास्तथा क्षा (को) रकमेव चापि ॥१५॥
प्रक्लिन्नवर्त्मन्युपदिश्यते तु
योगाञ्जनं तन्मधुनाऽवघृष्टम्।

योगाञ्जन—कासीस, समुद्रफेन, रसौत, चमेली की कलिका, इनको मधु में घिसकर प्रक्लिन्न वर्त्म में अञ्जन करे। (सामुद्र से समुद्र नमक भी कई लेते हैं, परन्तु सर्वलवणमचक्षुष्यम्, ऋते सैन्धवात्—इस नियम से समुद्रफेन लिया है)॥१५॥

नादेयमग्र्यं मरिचं च शुक्लं
नेपालजाता च समप्रमाणा ॥१६॥
समातुलुङ्गद्रव एष योगः
कण्डूं निहन्यात् सकृदञ्जनेन।

उत्तम सैन्धव नमक, श्वेत मरिच, मैनसिल इनको बराबर लेकर, बिजौरा के रस से पतला करके एक ही बार अञ्जन करने पर कण्डू को नष्ट करता है ॥१६॥

सशृङ्गवेरं सुरदारु मुस्तं
सिन्धुप्रभू (सू) तं मुकुलानि जात्याः ॥१७॥
सुराप्रपिष्टं विदमञ्जनं हि
कण्ड्वां च शोफे च हितं वदन्ति।

सोंठ, देवदारु, मुस्ता, सैन्धव, चमेली की कलियाँ, इनको सुरा (मद्य) में पीसकर अञ्जन करने से कण्डू और शोफ नष्ट होते हैं ॥१७॥

स्यन्दाधिमन्थक्रममाचरेच्च
सर्वेषु चेतेषु सदाऽप्रमत्तः ॥१८॥
(विशेषतो नावनमेव कार्यं संसर्जनं चापि यथोपदिष्टम्)

बलास ग्रथित, पिष्टक, प्रक्लिन्नवर्त्म में—अभिष्यन्द और अधिमन्थ की सम्पूर्ण चिकित्सा करते। (विशेषतः इनमें नस्य करे, तथा संसर्जन विधि (पेया, विलेपी आदि विरेचन के पीछे बरतने की विधि) का पालन करे ॥१८॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे
कफाभिष्यन्दप्रतिषेधो नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

द्वादशोऽध्यायः

अथातो रक्ताभिष्यन्दप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे रक्ताभिष्यन्दप्रतिषेध अध्याय का व्याख्यान करेंगे—जैसा भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥२॥

मन्थं स्यन्दं सिरोत्पातं सिराहर्षं च रक्तजम्।
एकेनैव विधानेन चिकित्सेच्चतुरो गदान् ॥३॥

अधिमन्थ, अभिष्यन्द, शिरोत्पात और सिराहर्ष इन चारों रक्तजन्य रोगों की चिकित्सा एक ही विधि से करे ॥३॥

व्याध्यार्तांश्चतुरोऽध्येतान् स्निग्धान्कौम्भेन सर्पिषा।
रसैरुदारैरथवा सिरामोक्षेण योजयेत् ॥४॥

उपर्युक्त चारों रोगों में से किसी एक रोग से पीड़ित रोगी को पुरातन घृत (एक सौ साल) या अधिक स्नेहवाले मांस रसों से स्निग्ध करके सिरामोक्षण करे।

वक्तव्य—दस वर्ष के पुराने घी को पुराण घृत कहते

हैं। दस वर्ष से अधिक पुराने घी को प्रपुराणघृत, और एक सौ वर्ष पुराने घृत को कुम्भसर्पि तथा इससे अधिक साल के पुराने घृत को महाघृत कहते हैं ॥४॥

विरिक्तानां प्रकामं च शिरांस्येषां विशोधयेत् ।
वैरेचनिकसिद्धेन सितायुक्तेन सर्पिषा ॥५॥
मज्ज्ञा वा तद्विमिश्रेण मेदसा तच्छृतेन वा ।)

विरेचन हो जाने पर इनके शिरों का यथेच्छ शोधन करे। इसके लिये शिरोविरेचन द्रव्यों से सिद्ध घृत में शर्करा मिलाकर शोधन करे। (तैल-अचक्षुष्य है, उसे न बरते, कोई त्रिवृत्तादि द्रव्य से सिद्ध घृत लेते हैं)। अथवा घृतमिश्रित मज्जा से या विरेचन द्रव्यों से सिद्ध मेद से शोधन करे ॥५॥

ततः प्रदेहाः परिषेचनानि
नस्यानि धूमाश्च यथास्वमेव ।
आश्च्योतनाभ्यञ्जनतर्पणानि
स्निग्धाश्च कार्याः पुटपाकयोगाः ॥६॥

इसके आगे प्रदेह, परिषेचन, नस्य, धूमयोग, इनको दोषों के अनुसार बरते। आश्च्योतन, अभ्यंग, अञ्जन, तर्पण, स्निग्ध पुटपाक योग बरते। (अञ्जन-प्रसादन अञ्जन बरते)॥६॥

नीलोत्पलोशीरकटङ्कटेरी
कालीययष्टीमधुमुस्तरोध्रैः ।
सपद्मकैर्धौतघृतप्रदिग्धै-
रक्ष्णोः प्रलेपं परितः प्रकुर्यात् ॥७॥

नीलोफर, खस, दारुहल्दी, कालीयक काष्ठ, मुलैहठी, मुस्ता, लोध, पद्माख इनको शतधौतघृत में मिलाकर आँखों के चारों ओर प्रलेप करे ॥७॥

रुजायां चाप्यतिभृशं स्वेदाश्च मृदवो हिताः ।
अक्ष्णोः समन्ततः कार्यं पातनं च जलौकसाम ॥८॥
घृतस्य महती मात्रा पीता चार्तिं नियच्छति ।
पित्ताभिष्यन्दशमनो विधिश्चाप्युपपादितः ॥९॥

अतिशय (असह्य) पीड़ा होने पर—आँखों के चारों ओर कोमल स्वेदन करे और जौंक लगाये। घी की बहुत बड़ी मात्रा (उत्तमा मात्रा—जो कि रात दिन में जीर्ण हो) पीने से दर्द शान्त हो जाता है। पित्ताभिष्यन्द की चिकित्सा भी बरतने पर वेदना कम कर देती है ॥८,९॥

कशेरुमधुकाभ्यां वा चूर्णमम्बरसंवृतम् ।
न्यस्तमप्स्वान्तरिक्षासु हितमाश्च्योतनं भवेत् ॥१०॥

कसेरू और मुलैहठी के चूर्ण को कपड़े में पोटली बाँधकर वर्षाजल में भिगो-भिगोकर आँखों पर आश्च्योतन करना उत्तम है ॥१०॥

पाटल्यर्जुनश्रीपर्णीधातकीधात्रिबिल्वतः ।
पुष्पाण्यथ बृहत्योश्च बिम्बीलोटाश्च तुल्यशः ॥११॥
समञ्जिष्ठानि मधुना पिष्टानीक्षुरसेन वा ।
रक्ताभिष्यन्दशान्त्यर्थमेतदञ्जनमिष्यते ॥१२॥

पाटली (पाढ़ल), अर्जुन, गाभारी, धातकी, आँवला, बिल्व, कटेरी, बड़ी कटेरी के फूल, बिम्बीलोट (भिल्होट लोध), मंजीठ—इनको समान भाग लेकर मधु या ईख के रस से पीसकर रक्ताभिष्यन्द की शान्ति के लिये इनसे अञ्जन करे। विरेचनादि से शुद्ध शरीर में—शेष दोष शान्ति के लिये अञ्जन है) ॥११,१२॥

चन्दनं कुमुदं पत्रं शिलाजतु सकुङ्कुमम् ।
अयस्ताम्ररजस्तुत्थं निम्बनिर्यासमञ्जनम् ॥१३॥
त्रपुकांस्यमलं चापि पिष्ट्वा पुष्परसेन तु ।
विपुला याः कृता वर्त्यः पूजिताश्चाञ्जने सदा ॥१४॥

चन्दन, कमल, तेजपात, शिलाजतु, केसर, लोहभस्म, ताम्रभस्म, तुत्थ, नीम का गोंद, रसौत, राँगे का मैल (जस्ता सम्भवतः जो कि आँख में डालते हैं), कांसी का मैल, इनको मधु से घिसकर, जो विपुल वर्त्तियाँ बनाई जायें, वे—मन्थ आदि चारों रोगों में अञ्जन के लिये उत्तम हैं।

वक्तव्य—हरेणुमात्रा वर्त्तिः स्यात् लेखनस्य प्रमाणतः । प्रसादनस्य चाध्यर्धा द्विगुणा रोपणस्य तु ॥१३,१४॥

स्यादञ्जनं घृतं क्षौद्रं सिरोत्पातस्य भेषजम् ।
तद्वत्सैन्धवकासीसं स्तन्यघृष्टं च पूजितम् ॥१५॥
मधुना शङ्खनैपालीतुत्थदार्व्यः ससैन्धवाः ।
रसः शिरीषपुष्पाच्च सुरामरिचमाक्षिकैः ॥१६॥
युक्तं तु मधुना वाऽपि गैरिकं हितमञ्जने ।

अञ्जन (स्रोतांजन), घी, मधु, (२) सैन्धव, कासीस, इनको धावन (स्त्री के दूध में) घिसकर सिरोत्पात में अञ्जन करे। (३) शंख, मैनसिल, तुत्थ, दारुहल्दी इनको मधु से घिसकर अञ्जन करे। (४) शिरीष के फूलों का रस, सुरा, मरिच, मधु, (५) गेरू को मधु के साथ मिलाकर अञ्जन करना सिरोत्पात में उत्तम है ॥१५,१६॥

सिराहर्षेऽञ्जनं कुर्यात् फाणितं मधुसंयुतम् ॥१७॥
मधुना तार्क्ष्यजं वाऽपि कासीसं वा ससैन्धवम् ।
वेत्राम्लस्तन्यसंयुक्तं फाणितं च ससैन्धवम् ॥१८॥

सिराहर्ष में चार अञ्जन—(१) फाणित (राब) को मधु में मिलाकर, (२) रसौत को मधु के साथ, (३) कासीस, सैन्धव मधु, (४) अम्लवेतस, धावन, राब, सैन्धव इनको मिलाकर अञ्जन करे। (वेत्राम्ल से दूसरे वेत्र करीर और अम्लवेतस दो वस्तुएँ लेते हैं ॥१७,१८॥

पैत्तं विधिमशेषेण कुर्यादर्जुनशान्तये ।
इक्षुक्षौद्रसितास्तन्यदार्वीमधुकसैन्धवैः ॥१९॥
सेकाञ्जनं चात्र हितमम्लैराश्च्योतनं तथा ।
सितामधुककट्वङ्गमस्तुक्षौद्राम्लसैन्धवैः ॥२०॥
बीजपूरककोलाम्लदाडिमाम्लैश्च युक्तितः ।
एकशो वा द्विशो वाऽपि योजितं वा त्रिभिस्त्रिभिः ॥२१॥
स्फटिकं विद्रुमं शङ्खो यष्टिकं मधु चैव हि ।
शङ्खक्षौद्रसितायुक्तः सामुद्रः फेन एव वा ॥२२॥

द्वाविमौ विहितौ योगावञ्जनेऽर्जुननाशनौ।
सैन्धवक्षौद्रकतकाः सक्षौद्रं वा रसाञ्जनम् ॥२३॥
कासीसं मधुना वाऽपि योज्यमत्राञ्जने सदा।

'अर्जुन' की शान्ति के लिये पित्ताभिष्यन्द की चिकित्सा करनी चाहिये। ईख, मधु, शर्करा, धावन, दारुहल्दी, मुलैहठी, सैन्धव, इनसे परिषेक, या अंजन करे। अम्ल (बिजौरे का रस, मधु मिलाकर) या कांजी से आश्च्योतन करे। शर्करा मुलैहठी, श्योनाक, मस्तु, मधु, कांजी, सैन्धव, बिजौरा, बेर की खटाई, अनारदाना (खट्टे अनार का रस), इनसे अलग अलग या दो दो अथवा तीन तीन को मिलाकर युक्ति से आश्च्योतन करे। दो योग—(१) स्फटिक, मूंगा, शंख, मुलैहठी, मधु, (२) शंख, मधु, शर्करा, समुद्रफेन, इनका अंजन में समयोग करने से अर्जुन नष्ट होता है। (१) सैन्धव, मधु, कतक (निर्मली फल); (२ रसौंत और मधु, (३) कासीस और मधु, इनको सदा अंजन में बरतना चाहिये ॥१६-२३॥

लोहचूर्णानि सर्वाणि धातवो लवणानि च ॥२४॥
रत्नानि दन्ताः शृङ्गाणि गणश्चाप्यवसादनः।
कुक्कुटाण्डकपालानि लशुनं कटुकत्रयम् ॥२५॥
करञ्जबीजमेला च लेख्याञ्जनमिदं स्मृतम्।
पुटपाकावसानेन रक्तविस्रावणादिना ॥२६॥
संपादितस्य विधिना कृत्स्नेन स्यन्दघातिना।

सब लोह धातु (सुवर्ण, रांगा, सीसा, ताम्र, चांदी, कृष्णलोह) धातु (मैनसिल, गेरू आदि), लवण (सैन्धव आदि पांचों), रत्न (वैडूर्य, मुक्ता, प्रवाल, शंख) दांत (गाय, घोड़ा आदि के), सींग (गाय, आदि के. अवसादन गण (मिश्रकोक्त कासीस आदि), मुर्गे के अण्डे के छिलके, लहसुन, त्रिकटु करंजबीज, इलायची, यह लेख्य (लेखन करने योग्य) अंजन हैं। यह अंजन रक्त विस्रावण से आरम्भ करके, पुठपाक की समाप्ति तक अभिष्यन्दनाशक सम्पूर्णविधि पूरी करके तब बरतना चाहिये।

वक्तव्य—विधि "ततः प्रदेहान् परिषेचनानि नस्यानि धूमाश्च यथास्वमेव। आश्च्योतनाभ्यंजनतर्पणानि तथैव कार्याः पुटपाकयोगाः" ॥२४-२६॥

अनेनापहरेच्छुक्रमव्रणं कुशलो भिषक् ॥२७॥

कुशल वैद्य इस लेख्य अंजन से अव्रण शुक्र को नष्ट करे ॥२७॥

उत्तानमवगाढं वा कर्कशं वाऽपि सव्रणम्।
शिरीषबीजमरिचपिप्पलीसैन्धवैरपि ॥२८॥
शुक्रस्य घर्षणं कार्यमथवा सैन्धवेन तु।
कुर्याच्चाम्ररजःशङ्खशिलामरिचसैन्धवैः ॥२९॥
अन्त्यादुद्विगुणितैरेभिरञ्जनं शुक्रनाशनम्।
कुर्यादञ्जनयोगौ वा सम्यक् श्लोकाधिकाविमौ ॥३०॥
शङ्खकोलास्थिकतकद्राक्षामधुकमाक्षिकैः।
क्षौद्रदन्तार्णवमलसिरीषकुसुमैरपि ॥३१॥
क्षाराञ्जनं वा वितरेद्बलासग्रथितापहम्।
मुद्गान् वा निस्तुषान् भृष्टान् शङ्खक्षौद्रसितायुतान्।
मधूकसारं मधुना योजयेच्चाञ्जने सदा।
बिभीतकास्थिमज्जा वा सक्षौद्रः शुक्रनाशनः ॥३३॥
शङ्खशुक्तिमधुद्राक्षामधुकं कतकानि च।
द्वित्वग्गते समूले वा वातघ्नं तर्पणं हितम् ॥३४॥
वंशजारुष्करौ तालं नारिकेलं च दाहयेत्।
विस्राव्य क्षारवच्चूर्णं भावयेत्करभास्थिजम् ॥३५॥
बहुशोऽञ्जनमेतत्स्याच्छुक्रवैवर्ण्यनाशनम्।

सव्रण शुक्र उत्तान हो (एकपटल में), या गम्भीर (दो पटल में हो), या शर्करा हो, उसमें शिरीषबीज, मरिच, पिप्पली, सैन्धव इनसे अथवा अकेले सैन्धव से इसको रगड़ना चाहिये। ताम्रभस्म, शंख, मैनसिल, मरिच और सैन्धव इनको सैन्धव की ओर से क्रमशः दुगुना करते हुए ले। इनका अंजन शुक्रनाशक है (सैन्धव १ भाग, मरिच दो भाग, मैनसिल ४ भाग, शंख ८ भाग, ताम्रभस्म १६ भाग)। आधे श्लोक में कहे जानेवाले इन दो योगों को भली प्रकार बरते, दो योग—(१) शंखभस्म, बेर की गुठली, निर्मलीफल, द्राक्षा, मुलैहठी, मधु, (२) मधु, गाय का दांत, समुद्रफेन, शिरीष का फूल इनको बरते। बलास ग्रथित में कहा क्षारांजन इनमें बरते। तुषरहित मूंग को भाड़ में भूनकर, इसमें शंख, मधु, सिता, महुए का सार और मधु इनसे सदा अंजन करे। बहेड़े की गुठली की मज्जा-मधु के साथ शुक्रनाशक है। शंख, सीप, मधु, द्राक्षा, मुलैहठी, निर्मली इनसे तर्पण करना जो दो पहल में पहुँचे, वेदनायुक्त सव्रण में उत्तम है। बांस के अंकुर, भिलावां, ताड़, नारियल इनको तिल नाल के साथ जलाये। इस भस्म को पानी में घोलकर बहुत बार नितार ले (अथवा करभास्थि के बराबर भस्म को लेकर आठ गुने पानी में घोलकर क्वाथ करे, चौथाई रहने पर छान ले)। इस क्षारोदक से हाथी की अस्थि (हाथी के छोटे बच्चे की अस्थि) को सात बार भावित करे। इस अस्थि का अंजन शुक्र की विवर्णता को नष्ट करता है। (डल्हण ने मधूकसार मधुना-इसको पृथग् योग माना है) ॥

अजकां पार्श्वतो विद्ध्वा सूच्या विस्राव्य चोदकम् ॥३६॥
व्रणं गोमांसचूर्णेन पूरयेत् सर्पिषा सह।
बहुशोऽवलिखेच्चापि वर्त्मास्योपगतं यदि ॥३७॥

अजका में सूई से पार्श्व में वेधन करके पानी को निकाल दे और व्रण में गाय के मांस को घी में मिलाकर भर देवे। यदि अजका पलक के पास अन्दर की हो तो, इसमें बहुत बार अवलेखन करे ॥३६,३७॥

सशोफश्चाप्यशोफश्च द्वौ पाकौ यौ प्रकीर्तितौ ।
स्नेहस्वेदोपपन्नस्य तत्र विद्ध्वा सिरां भिषक् ॥३८॥
सेकाश्च्योतननस्यानि पुटपाकांश्च कारयेत् ।

सशोफपाक और अशोफपाक ये जो दो रोग कहे हैं, उसमें वैद्य रोगी को स्नेहन, स्वेदन देकर सिरा को वेधन करे। फिर सेक, आश्च्योतन, नस्य, पुटपाक बरते ॥३८॥

सर्वतश्चापि शुद्धस्य कर्तव्यमिदमञ्जनम् ॥३९॥
ताम्रपात्रस्थितं मासं सर्पिः सैन्धवसंयुतम् ।
मैरेयं वाऽपि दध्येवं दध्युत्तरकमेव वा ॥४०॥
घृतं कांस्यमलोपेतं स्तन्यं वाऽपि ससैन्धवम् ।
मधूकसारं मधुना तुल्यांशं गैरिकेण वा ॥४१॥
सर्पिःसैन्धवताम्राणि योषित्स्तन्ययुतानि वा ।

अन्तःपरिमार्जन और बहिःपरिमार्जन विधि से सम्पूर्ण रूप में शुद्ध हुए व्यक्ति में निम्न अञ्जन करना चाहिये। अञ्जन—ताम्रपात्र में सैन्धव मिश्रित घृत एक मास तक रक्खे, अथवा मैरेय (सुरा और आसव दोनों एक साथ सन्धान करके बनाया), दही, या दही की मलाई इनको ताम्रपात्र में रक्खे। कांसी की मैल को घी में मिलाकर अथवा सैन्धव को धावन में, मिलाकर इनसे अञ्जन करे। महुए का सार और गेरू समान भाग लेकर मधु के साथ, घी, सैन्धव, ताम्रभस्म इनकोधावन के साथ मिलाकर अञ्जन करे ॥३९-४१॥

दाडिमारेवताश्मन्तकोलाम्लैश्च ससैन्धवाम् ।
रसक्रियां वा वितरेत्सम्यक्पाकजिघांसया ॥४२॥

अनार, अमलतास, अश्मन्तक, बेर, कांजी और थोड़ा सा सैन्धव, इनसे रसक्रिया बनाये। पाक को नष्ट करने की इच्छा से (सशोफपाक, अशोफपाक के लिये) इस रसक्रिया का अंजन करे ॥४२॥

मासं सैन्धवसंयुक्तं स्थितं सर्पिषि नागरम् ।
आश्च्योतनाञ्जनं योज्यमबलाक्षीरसंयुतम् ॥४३॥

सैन्धव, सोंठ को एक मास तक घी में रखकर, धावन में मिलाकर आश्च्योतन और अंजन करना चाहिये ॥४३॥

जात्याः पुष्पं सैन्धवं शृङ्गवेरं
कृष्णाबीजं कीटशत्रोश्च सारम् ।
एतत् पिष्टं नेत्रपाकेऽञ्जनार्थं
क्षौद्रोपेतं निर्विशङ्कं प्रयोज्यम् ॥४४॥

चमेली के फूल, सैन्धव, सोंठ, पिप्पली, विडंग इनको पीसकर मधु मिलाकर नेत्रपाक में अंजन के लिये बिना भय के साथ बरते ॥४४॥

पूयालसे शोणितमोक्षणं च ।
हितं तथैवाप्युपनाहनं च ।
कृत्स्नो विधिश्चेक्षणपाकघाती
यथाविधानं भिषजा प्रयोज्यः ॥४५॥

पूयालस में—रक्तमोक्षण और उपनाह उत्तम है। नेत्रपाक को नष्ट करनेवाली सम्पूर्ण विधि (अन्तःशुद्धिकर, बहिःशुद्धिकर), विधान के अनुसार वैद्य को बरतनी चाहिये ॥४५॥

कासीससिन्धुप्रभवार्द्रकैस्तु
हितं भवेदञ्जनमेव चात्र ।
क्षौद्रान्वितैरेभिरथोपयुञ्ज्या-
दन्यत्तु ताम्रायसचूर्णयुक्तैः ॥४६॥

कासीस, सैन्धव, सोंठ, अथवा ताम्रचूर्ण, लोहभस्म, मधु इनका अंजन पूयालस में करे ॥४६॥

स्नेहादिभिः सम्यगपास्य दोषां-
स्तृप्तिं विधायाथ यथास्वमेव ।
प्रक्लिन्नवर्त्मानमुपक्रमेत
सेकाञ्जनाश्च्योतननस्यधूमैः ॥४७॥

प्रक्लिन्नवर्त्म में—स्नेह, सिरामेध, विरेचन, शिरोविरेचन, आस्थापन द्वारा दोषों को दूर करके, दोषों के अनुसार तर्पण करके, सेक, आश्च्योतन, नस्य, धूम, अंजन इनसे चिकित्सा करे ॥४७॥

मुस्ताहरिद्रामधुजप्रियङ्गु-
सिद्धार्थरोध्रोत्पलसारिवाभिः ।
क्षुण्णाभिराश्च्योतनमेव कार्य-
मत्राञ्जनं चाञ्जनमाक्षिकं स्यात् ॥४८॥

अथवा मुस्ता, हल्दी, मुलैहठी, प्रियंगु, सरसों, लोध, कमल, सारिवा इनको कूटकर वर्षा जल में अथवा-शुद्ध जल में भिगोकर रख देवे। इस जल से क्लिन्नवर्त्म में आश्च्योतन करे। अंजन (स्रोतांजन), मधु से अंजन करे ॥४८॥

पत्रं फलं चामलकस्य पक्त्वा
क्रियां विदध्यादथवाऽञ्जनार्थे ।
वंशस्य मूलेन रसक्रियां वा
वर्तीकृतां ताम्रकपालपक्वां ॥४९॥
रसक्रियां वा त्रिफलाविपक्वां
पलाशपुष्पैः खरमञ्जरैर्वा ।

अथवा आंवले के पत्ते और फल को कषाय कल्पना से पकाकर इससे ताम्रपात्र या कटोरा में रसक्रिया बनाये। इस रसक्रिया को और सुखाकर वर्त्ति बना ले। इसी प्रकार बांस के मूल से, त्रिफला को पकाकर ढाक के फूलों से या चिरचिटे के बाल से रसक्रिया बनाकर वर्त्ति बनाये ॥४९॥

विष्ठा छगल्याः पयसा मलं वा
कांस्यस्य दग्ध्वा सह तान्तवेन ॥५०॥
प्रत्यञ्जनं तन्मरिचैरुपेतं
चूर्णेन ताम्रस्य सहोपयोज्यम् ।

कांसी के मल को कपास के वस्त्र के साथ जलाकर, श्वेत-मरिच, ताम्ररज मिलाकर इसको बकरी के दूध में पीसकर प्रत्यंजन करे ॥५०॥

वक्तव्य—प्रत्यंजन–"प्रशान्तदोषे यदञ्जनं क्रियते तत् प्रत्यञ्जनशब्दवाच्यम् ।"

समुद्रफेनं लवणोत्तमं च
शंखोऽथ मुद्गो मरिचं च शुक्लम् ॥५१॥
चूर्णाञ्जनं जाड्यमथापि कण्डू-
मक्लिन्नवर्त्मान्युपहन्ति शीघ्रम् ।

समुद्रफेन, सैन्धव, शंख, मूंग, श्वेतमरिच, इनके चूर्ण का अंजन बनावे यह प्रक्लिन्नवर्त्म, जड़ता और कण्डु को शीघ्र नष्ट करता है ॥५१॥

प्रक्लिन्नवर्त्मन्यपि चैत एव
योगाः प्रयोज्याश्च समीक्ष्य दोषम् ॥५२॥

प्रक्लिन्नवर्त्म में भी पूर्वोक्त योगों को दोषों को देखकर, उनके अनुसार प्रयोग करे ॥५२॥

सकज्जलं ताम्रघटे च घृष्टं
सर्पिर्युतं तुत्थकमञ्जनं च ॥५३॥

तुत्थ और काजल समान भाग लेकर ताम्रपात्र में घिसकर घी में मिलाकर अंजन करे ॥५३॥

इति श्री सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे रक्ताभिष्यन्दप्रतिषेधो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

त्रयोदशोऽध्यायः

अथातो लेख्यरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे लेख्य रोग प्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे–जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

नव येऽभिहिता लेख्याः सामान्यस्तेष्वयं विधिः ।
स्निग्धवान्तविरिक्तस्य निवातातपसद्मनि ॥३॥
(आप्तैर्दृढं गृहीतस्य वेश्मन्युत्तानशायिनः ।)
सुखोदकप्रतप्तेन वाससा सुसमाहितः ।
स्वेदयेद्वर्त्म निर्भुज्य वामाङ्गुष्ठाङ्गुलिस्थितम् ॥४॥
अङ्गुल्यङ्गुष्ठकाभ्यां तु निर्भुग्नं वर्त्म यत्नतः ।
प्लोतान्तराभ्यां न यथा चलति स्रंसतेऽपि वा ॥५॥
ततः प्रमृज्य प्लोतेन वर्त्म शस्त्रपदाङ्कितम् ।
लिखेच्छस्त्रेण पत्रैर्वा, ततो रक्ते स्थिते पुनः ॥६॥
स्विन्नं मनोह्वाकासीसव्योषाद्रीञ्जनसैन्धवैः ।
श्लक्ष्णपिष्टैः समाक्षीकैः प्रतिसार्योष्णवारिणा ॥७॥
प्रक्षाल्य हविषा सिक्तं व्रणवत् समुपाचरेत् ।
स्वेदावपीडप्रभृतींस्त्र्यहादूर्ध्वं प्रयोजयेत् ॥८॥
व्यासतस्ते समुद्दिष्टं विधानं लेख्यकर्मणि ।

लेखन के योग्य जो नौ रोग कहे हैं, उनमें सामान्य विधि यह है कि—रोगी को स्नेहन, वमन, विरेचन कराके, वायु और धूप से रहित घर में बिठाकर, विश्वस्त सहायकों से पकड़वाकर रोगी को पीठ के भार चित्त लेटा दे। फिर सुहाते गरम पानी में गरम किये वस्त्र से अति सावधानी के साथ वाम हाथ की अंगुली और अंगुठे से पलक को उलटाकर, स्वेदन करे। अंगुली और अंगूठे से वर्त्म को इस प्रकार पकड़े कि वह कपड़े के अन्दर लिपटी अंगुली और अंगूठे से न तो हिले और न खिसके। फिर शस्त्र से पलक पर पाछकर, वस्त्र से साफ करके शस्त्र से या हारसिंगार आदि के पत्तों से लेखन करे। रक्त के रुक जाने पर स्वेदन करके मैनसिल, कासीस, त्रिकटु, रसांजन, सैन्धव, इनको बारीक पीसकर, मधु में मिलाकर, रगड़े। फिर गरम पानी से धोकर, घी से सेक देकर व्रण की भांति चिकित्सा करे। तीन दिन के पीछे स्वेदन, अवपीड़न आदि बरते। स्वेदन, अवपीड़न आदि कार्य लेखन कार्य में विस्तार से कहे हैं। (इन कार्यों का लेखन कार्य में महत्त्व है) ॥३–८॥

असृगास्रावरहितं कण्डूशोफविवर्जितम् ॥९॥
समं नखनिभं वर्त्म लिखितं सम्यगिष्यते ।

जिस लेखन कार्य के पश्चात् रक्तस्राव न हो, कण्डू और सूजन होती हो, वर्त्म एक समान, नख के समान जो सुर्ख हो, वह वर्त्म भली प्रकार लेखन हुआ जाने ॥९॥

रक्तमक्षि स्रवेत् स्कन्नं क्षताच्छस्त्रकृताद् ध्रुवम् ॥१०॥
रागशोफपरिस्रावास्तिमिरं व्याध्यनिर्जयः ।
वर्त्म श्यावं गुरु स्तब्धं कण्डूहर्षोपदेहवत् ॥११॥
नेत्रपाकमुदीर्णं वा कुर्वीताप्रतिकारिणः ।
एतद्दुर्लिखितं ज्ञेयं स्नेहयित्वा पुनर्लिखेत् ॥१२॥

दुर्ल्लिखित—ठीक प्रकार से लेखन न होने पर आंख लाल हो जाती है, शस्त्रजन्य क्षत से गाढ़ा रक्त बहता है, सुर्खी, सूजन, स्राव, तिमिर (धुँधयाला दीखना), रोग का शान्त न होना, पलक-काली, भारी, जड़, कण्डू, हर्ष और गीध से भरी, अथवा तीव्र नेत्र पाक, चिकित्सा न करने पर हो जाता है। ये दुर्लिखित के लक्षण हैं, इनमें स्नेहन करके फिर लेखन करे ॥

व्यावर्तते यदा वर्त्म पक्ष्म चापि विमुह्यति ।
स्यात् सरुक् स्रावबहुलं तदतिस्रावितं विदुः ॥१३॥
स्नेहस्वेदादिरिष्टः स्यात् क्रमस्तत्रानिलापहः ।

पलक यदि उलट जाये (सीधी हो जाये), पलक के बाल हाथ से छुट जाये, तब वेदना, स्राव की अधिकता होती है, इसको अतिस्रावित कहते हैं। इसमें स्नेहन, स्वेदन करे, वातनाशक कर्म करे ॥१३॥

वर्त्मावबन्धं क्लिष्टं च बहलं यच्च कीर्तितम् ॥१४॥
पोथकीश्चाप्यवलिखेत् प्रच्छयित्वाऽग्रतः शनैः ।

वर्त्मावबन्ध, क्लिष्टवर्त्म, बहलवर्त्म, पोथकी इनमें पहले पाछकर फिर धीरे से शस्त्र द्वारा लेखन करे ॥१४॥

समं लिखेत्तु मेधावी श्यावकर्दमवर्त्मनी ॥१५॥

श्याववर्त्म और कर्दमवर्त्म में बुद्धिमान् वैद्य एक बार में ही, न तो गहरा, न उथला लेखन करे ॥१५॥

कुम्भीकिनीं शर्करां च तथैवोत्सङ्गिनीमपि ।
कल्पयित्वा तु शस्त्रेण लिखेत् पश्चादतन्द्रितः ॥१६॥

कुम्भीकिनी, वर्त्मशर्करा, उत्संगिनी इनको शस्त्र से काट-कर, पीछे सावधानी से लेखन करे ॥१६॥

भवेयुर्वर्त्मसु च याः पिडकाः कठिना भृशम् ।
ह्रस्वास्ताम्राश्च ताः पक्वा भिन्द्याद्भिन्ना लिखेदपि ।

पलकों में जो अतिशय कठिन, ह्रस्व, ताम्रवर्ण की पिड़का हो जाये, उसके पक जाने पर भेदन करे। भेदन करने के पीछे लखन करे ॥१७॥

तरुणीश्चाल्पसंरम्भाः पिडका बाह्यवर्त्मजाः ।
विदित्वैताः प्रशमयेत् स्वेदालेपनशोधनैः ॥१८॥

पलक के बाहर पिड़कायें छोटी, थोड़ी सूजनवाली, उत्पन्न हो जाये, उनमें स्वेदन, आलेप, शोधन करके, उनको शान्त करे ॥१८॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे
लेख्यरोगप्रतिषेधो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

चतुर्दशोऽध्यायः

अथातो भेद्यरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वतरिः ॥२॥

अब इसके आगे भेद्य रोग प्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे—जैसा भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

स्वेदयित्वा बिसग्रन्थिं छिद्राण्यस्य निराशयम् ।
पक्वं भित्त्वा तु शस्त्रेण सैन्धवेनावचूर्णयेत् ॥३॥
कासीसमागधीपुष्पनेपाल्येलायुतेन तु ।
ततः क्षौद्रघृतं दत्त्वा सम्यग्बन्धमथाचरेत् ॥४॥

पकी हुई बिसग्रन्थि पर स्वेदन करके, इस बिसग्रन्थि के छेदों को आशय समेत (कोटर न रखकर) भेदन करके, सैन्धव चूर्ण, कासीस, पिप्पली. पुष्पांजन, (जस्ते का फूल-लोक में जशद, कहते हैं), मैनसिल, इलायची इनसे रगड़ देवे। फिर पीछे से मधु और घृत लगाकर ठीक प्रकार से पट्टी बांध देवे ॥

रोचनाक्षारतुत्थानि पिप्पल्यः क्षौद्रमेव च ।
प्रतिसारणमेकैकं भिन्ने लगण इष्यते ॥५॥
महत्यपि च युञ्जीत क्षाराग्नी विधिकोविदः ।

लगण के भिन्न (फटने) हो जाने पर—गोरोचना, यव-क्षार, तुत्थ, पिप्पली, मधु—इनमें एक एक से (किसी एक से) प्रतिसारण करे। लगण के बड़ा होने पर-विधि को जाननेवाला वैद्य क्षार एवं अग्नि कर्म करे ॥५॥

स्विन्नां भिन्नां विनिष्पीड्य भिषगञ्जननामिकाम् ॥
शिलैलानतसिन्धूत्थैः सक्षौद्रैः प्रतिसारयेत् ।

अंजन नामिका में वैद्य स्वेदन देवे। फट जाने पर दबा-कर सब स्राव निकाल देवे। फिर मैनसिल, इलायची, तगर, सैन्धव और मधु से प्रतिसारण करे ॥६॥

रसाञ्जनमधुभ्यां तु भित्वा वा शस्त्रकर्मवित् ॥७॥
प्रतिसार्याञ्जनैर्युञ्ज्याद्युष्णैर्दीपशिखोद्भवैः ।

जो अंजन नामिका (अंजनारी) फटे नहीं, उसमें, वैद्य प्रथम स्वेदन देकर, शस्त्रकर्म को जाननेवाला वैद्य इसका भेदन करके रसौंत और मधु का प्रतिसारण करके, पीछे से काजल का अंजन करे ॥७॥

सम्यक्स्विन्ने कृमिग्रन्थौ भिन्ने स्यात् प्रतिसारणम् ॥८॥
त्रिफलातुत्थकासीससैन्धवैश्च रसक्रिया ।

कृमिग्रन्थि में भली प्रकार स्वेदन करने से, ग्रन्थि के फट जाने पर रसौंत और मधु से प्रतिसारण करके, त्रिफला, तुत्थ, कासीस, सैन्धव, इनकी रसक्रिया बरते ॥८॥

भित्त्वोपनाहं कफजं पिप्पलीमधुसैन्धवैः ॥९॥
लेखयेन्मण्डलाग्रेण समन्तात् प्रच्छयेदपि ।

कफज उपनाह में—श्लेष्मोपनाह में भेदन करे, बड़े एवं वेदना रहित में लेखन करे, रक्त का अनुबन्ध होने पर पाछे, श्लेष्मोपनाह में लेखन, भेदन, पाछना करके पिप्पली, मधु, सैन्धव से प्रतिसारण करे। लेखन कार्य मण्डलाग्र से करे। पाछना—चारों ओर से करे ॥९॥

संस्नेह्य पत्रभङ्गैश्च स्वेदयित्वा यथासुखम् ॥१०॥
आपाकाद्विधिनोक्तेन पञ्चभेद्यानुपाचरेत् ।
सर्वेष्वेतेषु विहितं विधानं स्नेहपूर्वकम् ।
संपक्वे प्रयतो भूत्वा कुर्वीत व्रणरोपणम् ॥११॥

विसग्रन्थि आदि पांचों भेद्य रोगों के अपक्व होने पर—स्नेहन करके पत्तों से सुहाता हुआ स्वेद देकर, अपतर्पण आदि सामान्यशोथविधि से चिकित्सा करे। इन सब रोगों में स्नेहन करके फिर स्वेद, रक्तावसेचन, विरेचन आदि करने चाहिये। पक जाने पर सावधानी से व्रण रोपण उपचार करे ॥१०,११॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे
भेद्यरोगप्रतिषेधो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पञ्चदशोऽध्यायः

अथातश्छेद्यरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे छेद्य रोग प्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नमुपविष्टस्य यत्नतः ।
संरोषयेत्तु नयनं भिषक् चूर्णैस्तु लावणैः ॥३॥

वमनादि से शरीर का शोधन करके, पेया आदि संसर्जन विधि या स्निग्ध भोजन रोगी को देकर, रोगी को बैठाकर

(लेटाकर) यत्नपूर्वक जिससे बहुत पीड़ा न हो, उस प्रकार सैन्धव के चूर्ण से आँख में क्षोभ उत्पन्न करे (जिससे अर्म शिथिल हो जाये) ॥३॥

ततः संरोषितं तूर्णं सुस्विन्नं परिघट्टितम् ।
अर्म यत्र वलीजातं तत्रैतल्लगयेद्भिषक् ॥४॥
अपाङ्गं प्रेक्षमाणस्य बडिशेन समाहितः ।
मुचुण्ड्याऽऽदाय मेधावी सूचीसूत्रेण वा पुनः ॥५॥
न चोत्थापयता क्षिप्रं कार्यमभ्युन्नतं तु तत् ।
शस्त्राबाधभयाच्चास्य वर्त्मनी ग्राहयेद्दृढम् ॥६॥
ततः प्रशिथिलीभूतं त्रिभिरेव विलम्बितम् ।
उल्लिखन्मण्डलाग्रेण तीक्ष्णेन परिशोधयेत् ॥७॥
विमुक्तं सर्वतश्चापि कृष्णाच्छुक्लाच्च मण्डलात् ।
नीत्वा कनीनकोपान्तं छिन्द्यान्नाति कनीनकम् ॥८॥
चतुर्भागस्थिते मांसे नाक्षि व्यापत्तिमृच्छति ।
कनीनकवधादस्रं नाडी वाऽप्युपजायते ॥९॥
हीनच्छेदात् पुनर्वृद्धिं शीघ्रमेवाधिगच्छति ।

अर्म के क्षोभित (ढीला) हो जानेपर तुरन्त जल्दी से स्वेदन देकर इसको हिलाये, जहाँ पर अर्म में झुर्रियाँ हों वहाँ पर बडिश से अर्म को पकड़कर जरा ऊँचा करे, इस समय रोगी अपनी दृष्टि अपांग—(कान की ओर) प्रदेश में रक्खे। बडिश को हाथ की चुटकी (अंगूठे और तर्जनी से पकड़कर जरा ऊँचे करे अथवा सूई में धागा डालकर उसे अर्म के नीचे से गुजारकर अर्म को जरा ऊँचा उठा ले। उठाते समय वैद्य को इसमें जल्दी नहीं करनी चाहिये, चूँकि टूटने का भय रहता है। शस्त्र से नुकसान न पहुँचे इसलिये दोनों पलकों को दूर खींचकर रक्खे (Eye farcips को बरते)। फिर अर्म के ढीला हो जाने पर तीन बडिशों से इसको पकड़कर, तीक्ष्ण मण्डलाग्र से लेखन कर देवे। कृष्णमण्डल, शुक्लमण्डल से सम्पूर्ण रूप में अलग करके इसका परिशोधन करे। इसके लिये इस अर्म को अलग करके कनीनका (नासा के समीपस्थ भाग) के पास लाकर कनीनका का अतिक्रमण न करते हुए (बचाते हुए) इसे काट दे। मांस के एक चौथाई छोड़ देने में आँख को किसी प्रकार की हानि नहीं होती (अक्षिगोलक के ऊपर के मांस में ¼ भाग रह जाने से)। कनीनक में हानि पहुँचने से रक्त बहता है या नाडी व्रण हो जाता है। कम परिमाण में अर्म काटने पर अर्म शीघ्र ही फिर बढ़ जाता है। (अस्र-आंसू भी बहते हैं) ॥४-६॥

अर्म यज्जालवद्वयापि तदप्युन्माज्य लम्बितम् ॥१०॥
छिन्द्याद्वक्रेण शस्त्रेण वर्त्म शुक्लान्तमाश्रितम् ।

जो अर्म मछली पकड़ने के जाल के समान फैला हुआ, वर्त्म (पलक) और शुक्लभाग के पास में स्थित हो, उसे भी सैन्धव से रगड़कर, बडिश से उठाकर (लटकाकर) मण्डलाग्र से काट देवे ॥१०॥

प्रतिसारणमक्ष्णोस्तु ततः कार्यमनन्तरम् ॥११॥
यावनालस्य चूर्णेन त्रिकटोर्लवणस्य च ।
स्वेदयित्वा ततः पश्चाद्बध्नीयात् कुशलो भिषक् ॥१२॥
दोषर्तुबलकालज्ञः स्नेहं दत्त्वा यथाहितम् ।
व्रणवत् संविधानं तु तस्य कुर्यादतः परम् ॥१३॥
त्र्यहान्मुक्त्वा करस्वेदं दत्त्वा शोधनमाचरेत् ।

इसके पीछे आँखों में प्रतिसारण करना चाहिये। प्रतिसारण के लिये—यवक्षार, त्रिकटु, सैन्धव नमक इनसे रगड़े। पीछे से स्वेद देकर कुशल वैद्य बांध देवे। दोष, ऋतु, बल एवं काल को जाननेवाला वैद्य यथायोग्य स्नेह देकर व्रण की भाँति उपचार इसके पीछे करे। तीन दिन के पीछे पट्टी खोल कर हाथों को गरम करके स्वेद देवे और रोपण आदि शोधन बरते ॥११-१३॥

करञ्जबीजामलकमधुकैः साधितं पयः ॥१४॥
हितमाश्च्योतनं शूले द्विरह्नः क्षौद्रसंयुतम् ।
मधुकोत्पलकिंजल्कदूर्वाकल्कैश्च मूर्धनि ॥१५॥
प्रलेपः सघृतः शीतः क्षीरपिष्टः प्रशस्यते ।

शूल होने पर—करञ्ज, आंवला, मुलैहठी इनसे सिद्ध किया दूध—मधु मिलाकर, प्रातःसायं आश्च्योतन (बिन्दु डालना) में बरते। मुलैहठी, कमल, कमलकेशर, दूर्वा इनको दूध में पीसकर, घी मिलाकर, शीतल प्रलेप शिर पर करे ॥१४,१५॥

लेख्याञ्जनैरपहरेदर्मशेषं भवेद्यदि ॥१६॥

यदि अर्म कुछ बच जाये तो लेख्य अञ्जन का (लोहचूर्णानि सर्वाणि आदि) उपयोग करे ॥१६॥

अर्म चाल्पं दधिनिभं नीलं रक्तमथापि वा ।
धूसरं तनु यच्चापि शुक्रवत्तदुपाचरेत् ॥१७॥

जो अर्म, छोटा दही के समान, नीला या लाल अथवा धूसर वर्ण (मटियाला), पतला हो, उसकी चिकित्सा शुक्र की भाँति करे। (दधिनिभ शुक्लार्म, नीले-प्रस्तारि, रक्त-लोहितार्म,) ॥१७॥

चर्माभं बहलं यत्तु स्नायुमांसघनावृतम् ।
छेद्यमेव तदर्म स्यात् कृष्णमण्डलगं च यत् ॥१८॥

जो अर्म चमड़े के समान मोटा, स्नायुमांस के कारण मोटा हुआ, या कृष्ण मण्डल में पहुँचा हो, उस अर्म का अवश्य ही छेदन करना चाहिये ॥१८॥

विशुद्धवर्णमक्लिष्टं क्रियास्वक्षिगतक्लमम् ।
छिन्नेऽर्मणि भवेत् सम्यग्यथास्वमनुपद्रवम् ॥१९॥

अर्म के हट जाने से आँख का स्वाभाविक वर्ण निकल आता है, खोलने-बन्द करने में—देखने में कुछ भी कठिनाई नहीं होती, परिश्रम में क्लेश अनुभव नहीं होता, हीन या अधिक छेदन के उपद्रवों से रहित आँख—भली प्रकार अर्म का छेदन होने पर हो जाती है ॥१९॥

सिराजाले सिरा यास्तु कठिनास्ताश्च बुद्धिमान् ।
उल्लिखेन्मण्डलाग्रेण बडिशेनावलम्बिताः ॥२०॥

सिराजाल में जो सिरा कठिन हो, उसको बुद्धिमान् वैद्य बडिश से उठाकर, मण्डलाग्र से काट देवे ॥२०॥

सिरासु पिडका जाता या न सिध्यन्ति भेषजैः ।
अर्मवन्मण्डलाग्रेण तासां छेदनमिष्यते ॥२१॥

सिराओं में उत्पन्न जो पिड़का औषधियों से शान्त न होती हो, उसका अर्म की भाँति मण्डलाग्र से छेदन करना चाहिये ॥

रोगयोश्चैतयोः कार्यमर्मोक्तं प्रतिसारणम् ।
विधिश्चापि यथादोषं लेखनद्रव्यसंभृतः ॥२२॥

सिराजाल, सिरापिड़का में अर्म में कहे यवक्षार से प्रतिसारण करना चाहिये । दोष के अनुसार वाताभिष्यन्द आदि में कही विधि को लेखन द्रव्यों से बरतना चाहिये ॥२२॥

सन्धौ संस्वेद्य शस्त्रेण पर्वणीकां विचक्षणः ।
उत्तरे च त्रिभागे च बडिशेनावलम्बिताम् ॥२३॥
छिन्द्यात्ततोऽर्धमग्रे, स्यादश्रुनाडी ह्यतोऽन्यथा ।
प्रतिसारणमत्रापि सैन्धवक्षौद्रमिष्यते ॥२४॥
लेखनीयानि चूर्णानि व्याधिशेषस्य भेषजम् ।

कृष्ण और शुक्ल भाग की सन्धि में स्वेदन देकर, बुद्धिमान् वैद्य पर्वणिका को पिछले ⅓ एक तिहाई भाग में बडिश से पकड़कर (ऊँचा उठाकर) काट देवे, फिर आगे में (मूल और अग्रभाग के मध्य में काटे। ऐसा न करने से अश्रु नाड़ीव्रण हो जाता है। मधु और सैन्धव से प्रतिसारण करे । शेष बचे रोग के लिये लेखनीय चूर्ण बरते ।२३, २४॥

शङ्खं समुद्रफेनं च मण्डूकीं च समुद्रजाम् ॥२५॥
स्फटिकं कुरुविन्दं च प्रवालाश्मन्तकं तथा ।
वैदूर्यं पुलकं मुक्तामयस्ताम्ररजांसि च ॥२६॥
समभागानि संपिष्य सार्धं स्रोतोञ्जनेन तु ।
चूर्णाञ्जनं कारयित्वा भाजने मेषशृङ्गजे ॥२७॥
संस्थाप्योभयतः कालमञ्जयेत् सततं बुधः ।
अर्माणि पिडकां हन्यात् सिराजालानि तेन वै ॥२८॥

शंख, समुद्रफेन, मुक्ताशुक्ति, स्फटिक, कुरुविन्द (पद्मराग), प्रवाल, अश्मन्तक (सिरहटा), वैढूर्य, पुलक, मुक्ता (मोती), लोहभस्म, ताम्रभस्म, इनको परस्पर समान भाग ले, और सबके बराबर स्रोतोंजन (सुरमा) ले। इस चूर्णाजन को मेष के सींग के पात्र में रख देवे। प्रातः सायं दोनों समय निरन्तर इसका अञ्जन करे। इससे अर्म, पिड़का, शिराजाल नष्ट होते हैं ॥२५-२८॥

अर्शस्तथा यच्च नाम्ना शुष्कार्शोऽर्बुदमेव च ।
अभ्यन्तरं वर्त्मशया विधानं तेषु वक्ष्यते ॥२९॥

वर्त्म के अन्दर के अर्श, (वर्त्मार्श), शुष्कार्श, वर्त्मार्बुद इनकी चिकित्सा कहते हैं ॥२९॥

वर्त्मोपस्वेद्य निर्भुज्य सूच्योत्क्षिप्य प्रयत्नतः ।
मण्डलाग्रेण तीक्ष्णेन मूले भिन्द्याद्भिषग्वरः ॥३०॥
ततः सैन्धवकासीसकृष्णाभिः प्रतिसारयेत् ।
स्थिते च रुधिरे वर्त्म दहेत् सम्यक् शलाकया ॥३१॥
क्षारेणावलिखेच्चापि व्याधिशेषो भवेद्यदि ।
तीक्ष्णैरुभयतोभागैस्ततो दोषमधिक्षिपेत् ॥३२॥
वितरेच्च यथादोषमभिष्यन्दक्रियाविधिम् ।

पलक पर स्वेद देकर पलकों को उलटा करे, अर्श या अर्बुद को सूई से ऊँचा करके, कुशल वैद्य, तीक्ष्ण मण्डलाग्र से मूल में काट देवे । सैन्धव, कासीस, पिप्पली से इस पर प्रतिसारण करे । रक्त के बन्द हो जाने पर शलाका से भली प्रकार जलाये । यदि रोग बच जाये, तो क्षार से अवलेखन करे । दोष को निकालने के लिये तीक्ष्ण वमन, तीक्ष्ण विरेचन देवे। वातादि दोष के अनुसार अभिष्यन्द उपचार बरते ॥३०-३२॥

शस्त्रकर्मण्युपरते मासं च स्यात् सुयन्त्रितः ॥३३॥

शस्त्रकर्म के पीछे एक मास पर्यन्त परहेज पाले ॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे छेद्यरोगप्रतिषेधो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

षोडशोऽध्यायः

अथातः पक्ष्मकोपप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे पक्ष्मकोप प्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे- जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

याप्यस्तु यो वर्त्मभवो विकारः
पक्ष्मप्रकोपोऽभिहितः पुरस्तात् ।
तत्रोपविष्टस्य नरस्य चर्म
वर्त्मोपरिष्टादनुतिर्यगेव ॥३॥
भ्रुवोरधस्तात् परिमुच्य भागौ
पक्ष्माश्रितं चैकमतोऽवकृन्तेत् ।
कनीनकापाङ्गसमं समन्ता-
द्यवाकृति स्निग्धतनोर्नरस्य ॥४॥
उत्कृत्य शस्त्रेण यवप्रमाणं
बालेन सीव्येद्भिषगप्रमत्तः ।
दत्त्वा च सर्पिर्मधुनाऽवशेषं
कुर्याद्विधानं विहितं व्रणे यत् ॥५॥
ललाटदेशे च निबद्धपट्टं
प्राक्स्यूतमत्राप्यपरं च बद्ध्वा ।
स्थैर्यं गते चाप्यथ शस्त्रमार्गे
बालान् विमुञ्चेत् कुशलोऽभिवीक्ष्य ॥६॥

पलकों में होनेवाला पक्ष्मकोप नामक जो रोग पहले याप्य कहा है, उस पक्ष्मकोप में स्निग्ध शरीरवाले रोगी को बिठाकर (लिटाकर सुगमता रहती है), भ्रुवों के नीचे दो भागों

को बचाकर पद्माश्रित में एक भाग को कनीनका (नासा भाग) और अपांग (कान की ओर का भाग) के समान-बराबर प्रदेश को लक्ष्य में रखकर, सब स्थानों पर-बालों की पंक्ति के साथ-साथ पलक के उपरि-अग्रिम भाग में से जौ के आकार में (बीच में जरा मोटा-किनारों पर पतला होता हुआ) त्वचा को तिरछे रूप शस्त्र से काटे। चर्म को काटकर पलक को अश्व आदि के बाल से वैद्य सावधानी से सी देवे। फिर मधु और घृत लगाकर शेष चिकित्सा व्रण की भांति करे। माथे पर एक पट्टी बांधकर सी देवे। इसमें दूसरी पट्टी (आँख की पट्टी) सी देवे। शस्त्रकर्म के स्थिर (कठिन) हो जाने पर-वैद्य घोड़े आदि के बाल जो सीने में बरते, उनको निकाल देवे ॥३-६॥

एवं न चेच्छाम्यति तस्य वर्त्म
निर्भुज्य दोषोपहतां बलिं च।
ततोऽग्निना वा प्रतिसारयेत्तां
क्षारेण वा सम्यगवेक्ष्य धीरः ॥७॥

यदि इससे पद्म कोप शान्त न हो तो पलक को उलटा करके, दोषों से युक्त बलि (मांस) को अग्नि से या क्षार से भली प्रकार कुशल वैद्य प्रतिसारण करे-जलाये ॥७॥

छित्त्वा समं वाऽप्युपपद्ममालां
सम्यग्गृहीत्वा बडिशैस्त्रिभिस्तु।
पथ्याफलेन प्रतिसारयेत्तु
घृष्टेन वा तौवरकेण सम्यक् ॥८॥

अथवा बालों की नई पंक्ति जो पैदा हो गई है, उसे तीन बडिशों से भली प्रकार पकड़कर काट देवे। फिर हरड़ के फल से (हरड़ को पानी में घिसकर) या तुवरक के फल से इसे रगड़े ॥८॥

चत्वार एते विधयो विहन्तुं
पद्मोपरोधं पृथगेव शस्ताः।
विरेचनाश्च्योतनधूमनस्य-
लेपाञ्जनस्नेहरसक्रियाश्च ॥९॥

शस्त्रकर्म, अग्निकर्म, क्षारकर्म और भेषजकर्म चारों विधियां-पद्मकोप को सम्पूर्ण रूप से नष्ट करने में समर्थ हैं। विरेचन, आश्च्योतन, धूम, नस्य, लेप, अञ्जन, स्नेहपान, रसक्रिया, बालों का उखाड़ना, इनको दोषों के अनुसार बरते ॥९॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे पद्मगतरोगप्रतिषेधो नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

सप्तदशोऽध्यायः

अथातो दृष्टिगतरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे दृष्टिगत रोग प्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था।

वि० मन्तव्य—इस अध्याय में दृष्टि के रोगों की चिकित्सा लिखी गई है ॥१,२॥

त्रयः साध्यास्त्रयोऽसाध्या षट् च याप्या भवन्ति हि।

तीन रोग (धूमदर्शि, पित्तविदग्ध दृष्टि, कफविदग्ध दृष्टि) साध्य हैं, तीन रोग (ह्रस्वजाड्य, नाकुलान्ध्य, गम्भीरका) असाध्य हैं, छै रोग (अरुणादि काच) याप्य हैं।

तत्रैकस्य प्रतीकारः कीर्तितो धूमदर्शिनः ॥३॥

इनमें से एक धूमदर्शि रोग का प्रतिकार (हेतु व्याधि विपरीत क्रिया) पित्ताभिष्यन्द में कह दिया है ॥३॥

दृष्टौ पित्तविदग्धायां विदग्धायां कफेन च।
पित्तश्लेष्महरं कुर्याद्विधिं शस्त्रक्षतादृते ॥४॥
नस्यसेकाञ्जनालेपपुटपाकैः सतर्पणैः।
आद्ये तु त्रैफलं पेयं सर्पिस्त्रैवृतमुत्तरे ॥५॥
तैल्वकं चोभयोः पथ्यं केवलं जीर्णमेव वा।

पित्तविदग्ध दृष्टि में पित्ताभिष्यन्दनाशक, कफविदग्ध दृष्टि में कफाभिष्यन्द नाशक चिकित्सा करे, परन्तु सिरावेध न करे। नस्य, सेक, अञ्जन, आलेप, पुटपाक, तर्पण बरते। पित्तविदग्ध दृष्टि में त्रैफलघृत (त्रिफला के क्वाथ एवं कल्क से बनाया) पीये। कफविदग्ध दृष्टि में त्रैवृत घृत (त्रिवृत के क्वाथ कल्क से बनाया) पीये अथवा दोनों में तैल्वक घृत-तिल्वक-पट्टिका लोध से बनाया) पीये, या पुराना (दस साल का) घृत असंस्कृत ही पीये ॥४,५॥

गैरिकं सैन्धवं कृष्णा गोदन्तस्य मषी तथा ॥६॥
गोमांसं मरिचं बीजं शिरीषस्य मनःशिला।
वृन्तं कपित्थान्मधुना स्वयङ्गुप्ताफलानि च ॥७॥
चत्वार एते योगाः स्युरुभयोरञ्जने हिताः।

(१) गेरू, सैन्धव, पिप्पली, गाय के दाँत की राख (२) गाय का मांस, मरिच, शिरीष के बीज, मैनसिल, (३) कैथ के कोपलों को मधु के साथ, (४) कौंच के फल-मधु के साथ अञ्जन करना-दोनों रोगों में उत्तम है ॥६,७॥

कुब्जकाशोकशालाम्रप्रियङ्गुनलिनोत्पलैः ॥८॥
पुष्पैर्हरेणुकृष्णाह्वापथ्यामलकसंयुतैः।
सर्पिर्मधुयुतैश्चूर्णैर्वेणुनाड्यामवस्थितैः ॥९॥
अञ्जयेद् द्वावपि भिषक् पित्तश्लेष्मविभावितौ।

कुब्जक, अशोक, शाल, आम, प्रियंगु, नलिन, कमल इनके फूल, हरेणु, पिप्पली, हरड़, आंवला, इनको घी और मधु के साथ मिलाकर इस चूर्ण को बांस की नलिका में रक्खे। इससे पित्त एवं कफ दोनों से विदग्ध दृष्टियों में अञ्जन करे॥

आमजम्बूद्भवं पुष्पं तद्रसेन हरेणुकाम ॥१०॥

पिष्ट्वा क्षौद्राज्यसंयुक्तं प्रयोज्यमथवाऽञ्जनम् ।
नलिनोत्पलकिञ्जल्कगैरिकैर्गोशकृद्रसैः ॥११॥
गुडिकाञ्जनमेतद्वा दिनरात्र्यन्धयोर्हितम् ।

आम और जामुन के पुष्प इनके रस से हरेणुका (मेंहदी के बीज) को पीसकर, घी और मधु में मिलाकर अञ्जन करे। नलिन, कमल, कमल केसर, गेरू और गोबर का रस, इनसे बनाई गोली का अञ्जन दिवान्ध रात्र्यन्ध दोनों के लिये हितकर है ॥१०,११॥

रसाञ्जनरसक्षौद्रतालीशस्वर्णगैरिकम् ॥१२॥
गोशकृद्रससंयुक्तं पित्तोपहतदृष्टये ।

रसौत, चमेली या आंवले के पत्तों का रस, मधु, तालीश, स्वर्ण गेरू इनको गोबर के रस में मिलाकर पित्त विदग्ध दृष्टि में बरते। (रस शब्द से मांस रस में हानि नहीं, डल्हण ने अगले श्लोक की टीका में रस से मांसरस लिया है) ॥१२॥

शीतं सौवीरकं वाऽपि पिष्ट्वाऽथ रसभावितम् ॥१३॥
कूर्मपित्तेन मतिमान् भावयेद्रौहितेन वा ।
चूर्णाञ्जनमिदं नित्यं प्रयोज्यं पित्तशान्तये ॥१४॥

शीत (कपूर या रसौत), सौवीरांजन, इनके चूर्ण को पशु-पक्षि आदि के मांसरस से भावित करके, कछुए या रोहितक मछली के पित्त से भावना दे। इस चूर्णांजन को नित्यप्रति पित्त विदग्ध दृष्टि में बरते ॥१३,१४॥

काश्मरीपुष्पमधुकदार्वीरोध्ररसाञ्जनैः ।
सक्षौद्रमञ्जनं तद्वद्धितमत्रामये सदा ॥१५॥

गम्भारी का पुष्प, मुलैहठी, दारुहल्दी, लोध, रसौत,इनको मधु में मिलाकर पित्तविदग्ध दृष्टि में अञ्जन करना सदा उत्तम है ॥१५॥

स्रोतोजं सैन्धवं कृष्णां रेणुकां चापि पेषयेत् ।
अजामूत्रेण ता वर्त्यः क्षणदान्ध्याञ्जने हिताः ॥१६॥

स्रोतांजन, सैन्धव, पिप्पली, रेणुका इनको बकरी के मूत्र से पीसकर बत्तियाँ बना ले। इनका अञ्जन रात्र्यान्ध्य को नष्ट करता है। (क्षणदा निशा-रात्रि) ॥१६॥

कालानुसारिवां कृष्णां नागरं मधुकं तथा ।
तालीशपत्रं क्षणदे गाङ्गेयं च यकृद्रसे ॥१७॥
कृतास्ता वर्तयः पिष्टाश्छायाशुष्काः सुखावहाः ।

कालानुसारिवा, पिप्पली, सोंठ, मुलैहठी, तालीशपत्र,हल्दी, मुस्ता, इनको पीसकर यकृत के रस (Liver Extract) में बनाई वर्त्तियाँ, छाया में सुखाकर, सुखदायक हैं ॥१७॥

मनःशिलाभयाव्योषबलाकालानुसारिवाः ॥१८॥
सफेना वर्तयः पिष्टाश्छागक्षीरसमन्विताः ।

मैनसिल, हरड़, त्रिकटु, बला, कालानुसारिवा, समुद्रफेन, इनको बकरी के दूध में पीसकर बनाई वर्त्तियां रात्र्यान्ध्य में उत्तम हैं ॥१८॥

गोमूत्रपित्तमदिरायकृद्धात्रीरसे पचेत् ॥१९॥
क्षुद्राञ्जनं रसेनान्यद्यकृतस्त्रैफलेऽपि वा ।
गोमूत्राज्यार्णवमलपिप्पलीक्षौद्रकट्फलैः ॥२०॥
सैन्धवोपहितं युञ्ज्यान्निहितं वेणुगह्वरे ।

गोमूत्र, बकरी का पित्त, मदिरा, बकरे की कलेजी (यकृत्) का रस, आंवले का स्वरस, इनसे क्षुद्रांजन (रसक्रिया अञ्जन) बनाये। यकृत् के रस की रसक्रिया बनाये। गोमूत्र, घी, समुद्रफेन, पिप्पली, मधु, कट्फल, सैन्धव इनको मिलाकर बांस के खोखर में (बांस के पात्र में) रक्खे। ये सब रात्र्यान्ध्य में उत्तम हैं ॥१९,२०॥

मेदो यकृद्घृतं चाजं पिप्पल्यः सैन्धवं मधु ॥२१॥
रसमामलकाच्चापि पक्वं सम्यङ्निधापयेत् ।
कोशे खदिरनिर्माणे तद्वत् क्षुद्राञ्जनं हितम् ॥२२॥

बकरी की मेद, यकृत् और घी, पिप्पली, सैन्धव, मधु, आँवले का रस इनको भली प्रकार पकाकर खैर के बने कोश में (लम्बे-तंग मुखवाले पात्र में) रक्खे। यह क्षुद्रांजन (रसक्रिया) रात्र्यान्ध्य में उत्तम है ॥२१,२२॥

हरेणुमगधाजास्थिमज्जैलायकृदन्वितम् ।
यकृद्रसेनाञ्जनं वा श्लेष्मोपहतदृष्टये ॥२३॥

हरेणु, पिप्पली के तुष रहित बीज, इलायची, यकृत् इनको पीसकर यकृत् के रस में मिलाकर अञ्जन करना श्लेष्मविदग्ध-दृष्टि रोग के लिये उत्तम है ॥२३॥

विपाच्य गोधायकृदर्धपाटितं
सुपूरितं मागधिकाभिरग्निना ।
निषेवितं तद्यकृदञ्जनेन
निहन्ति नक्तान्ध्यमसंशयं खलु ॥२४॥

गोह के यकृत् को बीच से चीरकर उसमें पिप्पली भरकर ऊपर मिट्टी का लेप करके पुटपाक विधि से अग्नि में पकाये। पकाकर इस यकृत् को खाये और पिप्पली से अञ्जन करे, इससे रात्र्यान्ध्य अवश्य नष्ट होता है ॥२४॥

तथा यकृच्छागभवं हुताशने
विपाच्य सम्यङ्मगधासमन्वितम् ।
प्रयोजितं पूर्ववदाशु संशयं
जयेत् क्षपान्ध्यं सकृदञ्जनान्नृणाम् ॥२५॥

इसी प्रकार बकरी के यकृत् को चीरकर पिप्पली भरकर अग्नि में पकाये इसको भी पूर्व की भांति खाये और पिप्पली से अञ्जन करे। इससे मनुष्यों का रात्र्यान्ध्य अवश्य नष्ट होता है ॥२५॥

प्लीहा यकृच्चाप्युपभक्षिते उभे
प्रकल्प्य शूल्ये घृततैलसंयुते ।
ते सार्षपस्नेहसमायुतेऽञ्जनं
नक्तान्ध्यमाश्वेव हतः प्रयोजिते ॥२६॥

गोह या बकरी के प्लीहा और यकृत् को लेकर टुकड़े करके इनको सीखचों पर पकाकर घी और तैल

में मिलाकर खाये। बकरी या गोह की प्लीहा और यकृत को सरसों के तेल में मिलाकर अंजन करने से नक्तान्ध्य शीघ्र नष्ट होता है (शूलाकृत करके इनको सरसों के तेल में मिलाये) ॥२६॥

नदीजशिम्बीत्रिकटूण्यथाञ्जनं
मनः शिला द्वे च निशे य (श) कृद्गवाम्।
सचन्दनेयं गुटिकाऽथवाञ्जनं
प्रशस्यते वै दिवसेष्वपश्यताम् ॥२७॥

सैन्धव, हरेमूंगे, त्रिकटु, सौवीरांजन (सुरमा), मैनसिल, हल्दी, दारुहल्दी, चन्दन, गाय का गोबर इनको पीसकर गोली बनाये, या चूर्ण करके अंजन रक्खे। इनसे दिवान्ध रोगियों में अंजन करे। गोबर के स्थान पर गाय का यकृत लेना हो तो यकृत में चीरकर इन औषधियों को भरकर पुटपाक विधि से पकाकर अञ्जन करे ॥२७॥

भवन्ति याप्याः खलु ये षडामया
हरेदसृक्तेषु सिराविमोक्षणैः
विरेचयेच्चापि पुराणसर्पिषा
विरेचनाङ्गोपहितेन सर्वदा ॥२८॥

तिमिरावस्थावाले काच, जौ छः रोग याप्य है, उनमें सिरा मोक्षण करके रक्त निकाले। विरेचन द्रव्यों से संस्कृत पुरातन-घृत से सदा विरेचन देवे।

राग प्राप्त तिमिर में सिरावेध निषिद्ध है, यथा—"तिमिरे रागिणि भिषक् सिरामोक्षं विवर्जयेत्" ॥२८॥

पयोविमिश्रं पवनोद्भवे हितं
वदन्ति पञ्चाङ्गुलतैलमेव तु।
भवेद्धृतं त्रैफलमेव शोधनं
विशेषतः शोणितपित्तरोगयोः ॥२९॥
त्रिवृद्विरेकः कफजे प्रशस्यते
त्रिदोषजे तैलमुशन्ति तत्कृतम्।

वातजन्य तिमिर में एरण्ड तैल को दूध में मिलाकर देवे। रक्तजन्य एवं पित्तजन्य तिमिर रोगों में त्रैफलघृत को शोधन के लिये विशेषरूप में देवे। कफजन्य में त्रिवृतघृत से विरेचन, त्रिदोषज तिमिर में वात-पित्त कफनाशक द्रव्यों से संस्कृत तैल देवे (या त्रिवृत से सिद्ध तैल देवे) ॥२९॥

पुराणसर्पिस्तिमिरेषु सर्वशो
हितं भवेदायसभाजनस्थितम् ॥३०॥
हितं च विद्यात्त्रिफलाघृतं सदा
कृतं च यन्मेषविषाणनामभिः।

लोहपात्र में रक्खा पुरातन घृत (दस साल का) सब तिमिरों में उत्तम है। त्रिफलाघृत सदा प्रशस्त हैं। मेषशृंगी फल से संस्कृत घृत उत्तम है ॥३०॥

सदाऽवलिह्यात् त्रिफलां सुचूर्णितां
घृतप्रगाढां तिमिरेऽथ पित्तजे ॥३१॥
समीरजे तैलयुतां कफात्मके
मधुप्रगाढां विदधीत युक्तितः।

पित्तजन्य तिमिर में—त्रिफला चूर्ण को प्रचुर घृत के साथ सदा चाटना चाहिये। वातजन्य में त्रिफला को तैल के साथ, कफजन्य में त्रिफला को मधु के साथ युक्ति से (रात्रि में) चाटे।

वक्तव्य—कई लोग "सदाऽवलिह्यात् त्रिफलां सुचूर्णितां घृतप्रगाढां तिमिरातुरो नरः। कफाभिभूतः खलु तैलसंयुतां मधुप्रगाढामपि वा प्रयोजयेत् ॥" ऐसा पाठ करते हैं। ये औषधियाँ रात्रि के प्रदोष काल में देनी चाहिये। चूंकि जत्रु से ऊपर के रोगों में सूर्यास्त के पीछे औषध देने का विधान है, यथा—"वमनं धूमश्च जत्रूर्ध्वामयेषु निशायाम्" ॥३१॥

गवां शकृत्क्वाथविपक्वमुत्तमं
हितं तु तैलं तिमिरेषु नावनम् ॥३२॥
हितं घृतं केवल एव पैत्तिके
ह्यजाविकं यन्मधुरैर्विपाचितम्।

गाय के गोबर के क्वाथ में पकाया तैल तिमिरों में (कफजन्य या सब) उत्तम हितकारी नस्य है। पित्तजतिमिर में—(अकेले पित्त में) काकोल्यादिगण से पकाया बकरी का घी नस्य में उत्तम है ॥३२॥

तैलं स्थिरादौ मधुरे च यद्गणे
तथाऽणुतैलं पवनासृगुत्थयोः ॥३३॥

विदारिगन्धादिगण में, काकोल्यादि मधुरगण में, तथा वातव्याधि में; कहा अणुतैल वायुजन्य एवं रक्तजन्य तिमिर में उत्तम है ॥३३॥

सहाश्वगन्धातिबलावरीशृतं
हितं च नस्ये त्रिवृतं यदीरितम्।
जलोदभवानूपजमांससंस्कृता-
दूघृतं विधेयं पयसो यदुत्थितम् ॥३४॥

वातज तिमिर में—मुद्गपर्णी, अश्वगन्धा, अतिबला, शतावरी इनसे सिद्ध किया वातव्याधि में कहा त्रैवृत तैल (घी, वसा, मज्जा से आवृत तैल) नस्य में उत्तम है। मछली आदि जलचर, आनूप-भैंस आदि, इनके मांस से क्षीरपाकविधि से पकाये दूध को मथकर निकाले घृत को मुद्गपर्णी अश्वगन्धा आदि से सिद्ध करके नस्य देवे ॥३४॥

ससैन्धवः क्रव्यभुगेणमांसयो-
र्हितः ससर्पिः समधुः पुटाह्वयः।

सैन्धव, मांस खानेवाले गीध, चील, बाज आदि हरिण इनका मांस, घी, मधु इनको पुटपाक विधि से पाक करके अञ्जन करे।

वसाऽथ गृध्रोरगताम्रचूडजा-
सदा प्रशस्ता मधुकान्विताऽञ्जने ॥३५॥

गीध, सांप, मुर्गा इनकी वसा, मुलैहठी में मिलाकर अञ्जन करने में सदा उत्तम है।

"कृष्णसर्पवसाक्षौद्रं रसो धात्र्या रसक्रिया ।
शस्ता सर्वाक्षिरोगेषु काचार्बुदमलेषु च ॥" च० ॥३५॥

प्रत्यञ्जनं स्रोतसि यत्समुत्थितं
क्रमाद्रसक्षीरघृतेषु भावितम् ।

स्रोतोंजन को क्रम से मांस रस (चतुष्य मृग पक्षी मांस रस—गीध, मोर आदि), दूध, और घी में भावित करके प्रत्यंजन (अंजन के पीछे जो बरतते हैं, तीक्ष्ण अञ्जन के पीछे मृदु अञ्जन या मृदु अञ्जन के पीछे तीक्ष्ण अञ्जन) बरते ।

स्थितं दशाहत्रयमेतनञ्जनं
कृष्णोरगास्ये कुशसंप्रवेष्टिते ॥३६॥
तन्मालतीकोरकसैन्धवायुतं
सदाऽञ्जन स्यात्तिमिरेऽथ रागिणि ।
सुभावितं वा पयसा दिनत्रयं
काचापहं शास्त्रविदः प्रचक्षते ॥३७॥

कुशा से लपेटे हुए काले साँप के मुख में इस अञ्जन को धरकर एक मास रख देवे फिर निकालकर चमेली की कलियों और सैन्धव में मिलाये । इसे रागवाले (रंगवाले) तिमिर में सदा बरते । अथवा दूध से तीन दिन भली प्रकार भावित करके काच को यह नष्ट करता है, ऐसा शास्त्रविद कहते हैं ।

"वदने कृष्णसर्पस्य निहितं मासमञ्जनम् ।
ततस्तस्मादसमुद्धृत्य सुसूक्ष्मं चूर्णयेद् बुधः ॥
सुमनःकोरकैः शुष्कैरर्धांशैः सैन्धवेन च ।
एतन्नेत्रांजनं कार्यं तिमिरघ्नमुत्तमम् ॥ चरक

इसमें चमेली की कलियाँ अञ्जन आधी और सैन्धव की मात्रा दोष के अनुसार बरते ॥३६,३७॥

हविर्हितं क्षीरभवं तु पैत्तिके
वदन्ति नस्ये मधुरौषधैः कृतम् ।
तत्तर्पणे चैव हितं प्रयोजितं
सजाङ्गलस्तेषु च यः पुटाह्वयः ॥३८॥

दूध को मथकर निकाले घृत को काकोल्यादि मधुरगण की औषधियों से संस्कृत करके पैत्तिक तिमिर में नस्य देना चाहिये। इस घृत का अक्षितर्पण में भी प्रयोग करे। मधुर औषधियों में—जांगल मांस रस का बनाया पुटपाक पित्तज तिमिर में स्नेहन के लिये उत्तम है ॥३८॥

रसाञ्जनक्षौद्रसितामनःशिलाः
क्षुद्राञ्जनं तन्मधुकेन संयुतम् ।

रसौंत, मधु, शर्करा, मैनसिल, मुलैहठी इनकी रसक्रिया पित्तज तिमिर में उत्तम है ।

रसाञ्जनं वा कनकाकरोद्भवं
सुचूर्णितं श्रेष्ठमुशन्ति तद्विदः ॥३९॥

कनकाकरोद्भव (तुत्थ) के बराबर सुरमा मिलाकर चूर्ण करे । यह पित्तज तिमिर में श्रेष्ठ अञ्जन है ॥३९॥

भिल्लोटगन्धोदकसेकसेचितं
प्रत्यञ्जने चात्र हितं तु तुत्थकम् ।

भिल्लोट (लोध), एलादिगण, इनके कषाय में सिञ्चित किये तुत्थ का प्रत्यंजन इसमें उत्तम है ।

समेषशृङ्गाञ्जनभागसंमितं
जलोद्भवं काचमलं व्यपोहति ॥४०॥

मेषशृंगी, सौवीरांजन (सुरमा), उन दोनों के समान भाग स्रोतांजन मिलाकर अञ्जन करने से काचमल नष्ट होता है। (जलोद्भवम्-शंख ऐसा कई मानते हैं) । मेषशृङ्गी को डल्हण नेजीयापोता जैसा वृक्ष लिखा है) ॥४०॥

पलाशरोहीतमधूकजा रसाः
क्षौद्रेण युक्ता मदिराग्रमिश्रिताः ।

ढाक, रोहेड़ा, महुआ इनका रस मधु और मदिरा के ऊपरी भाग के साथ मिलाकर अञ्जन करे ।

वक्तव्य—डल्हण ने इनको समान भाग लेकर—रसक्रिया बनाकर मधु मिलाकर बरतने को कहा है ।

उशीरलोध्रत्रिफलाप्रियङ्गुभिः
पचेत्तु नस्यं कफरोगशान्तये ॥४१॥

खस, लोध, त्रिफला, प्रियंगु, इनसे तिल तैल सिद्ध करे। कफ रोग की शान्ति के लिये नस्य देवे ॥४१॥

विडङ्गपाठाकिणिहीङ्गुदीत्वचः
प्रयोजयेद्धूममुशीरसंयुताः ।

विडंग, पाठा, चिरचिटा, हिंगोट की छाल, खस इनसे कफज तिमिर में धूमपान करे ।

वनस्पतिक्वाथविपाचितं घृतं
हितं हरिद्रानलदे च तर्पणम् ॥४२॥

बरगद आदि क्षीर वृक्षों के क्वाथ में हल्दी और बालक का कल्क मिलाकर सिद्ध किया घृत अक्षितर्पण में उत्तम है ॥

समागधो माक्षिकसैन्धवाढ्यः
सजाङ्गलः स्यात् पुटपाक एव च ।

पिप्पली, मधु, प्रचुर मात्रा में सैन्धव, जांगल पशुपक्षियों का मांस इनसे बनाया पुट पाक कफज तिमिर में उत्तम है ।

मनःशिलात्र्यूषणशंखमाक्षिकैः
ससिन्धुकासीसरसाञ्जनैः क्रियाः ॥४३॥

मैनसिल, त्रिकटु, शंख, मधु, सैन्धव, कासीस, रसौंत, इनमें चौगुणा जल मिलाकर रस क्रिया बनाये । इसे कफज तिमिर में बरते ॥४३॥

हिते च कासीसरसाञ्जने तथा
वदन्ति पथ्ये गुडनागरैर्युते ।

कासीस, रसौंत, गुड़ और सोंठ इनकी रस क्रिया अञ्जन के रूप में बरतनी हितकारक है ।

यदञ्जनं वा बहुशो निषेचितं
समूत्रवर्गे त्रिफलोदके सृते ॥४४॥
निशाचरास्थिस्थितमेतदञ्जनं
क्षिपेच्च मासं सलिलेऽस्थिरे पुनः ।
मेषस्य पुष्पैर्मधुकेन संयुतं
तदञ्जनं सर्वकृते प्रयोजयेत् ॥४५॥

स्रोतोंजन को आग में गरम करके बहुत बार (इक्कीस बार) आठों मूत्रों में, त्रिफला क्वाथ में बुझाये। फिर इसको गीध, उल्लू आदि रात्रि में घूमनेवाले पशु पक्षियों की हड्डियों के बने नलकों में रखकर, बहते हुए नदी के जल में एक महीने तक पड़ा रहने देवे। एक मास के पीछे इस अंजन को निकालकर इसमें मेषशृंगी के पुष्प, मुलैहठी मिलाकर इस अञ्जन को त्रिदोषज तिमिर में बरते ! (कोई मीठे सहजन के पुष्प भी मिलाने को कहते हैं) ॥४५॥

क्रियाश्च सर्वा क्षतजोद्भवे हितः
क्रमः परिम्लायिनि चापि पित्तहृत् ।

सन्निपातजतिमिर में वात और पित्त कफजनिततिमिर की सब क्रियायें (तर्पण, पुटपाक आदि) उत्तम हैं। रक्तजतिमिर और परिम्लायितिमिर में—पित्ततिमिर नाशक चिकित्सा बरते।

क्रमो हितः स्यन्दहरः प्रयोजितः
समीक्ष्य दोषेषु यथास्वमेव च ॥४६॥

वातादिजन्यतिमिरों में इनकी अपनी अपनी अभिष्यन्द नाशक चिकित्सा बरतनी चाहिये। अर्थात् वाततिमिर में—वाताभिष्यन्द की, पित्तजतिमिर में पित्ताभिष्यन्द की चिकित्सा करे ॥४६॥

दोषोदये नैव च विप्लुतिं गते
द्रव्याणि नस्यादिषु योजयेद्बुधः ।

तिमिर में वातादि दोष उत्पन्न होते ही या रोग के सम्पूर्ण आँख में फैल जाने पर अभिष्यन्द नाशक चिकित्सा नहीं करनी चाहिये, (नस्य आदि न देवे), अपितु लंघन, विरेचन, निरूह, अनुवासन, शिरोविरेचन आदि तीन दिन बरत कर, पीछे से अभिष्यन्द में कहे नस्य आदि, दोषजन्य तिमिरों में बरते।

पुनश्च कल्पेऽञ्जनविस्तरः शुभः
प्रवक्ष्यतेऽन्यस्तमपीह योजयेत् ॥४७॥

क्रियाकल्प में जो अञ्जन विस्तार से कहे हैं उनको भी यहाँ पर बरते ॥४७॥

घृतं पुराणं त्रिफलां शतावरीं
पटोलमुद्गामलकं यवानपि ।
निषेवमाणस्य नरस्य यत्नतो
भयं सुघोरात्तिमिरान्न विद्यते ॥४८॥

पुरातनघृत, त्रिफला, शतावरी, परवल, मूंग, आंवला, जौ, इन वस्तुओं का अधिकतः सेवन करनेवाले पुरुष को भयानक तिमिर से भी भय नहीं होता ॥४८॥

शतावरीपायस एव केवल-
स्तथा कृतो वाऽऽमलकेषु पायसः ।
प्रभूतसर्पिस्त्रिफलोदकोत्तरो
यवौदनो वा तिमिरं व्यपोहति ॥४९॥

शतावरी मूल के रस से बनाई खीर, आंवले के स्वरस या आंवले से सिद्ध किये दूध में बनाई खीर, या त्रिफला के क्वाथ में सिद्ध किया यवौदन (जौ का भात) प्रचुर घी के साथ खाने से तिमिर नष्ट होता है। (खीर में चावलों के स्थान पर जौ को मिलाकर यवागू बनाये) ॥४९॥

जीवन्तिशाकं सुनिषण्णकं च
सतण्डुलीयं वरवास्तुकं च ।
चिल्ली तथा मूलकपोतिका च
दृष्टेर्हितं शाकुनजाङ्गलं च ॥५०॥
पटोलकर्कोटककारवेल्ल-
वार्ताकुतर्कारिकरीरजानि ।
शाकानि शिग्रुवार्तगलानि चैव
हितानि दृष्टेर्घृतसाधितानि ॥५१॥

जीवन्तीशाक, चौलाई, सुनिषण्णक (चांगेरी तिपतिया), उत्तम बथुवा, चिल्ली, कच्ची मूली, जांगल पक्षियों का मांस तथा हरिण आदि जंगली प्राणियों के मांस दृष्टि के लिये उत्तम हैं। परवल, ककोड़ा, करेला, बैंगन, अरणी, करीर के फल (टेंट) इनके शाक, सुहांजन, झिण्टी इनके शाक घृत में बनाये, ये दृष्टि के प्रसाधक हैं ॥५०,५१॥

विवर्जयेत्सिरामोक्षं तिमिरे रागमागते ।
यन्त्रेणोत्पीडितो दोषो निहन्याद्दाशु दर्शनम् ॥५२॥

तिमिर में राग (रंग) आजाने पर सिरामोक्ष छोड़ देवे। यंत्र से (शस्त्र कर्म से) उत्पीड़ित दोष दृष्टि को शीघ्र नष्ट कर देता है ॥५२॥

अरागि तिमिरं साध्यमाद्यं पटलमाश्रितम् ।
कृच्छ्रं द्वितीये रागि स्यात्तृतीये याप्यमुच्यते ॥५३॥

जो तिमिर रंग रहित, प्रथम पटल में स्थित होता है, वह साध्य है। रंगवाला, दूसरे पटल में स्थित तिमिर कष्टसाध्य है, तीसरे पटल का तिमिर याप्य है।

वि० मन्तव्य—अरागी अर्थात् रंगरहित तिमिर साध्य होता है वह भी जो प्रथम पटलमात्र में स्थिर हो। इस पर अञ्जन आदि औषधों का प्रभाव शीघ्र हो जाता है ॥५३॥

रागप्राप्तेष्वपि हितास्तिमिरेषु तथा क्रियाः ।
यापनार्थं यथोद्दिष्टाः सेव्याश्चापि जलौकसः ॥५४॥

तिमिरों में रंग आ जाने पर भी, इन तिमिरों को याप्य रखने के लिये कहे हुए उपचार करे, और यदि रक्त मोक्षण आवश्यक ही हो तो जोंकों से रक्त निकाले।

वि० मन्तव्य—राग प्राप्त अर्थात् रंग युक्त तिमिरों में भी अञ्जन आदि से लाभ होता है परन्तु उन अञ्जन आदि से यापन ही होता है क्योंकि अञ्जन आदि उपचारों से दोषसञ्चय का क्षय होता रहता है और उक्त उपचार सदा ही होता रहना चाहिये ॥५४॥

श्लैष्मिके लिङ्गनाशे तु कर्म वक्ष्यामि सिद्धये।
न चेदर्धेन्दुघर्माम्बुबिन्दुमुक्ताकृतिः स्थिरः ॥५५॥
विषमो वा तनुर्मध्ये राजिमान् वा वहुप्रभः।
दृष्टिस्थो लक्ष्यते दोषः सरुजो वा सलोहितः ॥५६॥

श्लैष्मिक लिंगनाश की चिकित्सा के लिये विधि को कहता हूँ—इस कर्म के करने से पूर्व की दृष्टि की परीक्षा में लिंगनाश (Lens) को देखे—यदि इसमें—अर्धचन्द्राकार, स्वेदबिन्दु मोती का गोल आकार दिखाई दे, लिंगनाश कठोर हो, या विषम हो, बीच में पतला (किनारों पर मोटा), इसमें रेखायें दीखती हों बहुत चमकता हो, वेदना हो, या रक्त हो, तो इसमें शस्त्र कर्म न करे।

वि० मन्तव्य—श्लैष्मिक लिंगनाश सर्वथा श्वेत होता है, और उसी की शस्त्र चिकित्सा की जाती है, यदि वह चन्द्रमा के सदृश पीत आदि वर्णोंवाला हो अथवा आकृतियोंवाला हो तब शस्त्र चिकित्सा नहीं करनी चाहिये केवल अञ्जन आदि उपचारों से लाभ उठाना चाहिये ॥५५,५६॥

स्निग्धस्विन्नस्य तस्याथ काले नात्युष्णशीतले।
यन्त्रितस्योपविष्टस्य स्वां नासां पश्यतः समम् ॥५७॥
मतिमान् शुक्लभागौ द्वौ कृष्णान्मुक्त्वा ह्यपाङ्गतः।
उन्मील्य नयने सम्यक् सिराजालविवर्जिते ॥५८॥
नाधो नोर्ध्वं न पार्श्वाभ्यां छिद्रे दैवकृते ततः।
शलाकया प्रयत्नेन विश्वस्तं यववक्रिया ॥५९॥
मध्यप्रदेशिन्यङ्गुष्ठस्थिरहस्तगृहीतया।
दक्षिणेन भिषक् सव्यं विध्येत् सव्येन चेतरत् ॥६०॥
वारिबिन्द्वागमः सम्यग् भवेच्छब्दस्तथा व्यधे।

रोगी को स्नेहन स्वेदन देकर, साधारण (न बहुत गरम, न बहुत ठण्डे—मार्गशीर्ष या चैत्र में) काल में रोगी को बांधकर बिठा दे। रोगी से कहे कि वह अपनी नाक की ओर देखे। फिर बुद्धिमान वैद्य अपांग प्रदेश की ओर, दो शुक्ल भागों को कृष्णभाग (तारक) से बचाकर, सिरा जाल से अलग स्थान पर, आँखों को भली प्रकार खोलकर वेधन करे। न तो ऊपर, न नीचे, न पार्श्वों में वेधन करे। वेधन के लिये—जौ के समान टेढ़ी शलाका को मध्यमांगुली, प्रदेशिनी और अंगूठे के सहारे स्थिरता से पकड़कर, रोगी को बिना डराये—(विश्वास के साथ) प्रयत्न पूर्वक वेधन करे। वाम आँख को दक्षिण हाथ की शलाका से, दक्षिण आँख को वाम हाथ की शलाका से वेधन करे। भली प्रकार वेधन होने पर, पानी की बूंद आती है और शब्द होता है। (असम्यग् वेधन पर-रक्त आता है और शब्द नहीं होता)।

वक्तव्य—नाक की ओर देखने से तारका बीच में स्थिर हो जाती हैं। वाग्भट्ट में—कृष्णमण्डल से आधा अङ्गुल और अपांग से ¼ अंगुल बचाकर वेधन करने को कहा है, यथा—

"कृष्णादर्धांगुले मुक्त्वा, तदर्धार्धमपांगतः ॥"

(२) "विध्येत् सुविद्धे शब्दः स्यात् अरुक् चाम्बुलवस्रुतिः ॥"

वाग्भट्ट

वि० मन्तव्य—यह चिकित्सा विधि उस दशा की है जिस दशा में दृष्टि विवर में दोषसञ्चय तरल रहता है, इस तरल दोष को निकालने पर पुनः दोष सञ्चय होने लगता है, क्योंकि उक्त चिकित्सा करते समय स्रोत तो चालू ही रहते हैं, जिनके द्वारा दृष्टिविवर में दोषसञ्चय होता है। आज कल के नेत्र चिकित्सक इस दशा में मोतिया की चिकित्सा नहीं करते सम्भवतः इसीलिये कि कुछ दिनों में पुनः दोष सञ्चय हो ही जायगा, व्यर्थ चिकित्सा क्यों की जाय। और सम्भवतः श्री धन्वन्तरि तथा श्री विदेह को भी इस दशा में चिकित्सा करना अधिक अभीष्ट नहीं था क्योंकि अग्रिम श्लो० ८० के द्वारा आप कहते हैं कि—जो दोष सञ्जातबल हो गया हो अर्थात् जिससे पूर्णरूप से दिखना बन्द हो गया हो, घन-ठोस हो गया हो और सम्पूर्ण मण्डल अर्थात् दृष्टिविवर में पूर्ण रूप से भर गया हो वह शलाका-प्रयोग से तत्काल निकल जाता है। यही कारण है कि आज कल नेत्र चिकित्सक इसी दशा की प्रतीक्षा करते हैं, जब मोतिया पक जाता है, तब शस्त्र प्रयोग करते हैं। जब तक दोष तरल रहता है, तब तक उसे कच्चा मोतिया कहते हैं। मोतिया निकालने के पश्चात् आज कल के नेत्र चिकित्सक केवल उप नेत्र (चश्मा) की व्यवस्था करते हैं, परन्तु भगवान् धन्वन्तरि ने आहार, विहार एवं दृष्टि प्रसादन-दृष्टि को स्वच्छ रखने एवं करनेवाले अञ्जनों की व्यवस्था की है। हाँ श्लो० ८१ में अतितरुण-कच्चे मोतिया का वेधन करने का निषेध भी किया है। दृष्टिविवर में से जब लिंग नाश (मोतिया) निकल जाता है, तब दिखने लगता है, क्योंकि इस रोग में दृष्टि का नाश नहीं होता अपितु उसके आगे मोतिया आ जाता है। यह रोग धीरे २ संचित होते २

लगभग ६०-६५ वर्ष की वयस में व्यक्त होता है। यदि इस वयस् में अभिष्यन्द हो जाय तो लिङ्गनाश नहीं होता, क्योंकि— अभिष्यन्द रोग में दोष का अभिष्यन्दन(स्रवन-स्राव) हो जाता है, और तीक्ष्ण अञ्जन करते रहने पर भी—दोष का स्राव होता रहता है, अतः लिङ्ग नाश नहीं होता ॥५७-६०॥

संसिच्य विद्धमात्रं तु योषित्स्तन्येन कोविदः ॥६१॥
स्थिरे दोषे चले वाऽपि स्वेदयेदक्षि बाह्यतः।
सम्यक् शलाकां संस्थाप्य भङ्गैरनिलनाशनैः ॥६२॥
शलाकाग्रेण तु ततो निर्लिखेद्दृष्टिमण्डलम्।
विध्यतो योऽन्यपार्श्वेऽक्ष्णस्तं रुद्ध्वा नासिकापुटम् ॥
उच्छिङ्घनेन हर्तव्यो दृष्टिमण्डलगः कफः।

वेधन के पीछे, बुद्धिमान् वैद्य तुरन्त धावन से सेचन करे। दोष के अस्थिर या स्थिर होने पर भी बाहर से आँखों पर स्वेद देवे। इसके लिये शलाका से पलकों को स्थिर करके; वातनाशक ऐरण्ड आदि पत्तों से स्वेद देवे। फिर शलाका के अग्रभाग से दृष्टिमण्डल में लेखन करे, जिससे कफ का जमाव टूट जाये। वेधन करते समय आँख के दूसरे पार्श्व के नासापुट को बन्द करके, दृष्टिमण्डल में स्थित कफ को उच्छिंघन से (नाक से छींककर या जोर से वायु के साथ निकालकर) बाहर करे ॥६१-६३॥

निरभ्र इव घर्मांशुर्यदा दृष्टिः प्रकाशते ॥६४॥
तदाऽसौ लिखिता सम्यग् ज्ञेया या चापि निर्व्यथा।
(एवं त्वशक्ये निर्हर्तुं दोषे प्रत्यागतेऽपि वा ॥६५॥
स्नेहाद्यैरुपपन्नस्य व्यधो भूयो विधीयते।)
ततो दृष्टेषु रूपेषु शलाकामाहरेच्छनैः ॥६६॥
घृतेनाभ्यज्य नयनं वस्त्रपट्टेन वेष्टयेत्।
ततो गृहे निराबाधे शयीतोत्तान एव च ॥६७॥
उद्गारकासक्षवथुष्ठीवनोत्कम्पनानि च।
तत्कालं नाचरेदूर्ध्वं यन्त्रणा स्नेहपीतवत् ॥६८॥

बादल रहित आकाश में जैसा सूर्य चमकता है, ऐसे दृष्टि जब चमकने लगे, तब भली प्रकार लेखन हुआ जाने, इसमें किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होनी चाहिये। यदि इस प्रकार से लिंगनाश न निकाला जा सके, अथवा दोष के फिर वापिस आ जाने पर, स्नेहन आदि फिर से करके, पुनः वेधन करे।) जब रूप दीखने लगे तो लगाई हुई शलाका को (पलकें न चलायें—इसलिये जो शलाका पहले—६२ वें श्लोक में लगाई है) धीरे से निकाल ले। फिर घी से आँख पर अभ्यंग करके पट्टी बाँध दे। धूम-धूल आदि (खासकर प्रकाश) से रहित घर में उत्तान-पीठ के भार लेटा रहे। उद्गार खाँसना छींक आना, थूकना, काँपना (उठना-बैठना), उस समय न करे, इसके आगे आचारिक नियम स्नेह पीये हुए की भाँति हैं॥

त्र्यहात् त्र्यहाच्च धावेत कषायैरनिलापहैः।
वायोर्भयात् त्र्यहादूर्ध्वं स्वेदयेदक्षि पूर्ववत् ॥६९॥

वायुनाशक (एरण्ड मूलादि वातहर चतुष्य द्रव्यों के) क्वाथ से प्रति तीसरे दिन आँखों को धोये। वायु का प्रकोप न हो, इसलिये तीन दिन के पीछे आँखों पर पहले की भाँति कोमल सेक वातनाशक द्रव्यों से करे ॥६९॥

दशाहमेवं संयम्य हितं दृष्टिप्रसादनम्।
पश्चात्कर्म च सेवेत लघ्वन्नं चापि मात्रया ॥७०॥

इस प्रकार दस दिन तक, उत्तान लेटा रहकर पीछे से नस्य, तर्पण आदि दृष्टि को निर्मल करनेवाले कर्म करे। लघु अन्न को मात्रा में (अग्नि बल के अनुसार) खाये ॥७०॥

सिराव्यधविधौ पूर्वं नरा ये च विवर्जिताः।
न तेषां नीलिकां विध्येदन्यत्राभिहिताद्भिषक् ॥७१॥

सिरावेध विधि में बालक, वृद्ध, आदि जो अवेध्य कहे हैं, उनमें नीलिका (लिंगनाश) का वेधन करे और दैव कृत छेद से अन्यत्र कभी भी वैद्य वेध न करे ॥७१॥

पूर्यते शोणितेनाक्षि सिरावेधाद्विसर्पता।
तत्र स्त्रीस्तन्ययष्ट्याह्वपक्वं सेके हितं घृतम् ॥७२॥

दैव कृत छेद से अन्यत्र सिर का वेधन होने पर फैलते हुए रक्त से आंख भर जाती है। इस अवस्था में धावन और मुलैहठी से पकाया घृत परिषेक में उत्तम है ॥७२॥

अपाङ्गासन्नविद्धे तु शोफशूलाश्रुरक्तताः।
तत्रोपनाहं भ्रूमध्ये कुर्याच्चोष्णाज्यसेचनम् ॥७३॥
व्यधेनासन्नकृष्णेन रागः कृष्णं च पीड्यते।
तत्राधःशोधनं सेकः सर्पिषा रक्तमोक्षणम् ॥७४॥
अथाप्युपरि विद्धे तु कष्टा रुक् संप्रवर्तते।
तत्र कोष्णेन हविषा परिषेकः प्रशस्यते ॥७५॥
शूलाश्रुरागास्त्वत्यर्थमधोवेधेन पिच्छिलः।
शलाकामनु चास्रावस्तत्र पूर्वचिकित्सितम् ॥७६॥
रागाश्रुवेदनास्तम्भहर्षाश्चातिविघट्टिते।
स्नेहस्वेदौ हितौ तत्र हितं चाप्यनुवासनम् ॥७७॥
दोषस्त्वधोऽपकृष्टोऽपि तरुणः पुनरूर्ध्वगः।
कुर्याच्छुक्लारुणं नेत्रं तीव्ररुङ्नष्टदर्शनम् ॥७८॥
मधुरैस्तत्र सिद्धेन घृतेनाक्ष्णः प्रसेचनम्।
शिरोवस्तिं च तेनैव दद्यान्मांसैश्च भोजनम् ॥७९॥

अपांग के पास में वेधन होने पर सूजन, शूल, रक्त का आना होता है, इसमें भुवों के मध्य में उपनाह करे और गरम घी से सेचन करे कृष्णभाग के पास वेधन होने से सुर्खी होती है, कालाभाग दुखता है इस में विरेचन, घी से सेक और रक्त मोक्षण करे। ऊपर में वेधन होने पर तीव्र वेदना होती है, इसमें सुहाते गरम घी से परिषेक उत्तम है। नीचे में वेधन होने से वेदना, आँसू आना, सुर्खी, शलाका के पीछे तुरन्त स्राव अतिपिच्छिल, (गीध चिकास आना) होता है, इसमें धावन

और मुलैहठी से पकाये घी से परिषेक करे। अतिशय आघात होने से सुर्खी, आँसू आना, वेदना, स्तम्भ, हर्ष होता है इसमें स्नेहन और स्वेद एवं अनुवासन उत्तम है। तरुण (अपक्व) दोष नीचे खींच देने पर भी फिर ऊपर जाकर नेत्र को श्वेत या लाल कर देता है, इसमें तीव्र वेदना और दृष्टि नष्ट हो जाती है। इसमें काकोल्यादि मधुर द्रव्यों से सिद्ध घृत से आँखों पर सेक करे। इसी घृत से शिरोवस्ति देवे। मांसों से (जांगल मांस) भोजन कराये। (मधुरैः यष्टीमधुकादिभिः, डल्हण) ॥

दोषस्तु संजातबलो घनः संपूर्णमण्डलः ।
प्राप्य नश्येच्छलाकाग्रं तन्वभ्रमिव मारुतम् ॥८०॥

जिस प्रकार वायु पतले बादल को तुरन्त नष्ट कर देती है, इसी प्रकार पूर्ण पका हुआ, घन (स्थूल) एवं सम्पूर्ण रूप में गोला हुआ (पूरा बना) दोष (लिंगनाश) शलाका के अग्रभाग के छूने मात्र से ही नष्ट हो जाता है। (गिर पड़ता है) सरलता से निकल जाता है ॥८०॥

मूर्धाभिघातव्यायामव्यवायवमिमूर्च्छनैः ।
दोषः प्रत्येति कोपाच्च विद्धोऽतितरुणश्च यः ॥८१॥

जो लिंगनाश अपूर्ण कच्चा होता है, उसका यदि वेधन कर दिया जाये तो शिर पर चोट लगने से, व्यायाम से, मैथुन से वमन से, मूर्च्छा से, क्रोध से, फिर वापिस लौट आता है, (फिर पैदा हो जाता है) ॥८१॥

शलाका कर्कशा शूलं, खरा दोषपरिप्लुतिम् ।
व्रणं विशालं स्थूलाग्रा तीक्ष्णा हिंस्यादनेकधा ॥८२॥
जलास्रावं तु विषमा, क्रियासङ्गमथास्थिरा ।
करोति वर्जिता दोषैस्तस्मादेभिर्हिता भवेत् ॥८३॥

शलाका दोष—कर्कश (खुरदरी) शलाका शूल करती है, खर शलाका दोष को चारों ओर बढ़ाती है, आगे से मोटी शलाका चौड़ा व्रण करती है, तीक्ष्ण शलाका बहुत प्रकार के क्षत करती है। विषम शलाका, जल को बहाती है, अस्थिर (काँपती हुई) शलाका, दृष्टि का उपरोध करती है ॥८२,८३॥

अष्टाङ्गुलायता मध्ये सूत्रेण परिवेष्टिता ।
अङ्गुष्ठपर्वसमिता वक्त्रयोर्मुकुलाकृतिः ॥८४॥
ताम्रायसो शातकुम्भी शलाका स्यादनिन्दिता ।

इसलिये इन दोषों से रहित शलाका उत्तम होनी चाहिये। शलाका की लम्बाई आठ अंगुल, बीच में धागों से लिपटी, अंगूठे के पर्व के बराबर मोटाई की, मुखों पर से मुकुल (कली-डोडी) के आकार की, ताम्र, लोह या स्वर्ण की शलाका प्रशस्त है ॥८३,८४॥

रागः शोफोऽर्बुदं चोषो बुद्बुदं शूकराक्षिता ॥८५॥
अधिमन्थादयश्चान्ये रोगाः स्युर्व्यधदोषजाः ।
अहिताचारतो वाऽपि यथास्वं तानुपाचरेत् ॥८६॥

व्यधन के दोष से सुर्खी, सूजन, अर्बुद, चोष, बुलबुले के समान मांसवृद्धि, नीचे को देखना (अधो दृष्टि), अधिमन्थ आदि रोग हो जाते हैं। अथवा अहित आचरण से ये रोग हो जाते हैं। इनकी दोषों के अपने अनुसार चिकित्सा करे ॥

रुजायामक्षिरागे वा योगान् भूयो निबोध मे ।
गैरिकं सारिवा दूर्वा यवपिष्टं घृतं पयः ॥८७॥
सुखालेपः प्रयोज्योऽयं वेदनारागशान्तये ।
मृदुभृष्टैस्तिलैर्वाऽपि सिद्धार्थकसमायुतैः ॥८८॥
मातुलुङ्गरसोपेतैः सुखालेपस्तदर्थकृत् ।
पयस्यासारिवापत्रमञ्जिष्ठामधुकैरपि ॥८९॥
अजाक्षीरान्वितैर्लेपः सुखोष्णः पथ्य उच्यते ।
दारुपद्मकशुण्ठीभिरेवमेव कृतोऽपि वा ॥९०॥
द्राक्षामधुककुष्ठैर्वा तद्वत् सैन्धवसंयुतैः ।
रोध्रसैन्धवमृद्वीकामधुकैर्वाऽप्यजापयः ॥९१॥
शृतं सेके प्रयोक्तव्यं रुजारागनिवारणम् ।
मधुकोत्पलकुष्ठैर्वा द्राक्षालाक्षासितायुतः ॥
ससैन्धवैः शृतं क्षीरं रुजारागनिबर्हणम् ॥९२॥
शतावरीपृथक्पर्णीमुस्तामलकपद्मकैः ।
साजक्षीरैः शृतं सर्पिर्दाहशूलनिबर्हणम् ॥९३॥
वातघ्नसिद्धे पयसि सिद्धं सर्पिश्चतुर्गुणे ।
काकोल्यादिप्रतीवापं तद्युञ्ज्यात् सर्वकर्मसु ॥९४॥

वेदना में या आँख की सुर्खी में दूसरे योगों को मुझसे सुनो। वेदना और सुर्खी की शान्ति के लिये गेरू, सारिवा, दूध, जौ का कल्क, घी, दूध इनका सुहाता गरम लेप आँख के आस पास या आँख पर करे। इसी प्रकार तिलों को थोड़ा सा धीमी आँच पर भूनकर, सरसों को मिलाकर बिजौरे के रस के साथ लेप करे यह भी वही लाभ करता है। विदारी, सारिवा, तेजपत्र, मजीठ, मुलैहठी इनको बकरी के दूध में पीसकर सुहाता गरम लेप उत्तम है। तीन योग, (१) दारुहल्दी, पद्माख, सोंठ, इनको बकरी के दूध में पीसकर लेप करे। (२) लोध, सैन्धव, द्राक्षा, मुलैहठी—बकरी का दूध, (३) द्राक्षा, मुलैहठी, कूठ, सैन्धव, इनको बकरी के दूध के साथ पीसकर परिषेक करे, यह वेदना, सुर्खी को नष्ट करता है। मुलैहठी, कमल, कूठ, द्राक्षा, लाख, शर्करा, सैन्धव, इनसे सिद्ध बकरी का दूध वेदना और सुर्खी को नष्ट करता है। शतावरी, पृश्निपर्णी, मुस्ता, आँवला, पद्माख, बकरी का दूध, इनसे सिद्ध किया घृत दाह, शूल को नष्ट करता है। भद्र-दार्व्यादि वातघ्न द्रव्यों से सिद्ध घी से चार गुने दूध में काकोल्यादिगण का प्रक्षेप देकर सिद्ध किया घृत, नस्य, आलेप आदि सब कार्यों में बरते ॥८७-९४॥

शाम्यत्येवं न चेच्छूलं स्निग्धस्विन्नस्य मोक्षयेत् ।
ततः सिरां दहेद्वाऽपि मतिमान् कीर्तितं यथा ॥९५॥

यदि इस प्रकार से भी शूल शान्त न हो तो स्नेहन

स्वेदन देकर सिरामोक्षण करे अथवा कहे अनुसार (भ्रू शंख-ललाट प्रदेश में) दाह कर्म करे ॥९५॥

दृष्टेरतः प्रसादार्थमञ्जने शृणु मे शुभे।
मेषशृङ्गस्य पुष्पाणि शिरीषधवयोरपि ॥९६॥
सुमनायाश्च पुष्पाणि मुक्ता वैदूर्यमेव च।
अजाक्षीरेण संपिष्य ताम्रे सप्ताहमावपेत् ॥९७॥
प्रविधाय च तद्वर्तीर्योजयेच्चाञ्जने भिषक्।
स्रोतोजं विद्रुमं फेनं सागरस्य मनःशिलाम् ॥९८॥
मरिचानि च तद्वर्तीः कारयेच्चापि पूर्ववत्।
दृष्टिस्थैर्यार्थमेतत्तु विदध्यादञ्जने हितम् ॥९९॥

इसके आगे दृष्टि की निर्मलता के लिये शुभ दो अंजनों को मुझ से सुनो। १ अंजन-मेषशृंगी, शिरीष, धव इनके फूल, चमेली के फूल, मोती, वैडूर्य (बिल्लौर), इनको बकरी के दूध के साथ पीसकर, सात दिन तक ताम्र पात्र में रक्खे। फिर वर्त्ती बनाकर इस वर्त्ति से अञ्जन करे। २—स्रोतांजन, मूंगा, समुद्र फेन, मैनसिल, मरिच इनको बकरी के दूध से पीसकर सातदिन तक ताम्र पात्र में रक्खे। दृष्टि की स्थिरता के लिये इनका अञ्जन करना उत्तम है ॥९६-९९॥

भूयो वक्ष्यामि मुख्यानि विस्तरेणाञ्जनानि च।
कल्पे नानाप्रकराणि तान्यपीह प्रयोजयेत् ॥१००॥

मुख्य अञ्जनों को पुनः विस्तार से क्रिया कल्प अध्याय में कहूँगा; उनको भी यहाँ बरते ॥१००॥

इति श्री सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे दृष्टिगतरोगविज्ञानीयो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अष्टादशोऽध्यायः

अथातो क्रियाकल्पं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे क्रिया कल्प का व्याख्यान करेंगे-जैसा भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था।

वि० मन्तव्य—इस अध्याय में नेत्र के लिये तथा नेत्र रोगों के लिये उपयोगी औषधों के प्रयोगार्थ तर्पण आदि की कल्पना (विधि) कही गई है ॥१,२॥

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञस्तपोदृष्टिरुदारधीः।
वैश्वामित्रं शशासाथ शिष्यं काशिपतिर्मुनिः ॥३॥

सब शास्त्रों के अर्थ के तत्त्व को जाननेवाले तपोदृष्टि, उदारबुद्धि, काशिपति मुनि धन्वन्तरि ने विश्वामित्र के पुत्र एवं शिष्यरूप से आये सुश्रुत को कहा ॥३॥

तर्पणं पुटपाकश्च सेक आश्च्योतनाञ्जने।
तत्र तत्रोपदिष्टानि तेषां व्यासं निबोध मे ॥४॥

स्थान स्थान पर तर्पण, पुटपाक, सेक, आश्च्योतन, अंजन आदि जो कहे हैं, उनको विस्तार में मुझ से सुनो।

वि० मन्तव्य—यहाँ पर तर्पण आदि ५ ही कल्प (कल्पना) बतलाए गये हैं, परन्तु श्री शार्ङ्गधराचार्य ने इनके अतिरिक्त २ कल्प अन्य भी बतलाए हैं, यथा—१—पिण्डी जिसे पोटली कहते हैं, अथवा जो कल्क नेत्र पर बाँधा जाता है और २—विडाल जो नेत्र के वर्त्म पर लेप किया जाता है ॥४॥

संशुद्धदेहशिरसो जीर्णान्नस्य शुभे दिने।
पूर्वाह्णे वाऽपराह्णे वा कार्यमक्ष्णोस्तु तर्पणम् ॥५॥
वातातपरजोहीने वेश्मन्युत्तानशायिनः।
आधारौ माषचूर्णेन क्लिन्नेन परिमण्डलौ ॥६॥
समौ दृढावसंबाधौ कर्तव्यौ नेत्रकोशयोः।
पूरयेद्घृतमण्डस्य विलीनस्य सुखोदके ॥७॥
आपक्ष्माग्रात्ततः स्थाप्यं पञ्च तद्वाक्शतानि तु।
स्वस्थे, कफे षट्, पित्तेऽष्टौ दश वाते तदुत्तमम् ॥८॥
रोगस्थानविशेषेण केचित् कालं प्रचक्षते।
यथाक्रमोपदिष्टेषु त्रीण्येकं पञ्च सप्त च ॥९॥
दश दृष्ट्यामथाष्टौ च वाक्शतानि विभावयेत्।
ततश्चापाङ्गतः स्नेहं स्रावयित्वाऽक्षि शोधयेत् ॥१०॥
स्विन्नेन यवपिष्टेन, स्नेहवीर्येरितं ततः।
यथास्वं धूमपानेन कफमस्य विशोधयेत् ॥११॥

शरीर और शिर का (सिरामोक्षण, विरेचन, निरूह, शिरोविरेचन से) भली प्रकार शोधन हो जाने पर, अन्न के जीर्ण हो जानेपर, शुभ दिन में—पूर्वाह्ण में या अपराह्ण में आँखों पर तर्पण करना चाहिये। इसके लिये वायु, धूप, धूल से रहित घर में रोगी को पीठ के भार चित्त लेटाकर, दोनों नेत्र कोशों पर, उड़द के गीले आटे से गोल, समान, मजबूत, खुली (तंग नहीं विस्तृत) पाली बनाये। इस में गरम पानी से पिघलाया घृतमण्ड (घृत के ऊपर की परत) भर देवे। इस घृत मण्ड को बालों के अग्रभाग तक भरकर, स्वस्थ अवस्था में पाँच सौ तक गिनने के समय पर्यन्त रक्खे। कफ में छः सौ, पित्त में आठ सौ, वायु में एक हजार तक गिनने तक रक्खे, यह उत्तम प्रमाण है। रोग स्थान के भेद से कोई आचार्य काल का नियम करते हैं, यथा—सन्धिरोग में तीन सौ, वर्त्मरोगों में एक सौ, शुक्लरोगों में पाँच सौ, कृष्णरोगों में सात सौ, सम्पूर्ण नेत्र के रोगों में एक हजार, दृष्टि के रोगों में एक हजार या आठ सौ वाक् शत तक घृत रक्खे। फिर अपांग की ओर से स्नेहन को निकालकर आँख का शोधन करे। इसके लिये जौ के कल्क को स्वेदन देकर (गरम करके) उससे शोधन करे। स्नेह की शक्ति से प्रेरित कफ को कफ के विरोधि शिरोविरेचन धूमपान से शोधन करे ॥५-११॥

एकाहं वा त्र्यहं वाऽपि पञ्चाहं चेष्यते परम्।

यह तर्पण एक दिन (वायु में या न्यून दोष में), तीन दिन (पित्तदोष में या मध्य दोष में) पाँच दिन (कफ दोष में—या अधिक दोष में) करना चाहिये।

वक्तव्य—स्वस्थवृत्ते विधातव्यं द्व्यन्तरं तर्पणं भवेत्।

अहन्यहनिवातोत्थे, रक्तपित्ते दिनान्तरम्।

तर्पणं सन्निपातोत्थे द्व्यन्तरे, त्र्यन्तरं कफे॥

तर्पणे तृप्तिलिङ्गानि नेत्रस्येमानि लक्षयेत्॥१२॥
सुखस्वप्नावबोधत्वं वैशद्यं वर्णपाटवम्।
निर्वृतिर्व्याधिविध्वंसः क्रियालाघवमेव च॥१३॥

तर्पण में तृप्ति के लक्षण (भली प्रकार तर्पण होने पर आँख में निम्न होते हैं—सुख से नींद आना और जागरण होना, विशदता (निर्मलता) श्वेत आदि वर्ण का स्पष्टीकरण, तात्कालिक सुख, रोग का नाश, निमेष-उन्मेष आदि क्रिया में शीघ्रता (या नेत्र में हल्कापन) होती है॥१२,१३॥

गुर्वाविलमतिस्निग्धमश्रुकण्डूपदेहवत्।
ज्ञेयं दोषसमुत्क्लिष्टं नेत्रमत्यर्थतर्पितम्॥१४॥

अतितर्पण से आँख भारी, गदली, अतिस्निग्ध, अश्रु एवं कण्डू से युक्त, दोष से व्याप्त होती है॥१४॥

रूक्षमाविलमस्राढ्यमसहं रूपदर्शने।
व्याधिवृद्धिश्च तज्ज्ञेयं हीनतर्पितमक्षि च॥१५॥

हीन तर्पण से आँख रूक्ष, गदली, प्रचुर आंसूवाली, प्रकाश को सहने में असमर्थ, तथा रोग वृद्धि होती है॥१५॥

अनयोर्दोषबाहुल्यात् प्रयतेत चिकित्सिते।
धूमनस्याञ्जनैः सेके रूक्षैः स्निग्धैश्च योगवित्॥१६॥

अतितर्पण और हीनतर्पण में दोष की अधिकता के अनुसार योगवित् वैद्य, धूम, नस्य, अञ्जन, स्निग्ध, रूक्ष एवं स्निग्धसेक बरते (वाताभिभूयिष्ट नेत्र में स्निग्ध, पित्त-कफ में रूक्ष क्रिया-स्वेद करे)॥१६॥

ताम्यत्यतिविशुष्कं यद्रूक्षं यच्चातिदारुणम्।
शीर्णपक्ष्माविलं जिह्मं रागक्लिष्टं च यद्भृशम्॥१७॥
तदक्षि तर्पणादेव लभेतोर्जामसंशयम्।

जो आँख प्रकाश में मिचती है, अतिशुष्क रहती है, रूक्ष, अतिकठिनपलकों की, बाल जिसमें टूटते या गिरते हैं, गदली कुटिल (Squint), जो रोग से अतिशय पीड़ित होती है, उस आँख को तर्पण द्वारा ही अवश्य बल मिलता है॥१७॥

दुर्दिनात्युष्णशीतेषु चिन्तायासभ्रमेषु च॥१८॥
अशान्तोपद्रवं चाक्ष्णि तर्पणं न प्रशस्यते।

बादल आने पर, अतिउष्ण या अतिशीतल दिनों में, चिन्ता में, थकान में, चक्कर आने पर, उपद्रवों के (वेदना सुर्खी आदि) शान्त हुए बिना आँखों में तर्पण करना उत्तम नहीं॥१८॥

पुटपाकस्तथैतेषु नस्यं येषु च गर्हितम्॥१९॥
तर्पणार्हा न ये प्रोक्ताः स्नेहपानाक्षमाश्च ये।

इन उपर्युक्त अवस्थाओं में पुटपाक बरते। जिन लोगों के लिये नस्य निन्दित है, जो तर्पण के अयोग्य हैं, एवं स्नेहपान के अयोग्य जो कहे हैं, ये सब पुटपाक के भी अयोग्य हैं॥१९॥

ततः प्रशान्तदोषेषु पुटपाकक्षमेषु च॥२०॥
पुटपाकः प्रयोक्तव्यो नेत्रेषु भिषजा भवेत्।
स्नेहनो लेखनीयश्च रोपणीयश्च स त्रिधा॥२१॥

दोषों के शान्त हो जाने पर, पुटपाक को सहन करने की शक्ति आ जाने पर, वैद्य को नेत्रों में पुटपाक बरतना चाहिये। यह पुटपाक तीन प्रकार का है-स्नेहन, लेखनीय और रोपण॥

हितः स्निग्धोऽतिरूक्षस्य स्निग्धस्यापि च लेखनः।
दृष्टेर्बलार्थमपरः पित्तासृग्व्रणवातनुत्॥२२॥

अतिरूक्ष में स्निग्ध, स्निग्ध आँख में लेखन दृष्टिबल के लिये एवं पित्तरक्तजव्रण के नाश के लिये रोपण पुटपाक उत्तम है॥२२॥

स्नेहमांसवसामज्जमेदः स्वाद्वौषधैः कृतः।
स्नेहनः पुटपाकस्तु धार्यो द्वे वाक्शते तु सः॥२३॥

स्नेह तथा मांस (अनूप देश के प्राणियों का मांस), वसा, मज्जा, मेद और मधुर औषधियों से बनाया स्नेहन पुटपाक दो सौ गिनने तक धारण करना चाहिये॥२३॥

जाङ्गलानां यकृन्मांसैर्लेखनद्रव्यसंभृतैः।
कृष्णलोहरजस्ताम्रशङ्खविद्रुमसिन्धुजैः॥२४॥
समुद्रफेनकासीसस्रोतोजदधिमस्तुभिः।
लेखनो वाक्शतं तस्य परं धारणमुच्यते॥२५॥

जांगल पशुओं के यकृत्, मांस के साथ लेखनद्रव्यों को मिलाकर लेखन पुटपाक बनाये-इसको अधिक से अधिक एक सौ गिनने तक धारण करे। लेखन द्रव्य-कृष्णलोहभस्म, ताम्रभस्म, शंख, प्रवाल, सैन्धव, समुद्रफेन, कासीस, स्रोतोंजन, दधि मस्तु ये हैं॥२४,२५॥

स्तन्यजाङ्गलमध्वाज्यतिक्तद्रव्यविपाचितः।
लेखनात्त्रिगुणं धार्यः पुटपाकस्तु रोपणः॥२६॥

दूध (धावन), जांगलमांस, मधु-घी, तिक्तद्रव्यों से बनाया रोपण पुटपाक तीन सौ गिनने तक धारण करना चाहिये॥२६॥

वितरेत्तर्पणोक्तं तु धूमं हित्वा तु रोपणम्।
स्नेहस्वेदौ द्वयोः कार्यौ, कार्यौ नैव च रोपणे॥२७॥

रोपण को छोड़कर शेष दोनों में तर्पणोक्त धूम देवे। इन दोनों में स्नेहन और स्वेदन दोनों करने चाहिये, रोपण में स्नेहन, स्वेदन न करे॥२७॥

एकाहं वा द्व्यहं वाऽपि त्र्यहं वाऽप्यवचारणम्।

कफ में एक दिन, पित्त में दो दिन, वायु में तीन दिन, अथवा-लेखनीय पुटपाक एक दिन बरते-स्नेहन पुटपाक दो दिन, रोपणीय पुटपाक तीन दिन बरते।

यन्त्रणा तु क्रियाकालाद्द्विगुणं कालमिष्यते॥२८॥

जितने समय से चिकित्सा बरती हो, उससे दुगने समय तक परहेज पाले। (चिकित्सा काल स्नेहपान से गिने)॥२८॥

तेजांस्यनिलमाकाशमादर्शं भास्वराणि च
नेक्षेत तर्पिते नेत्रे पुटपाककृते तथा ॥२९॥

तर्पण किये या पुटपाक लिया व्यक्ति दीपज्वाला आदि तेजस् रूप, वायु, आकाश, दर्पण, सूर्य आदि भास्वर रूप को न देखे ॥२९॥

मिथ्योपचारादनयोर्यो व्याधिरुपजायते ।
अञ्जनाश्च्योतनस्वेदैर्यथास्वं तमुपाचरेत् ॥३०॥

तर्पण और पुटपाक के मिथ्या आचरण से जो रोग उत्पन्न हो जाता है, उसकी चिकित्सा अञ्जन, आश्च्योतन, स्वेदन से दोषों के अपने अपने अनुसार करे ॥३०॥

प्रसन्नवर्णं विशदं वातातपसहं लघु ।
सुखस्वप्नावबोध्यक्षि पुटपाकगुणान्वितम् ॥३१॥

पुटपाक के सम्यग् विशद योग से—आँख का वर्ण निर्मल, (साफ), वायु और धूप को सहनेवाली, लघु, सुखपूर्वक सोना, और जागना इन गुणोंवाली हो जाती है ॥३१॥

अतियोगाद्रुजः शोफः पिडकास्तिमिरोद्गमः ।

पुटपाक के अतियोग से वेदना, सूजन, पिड़का की उत्पत्ति, तिमिररोग हो जाता है ।

पाकोऽश्रु हर्षणं चापि हीने दोषोद्गमस्तथा ॥३२॥

हीन पुटपाक में—पाक, आंसू आना, हर्ष (वेदना विशेष अन्दर शीत), दोष वृद्धि होती है ॥३२॥

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि पुटपाकप्रसाधनम् ।
द्वौ बिल्वमात्रौ श्लक्ष्णस्य पिण्डौ मांसस्य पेषितौ ।३३।
द्रव्याणां बिल्वमात्रं तु द्रवाणां कुडवो मतः ।
तदैकध्यं समालोड्य पत्रैः सुपरिवेष्टितम् ॥३४॥
(काश्मरीकुमुदैरण्डपद्मिनीकदलीभवैः ।)
मृदावलिप्तमङ्गारैः खादिरैरवकूलयेत् ॥३५॥
कतकाश्मन्तकैरण्डपाटलावृषबादरैः ।
सक्षीरद्रुमकाष्ठैर्वा गोमयैर्वाऽपि युक्तितः ॥३६॥
स्विन्नमुद्धृत्य निष्पीड्य रसमादाय तं नृणाम् ।
तर्पणोक्तेन विधिना यथावदवचारयेत् ॥३७॥
कनीनके निषेच्यः स्यान्नित्यमुत्तानशायिनः ।
रक्ते पित्ते च तौ शीतौ कोष्णौ वातकफापहौ ॥३८॥

इसके आगे पुटपाक प्रसाधन को कहते हैं—चिकने मांस के दो पिण्ड, प्रत्येक एक एक पल लेकर, इनको मधुरौषध, लेखन-द्रव्य, तिक्तद्रव्य—इनकी एक पल मात्रा और द्रव आठ पल लेकर सबको मिलाकर पीस ले। फिर इनका एक एक गोला बनाकर उस पर पत्ते (गम्भारी, कमल, एरण्ड, कमलिनी, केले के) भलीप्रकार लपेटकर, मिट्टी का (कीचड़ का) लेप करदे। इसे खैर के अङ्गारों पर पकाये। अथवा निर्मली अश्मन्तक, एरण्ड, पाटला, बांसा, बेर, बरगद आदि क्षीरीवृक्ष, इनकी लकड़ियों में या गोबर की अग्नि में युक्ति से पकाये। जब स्विन्न हो जाये, तब इसको निकालकर, निचोड़कर रस ले ले। इस रस को तर्पण की विधि से मनुष्यों की आंख में बरते। रस कनीनक (नाक के पास) प्रदेश से डालना चाहिये, रोगी को चित्त पीठ के भार सदा लेटना चाहिये। रक्त और, पित्त में शीतल वात और कफ के नाश के लिये सुहाता गरम रस गेरे। (पुटपाक की मिट्टी बाहर से लाल बन जाये तब निकाले) ॥

अत्युष्णतीक्ष्णौ सततं दाहपाककरौ स्मृतौ ।
आप्लुतौ शीतलौ चाश्रुस्तम्भरुग्घर्षकारकौ ॥३९॥
अतिमात्रौ कषायत्वसङ्कोचस्फुरणावहौ ।
हीनप्रमाणौ दोषाणामुत्क्लेशजननौ भृशम् ॥४०॥

अतिउष्ण और अतितीक्ष्ण तर्पण एवं पुटपाक—निरन्तर दाह और पाक करते हैं। थोड़ा घीवाले, या शीतल तर्पण एवं पुटपाक आंसुओं को रोकना, वेदना घर्षण करते हैं। अधिक मात्रा में बरतने से आँख कसाई जाती है, संकुचित हो जाती है, स्फुरण (धड़कन होती है) प्रमाण में कम रहने से दोषों की वृद्धि अधिक मात्रा में करते हैं। (ये तर्पण और पुटपाक दोनों के दोष हैं) ॥३९,४०॥

युक्तौ कृतौ दाहशोफरुग्घर्षस्रावनाशनौ ।
कण्डूपदेहदूषीकारक्तराजिविनाशनौ ॥४१॥
तस्मात् परिहरन् दोषान् विदध्यात्तौ सुखावहौ ।

ठीक मात्रा में तर्पण एवं पुटपाक बरतने से दाह, सूजन, वेदना, रगड़, स्राव नष्ट होता है। कण्डू, नेत्र का मैल, दूषिका (गीध), आंख की लाल रेखायें, नष्ट होती हैं। इसलिये दोषों से बचाते हुए सुखदेनेवाले तर्पण और पुटपाक बरते ॥४१॥

व्यापदश्च यथादोषं नस्यधूमाञ्जनैर्जयेत् ॥४२॥

दाह, पाक आदि उपद्रवों की दोषों के अपने अनुसार नस्य, धूम या अंजन से चिकित्सा करे ॥४२॥

आद्यन्तयोश्चाप्यनयोः स्वेद उष्णाम्बुचैलिकः ।
तथा हितोऽवसाने च धूमः श्लेष्मसमुच्छ्रितौ ॥४३॥

तर्पण और पुटपाक के प्रारम्भ और अन्त में गरम पानी में भिगोये वस्त्र से स्वेद देना चाहिये तथा इनके पीछे और कफ के बढ़ा होने पर धूम उत्तम है ।४३॥

यथादोषोपयुक्तं तु नातिप्रबलमोजसा ।
रोगमाश्च्योतनं हन्ति सेकस्तु बलवत्तरम् ॥४४॥

दोष के अनुसार उपयुक्त आश्च्योतन थोड़े रोग को अपनी शक्ति से नष्ट कर देता है। सेक बढ़े हुए रोग को अपनी शक्ति से नष्ट करता है।

वक्तव्य—सेक आश्च्योतन, चौथे दिन रोग व्यक्त हो जाने पर बरतने चाहियें, यथा—

"प्रागेवाद्यामये कार्यं त्रिरात्रं लघु भोजनम् ।
उपवासस्त्र्यहं वा स्यान्नक्तं वाऽप्यशनं त्र्यहम् ॥
ततश्चतुर्थे दिवसे व्याधिं संजातलक्षणम् ।
समीक्ष्याश्च्योतनैः सेकैः यथास्वमुपादयेत् ॥४४॥"

तौ त्रिधैवोपयुज्येते रोगेषु पुटपाकवत् ।

ये सेक और आश्च्योतन, पुटपाक की भाँति स्नेहन, लेखन, रोपण-इन तीन रूपों में बरते जाते हैं। इनके पेषण-और आलोडन द्रव्य पुटपाक की भांति हैं। सम्यग्योग हीनयोग मिथ्यायोग-पुटपाक के समान हैं।

लेखने सप्त चाष्टौ वा बिन्दवः स्नैहिके दश ॥४५॥
आश्च्योतने प्रयोक्तव्या द्वादशैव तु रोपणे ।
सेकस्य द्विगुणः कालः पुटपाकात् परो मतः ॥४६॥

लेखन आश्च्योतन में सात या आठ बूंद, स्नैहिक में दस, रोपण आश्च्योतन में बारह बूंद बरतनी चाहिये।

परिषेक का धारण काल पुटपाक से दुगना है, अर्थात्—लेखन में-दो सौ, स्नेहन में चार सौ, रोपण परिषेक में छै सौ गिनने तक है ॥४५,४६॥

अथवा कार्यनिर्वृत्तेरुपयोगो यथाक्रमम् ।

अथवा धीरे धीरे रोग की शान्ति, स्वाभाविक वर्ण का आना, क्रियापाटव, वेदनाशान्ति, जब तक हो, तब तक बरते।

पूर्वापराह्णे मध्याह्ने रुजाकालेषु चोभयोः ॥४७॥

कफज रोग में—लेखन आश्च्योतन पूर्वाह्न में, वातज में स्नेहन आश्च्योतन, अपराह्न में, रक्तपित्त में रोपण आश्च्योतन सेक मध्याह्न में बरते। वेदना समय में सेक, आश्च्योतन, सब समय बरते ॥४७॥

योगायोगान् स्नेहसेके तर्पणोक्तान् प्रचक्षते ।

सेक एवं आश्च्योतन के सम्यग् योग, अयोग आदि के लक्षण तर्पण की भांति जाने।

रोगाच्छिरसि संभूतान् दत्त्वाऽतिप्रबलान् गुणान् ॥४८॥
करोति शिरसो बस्तिरुक्ता ये मूर्धतैलिकाः ।
शुद्धदेहस्य सायाह्ने यथाव्याध्यशितस्य तु ॥४९॥
ऋज्वासीनस्य बध्नीयाद्वस्तिकोशं ततो दृढम् ।
यथाव्याधिश्रृतस्नेहपूर्णं संयम्य धारयेत् ॥५०॥
तर्पणोक्तं दशगुणं यथादोषं विधानवित् ।

शिर में उत्पन्न अतिप्रबल रोगों को नष्ट करके, शिरोवस्ति, मूर्धा में तेल लगाने के गुणों को उत्पन्न करती है। इसके लिये वमन विरेचनादि से शरीर का या नस्य आदि से शिर का शोधन करके, सायंकाल में रोग के अनुसार (व्याधि प्रतीषेक) भोजन करके, सीधे बैठे हुए रोगी के शिरपर बस्तिकोश को मजबूती से बाँध देवे। रोग के अनुसार सिद्ध किये स्नेह से इस बस्तिपुटक को भर देवे। रोगी मुख को बन्द किये इसको तर्पण से दस गुने अधिक समय तक या दोष के अनुसार (कफ में छै हजार, पित्त में आठ हजार, वात में दस हजार मात्रा पर्यन्त) धारण करे। वाग्भट में—

"विधिस्तस्य निषण्णस्य पीठे जानुसमे मृदौ ।
शुद्धाक्तस्विन्नदेहस्य दिनान्ते गव्यमाहिषम् ॥
द्वादशांगुलविस्तीर्णं चर्मपट्टं शिरःसमम् ।
आकर्णबन्धनस्थाने ललाटे वस्त्रवेष्टिते ॥
चैलवेणिकया बद्ध्वा माषकल्केन लेपयेत् ।
ततो यथा व्याधिश्रृतं स्नेहं कोष्णं निषेचयेत् ॥
ऊर्ध्वं केशभुवो यावद् द्व्यंगुलं धारयेच्च तम् ।
आवक्त्रनासिकोत्क्लेदात् दशाऽष्टौषट्चलादिषु ॥
मात्रासहस्राणि अरुजेत्वेकम्-स्कन्धादिमर्दयेत् ।
मुक्तस्नेहस्य परमं सप्ताहं तस्य सेवनम् ॥॥४८-५०॥

व्यक्तरूपेषु दोषेषु शुद्धकायस्य केवले ॥५१॥
नेत्र एव स्थिते दोषे प्राप्तमञ्जनमाचरेत् ।
लेखनं रोपणं चापि प्रसादनमथापि वा ॥५२॥

दोष के लक्षण स्पष्ट होने पर, स्नेहपान, वमनादि से शुद्ध हुए पुरुष में, किसी अन्य दोष से दोष के मिले न होने पर, दोष के नेत्र में ही स्थित रहने पर, युक्त (जो ठीक हो) अंजन करे। यह अञ्जन लेखन, रोपण और प्रसादन भेद से तीन प्रकार का है ॥५१,५२॥

तत्र पञ्च रसान् व्यस्तानाद्यैकरसवर्जितान् ।
पञ्चधा लेखनं युञ्ज्याद्यथादोषमतन्द्रितः ॥५३॥

मधुर रस को छोड़कर पांच रसवाले द्रव्यों को पांच प्रकार से (वात पित्त, कफ, रक्त, सन्निपात भेद से) दोष के अनुसार, बिना आलस्य के सावधानी से लेखन अंजन बरते। दोष के अनुसार वात में अम्ल लवण, पित्त में तिक्त कषाय, श्लेष्म में कटु, तिक्त कषाय, रक्त में पित्त के समान, सन्निपात में दो या तीन रसों को मिलाकर बरते ॥५३॥

नेत्रवर्त्मसिराकोशस्रोतःश्रृङ्गाटकाश्रितम् ।
मुखनासाक्षिभिर्दोषमोजसा स्रावयेत्तु तत् ॥५४॥

लेखन अंजन अपनी शक्ति से नेत्र, पलक, नेत्रसिरा, नेत्रकोश, नेत्रस्रोत या श्रृङ्गाटक मर्म में आश्रित दोष को नाश, मुख तथा नेत्र से बहता है ॥५४॥

कषायं तिक्तकं वाऽपि सस्नेहं रोपणं मतम् ।
तत्स्नेहशैत्याद्वर्ण्यं स्याद्दृष्टेश्च बलवर्धनम् ॥५५॥

कषाय, तिक्त, ईषत्स्नेहयुक्त अंजन रोपण कहा है। यह स्निग्ध एवं शीतल होने से वर्ण के लिये हितकारी और दृष्टि का बल बढ़ानेवाला है ॥५५॥

मधुरं स्नेहसंपन्नमञ्जनं तु प्रसादनम् ।
दृष्टिदोषप्रसादार्थं स्नेहनार्थं च तद्धितम् ॥५६॥

प्रसादन अंजन—मधुर एवं स्नेह से युक्त होता है। दृष्टि-दोष की निर्मलता के लिये और स्नेहन के लिये उत्तम है ॥५६॥

यथादोषं प्रयोज्यानि तानि रोगविशारदैः ।
अञ्जनानि यथोक्तानि प्राह्णसायाह्नरात्रिषु ॥५७॥

रोगों में कुशल व्यक्ति इनको दोषों के अनुसार, प्रातः सायं या रात्रि में बरते। पूर्वाह्न में—कफ रोग में लेखन अञ्जन,

सायाह्न में—वातज में, रात्रि में पित्तजन्य रोगों में बरते ॥५७॥

गुटिकारसचूर्णानि त्रिविधान्यञ्जनानि तु ।
यथापूर्वं बलं तेषां श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः ॥५८॥

गुटिका, रसक्रिया और चूर्ण भेद से अञ्जन तीन प्रकार के हैं। इनमें शक्ति की उत्कृष्टता पूर्व क्रम से है, ऐसा बुद्धिमान् कहते हैं। गुटिका सबसे अधिक शक्तिशाली, रसक्रिया मध्यम, चूर्ण हीन ॥५८॥

हरेणुमात्रा वर्तिः स्याल्लेखनस्य प्रमाणतः ।
प्रसादनस्य चाध्यर्धा द्विगुणा रोपणस्य च ॥५९॥

लेखन अञ्जन की वर्ति का प्रमाण-(घिसकर लगाने की मात्रा)—मटर के बराबर, प्रसादन अञ्जन की डेढ़ मटर के बराबर, रोपण अञ्जन की दो मटर के बराबर है ॥५९॥

रसाञ्जनस्य मात्रा तु यथावर्तिमिता मता ।

रसक्रिया की मात्रा उनके अपने अनुसार बनाई वर्ति के प्रमाण में होती है। इसमें लेखन रसक्रिया अञ्जन की मात्रा लेखनवर्ति की भाँति, रोपण की रोपण वर्ति की भाँति, प्रसादन की प्रसादनवर्ति की भाँति होती है।

द्वित्रिचतुःशलाकाश्च चूर्णस्याप्यनुपूर्वशः ॥६०॥

क्रमशः—लेखन चूर्णाञ्जन की दो शलाका, रोपण की तीन, प्रसादनांजन की चार शलाका मात्रा है ॥६०॥

तेषां तुल्यगुणान्येव विदध्याद्भाजनान्यपि ।
सौवर्णं राजतं शाङ्गं ताम्रं वैदूर्यकांस्यजम् ॥६१॥
आयसानि च योज्यानि शलाकाश्च यथाक्रमम् ।

इन अञ्जनों के लिये इनके समान गुणवाले पात्र बरते, यथा—मधुरांजन स्वर्ण में, अम्ल चांदी में, लवणअञ्जन सींग के बने, कषाय अञ्जन ताम्र या लोहे के, कटुक-वैडूर्य (बिल्लौर) के, तिक्त कांसी के, शीतांजन नलादि में रक्खे। शलाकायें भी-इसी क्रम से धातुओं की बनाये ॥६१॥

वक्त्रयोर्मुकुलाकारा कलायपरिमण्डला ॥६२॥
अष्टाङ्गुला तनुर्मध्ये सुकृता साधुनिग्रहा ।

ये शलाकायें किनारों पर कील के आकार की, मोटाई में मटर के बराबर, आठ अङ्गुल लम्बी बीच में से पतली, अच्छी प्रकार बनी, सुखपूर्वक पकड़ने योग्य होनी चाहिये ॥६२॥

औदुम्बर्यश्मजा वाऽपि शारीरी वा हिता भवेत् ॥६३॥

अथवा ताम्र की, बिल्लौर आदि पत्थर की, सींग या अस्थि आदि की भी बनाई जा सकती है। यथा—आयसी रोपणे, ताम्रा लेख्ये, हैमी प्रसादने। शेषा अपि यथादोषं प्रयोज्या रसकोविदैः" ॥६३॥

वामेनाक्षि विनिर्भुज्य हस्तेन सुसमाहितः ।
शलाकया दक्षिणेन क्षिपेत् कानीनमञ्जनम् ॥६४॥
अपाङ्गं वा यथायोगं कुर्याच्चापि गतागतम् ।
वर्त्मोपलेपि वा यत्तदङ्गुल्यैव प्रयोजयेत् ॥६५॥

वाम हाथ से आँख को टेढ़ा करके (खोलकर), सावधानी से, दक्षिण हाथ में पकड़ी शलाका से अंजन को कनीनिका भाग से अथवा अपांग भाग से या जैसा ठीक समझे वैसे लगाये, इसमें शलाका को आगे पीछे चलाये। जिस अञ्जन को पलकों पर लगाया जाता है, उसे अङ्गुली से ही लगाये (यथा काजल-रसक्रिया) ॥६४,६५॥

अक्षि नात्यन्तयोरञ्ज्याद्बाधमानोऽपि वा भिषक् ।

आंख के किनारों (कनीनिका, अपाङ्ग) पर बहुत अधिक अञ्जन न लगाये, और अञ्जन लगाते समय आंख को हानि भी न पहुँचाये।

न चानिर्वान्तदोषेऽक्ष्णि धावनं संप्रयोजयेत् ॥६६॥
दोषः प्रतिनिवृत्तः सन् हन्याद् दृष्टेर्बलं तथा ।

निश्चित रूप में अश्रु आदि से दोष के न निकल जाने तक आंखों को न धोये। क्योंकि असमय में धोने से वापिस आया दोष दृष्टि बल को नष्ट करता है ॥६६॥

गतदोषमपेताश्रु पश्येद्यत् सम्यगम्भसा ॥६७॥
प्रक्षाल्याक्षि यथादोषं कार्यं प्रत्यञ्जनं ततः ।

दोष निकल जाने पर, अश्रु बन्द हो जाने पर, आंख को पानी से भलीप्रकार धोकर दोष के अनुसार पीछे से प्रत्यंजन बरते ॥६७॥

श्रमोदावर्तरुदितमद्यक्रोधभयज्वरैः ॥६८॥
वेगाघातशिरोदोषैश्चार्तानां नेष्यतेऽञ्जनम् ।
रागरुक्तिमिरास्रावशूलसंरम्भसंभवात् ॥६९॥

श्रम, उदावर्त, रुदन, मद्य, क्रोध, भय, ज्वर, उपस्थित वेगों का रोकना, शिरोदोष से पीड़ित पुरुषों में अञ्जन नहीं करना चाहिये। इनमें अञ्जन करने से सुर्खी, पीड़ा, तिमिर, स्राव, शूल, सूजन उत्पन्न हो जाती है ॥६८,६९॥

निद्राक्षये क्रियाऽशक्तिः, प्रवाते दृग्बलक्षयम् ।
रजोधूमहते रागस्रावाधीमन्थसंभवम् ॥७०॥
संरम्भशूलौ नस्यान्ते, शिरोरुजि शिरोरुजम् ।
शिरःस्नातेऽतिशीते च रवावनुदितेऽपि च ॥७१॥
दोषस्थैर्यादपार्थं स्याद्दोषोत्क्लेशं करोति च ।
अजीर्णेऽप्येवमेव स्यात् स्रोतोमार्गावरोधनात् ॥७२॥
दोषवेगोदये दत्तं कुर्यात्तांस्तानुपद्रवान् ।
तस्मात् परिहरन् दोषानञ्जनं साधु योजयेत् ॥७३॥

नींद न आने पर लगाया अञ्जन क्रिया (निमेष-उन्मेष में) हानि करता है। वायु के सामने बैठाकर किया अञ्जन दृष्टि बल को नष्ट करता है। रज और धूम से युक्त आंख में अञ्जन सुर्खी, स्राव अधिमन्थ उत्पन्न करता है। नस्य के अन्त में सूजन और शूल, शिरो रोग में शिरो वेदना करता है। शिर समेत

स्नान किये या अतिशीत अवस्था में या सूर्य के न उदय होने पर किया अञ्जन दोष के न बहाने से निरर्थक एवं दोष वृद्धि करनेवाला होता है। स्रोतो मार्ग के रुके होने से अजीर्ण में किया अञ्जन भी निरर्थक एवं दोष को बढ़ानेवाला है। दोषों के बढ़ा होने पर दिया अञ्जन-सुर्खी,सूजन आदि उपद्रवों को करता है। इसलिये दोषों को बचाते हुए वैद्य अञ्जन को भली प्रकार करे ॥७०-७३॥

लेखनस्य विशेषेण काल एष प्रकीर्तितः।

लेखन अञ्जन के लिये ही यह उपर्युक्त प्रतिषेध नियम है।

व्यापदश्च जयेदेताः सेकाश्च्योतनलेपनैः॥७४॥
यथास्वं धूमकवलनस्यैश्चापि समुत्थिताः।

अकालकृत अञ्जन से उत्पन्न रोग आदि हानियों को सेक, आश्च्योतन, लेप, दोषों के अपने अनुसार धूम कवल, नस्य आदि से शान्त करे ॥७४॥

विशदं लघ्वनास्रावि क्रियापटु सुनिर्मलम् ॥७५॥
संशान्तोपद्रवं नेत्रं विरिक्तं सम्यगादिशेत्।

लेखन अञ्जन के सम्यग् योग से आंख निर्मल, लघु, स्राव-रहित, देखने में बाधा रहित, अति स्वच्छ, हो जाती है और रोग-उपद्रवों की शान्ति होती है ॥७५॥

जिह्मं दारुणदुर्वर्णं स्रस्तं रूक्षमतीव च ॥७६॥
नेत्रं विरेकातियोगे स्यन्दते चातिमात्रशः।

लेखन अञ्जन के अतियोग से—आंख कुटिल, कठिन, बुरे रंग की, ढीली, अतिरूक्ष होती है, अतिशय पानी बहता है॥

तत्र संतर्पणं कार्यं विधानं चानिलापहम् ॥७७॥

इस अतियोग में संतर्पण एवं वातनाशक उपचार करे॥

अक्षि मन्दविरिक्तं स्यादुदग्रतरदोषवत्।
धूमनस्याञ्जनैस्तत्र हितं दोषावसेचनम् ॥७ ॥

लेखन के हीन योग में—आंख उत्कट दोष युक्त होती है। इस अवस्था में धूम, नस्य और अञ्जन से दोषों को बहाना उत्तम है ॥७८॥

स्नेहवर्णबलोपेतं प्रसन्नं दोषवर्जितम्।
ज्ञेयं प्रसादने सम्यगुपयुक्तेऽक्षि निर्वृतम् ॥७९॥

प्रसादन अञ्जन के सम्यग् योग में—आंख स्नेहवर्ण एवं बल से युक्त, निर्मल, दोषरहित, सब क्रियाओं में समर्थ (धूप, आदि को सहने योग्य)—रोग शान्ति होती हैं ॥७९॥

किञ्चिद्धीनविकारं स्यात्तर्पणाद्धि कृतादति।

प्रसादांजन के अतियोग में—तर्पण के अधिक करने की अपेक्षा इसमें आँख हीनविकारयुक्त होती है॥

तत्र दोषहरं रूक्षं भेषजं शस्यते मृदु ॥८०॥

इससे कफनाशक, रूक्ष, मृदु औषध उत्तम है। (मृदु-शीत वीर्यम्) ॥८०॥

साधारणमपि ज्ञेयमेवं रोपणलक्षणम्।
प्रसादनवदाचष्टे तस्मिन् युक्तेऽतिभेषजम् ॥८१॥

रोपण अञ्जन के सम्यग् योग, अतियोग के लक्षण प्रसाद अञ्जन की भांति समझने चाहियें ॥८१॥

स्नेहनं रोपणं वाऽपि हीनयुक्तमपार्थकम्।

प्रसादन और रोपण अञ्जन हीन मात्रा में बरतने से निरर्थक रहते हैं।

कर्तव्यं मात्रया तस्मादञ्जनं सिद्धिमिच्छता ॥८२॥

इसलिये सफलता चाहनेवाला वैद्य मात्रा से अञ्जन करे॥

पुटपाकक्रियाद्यासु क्रियास्वेषै (कै) व कल्पना।
सहस्रशश्चाञ्जनेषु वाजेनोक्तेन पूजिता ॥८३॥

पुटपाक आदि कल्पों में तथा अनुक्त अञ्जनों में इसी लेखन रोपण, प्रसादन आदि बीज से हजारों रूप में कल्पना की जा सकती है ॥८३॥

दृष्टेर्बलविवृद्ध्यर्थं याप्यरोगक्षयाय च।
राजार्हाण्यञ्जनाग्र्याणि निबोधेमान्यतः परम् ॥८४॥

दृष्टिबल को बढ़ाने के लिये, याप्य रोग को क्षीण करने के लिये, राजाओं के लिये योग्य श्रेष्ठ अञ्जनों को मुझसे सुनों॥

अष्टौ भागानञ्जनस्य नीलोत्पलसमत्विषः।
औदुम्बरं शातकुम्भं राजतं च समासतः ॥८५॥
एकादशतान् भागांस्तु योजयेत् कुशलो भिषक्।
मूषाक्षिप्तं तदाध्मातमावृतं जातवेदसि ॥८६॥
खदिराश्मन्तकाङ्गारैर्गोशकृद्भिरथापि वा।
गवां शकृद्रसे मूत्रे दध्नि सर्पिषि माक्षिके ॥८७॥
तैलमद्यवसामज्जसर्वगन्धोदकेषु च।
द्राक्षारसेक्षुत्रिफलारसेषु सुहिमेषु च ॥८८॥
सारिवादिकषाये च कषाये चोत्पलादिके।
निषेचयेत् पृथक् चैनं ध्मातं ध्मातं पुनः पुनः ॥८९॥
ततोऽन्तरीक्षे सप्ताहं प्लोतबद्धं स्थितं जले।
विशोष्य चूर्णयेन्मुक्तां स्फटिकं विद्रुमं तथा ॥९०॥
कालानुसारिवां चापि शुचिरावाप्य योगतः।
एतच्चूर्णाञ्जनं श्रेष्ठं निहितं भाजने शुभे ॥९१॥
दन्तस्फटिकवैदूर्यशङ्खशैलासनोद्भवे।
शातकुम्भेऽथ शार्ङ्गे वा राजते वा सुसंस्कृते।
सहस्रपाकवत् पूजां कृत्वा राज्ञः प्रयोजयेत् ॥९२॥
तेनाञ्जिताक्षो नृपतिर्भवेत् सर्वजनप्रियः।
अधृष्यः सर्वभूतानां दृष्टिरोगविवर्जितः ॥९३॥

नील कमल के समान कान्तिवाले स्रोतोऽञ्जन (काला सुरमा) के आठ भाग, ताम्र, स्वर्ण, चाँदी, एक एक भाग, इस प्रकार से कुशल वैद्य ये ग्यारह भाग लेकर मूषा में बन्द करके इनको, खैर, सिरहटा, या छानों की आग में गरम करके गोबर के रस में, गोमूत्र में, दधि में, गाय के घी में, मधु में, तैल-मद्य वसामज्जा सर्वगन्धोदक (एलादि गण) में, द्राक्षारस में, ईख के रस में, त्रिफला क्वाथ में अतिशीतल सारिवादि

कषाय में उत्पलादि गण के कषाय में बुझाये। इस प्रकार से बार बार गरम करके इन सब द्रव्यों में बुझाता जाये। फिर इसे एक पोटली में बांधकर वर्षा जल में सात दिन रक्खे। पीछे से इसको सुखाकर चूर्ण करे, इसमें मोती, स्फटिक, विद्रुम (मूँगा), कालानुसारिवा, इनको पवित्र वैद्य अल्प मात्रा में मिलाये। इस उत्तम अंजन को दाँत, मणि, वैडूर्य, शंख, पत्थर या विजयसार के अथवा सोने, सींग, चांदी के अच्छे बने पात्र में रक्खे। सहस्रपाक की भाँति शंख एवं नगाड़ों से पूजा करके, राजा के लिये बरते। उस अंजन को आँख में लगाकर राजा सब मनुष्यों का प्रिय बनता है, सब प्राणियों से अतिरस्कृत एवं दृष्टि रोगों से रहित होता है ॥८५-९३॥

कुष्ठं चन्दनमेलाश्च पत्रं मधुकमञ्जनम्।
मेषशृङ्गस्य पुष्पाणि वक्रं रत्नानि सप्त च ॥९४॥
उत्पलस्य बृहत्योश्च पद्मस्यापि च केशरम्।
नागपुष्पमुशीराणि पिप्पली तुत्थमुत्तमम् ॥९५॥
कुक्कुटाण्डकपालानि दार्वीं पथ्यां सरोचनाम्।
मरिचान्यक्षमज्जानं तुल्यां च गृहगोधिकाम् ॥९६॥
कृत्वा सूक्ष्मं ततश्चूर्णं न्यसेदभ्यर्च्य पूर्ववत्।
एतद्भद्रोदयं नाम सदैवार्हति भूमिपः ॥९७॥

कूठ, चन्दन, इलायची, तेजपात, मुलैहठी, अञ्जन, मेषशृंगी के पुष्प, तगर, सातोंरत्न (पद्मराग, मरकत, नील, वैडूर्य, मुक्ता, प्रवाल, पुष्पराग), कमल, कटेरी, बड़ीकटेरी के फूल, कमल केसर, नागकेसर, खस, पिप्पली, तुत्थ, (खर्पर तुत्थ), मुर्गी के अण्डे के छिलके, दारुहल्दी, हरड़, गोरोचना, मरिच, बहेड़े की गिरी, गृहगोधिका (छिपकली) इनको बराबर लेकर सूक्ष्म चूर्ण करे। इसमें छिपकली सब चूर्ण के बराबर ले। पूर्व की भाँति पूजा करके पात्र में रख दे। यह भद्रोदय नामक अञ्जन राजा के बरतने के सदा योग्य है। (डल्हण ने पुष्पराग के स्थान पर स्वर्ण को रत्न माना है) ॥९४-९७॥

वक्रं समरिचं चैव मांसीं शैलेयमेव च।
तुल्यांशानि समानैस्तैः समग्रैश्च मनःशिला ॥९८॥
पत्रस्य भागाश्चत्वारो द्विगुणं सर्वतोऽञ्जनम्।
तावच्च यष्टीमधुकं पूर्ववच्चैतदञ्जनम् ॥९९॥

तगर, मरिच, जटामांसी, शिलारस—ये प्रत्येक समान, और सब के बराबर मैनसिल, तेजपात एक द्रव्य की अपेक्षा चारगुणा, अञ्जन सम्पूर्ण द्रव्यों से दुगुना, मुलैहठी भी सुरमे के बराबर, यह अञ्जन पूर्व की भाँति गुणकारी है ॥९८,९९॥

मनःशिलां देवकाष्ठं रजन्यौ त्रिफलोषणम्।
लाक्षालशुनमञ्जिष्ठासैन्धवैलाः समाक्षिकाः ॥१००॥
रोध्रं सावरकं चूर्णमायसं ताम्रमेव च।
कालानुसारिवां चैव कुक्कुटाण्डदलानि च ॥१०१॥
तुल्यानि पयसा पिष्ट्वा गुटिकां कारयेद्बुधः।
कण्डूतिमिरशुक्लार्मरक्तराज्युपशान्तये ॥१०२॥

मैनसिल, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला, लाख, लहसुन, मजीठ, सैन्धव, इलायची, माक्षिक (स्वर्णमाक्षिकभस्म), सावरलोध, लोह और ताम्र की भस्म, कालानुसारिवा, मुर्गे के अण्डों के छिलके, ये सब समान भाग लेकर दूध के साथ पीसकर गोलियाँ बनाये। कण्डू, तिमिर, शुक्लार्म, लाल रेखा को शान्त करता है। (माक्षिक से कोई मधु लेते हैं) ॥१००-१०२॥

कांस्यापमार्जनमसी मधुकं सैन्धवं तथा।
एरण्डमूलं च समं बृहत्यंशद्वयान्वितम् ॥१०३॥
आजेन पयसा पिष्ट्वा ताम्रपात्रं प्रलेपयेत्।
सप्तकृत्वस्तु ता वर्त्यश्छायाशुष्का रुजापहाः ॥१०४॥

कांसी को रगड़ने से बनाई स्याही, मुलैहठी, सैन्धव, एरण्डमूल, प्रत्येक समान भाग, बड़ी कटेरी के फल और मूल—एक द्रव्य से दुगने लेकर इनको बकरी के दूध के साथ पीसकर ताम्रपात्र में लेप करे। इस प्रकार सात बार करे। इन वर्तियों को छाया में सुखाये—ये दर्दनाशक हैं ॥१०३,१०४॥

पथ्यातुत्थकयष्ट्याह्वैस्तुल्यैर्मरिचषोडशा।
पथ्या सर्वविकारेषु वर्तिः शीताम्बुपेषिता ॥१०५॥

हरड़, तुत्थ, मुलैहठी, प्रत्येक समान भाग, मरिच सोलह भाग को शीतल जल से पीसकर वर्ति बनाये। यह षोडशावर्त्ति नेत्र के सब रोगों में हितकारी है ॥१०५॥

रसक्रियाविधानेन यथोक्तविधिकोविदः।
पिण्डाञ्जनानि कुर्वीत यथायोगमतन्द्रितः ॥१०६॥

यथोक्तविधि को जाननेवाले वैद्य—रस क्रिया की विधि से—पिण्डाञ्जनों (शिलापृष्ठ पर घिसकर किये जानेवाले अञ्जनों) को योग के अनुसार सावधानी पूर्वक (जिससे आँखों में क्षत न हो) बनाये ॥१०६॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे
क्रियाकल्पो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

एकोनविंशतितमोऽध्यायः

अथातो नयनाभिघातप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे नयनाभिघातप्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे। जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

अभ्याहते तु नयने बहुधा नराणां
संरम्भरागतुमुलासु रुजासु धीमान्।
नस्यास्यलेपपरिषेचनतर्पणाद्य-
मुक्तं पुनः क्षतजपित्तजशूलपथ्यम् ॥३॥

तीक्ष्णांजन, धूप, धूल, धुंवे आदि से मनुष्यों की आँखों पर अनेक रूप में आघात हो जाता है, इससे सूजन, सुर्खी,

और तीव्र वेदना होती है। इसके लिये नस्य, मुखलेप, परिषेचन, तर्पण आदि एवं रक्ताभिष्यन्द, पित्ताभिष्यन्द की चिकित्सा करे॥

वक्तव्य—तीक्ष्णांजनाति परिक्लिष्टेषु नेत्रेषु वातातपधूमरजव्यापारकीटमक्षिकामशकस्पर्शादिभिरभिहतेषु दिवाकराग्निचन्द्रग्रहनक्षत्र-क्रमण-कर्म-विविधरूप-प्रेक्षणाद्यभिहतेषु दुर्बलेषु नेत्रेषु रागदाहतोदशोफपाकवर्षादि वेदनासु"—आदि बहुत प्रकार से आघात होता है॥३॥

दृष्टिप्रसादजननं विधिमाशु कुर्यात्
स्निग्धैर्हिमैश्च मधुरैश्च तथा प्रयोगैः।

इसमें दृष्टि को प्रसन्न करनेवाली विधि शीघ्र बरते, स्निग्ध, हिम (शीतल), मधुर वस्तुओं का प्रयोग करे!

स्वेदाग्निधूमभयशोकरुजाभिघातै-
रभ्याहतामपि तथैव भिषक् चिकित्सेत्॥४॥

स्वेद, अग्नि, धुँवे, भय, शोक, पीड़ा, आघात आदि से आँख दुखने पर भी इसी प्रकार चिकित्सा करे॥४॥

सद्याहते नयन एष विधिस्तदूर्ध्वं
स्यन्देरितो भवति दोषमवेक्ष्य कार्यः।

यह उपचार तुरन्त सात दिन से पहले पहले करना चाहिये। इसके पीछे दोष को देखकर अभिष्यन्द की चिकित्सा करे।

अभ्याहतं नयनमीषदथास्यबाष्प-
संस्वेदितं भवति तन्निरुजं क्षणेन॥५॥

चोट लगी आँखपर (चोभ होने पर) मुख की फूँक की गरम बाष्प से स्वेदन देने पर आँख तुरन्त वेदना रहित हो जाती है॥५॥

साध्यं क्षतं पटलमेकमुभे तु कृच्छ्रे
त्रीणि क्षतानि पटलानि विवर्जयेत्तु।
स्यात् पिच्चितं च नयनं ह्यति चावसन्नं।
स्रस्तं च्युतं च हतदृक् च भवेत्तु याप्यम्॥६॥
विस्तीर्णदृष्टि तनुरागमसत्प्रदर्शि,
साध्यं यथास्थितमनाविलदर्शनं च।

प्रथम पटल में हुआ क्षत साध्य है, दो पटलों का क्षत कष्टसाध्य है, तीन पटलों का क्षत असाध्य है। पिचित आँख या दबी हुई आँख, शिथिल, लटकती हुई, दृष्टि नष्ट हो जानेपर भी आँख याप्य है। जिसमें दृष्टि फैल गई हो, सूक्ष्म-पतली हो गई हो, सुर्खी आ गई हो, असत् (न हुई वस्तु को देखनेवाली—भ्रमित दृष्टि) दृष्टि याप्य है। ठीक प्रकार से स्थित, साफ स्पष्ट देखनेवाली दृष्टि साध्य है॥६॥

प्राणोपरोधवमनक्षुतकण्ठरोधै-
रुन्नम्यमाशु नयनं यदतिप्रविष्टम्॥७॥

यदि नेत्र अन्दर बहुत दब गई हो तो—गला दबाने से, वमन से, छींक से, श्वास को रोककर—आँख को बाहर लाना चाहिये॥७॥

नेत्रे बिलम्बिनि बिधिर्विहितः पुरस्ता-
दुच्छिङ्घनं शिरसि वार्यवसेचनं च।

नेत्र के बाहर निकल आने की चिकित्सा पहले (भिन्नं नेत्रकर्मण्यमभिन्नं लम्बते तु यत्) कह दी है। इसमें नाक से वायु को अन्तः खींचे, शिर पर ठंडा पानी डाले।

षट्सप्ततिर्नयनजा य इमे प्रदिष्टा
रोगा भवन्त्यमहतां महतां च तेभ्यः॥८॥
स्तन्यप्रकोपकफमारुतपित्तरक्तै-
र्बालाक्षिवर्त्मभव एव कुकूणकोऽन्यः।

आँख के जो ये छिहत्तर रोग कहे हैं, ये रोग बालकों को तथा बड़ों को होते हैं। दूध के प्रकोप से, कफ, वायु, पित्त, रक्त के कारण बालकों की पलकों में कुकूणक नाम का एक दूसरा रोग होता है[1]॥८॥

मृद्नाति नेत्रमतिकण्डुमथाक्षिकूटं
नासाललाटमपि तेन शिशुः स नित्यम्॥९॥
सूर्यप्रभां न सहते स्रवति प्रवद्धं
तस्याहरेद्रुधिरमाशु विनिर्लिखेच्च।

---

१ काश्यप संहिता में—

"यदा माता कुमारस्य मधुराणि निषेवते।
मत्स्यं मांसं पयः शाकं नवनीतं तथा दधि॥
सुरासवं पिष्टमयं तिलपिष्टाम्लकांजिकम्।
अभिष्यन्दीनि सर्वाणि काले काले निषेवते॥
भुक्त्वा भुक्त्वा दिवा शेते विसंज्ञा च बिबुध्यते।
तस्य दोषाः प्रकुपिता दूरं गत्वा च तिष्ठते॥
दोषेणावृतमार्गायास्ततःस्तन्यं च दूष्यते।
प्रदुष्टदोषसंज्ञं च यदा पिबति दारकः॥
लवणाम्लनिषेवित्वान्माता पुत्रो रसादिह।
आहारदोषात्तस्यास्तु वातस्थानान्नभोजिनः॥
अभीक्ष्णमस्रं स्रवेत न च क्षोवति दुर्मनाः।
नासिकां परिमृद्नाति न च वाञ्छति दुःखितः॥
ललाटमक्षिकूटं च नासां च परिमर्दति।
नेत्रे कण्डूयतेऽभीक्ष्णं पाणिना चाप्यतीव तु॥
सप्रकाशं न सहते अश्रु चास्य प्रवर्तते।
वर्त्मनि श्वयथुश्चास्य जानीयात्तं कुकूणकम्।
तस्य चिकित्सतं श्रेष्ठं व्याख्यास्यामि यथा तथा।
धात्रीं तु वामयेद्युक्तं तस्य चैव विपाचयेत्।
तस्यावान्तविरिक्तताया निर्दुह्य च स्तनावुभौ।
भोजनानि च सर्वाणि यथायुक्तं प्रदापयेत्॥"

क्षौद्रायुतैश्च कटुभिः प्रतिसारयेत्तु
मातुः शिशोरभिहितं च विधिं विदध्यात् ॥१०॥

इस रोग में बचा आँख को मलता है, बहुत खाज होती है। अक्षिकूट, नासिका, ललाट को बचा सदा मलता रहता है, प्रकाश को सहन नहीं कर सकता, आंख से निरन्तर पानी बहता है। इसमें जौंक से रक्त निकाले या हारसिंगार आदि के पत्ते से लेखन करे। त्रिकटु को मधु में मिलाकर प्रतिसारण करे। माता और बच्चे के लिये कही हुई चिकित्सा करे।

वि० मन्तव्य—कुकूणक नामक रोग का प्रभाव वर्त्म पर अधिक होता है, अतः वर्त्म को उलटकर उसके स्तर पर लेखन एवं प्रतिसारण किया जाता है। लेखन करने से ही रुधिर निकल जाता है। इस रोग में वर्त्म सूज जाते हैं। इसे "चौन्धी" कहते हैं। देखा गया है, कि ग्रामीण वृद्धाएँ कुत्ता के शरीर पर प्रायः बैठनेवाली मक्षिका (यह मक्षिका दूसरी मक्षिकाओं की अपेक्षा बड़ी होती है, उसका वर्ण हरासा होता है) को पकड़कर वर्त्म के भीतरी स्तर पर छुआती हैं, और मक्षिका अपने पाँवों को स्वभावतः हिलाती है, पाँव लगने से क्षत होता है फलतः रक्त निकल जाता है और रोग शान्त हो जाता है। छिलका सहित चाकसू का चूर्ण डालने से भी लाभ होता है। इस रोग को "रोहा" भी कहते हैं। हमारा विचार है, कि बड़ों में जो "रोहे" होते हैं, वही अथवा उसी की जाति का यह रोग भी है ॥९,१०॥

तं वामयेत्तु मधुसैन्धवसंप्रयुक्तैः
पीतं पयः खलु फलैः खरमञ्जरीणाम् ॥११॥
स्यात्पिपलीलवणमाक्षिकसंयुतैर्वा

दूध के साथ मधु, सैन्धव, चिरचिटे की बाल के चावल पिलाकर बच्चे को वमन कराये। अथवा पिप्पली लवण, मधु-दूध में मिलाकर वमन कराये ॥११॥

नैनं वमन्तमपि वामयितुं यतेत।

बच्चेको स्वयं वमन हो रहा हो तो इसको कराने की दवाई न देवे।

दत्त्वा वचामशनदुग्धभुजे प्रयोज्य-
मूर्ध्वं ततः फलयुतं वमनं विधिज्ञः ॥१२॥

दूध और अन्न खानेवाले बच्चे को बचा से वमन कराये। अन्नखानेवाले बच्चे को मैनफल से वमन कराये ॥१२॥

जम्ब्वाम्रधात्र्युणुदलैः परिधावनार्थं
कार्यं कषायमवसेचनमेव चापि।

पलकों को धोने के लिये—जामुन, आम, आंवला, अश्मन्तक इनका कषाय बरतना चाहिये। इसी कषाय से परिषेक करे।

आश्च्योतने च हितमत्र घृतं गुडूची-
सिद्धं तथाऽऽहुरपि च त्रिफलाविपक्वम् ॥१३॥

गिलोय से सिद्ध किया तथा त्रिफला से सिद्ध किया घृत इसमें आश्च्योतन के लिये उत्तम है ॥१३॥

नेपालजामरिचशङ्खरसाञ्जनानि
सिन्धुप्रसूतगुडमाक्षिकसंयुतानि।
स्यादञ्जनं मधुरसामधुकाम्रकैर्वा

मैनसिल, मरिच, शंख, रसौंत, सैन्धव, गुड़ और मधु से मिलाकर बनाया अञ्जन अथवा मूर्वा, मुलैहठी और आम इनका अञ्जन उत्तम है।

कृष्णायसं घृतपयोमधु वाऽपि दग्धम् ॥१४॥

कृष्णलोहचूर्ण, घी, दूध, और मधु इनको अन्तर्धूम विधि से जलाकर अंजन करे। यथा—"लोहचूर्णं च सर्पिश्च मधुक्षीरं च दाहयेत्। एतच्चूर्णाञ्जनं पिष्टं कुमाराणां कुकूणके ॥१४॥

व्योषं पलाण्डु मधुकं लवणोत्तमं च।
लाक्षां च गैरिकयुतां कुटिकाञ्जनं वा।
निम्बच्छदं मधुकदार्वि सताम्रलोध्र-
मिच्छन्ति चात्रभिषजोऽञ्जनमंशतुल्यम् ॥१५॥

त्रिकटु, प्याज, मुलैहठी, सैन्धव, लाख, गेरू इनसे अथवा नीम के पत्ते, मुलैहठी, दारुहल्दी, ताम्रभस्म, लोध, प्रत्येक समान भाग—इनसे, गुटिका अंजन बनाकर कुकूणक में बरते ॥

स्रोतोजशङ्खदधिसैन्धवमध पक्षं
शुक्रं शिशोर्नुदति भावितमञ्जनेन।
स्यन्दे कफादभिहितं क्रममाचरेच्च
बालस्य रोगकुशलोऽक्षिगदं जिघांसुः ॥१६॥

गाय की दही से शंख और सैन्धव को पीसकर—स्रोतांजन पर साढ़े सात दिन बार-बार लेप करे। फिर इस स्रोतांजन को पीसकर वर्त्ति बनाये। यह वर्त्ति अञ्जन करने पर बच्चों के शुक्र रोग को नष्ट करती है। कफाभिष्यन्द में कही चिकित्सा को, बालकों की आँख के रोगों को नष्ट करने की इच्छावाला वैसे बरते। (क्योंकि बालकों में कफ की अधिकता रहती है) ॥१६॥

समुद्र इव गम्भीरं नैव शक्यं चिकित्सितम्।
वक्तुं निरवशेषेण श्लोकानामयुतैरपि ॥१७॥
सहस्रैरपि वा प्रोक्तमर्थमल्पमतिर्नरः।
तर्कग्रन्थार्थरहितो नैव गृह्णात्यपण्डितः ॥१८॥

चिकित्सा शास्त्र समुद्र की भाँति गम्भीर है, हजारों श्लोकों से भी सम्पूर्ण रूप में इसको नहीं कह सकते। थोड़ी बुद्धिवाला मनुष्य जो तर्क से ग्रन्थ के अर्थ को नहीं समझता, वह हजारों श्लोकों से कहे हुए विषय को भी नहीं समझ सकता ॥१७,१८॥

तदिदं बहुगूढार्थं चिकित्साबीजमीरितम्।
कुशलेनाभिपन्नं तद्बहुधाऽभिप्ररोहति ॥१९॥
तस्मान्मतिमता नित्यं नानाशास्त्रार्थदर्शिना।
सर्वमूह्यमगाधार्थं शास्त्रमागमबुद्धिना ॥२०॥

इसलिये अतिशय गम्भीर अर्थवाला चिकित्सा बीज यहाँ कह दिया है, यह बीज कुशल वैद्य में जाना जाकर अनेक रूप में अंकुरित होता है। इसलिये बुद्धिमान् को नित्य प्रति नाना-शास्त्रों को देखते हुए, शास्त्र ज्ञान से वैद्य को सम्पूर्णएवं गम्भीर अर्थवाले शास्त्र को सदा बुद्धि से समझना चाहिये ॥१९,२०॥

"सूत्रं बुद्धिमतामल्पमप्यनल्पज्ञानायतनं भवति, तस्माद् बुद्धिमतामूहापोहवितर्काः ॥"

चरक वि० अ० ८।१५२।

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे नयनाभिघातचिकित्सितं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

विंशतितमोऽध्यायः

अथातः कर्णगतरोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे कर्णगतरोगविज्ञानीय अध्याय का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था।

वि० मन्तव्य—इस अध्याय में कर्णविवर में होनेवाले रोगों का वर्णन है और कर्णपाली-कर्णशष्कुली के रोगों का वर्णन सू० अ० १६ तथा चि० अ० २५ में किया जा चुका है॥

कर्णशूलं प्रणादश्च बाधिर्यं क्ष्वेड एव च।
कर्णस्रावः कर्णकण्डूः कर्णवर्चोस्तथैव च ॥३॥
कृमिकर्णप्रतीनाहौ विद्रधिर्द्विविधस्तथा।
कर्णपाकः पूतिकर्णस्तथैवार्शश्चतुर्विधम् ॥४॥
कर्णार्बुदं सप्तविधं शोफश्चापि चतुर्विधः।
एते कर्णगता रोगा अष्टाविंशतिरीरिताः ॥५॥

कर्णशूल, कर्णप्रणाद, बाधिर्य, कर्णक्ष्वेड, कर्णस्राव, कर्णकण्डू, कर्णवर्च, कृमिकर्ण, प्रतिनाह, दो प्रकार की विद्रधि (दोषविद्रधि, क्षतविद्रधि), कर्णपाक, पूतिकर्ण, चार प्रकार के अर्श (वात, पित्त, कफ और सन्निपातज), सातप्रकार का कर्णार्बुद (वात, पित्त, कफ, रक्त, मांस, मेद, सन्निपातज), चार प्रकार का शोफ (वात, पित्त, कफ, सन्निपातज) ये अट्ठाईस कर्णगत रोग हैं ॥३-५॥

समीरणः श्रोत्रगतोऽन्यथाचरः
समन्ततः शूलमतीव कर्णयोः।
करोति दोषैश्च यथास्वमावृतः
स कर्णशूलः कथितो दुराचरः ॥६॥

श्रोत्र गत वायु, कफ, पित्त दोषों से—अपने आप आवृत होकर, विमार्ग में गति करता हुआ कानों में अतितीव्रशूल चारों ओर करता है। यह शूल कष्ट साध्य है ॥६॥

वक्तव्य—मूर्च्छा दाहो ज्वरः कासो हृल्लासो वमथुस्तथा। उपद्रवाः कर्णशूले भवन्त्येते मरिष्यतः ॥६॥

यदा तु नाडीषु विमार्गमागतः
स एव शब्दाभिवहासु तिष्ठति।
शृणोति शब्दान् विविधांस्तदा नरः
प्रणादमेनं कथयन्ति चामयम् ॥७॥

जब यह वायु विमार्ग में आकर शब्द को ले जानेवाली नाड़ियों में पहुँचता है, तब मनुष्य नानाप्रकार के शब्दों को सुनता है, इस रोग को कर्णप्रणाद कहते हैं। यथा—

"शिरोगतो यदा वायुः श्रोत्रयोः प्रतिपद्यते।
तदा तु विविधान् शब्दान् समीरयति कर्णयोः॥
भृंगारक्रौञ्चनादं वा मण्डूककाकयोस्तथा।
तंत्रीं मृदंगशब्दं वा समतूर्यस्वने तथा॥
गीताध्ययनवंशानां निर्घोषं क्ष्वेडनं तथा।
अपामिव पतन्तीनां शकटस्येव गच्छतः॥
श्वसतामिव सर्पाणां सदृशः श्रूयते स्वनः" ॥७॥

स एव शब्दानुवहा यदा सिराः
कफानुयातो व्यनुसृत्य तिष्ठति।
तदा नरस्याप्रतिकारसेविनो
भवेत्तु बाधिर्यमसंशयं खलु ॥८॥

यही वायु कफ से मिलकर जब शब्द को ले जानेवाली सिराओं में फैलकर रह जाता है, तब उस समय चिकित्सा न करने से पुरुष को निःसन्देह बाधिर्य उत्पन्न हो जाता है।

वि० मन्तव्य—बाधिर्य का पूर्वरूप उच्चैः श्रुति—ऊँचे सुनना नामक विकार होता है ॥८॥

श्रमात् क्षयाद्रूक्षकषायभोजनात्
समीरणः शब्दपथे प्रतिष्ठितः।
विरिक्तशीर्षस्य च शीतसेविनः
करोति हि क्ष्वेडमतीव कर्णयोः ॥९॥

श्रम से, क्षय से (धातुक्षय से), रूक्षकषाय भोजन से, कुपित वायु शब्दमार्ग में रुक कर, या शिरोविरेचन लिये शीतसेवन करनेवाले पुरुष के कानों में अतिशय क्ष्वेड (अव्यक्त शब्द) करता है।

यथा—"मारुतः कफवाताभ्यां संसृष्टः शोणितेन च। कर्णक्ष्वेडं संजनयेत् क्ष्वेडने वेणुघोषवत् ॥९॥

शिरोभिघातादथवा निमज्जतो
जले प्रपाकादथवाऽपि विद्रधेः।
स्रवेत्तु पूयं श्रवणोऽनिलावृतः
स कर्णसंस्राव इति प्रकीर्तितः ॥१०॥

शिर पर चोट लगने से या पानी में गोता मारने पर कान में पानी भर जाने अथवा विद्रधि के पक जाने से वायु से आवृत कान से पूय बहती है, इसे कर्ण संस्राव कहते हैं ॥१०॥

कफेन कण्डूः प्रचितेन कर्णयो-
भृशं भवेत् स्रोतसि कर्णसंज्ञिते।

कर्ण स्रोतसों में कफ के बहुत संचित होने से कानों में बहुत कण्डू होती है।

विशोषिते श्लेष्माणि पित्ततेजसा
नृणां भवेत् स्रोतसि कर्णगूथकः ॥११॥

पित्त की उष्णिमा से स्रोतों में कफ के सूख जाने पर मनुष्यों में कर्ण गूथ (कर्णवर्चस्) बनता है ॥११॥

स कर्णविट्को द्रवतां यदा गतो
विलायितो घ्राणमुखं प्रपद्यते।
तदा स कर्णप्रतिनाहसंज्ञितो
भवेद्विकारः शिरसोऽभितापनः ॥१२॥

जब यह कर्णमूल (कर्णगूथ) पिघलकर द्रवरूप होकर नासा एवं मुख में आता है, तब इसको कर्ण प्रतिनाह नाम से कहते हैं, यह रोग सम्पूर्ण शिर को पीड़ित करता है ॥१२॥

यदा तु मूर्च्छन्त्यथवाऽपि जन्तवः
सृजन्त्यपत्यान्यथवाऽपि मक्षिकाः।
तदञ्जनत्वाच्छ्रवणो निरुच्यते
भिषग्भिराद्यैः कृमिकर्णको गदः ॥१३॥

जब कृमि कान में गिर पड़ते हैं, अथवा मक्खियाँ कान में अण्डे, बच्चे दे दें तब इन कृमियों के होने से पुरातन वैद्य कृमिकर्ण नाम से कहते हैं❀।

वि० मन्तव्य—जैसे अन्य व्रणों में कभी २ कृमि उत्पन्न हो जाते हैं अथवा किरौनी मक्खी बैठने के कारण कृमि उत्पन्न हो जाते हैं वैसे ही जब कर्ण विवर में कृमि उत्पन्न होते हैं तब उस दशा का नाम "कृमिकर्ण" है। श्री डल्लनाचार्य की व्याख्या के अनुसार एवं श्री भावमिश्र के कथनानुसार यह रोग तीन प्रकार का माना जा सकता है—१–जिसमें कृमिपतिङ्ग एवं शतपदी (गोजर तथा कानसलाई नामक जन्तु) आदि के घुस जाने से, इसका उल्लेख भी श्री भावमिश्र के शब्दों में—

पतङ्गाः शतपद्यश्च कर्णस्रोतः प्रविश्य हि।
अरतिं व्याकुलत्वं हि भृशं कुर्वन्ति वेदनाम्।
कर्णौ निस्तुद्यते यस्य तथा च फर्फरायते।
कीटे चरति रुक् तीव्रा निष्पन्दे मन्दवेदना। कर्णरोगाधिकार। २–मांस कोथजाः कृमयः (डल्लन) = मांसरक्त के सड़ने से उत्पन्न कृमि।—३ किरौनी मक्खी के अण्डा गिराने से उत्पन्न कृमि ॥१३॥

❀ विदेह ने कहा है—
"श्लेष्मपित्तजलोन्मिश्रे कोथे शोणितमांसगे।
मूर्च्छन्ति जन्तवस्तत्र कृष्णास्ताम्राः सितारुणाः॥
भक्षयन्तीव ते कर्णं कुर्वन्तो विविधा रुजः।
कृमिकर्णं तु तं विद्यात् सन्निपातप्रकोपजम्॥

क्षताभिघातप्रभवस्तु विद्रधि-
र्भवेत्तथा दोषकृतोऽपरः पुनः।
सरक्तपीतारुणमस्रमास्रवेत्
प्रतोदधूमायनदाहचोषवान् ॥१४॥

चोट लगने से एक प्रकार की विद्रधि उत्पन्न होती है, दोषजन्य दूसरी विद्रधि है। इसमें लाल, पीला, अरुणवर्ण का रक्त बहता है, चुभने की सी वेदना, धूमसा निकलता प्रतीत होता है, दाह, चोष (जलन) होती है।

वि० मन्तव्य—कर्णविद्रधि—कान की फुन्सी का नाम है ॥१४॥

भवेत् प्रपाकः खलु पित्तकोपतो
विकोथविक्लेदकरश्च कर्णयोः।

पित्त के प्रकोप से कानों में–सड़ना, क्लेद युक्त पाक हो जाता है, इसे कर्ण पाक कहते हैं।

स्थिते कफे स्रोतसि पित्ततेजसा
विलाय्यमाने भृशसंप्रतापवान् ॥१५॥
अवेदनो वाऽप्यथवा सवेदनो
घनं स्रवेत् पूति च पूतिकर्णकः।

स्रोतों में कफ के रुक जाने पर पित्त की उष्णिमा से इसके पिघल जाने के कारण अतिशय जलनेवाला, वेदनारहित या वेदनायुक्त, घट्ट एवं दुर्गन्धवाला स्राव होता है, इसे पूतिकर्णक कहते हैं ॥१५॥

प्रदिष्टलिङ्गान्यर्शांसि तत्वत-
स्तथैव शोफार्बुदलिङ्गमीरितम्।
मया पुरस्तात् प्रसमीक्ष्य योजये-
दिहैव तावत् प्रयतो भिषग्वरः ॥१६॥

अर्श के, शोफ के तथा अर्बुद के कहे हुए लक्षणों को परमार्थ रूप से देखकर, बुद्धिमान् वैद्य उनको यहां पर लागू कर लेवे।

वि० मन्तव्य—अर्थात् कर्णविवर में अर्श–मांसाकुर मस्से, शोफ-व्रणशोथ-शोथ तथा अर्बुद भी होते हैं। इनके लक्षण अर्श आदि के समान ही होते हैं ॥१६॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे कर्णगतरोगविज्ञानीयो नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥२०॥

एकविंशतितमोऽध्यायः

अथातः कर्णगतरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे कर्णगतरोगप्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे–जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

सामान्यं कर्णरोगेषु घृतपानं रसायनम्।
अव्यायामोऽशिरःस्नानं ब्रह्मचर्यमकत्थनम् ॥३॥

सामान्यतः सब कर्ण रोगों में घृतपान, रसायन सेवन, व्यायाम न करना, शिरसमेत स्नान न करना, ब्रह्मचर्य और न बोलना (कम बोलना) पथ्य है। (रसायन के स्थान पर रसाशन पाठ करके, कई लोग मांस रस से भोजन अर्थ करते हैं) ॥३॥

कर्णशूले प्रणादे च बाधिर्यक्ष्वेडयोरपि।
चतुर्णामपि रोगाणां सामान्यं भेषजं विदुः ॥४॥

कर्णशूल, कर्णप्रनाद, बाधिर्य और कर्णक्ष्वेड इन चारों रोगों में सामान्य औषध है ॥४॥

स्निग्धं वातहरैः स्वेदैर्नरं स्नेहविरेचितम्।
नाडीस्वेदैरुपचरेत्पिण्डस्वेदैस्तथैव च ॥५॥

रोगी को स्नेह पान और अभ्यंग से स्निग्ध करके वातहर द्रव्यों से स्वेद देकर ऐरण्ड तैल, बादाम, रोगन आदि स्नेहद्रव्यों से विरेचन देवे। नाड़ीस्वेद और पिण्डस्वेद बरते ॥५॥

बिल्वैरण्डार्कवर्षाभूदधित्थोन्मत्तशिग्रुभिः।
बस्तगन्धाश्वगन्धाभ्यां तर्कारीयववेणुभिः ॥६॥
आरनालशृतैरेभिर्नाडीस्वेदः प्रयोजितः।
कफवातसमुत्थानं कर्णशूलं निरस्यति ॥७॥

बिल्व, एरण्ड, आक, पुनर्नवा, कैथ, धत्तूरा, सुहांजना, बस्तगन्धा, अश्वगन्धा, अरणी, वांस के जौ, इनको कांजी में पकाकर दिया गया नाड़ीस्वेद—कफ-वात से उत्पन्न कर्णशूल को नष्ट करता है ॥६,७॥

मीनकुक्कुटलावानां मांसजैः पयसाऽपि वा।
पिण्डैः स्वेदं च कुर्वीत कर्णशूलनिवारणम् ॥८॥

मछली, मुर्गा, बटेर इनके मांस से या दूध के मावे (खोया) से पिण्डस्वेदन करे, यह कर्णशूल को नष्ट करता है ॥८॥

अश्वत्थपत्रखल्लं वा विधाय बहुपत्रकम्।
तदङ्गारैः सुसंपूर्णं निदध्याच्छ्रवणोपरि ॥९॥
यत्तैलं च्यवते तस्मात् खल्लादङ्गारतापितात्।
तत् प्राप्तं श्रवणस्रोतः सद्यो गृह्णाति वेदनाम् ॥१०॥

पीपल के बहुत से कोमल पत्ते लेकर उनसे एक दोहना (विवाह आदि में जिसमें द्रव वस्तु परोसी जाती है) बनाकर उसमें तेल भर दे। इसको ऊपर से भी पीपल के पत्तों से ढाँप दे (एक प्रकार की मूषा बन जाये) या कोई और वस्तु रख देवे। इन अंगारों की गरमी से जो तेल चूता है वह जब कान के स्रोतों में जाता है, तो वेदना को तुरन्त बन्द कर देता है।

वक्तव्य—'तदङ्गारैः संपूर्णम्' के स्थान पर तैलाक्तमस्तु-सम्पूर्णम् पाठ ठीक है। इसमें पीपल के गीले पत्तों को तैल—मस्तु में भिगोकर दोहना बनाये। इसमें अङ्गारे रख देवे। फिर मूषा आदि की जरूरत नहीं। कोई टीकाकार इस दोहने में छोटा सा छेद रखने को कहते हैं। इस छेद को कर्णस्रोत पर रख देवे। इसमें तैल के स्थान पर घी भरने को भी कहा है ॥९,१०॥

क्षौमगुग्गुल्वगुरुभिः सघृतैर्धूपयेच्च तम्।
भक्तोपरि हितं सर्पिर्बस्तिकर्म च पूजितम् ॥११॥

अलसी, गुग्गुल, अगरु, और घी इनसे इसको धूप करे। भोजन के पीछे घृतपान (रात में) और वस्तिकर्म करे ॥११॥

निरन्नो निशि तत्सर्पिः पीत्वोपरि पिबेत् पयः।
मूर्धबस्तिषु नस्ये च मस्तिष्के परिषेचने ॥१२॥
शतपाकं बलातैलं प्रशस्तं चापि भोजने।

रात में मनुष्य भोजन न करके घृतपान करे और पीछे से गरम दूध पीये। शिरोबस्ति, नस्य, शिर के परिषेचन में और भोजन में शतपाकी बलातैल बरते ॥१२॥

कण्टकारीमजाक्षीरे पक्त्वा क्षीरेण तेन च ॥१३॥
विपचेत् कुक्कुटवसां कर्णयोस्तत्प्रपूरणम्।

कटेरी चारपल, इसको आठ गुणे दूध में और दूध से चारगुणा पानी लेकर पकाये। इस दूध से मुर्गे की वसा—एक कुडव सिद्ध करे। यह वसा कानों में डाले ॥१३॥

तण्डुलीयकमूलानि फलमङ्कोलजं तथा ॥१४॥
अहिंस्राकेन्दुकान्मूलं सरलं देवदारु च।
लशुनं शृङ्गवेरं च तथा वंशावलेखनम् ॥१५॥
कल्कैरेषां तथाऽम्लैश्च पचेत् स्नेहं चतुर्विधम्।
वेदनायाः प्रशान्त्यर्थं हितं तत्कर्णपूरणम् ॥१६॥

चौलाई की जड़, अङ्कोठ का फल, झिंटी, केन्द्रकमूल, चीड़, देवदारु, लहसुन, सोंठ, बांस के छिलके, इनके कल्क से, दधि-तक्र सुरा-कांजी इनमें घी तैलवसा मज्जा ये चारों स्नेह सिद्ध करे। यह स्नेह वेदना की शान्ति के लिये कान में भरें ॥१४-१६॥

लशुनार्द्रकशिग्रूणां मुरङ्ग्या मूलकस्य च।
कदल्याः स्वरसः श्रेष्ठः कदुष्णः कर्णपूरणे ॥१७॥
शृङ्गवेररसः क्षौद्रं सैन्धवं तैलमेव च।
कदुष्णं कर्णयोर्देयमेतद्वा वेदनापहम् ॥१८॥

लहसुन, आर्द्रक, सुहांजना, मुरंगी (मीठा सहजन), मूली, केला, इनका स्वरस, गुनगुनाता गरम—(जितना सह्य हो) कान के डालने में उत्तम है। अथवा आर्द्रक का रस, मधु, सैन्धव, तैल, इनको थोड़ा गरम करके कान में डालने से वेदना नष्ट होती है ॥१७,१८॥

वंशावलेखनायुक्ते मूत्रे चाजाविके भिषक्।
सर्पिः पचेत्तेन कर्णं पूरयेत् कर्णशूलिनः ॥१९॥

बकरी और भेड़ के मूत्र में बांस का छिलका कल्क रूप में बरतकर वैद्य घी को पकाये, यह घृत 'कर्णशूलवाले रोगी के कान में डाले ॥१९॥

महतः पञ्चमूलस्य काण्डमष्टादशाङ्गुलम्।
क्षौमेणावेष्ट्य संसिच्य तैलेनादीपयेत्ततः ॥२०॥

यत्तैलं च्यवते तेभ्यो घृतेभ्यो भाजनोपरि ।
ज्ञेयं तद्दीपिकातैलं सद्यो गृह्णाति वेदनाम् ॥२१॥

दीपिका तेल—बृहत्पंचमूल के अट्ठारह अंगुल लम्बे टुकड़े (मोटे टुकड़े) लेकर इस पर अलसी का वस्त्र लपेटकर तेल चुआये। तेल से गीला करके इसको एक पात्र के ऊपर रखकर जलाये। जलाने से जो तैल पात्र में गिरे, वह दीपिका तेल है। इस तेल को कान में डालने से वेदना तुरन्त नष्ट होता है।

वि० मन्तव्य—बिल्व आदि वृक्षों की प्रशाखा के अङ्गुली के से मोटे ८-८ अंगुल लम्बे, ५ टुकड़े लेकर रेशमी कपड़ा में लपेट, तैल में भिगो, चिमटा से पकड़कर एक ओर अग्नि लगा देवे और उसके नीचे कटोरी रख देवे, जलते समय इसमें से बून्द-बून्द तैल टपकता है, इसी तैल का नाम "दीपिका" तैल है। यह भी तैल पाक का एक प्रकार है। इस विधि से तैल का खरपाक होता है, और कर्ण में डालने के लिये खरपाक ही होना चाहिये ॥२१॥

कुर्यादेवं भद्रकाष्ठे कुष्ठे काष्ठे च सारले ।
मतिमान् दीपिकातैलं कर्णशूलनिबर्हणम् ॥२२॥

बुद्धिमान् वैद्य इसी विधि से देवदारु, कुष्ठ, चीड़ की लकड़ी से भी दीपिका तेल बनाये, यह कर्णशूल को नष्ट करता है।

वि० मन्तव्य—देवदारु तथा चीड़ की लकड़ी को एक ओर से प्रज्वलित करने पर उसमें से तैल गिरता है, यही टर्पिन का तैल-तारपीन का तैल कहलाता है। यह कर्णशूल एवं कर्णस्राव में भी लाभ करता है, और सड़े-गले सब व्रणों में लगाने से लाभ करता है, यह शोधन भी है और रोपण भी है। वधिरता में भी लाभ करता है ॥२२॥

अर्काङ्कुराम्लपिष्टांस्तैलाक्तान् लवणान्वितान् ।
सन्निदध्यात् स्नुहीकाण्डे कोरिते तच्छदावृते ॥२३॥
पुटपाकक्रमस्विन्नान् पीडयेदारसागमात् ।
सुखोष्णं तद्रसं कर्णे दापयेच्छूलशान्तये ॥२४॥
कपित्थमातुलुङ्गाम्लशृङ्गवेररसैः शुभैः ।
सुखोष्णैः पूरयेत् कर्णं तच्छूलविनिवृत्तये ॥२५॥
कर्णं कोष्णेन चुक्रेण पूरयेत् कर्णशूलिनः ।
समुद्रफेनचूर्णेन युक्त्या चाप्यवचूर्णयेत् ॥२६॥

आक के अंकुरों (कोमलाग्र भागों) को कांजी से पीसकर इसमें तेल और नमक मिला ले। फिर थोर का एक टुकड़ा लेकर उसे बीच में से खोखला करके उसमें यह कल्क भरकर, टुकड़े को थोर के पत्तों से लपेट देवे। और निचोड़कर रस को ले लेवे। फिर इस काण्ड को पुटपाक की विधि से पकाये। इस रस को सुहाता हुआ गरम-गरम कान में शूल की शान्ति के लिये डाले। कैथ, बिजौरा, आद्रक इनके रस को सुहाता गरम करके कान में डाले, इससे शूल नष्ट होता है। कर्णशूलवाले रोगी के कान में सुहाता गरम चुक्र डाले। अथवा युक्ति से (फूत्कार द्वारा) समुद्रफेन का चूर्ण कान में डाले।

वक्तव्य—'यन्मस्त्वादिशुचौ भाण्डे सगुडक्षौद्रकाञ्जिकं। धान्यराशौ त्रिरात्रस्थं शुक्तं चुक्रं तदुच्यते ॥"

वि० मन्तव्य—कर्णविवर में समुद्रफेन का चूर्ण डालकर ऊपर से निम्बू रस अथवा काञ्जी की ५-७ बून्द डालते हैं, बून्दें डालने पर उफान आता है, इसे देखकर घबराना नहीं चाहिये ॥२३-२६॥

अष्टानामिह मूत्राणां मूत्रेणान्यतमेन तु ।
कोष्णेन पूरयेत् कर्णं कर्णशूलोपशान्तये ॥२७॥

कर्णशूल की शान्ति के लिये आठों मूत्रों में से किसी एक मूत्र को सुहाता गरम कान में डाले ॥२७॥

मूत्रेष्वम्लेषु वातघ्ने गणे च क्वथिते भिषक् ।
पचेच्चतुर्विधं स्नेहं पूरणं तच्च कर्णयोः ॥२८॥

वैद्य आठों मूत्रों में या कांजी आदि अम्लों में अथवा वातघ्नगण (भद्रदार्व्यादि) में घी, तैल, वसा और मज्जा चारों स्नेह सिद्ध करके कान में डाले ॥२८॥

एता एव क्रियाः कुर्यात् पित्तघ्नैः पित्तसंयुते ।

पित्त युक्त कर्णशूल में यही चिकित्सा पित्तनाशक द्रव्यों से करे।

काकोल्यादौ दशक्षीरं तिक्तं चात्र हितं हविः ॥२९॥
क्षीरवृक्षप्रवालेषु मधुके चन्दने तथा ।
कल्कक्वाथे परं पक्वं शर्करामधुकैः सरैः ॥३०॥

काकोल्यादिगण के कल्क से दसगुने दूध में सिद्ध किया घृत उत्तम है। बरगद आदि क्षीरी वृक्षों के पत्तों के क्वाथ में काकोल्यादि गण से घृत सिद्ध करे। मुलैहठी और चन्दन के क्वाथ एवं कल्क से घृत सिद्ध करे। शर्करा और मुलैहठी एवं विरेचन द्रव्यों के क्वाथ में घृत सिद्ध करे। शर्करा मुलैहठी का कल्क, विरेचन द्रव्यों का क्वाथ द्रव कार्य में बरते ॥२९,३०॥

इङ्गुदीसर्षपस्नेहौ सकफे पूरणे हितौ ।
तिक्तौषधानां यूषाश्च स्वेदाश्च कफनाशनाः ॥३१॥

कफयुक्त कर्णशूल में हिंगोट का तेल या सरसों का तेल डाले। तिक्त औषधियों का यूष और कफनाश (रूक्ष स्वेद) स्वेद उत्तम है ॥३१॥

सुरसादौ कृतं तैलं पञ्चमूले महत्यपि ।
मातुलुङ्गरसः शुक्तं लशुनार्द्रकयो रसः ॥३२॥
एकैकः पूरणे पथ्यस्तैलं तेष्वपि वा कृतम् ।
तीक्ष्णा मूर्धविरेकाश्च कवलाश्चात्र पूजिताः ॥३३॥

सुरसादिगण में या बृहत् पंचमूल में बनाया तैल, बिजौरे का रस, शुक्त, लहसुन या आद्रक का रस एक-एक वस्तु या इनसे सिद्ध किया तैल कान में डालने के लिये उत्तम है। तीक्ष्ण शिरोविरेचन, तथा कवल उत्तम हैं ॥३२,३३॥

कर्णशूलविधिः कृत्स्नः पित्तघ्नः शोणितावृते ।
रक्तयुक्त कर्णशूल में पित्तनाशक सम्पूर्ण विधि को बरते ।
शूलप्रणादबाधिर्यक्ष्वेडानां तु प्रकीर्तितम् ॥३४॥
सामान्यतो, विशेषेण बाधिर्ये पूरणं श्रृणु ।
गवां मूत्रेण बिल्वानि पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् ॥३५॥
सजलं च सदुग्धं च बाधिर्ये कर्णपूरणम् ।

कर्णशूल, कर्णप्रणाद, बाधिर्य क्ष्वेड इनकी सामान्य चिकित्सा कह दी है। बाधिर्य रोग के लिये विशेष चिकित्सा सुनो–गाय के मूत्र से बिल्व को पीसकर तैल पकाये। पकाते समय इसमें द्रवकार्य जल और दूध से (दूध और जल तेल से चार गुणे) करे, इस तैल को कान में डाले ॥३४,३५॥

सितामधुकबिम्बीभिः सिद्धं वाऽऽजे पयस्यपि ॥३६॥
बिम्बीक्वाथे विमथ्योष्णं शीतीभूतं सदुद्धृतम् ।
पुनः पचेद्दशक्षीरं सितामधुकचन्दनैः ॥३७॥
बिल्वाम्बुगाढं तत्तैलं बाधिर्ये कर्णपूरणम् ।

शर्करा, मुलैहठी और कन्दूरी इनके कल्क से बकरी के दूध में तैल पकाये। इस तैल को गरम-गरम कन्दूरी के क्वाथ में डालकर मलें। ठंडा होने पर जो ऊपर आ जाये, उसे निकालकर फिर से शर्करा, मुलैहठी, चन्दन इनके कल्क के साथ दसगुणे दूध में पकायें। इस तैल को बिल्व के क्वाथ से गाढ़ा बनाकर बधिरता में कान में भरे ॥३६,३७॥

वक्ष्यते यः प्रतिश्याये विधिः सोऽत्यत्र पूजितः ॥३८॥
प्रतिश्याय में जो विधि कहेंगे—वह भी यहाँ श्रेष्ठ है ॥ ३८ ॥

वातव्याधिषु यश्चोक्तो विधिः स च हितो भवेत् ।
वातव्याधि में जो चिकित्सा कही है, वह भी यहाँ पर बरते ।

कर्णस्रावे पूतिकर्णे तथैव कृमिकर्णके ॥३९॥
समानं कर्म कुर्वीत योगान् वैशेषिकानपि ।

कर्णस्राव, पूतिकर्ण और कृमिकर्ण में एक समान चिकित्सा करे, विशेषयोगों को भी इनमें बरते ॥३९॥

शिरोविरेचनं चैवं धूपनं पूरणं तथा ॥४०॥
प्रमार्जनं धावनं च वीक्ष्य वीक्ष्यावचारयेत् ।
राजवृक्षादितोयेन सुरसादिगणेन वा ॥४१॥

शिरोविरेचन, धूपन, कान में भरना, प्रमार्जन और प्रक्षालन इन कार्यों को राजवृक्षादि (आरग्वधादि) कषाय से या सुरसादि गण से-दोष, दूष्य, मल का विचार करके करे ॥

कर्णप्रक्षालनं कार्यं चूर्णैरेषां च पूरणम् ।
क्वाथं पञ्चकषायं तु कपित्थरसयोजितम् ॥४२॥
कर्णस्रावे प्रशंसन्ति पूर्णं मधुना सह ।
सर्जत्वक्चूर्णसंयुक्तः कार्पासीफलजो रसः ॥४३॥
योजितो मधुना वाऽपि कर्णस्रावे प्रशस्यते ।
लाक्षा रसाञ्जनं सजरचूर्णितं कर्णपूरणम् ॥४४॥
सशैवलं महावृक्षजम्ब्वाम्रप्रसवायुतम् ।
कुलीरक्षौद्रमण्डूकीसिद्धं तैलं च पूजितम् ॥४५॥

कान को धोने तथा कान में चूर्ण भरने में–पंचकषाय (तिन्दुकान्यभया आदि श्लोक में कहे) के क्वाथ में कैथ का रस मिलाकर, इनमें मधु डालकर कर्णस्राव में भरे। चीड़ के वृक्ष की छाल का चूर्ण, वनकार्पासी फल का रस, मधु इनको मिलाकर कान के स्राव में डालना उत्तम है। लाख, रसौंत, राल इनका चूर्ण कान में भरना उत्तम है। सरवाल, थोर, जामुन, आम इनके कोमल पत्ते, लेकर इनका क्वाथ करे, इसमें कर्कटश्रृङ्गी, मधु और मण्डूकी (ब्राह्मी) इनका कल्क मिलाकर तैल सिद्ध करे।

वक्तव्य—"कर्णप्रक्षालनं कार्यम्" इतना पद सुरसादिगणेन वा, इसके साथ जोड़ने से अर्थ ठीक हो जाता है ॥ ४२-४५ ॥

तिन्दुकान्यभया रोध्रं समङ्गाऽऽमलकं मधु ।
पूरणं चात्र पथ्यं स्यात्कपित्थरसयोजितम् ॥४६॥

तिन्दुक (तेंदू), हरड़, लोध, समंगा (लाजवती), आँवला, इनके चूर्ण में मधु और कैथ का रस मिलाकर कान में डालना उत्तम है। यह पंचकषाय चूर्ण है ॥४६॥

रसमाम्रकपित्थानां मधूकधवशालजम् ।
पूरणार्थं प्रशंसन्ति तैलं वा तैर्विपाचितम् ॥४७॥
प्रियङ्गुमधुकाम्बष्ठाधातकीशिलपर्णिभिः ।
मञ्जिष्ठालोध्रलाक्षाभिः कपित्थस्य रसेन वा ॥४८॥
पचेत्तैलं तदास्रावमवगृह्णाति पूरणात् ।

आम, कैथ, महुआ, धव और शाल इनका स्वरस अलग-अलग या मिलाकर अथवा इनसे सिद्ध किया तैल कान में डालना उत्तम है। प्रियंगु, मुलैहठी, पाठा, धातकी, मैनसिल, पृश्निपर्णी, मंजीठ, लोध, लाख, इनसे या कैथ के रस से तैल सिद्ध करे। यह तैल कान में डालने से स्राव को बन्द करता है ॥४७,४८॥

घृष्टं रजाञ्जनं नार्याः क्षीरेण मधुसंयुतम् ॥४९॥
तत्प्रशस्तं चिरोत्थेऽपिसास्रावे पूतिकर्णके ।
निर्गुण्डीस्वरसस्तैलं सिन्धुधूमरजो गुडः ॥५०॥
पूरणः पूतिकर्णस्य शमनो मधुसंयुतः ।

पुरातन कर्णस्राव या पूतिकर्ण में भी रसौंत को धावन में घिसकर मधु मिलाकर डालना उत्तम है। निर्गुण्डी का स्वरस, तैल, सैन्धव, घर का धुंवासा, गुड़ और मधु इनको पूतिकर्ण में भरना उत्तम है ॥४९,५०॥

कृमिकर्णकनाशार्थं कृमिघ्नं योजयेद्विधिम् ॥५१॥

कृमिकर्ण में कृमिनाशक चिकित्सा करे।

वार्ताकुधूमश्च हितः सार्षपस्नेह एव च

सूखी बड़ी कटेरी का धुंवा कान में देना या सरसों का तेल कान में डालना उत्तम है ॥ ५१ ॥

कृमिघ्नं हरितालेन गवां मूत्रयुतेन च ॥५२॥

गुग्गुलोः कर्णदौर्गन्ध्ये धूपनं श्रेष्ठमुच्यते

छर्दनं धूमपानं च कवलस्य च धारणम् ॥५३॥

गोमूत्र में हरताल मिलाकर कान में डालना कृमिनाशक है। कान की दुर्गन्ध में गुग्गुल का धूपन उत्तम है। वमन, धूमपान, कवल धारण ये उत्तम हैं ॥५२,५३॥

कर्णक्ष्वेडे हितं तैलं सार्षपं चैव पूरणम्।

विद्रधौ चापि कुर्वीत विद्रध्युक्तं चिकित्सितम् ॥५४॥

कर्णक्ष्वेड में सरसों का तेल भरना उत्तम है। कर्ण विद्रधि में विद्रधि में कही चिकित्सा करे ॥५४॥

प्रक्लेद्य धीमांस्तैलेन स्वेदेन प्रविलाप्य च।

शोधयेत्कर्णविट्कं तु भिषक् सम्यक् शलाकया ॥५५॥

वैद्य कर्ण मैल को तैल से गीला करके, स्वेद से पिघलाकर, शलाका से बाहर निकाले ॥५५॥

नाडीस्वेदोऽथ वमनं धूमो मूर्धविरेचनम्।

विधिश्च कफहृत्सर्वः कर्णकण्डूमपोहति ॥५६॥

नाडीस्वेदन, वमन, धूमपान, शिरोविरेचन, और कफनाशक सब विधि-कर्णकण्डू को नष्ट करती है ॥५६॥

अथ कर्णप्रतीनाहे स्नेहस्वेदौ प्रयोजयेत्।

ततो विरिक्तशिरसः क्रियां प्राप्तां समाचरेत् ॥५७॥

कर्णप्रतिनाह में स्नेह और स्वेद करते। शिरोविरेचन देकर जो उचित चिकित्सा हो वह करे ॥५७॥

कर्णपाकस्य भैषज्यं कुर्यात्पित्तविसर्पवत्।

कर्णपाक की चिकित्सा पित्त विसर्प की भांति करे।

कर्णच्छिद्रे वर्तमानं कीटं क्लेदमलादि वा ॥५८॥

शृङ्गेणापहरेद्धीमायनथवाऽपि शलाकया।

कान के छेद में कीड़ा या मल अथवा क्लेद होने पर इसको सींग से चूसकर या शलाका से बाहर निकाले ॥५८॥

शेषाणां तु विकाराणां प्राक् चिकित्सतमीरितम् ॥५९॥

अर्श, अर्बुद, शोफ इनकी चिकित्सा पहले कह दी है। वहां पर देख लें ॥

'शुष्कामलकशुण्ठीनां क्षारो हिंगुमहौषधम्।

शतपुष्पा वचा कुष्टं दारु शिग्रुरसांजनम् ॥

सौवर्चलयवक्षारस्वर्जिकोद्भिदसैन्धवम्।

भूर्जग्रन्थिविडं मुस्तं मधुशुक्तं चतुर्गुणम्।

मातुलुङ्गरसश्चैव कदल्या रस एव च।

सर्वैः एतैः यथोद्दिष्टैः क्षारतैलं विपाचयेत् ॥

बाधिर्यं कृमिनादश्च पूयस्रावश्च दारुणः।

कृमयः कर्णशूलं च पूरणादस्य नश्यति ॥

चरक ॥५९॥

इतिश्री सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गतशालाक्यतन्त्रे कर्णगतरोगप्रतिषेधो नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

द्वाविंशतितमोऽध्यायः

अथातो नासागतरोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे नासागतरोगविज्ञानीय अध्याय का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

अपीनसः पूतिनस्यं नासापाकस्तथैव च।

तथा शोणितपित्तं च पूयशोणितमेव च ॥३॥

क्षवथुर्भ्रंशथुर्दीप्तो नासानाहः परिस्रवः।

नासाशोषेण सहिता दशैकाश्चेरिता गदाः ॥४॥

चत्वार्यर्शांसि चत्वारः शोफा सप्तार्बुदानि च।

प्रतिश्यायांश्च ये पञ्च वक्ष्यन्ते सचिकित्सिताः।

एकत्रिंशन्मितास्ते तु नासारोगाः प्रकीर्तिताः ॥५॥

अपीनस, पूतिनासा, नासापाक, रक्तपित्त, पूयरक्त, क्षवथु, भ्रंशथु, दीप्त, नासानाह, परिस्रव, नासाशोष, ये ११ नासा रोग हैं। इनके अतिरिक्त नासार्श (चार) नासाशोफ (चार) नासार्बुद (सात), प्रतिश्याय (पांच) भी नासारोग कहे जाते हैं जो कि चिकित्सा के साथ कहे जायेंगे—ये इकतीस नासारोग कहे गये हैं ॥३-५॥

आनह्यते यस्य विधूप्यते च

प्रक्लिद्यते शुष्यति चापि नासा।

न वेत्ति यो गन्धरसांश्च जन्तु-

र्जुष्टं व्यवस्येत्तमपीनसेन ॥६॥

तं चानिलश्लेष्मभवं विकारं

ब्रूयात् प्रतिश्यायसमानलिङ्गम्।

जिस मनुष्य की नासा (श्वास लेते समय) रुकती है, जलती है, क्लिन्न रहती है, अथवा सूखी रहती है, जो मनुष्य गन्ध एवं रसों को (या केवल गन्ध को ही) नहीं पहचानता, उसे अपीनस रोग से युक्त जानना। यह रोग वायु और कफ से उत्पन्न होता है, इसके लक्षण प्रतिश्याय के समान होते हैं ॥६॥

दोषैर्विदग्धैर्गलतालुमूले

संवासितो यस्य समीरणस्तु ॥७॥

निरेतिपूतिर्मुखनासिकाभ्यां

तं पूतिनासं प्रवदन्ति रोगम्।

जिस पुरुष के गले और तालु मूल में वायुविदग्ध दोषों से (रक्त, पित्त, कफ से) मिलकर उनकी विकृत गन्ध से युक्त बनकर दुर्गन्धित होकर मुख और नासिका से निकलता है, उस रोग को पूतिनास (पूतिनस्य) कहते हैं ॥७॥

घ्राणाश्रितं पित्तमरूंषि कुर्या-

यस्मिन् विकारे बलवांश्च पाकः ॥८॥

तं नासिकापाकमिति व्यवस्ये-

द्विक्लेदकोथावपि यत्र दृष्टौ ।

नासा में स्थित पित्त जिस रोग में छोटी-छोटी फुंसियाँ पैदा कर दे, और जबर्दस्त पाक भी हो जाये, इस रोग को नासा-पाक कहते हैं। इसमें क्लेद (आर्द्रता) और कोथ (सड़ना) भी देखा जाता है ॥८॥

चतुर्विधं द्विप्रभवं द्विमार्गं

वक्ष्यामि भूयः खलु रक्तपित्तम् ॥९॥

बात, पित्त, कफ, सन्निपातजन्य चार प्रकार के, यकृत् और प्लीहा दो से उत्पन्न होनेवाले, ऊपर और नीचे दो मार्गों से होनेवाले रक्त पित्त को आगे विस्तार से कहूँगा।

वि० मन्तव्य—नासारन्ध्रों से निकलने बहने अथवा बूंद २ टपकनेवाले रक्त को 'नकसीर' कहते हैं। देखा गया है कि इस रोग में रक्तपित्त के पूर्वरूप एवं अन्य लक्षण नहीं होते और यदि हों तो उसे 'रक्तपित्त' ही मानना चाहिये परन्तु इस रक्त के दूषित होने की जिज्ञासा करने पर रक्तपित्त में वर्णित रक्तपित्त एवं जीव शोणित की विधि से ही परीक्षा करनी चाहिये॥

वक्तव्य—द्विप्रभवम्–से स्निग्ध एवं रूक्ष भेद से या आमाशय और पक्वाशय भेद से दो प्रकार का मानते हैं ॥९॥

(तल्लक्षणं नासिकरक्तपित्तं

जानीहि नासाप्रभवप्रवृत्तम् ।)

दोषैर्विदग्धैरथवाऽपि जन्तो-

र्ललाटदेशेऽभिहतस्य तैस्तु ।

नासा स्रवेत् पूयमसृग्विमिश्रं

तं पूयरक्तं प्रवदन्ति रोगम् ॥१०॥

पित्त-रक्त की अधिकता से विदग्ध हुए दोषों के कारण या माथे पर आघात लगने के कारण रोगी की नासा से रक्त से मिश्रित पूय निकलती है, इस रोग को पूयरक्त कहते हैं ॥१०॥

घ्राणाश्रिते मर्मणि संप्रदुष्टे

यस्यानिलो नासिकया निरेति ॥११॥

कफानुयातो बहुशः सशब्द-

स्तं रोगमाहुः क्षवथुं विधिज्ञाः ।

नासिका में स्थित, शृङ्गाटक मर्म के दूषित होने पर वायु, कफ से मिलकर बहुतवार शब्द के साथ नासिका से निकलती है, इस रोग को क्षवथु (छींक) कहते हैं। (संप्रदुष्टे के स्थान पर संप्रदुष्टः पाठ भी है जो ठीक है—अर्थात् घ्राणाश्रित मर्म में—दूषितवायु कफ से मिलकर शब्द के साथ बाहर आती है) ॥११॥

तीक्ष्णोपयोगादतिजिघ्रतो वा

भावान् कटूनर्कनिरीक्षणाद्वा ॥१२॥

सूत्रादिभिर्वा तरुणास्थिमर्म-

ण्युद्घाटितेऽन्यः क्षवथुर्निरेति ।

तीक्ष्ण (मरिच-लाल मरिच आदि) वस्तुओं के खाने से, या इतर आदि वस्तुओं के बहुत सूँघने से, कटु वस्तुओं (तम्बाकू सूंघनी आदि) के सूंघने से, सूर्य को देखने से, नाक में धागा आदि डालने से (जैसा कि नेति में करते हैं), तरुणास्थि या मर्म के विक्षोभ से, आगन्तुज छींक आती है ॥१२॥

प्रभ्रश्यते नासिकयैव यश्च

सान्द्रो विदग्धो लवणः कफस्तु ॥१३॥

प्राक् संचितो मूर्धनि पित्ततप्त-

स्तं भ्रंशथुं व्याधिमुदाहरन्ति ।

शिर में पहले संचित हुआ घट्ट, विदग्धलवण, कफ, पित्त की गरमी से नासा से ही जिस रोगी में नीचे बहता है, इस रोग को भ्रंशथु कहते हैं। (मुख से नहीं आता)।

वि० मन्तव्य—भ्रंशथु—इस रोग में सींढ़ अधिक आता है फलतः शिर की दुर्बलता का अनुभव होता है ॥१३॥

घ्राणे भृशं दाहसमन्विते तु

विनिःसरेद्धूम इवेह वायुः ॥१४॥

नासा प्रदीप्तेव च यस्य जन्तो-

र्व्याधिं तु तं दीप्तमुदाहरन्ति ।

अति जलन युक्त नासा से धूम के समान जिसमें वायु बाहर आती हो, रोगी की नासा जलती हुई सी रहती हो, इस रोग को दीप्त कहते हैं ॥१४॥

कफावृतो वायुरुदानसंज्ञो

यदा स्वमार्गे विगुणः स्थितः स्यात् ॥१५॥

घ्राणं वृणोतीव तदा स रोगो

नासाप्रतीनाह इति प्रदिष्टः ।

उदान संज्ञक वायु कफ से मिलकर अपने मार्ग में जब विकृत होकर स्थित हो जाता है, और नासिका को बन्द कर देता है, तब इस रोग को नासा प्रतिनाह कहते हैं ॥१५॥

अजस्रमच्छं सलिलप्रकाशं

यस्याविवर्णं स्रवतीह नासा ॥१६॥

रात्रौ विशेषेण हि तं विकारं

नासापरिस्रावमिति व्यवस्येत् ।

जिस रोगी की नासा से निरन्तर, स्वच्छ, पानी के समान, बिना किसी विशेष रंग का स्राव बहता रहता है, विशेषकर यह स्राव रात्रि में होता है (शीत समय में), इस रोग को नासा परिस्राव कहते हैं ॥१६॥

घ्राणाश्रिते श्लेष्मणि मारुतेन

पित्तेन गाढं परिशोषिते च ॥१७॥

समुच्छ्वसित्यूर्ध्वमधश्च कृच्छ्रा-
द्यस्तस्य नासापरिशोष उक्तः ।

नासिका में स्थित कफ के वायु और पित्त से अतिशय रूप सुखाये जाने से; रोगी कठिनाई से ऊपर और नीचे श्वास लेता है, इस रोग को नासापरिशोष कहा है ॥१७॥

दोषैस्त्रिभिस्तैः पृथगेकशश्च
ब्रूयात्तथाऽर्शांसि तथैव शोफान् ॥१८॥
शालाक्यसिद्धान्तमवेक्ष्य चापि
सर्वात्मकं सप्तममर्बुदं तु ।

वातादि तीन दोषों से अलग-अलग, तथा सन्निपात से, चार प्रकार के अर्श एवं चार प्रकार के शोफ होते हैं । शालाक्य सिद्धान्त के विचार से निदानोक्त छै अर्बुदों के सिवाय सन्निपातजन्य भी सातवाँ अर्बुद होता है ॥१८॥

रोगः प्रतिश्याय इहोपदिष्टः
स वक्ष्यते पञ्चविधः पुरस्तात् ॥१९॥

यहाँ पर जो पाँच प्रकार का प्रतिश्याय कहा है, उसे आगे कहेंगे ॥१९॥

(नासास्रोतोगता रोगास्त्रिंशदेकश्च कीर्तिताः ।
स्रोतःपथे यद्विपुलं कोशवच्चार्बुदं भवेत् ॥२०॥)

(इस प्रकार से नासास्रोत के इकतीस रोग यहाँ कह दिये हैं । नासारन्ध्र में जो बड़ा सा कोश जैसा होता है वह अर्बुद कहलाता है ॥२०॥)

निदानेऽर्शांसि निर्दिष्टान्येवं तानि विभावयेत् ॥२१॥
शोफास्तु शोफविज्ञाना नासास्रोतोऽव्यवस्थिताः ।

नासास्रोत में व्यवस्थित शोफ को शोफ के लक्षणों से, और अर्श को निदान में कहे लक्षणों से पहचानना चाहिये ॥२१॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे
नासागतरोगविज्ञानीयो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

त्रयोविंशतितमोऽध्यायः

अथातो नासागतरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब नासागत रोग प्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

पूर्वोद्दिष्टे पूतिनस्ये च जन्तोः
स्नेहस्वेदौ छर्दनं स्रंसनं च ।
युक्तं भक्तं तीक्ष्णमल्पं लघु स्या-
दुष्णं तोयं धूमपानं च काले ॥३॥

अपीनस और पूतिनास में रोगी को स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन देवे । तीक्ष्ण, अल्प एवं लघुभोजन भोजन समय में देवे । पीने को गरमपानी तथा धूमपान काल में धूमपान करावे ॥३॥

हिङ्गु व्योषं वत्सकाख्यं शिवाटी
लाक्षा बीजं सौरभं कट्फलं च ।
उग्रा कुष्ठं तीक्ष्णगन्धा विडङ्गं
श्रेष्ठं नित्यं चावपीडे करञ्जम् ॥४॥

हींग, त्रिकटु, इन्द्रजौ, श्वेत पुनर्नवा (शेफालिका), लाख, तुलसी के बीज, कट्फल, बच, कूठ, सुहांजना, वायविडंग, करंज, इनका नित्य प्रति अवपीड़न के रूप में नस्य देवे ॥४॥

एतैर्द्रव्यैः सार्षपं मूत्रयुक्तं
तैलं धीमान्नस्यहेतोः पचेत ।

इन्हीं द्रव्यों से गोमूत्र के साथ सरसों का तेल नस्य के लिये बुद्धिमान वैद्य बनाये ।

नासापाके पित्तहृत्संविधानं
कार्यं सर्वं बाह्यमाभ्यन्तरं च ॥५॥
हृत्वा रक्तं क्षीरवृक्षत्वचश्च
साज्याः सेका योजनीयाश्च लेपाः ।

नासापाक में बाह्य एवं अन्तः उपचार पित्तनाशक चिकित्सा सम्पूर्ण रूप से करे । रक्त को निकालकर बरगद आदि क्षीरीवृक्षों की छाल घी के साथ मिलाकर लेप में और परिषेक में बरतनी चाहिये । (बाह्य उपचार—लेप, अभ्यंग, परिषेकादि, आभ्यन्तर—आहार, स्नेहपान, विरेचनादि) ॥५॥

वक्ष्याम्यूर्ध्वं रक्तपित्तोपशान्ति

नासा रक्त पित्त की चिकित्सा आगे रक्त पित्त प्रतिषेध में (नासावृत्ते जलमाशु देयं आदि) कहेंगे ।

नाडी वस्यात् पूयरक्ते चिकित्सा ॥६॥

पूयरक्त में चिकित्सा—(विसर्पनाडी स्तन रोग में कही) नाडी व्रण की चिकित्सा करे ॥६॥

वान्ते सम्यक् चावपीडं वदन्ति
तीक्ष्णं धूमं शोधनं चात्र नस्यम् ।

पूयरक्त में भली प्रकार वमन होने पर अवपीड़न नस्य देवे, तीक्ष्णधूम, शोधन नस्य देवे ॥

क्षेप्यं नस्यं मूर्धवैरेचनीयै-
र्नाड्या चूर्णं क्षवथौ भ्रंशथौ च ॥७॥
कुर्यात् स्वेदान् मूर्ध्नि वातामयघ्नान्
स्निग्धान् धूमान् यच्चदन्यद्धितं च ।

क्षवथु और भ्रंशथु रोग में—प्रधमन नस्यनाडी से देवे, शिरोविरेचन द्रव्यों का चूर्ण नासा में फूंके । प्रधमन नस्य एवं चूर्णों से कफ कम हो जाने पर वातरोग नाशक स्वेद शिरपर देवे । स्निग्धधूम तथा अन्य जो हितकारी (शिरोवस्ति आदि) हो वह करे ॥७॥

दीप्ते रोगे पैत्तिकं संविधानं
कुर्यात् सर्वं स्वादु यच्छीतलं च ॥८॥

दीप्त रोग में पित्त चिकित्सा एवं मधुर एवं शीतल चिकित्सा सम्पूर्ण रूप में करे ॥८॥

नासानाहे स्नेहपानं प्रधानं
स्निग्धा धूमा मूर्धबस्तिश्च नित्यम् ।
बलातैलं सर्वथैवोपयोज्यं
वातव्याधावन्यदुक्तं च यद्यत् ॥९॥

नासानाह में स्नेह पान (भोजन के पीछे) उत्तम है, स्नेहनधूम, शिरोबस्ति (साल्वण उपनाह आदि) प्रशस्त है। बला तैल पान, अभ्यंग, शिरोविरेचन आदि सब कामों में बरते, एवं वातव्याधि में कहे दूसरे अणुतैल आदि भी बरते ।९।

नासास्रावे घ्राणतश्चूर्णमुक्तं
नाड्या देयं योऽवपीडश्च तीक्ष्णः ।
तीक्ष्णं धूमं देवदार्वग्निकाभ्यां
मांसं वाऽऽजं युक्तमत्रादिशन्ति ॥१०॥

नासास्राव में शिरोविरेचन द्रव्यों का चूर्ण नाक से देवे, तीक्ष्ण अवपीडन को (हिंगुव्योष वत्सकाद्यं) नाड़ी से नाक में दे। देवदारु, चित्रक से तीक्ष्ण धूम देवे, भोजन में बकरी का मांस उपयोगी है ॥१०॥

नासाशोषे क्षीरसर्पिः प्रधानं
सिद्धं तैलं चाणुकल्पेन नस्यम् ।
सर्पिःपानं भोजनं जाङ्गलैश्च
स्नेहः स्वेदः स्नैहिकश्चापि धूमः ॥११॥

नासाशोष में दूध से निकाला घी श्रेष्ठ है। अणुकल्पना (अणुतैलविधि-वातव्याधि में कही है) से बनाया तैल नस्य में देवे। भोजन के साथ घृतपान, जांगल मांस के साथ भोजन, स्नेहन करे, स्वेद देवे, स्नैहिकधूम (मधूच्छिष्ठादि) बरते ॥११॥

शेषान् रोगान् घ्राणजान् सन्नियच्छे-
दुक्तं तेषां यद्यथा संविधानम् ॥१२॥

नासाजन्य शेषरोगों की (अर्बुद, शोफ, अर्श की) चिकित्सा, उनको अपनी अपनी चिकित्सा के अनुसार करे।१२।

इतिश्री सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे
नासारोगप्रतिषेधो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

चतुर्विंशतितमोऽध्यायः

अथातः प्रतिश्यायप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे प्रतिश्यायप्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

नारीप्रसङ्गः शिरसोऽभितापो
धूमो रजः शीतमतिप्रतापः ।
संधारणं मूत्रपुरीषयोश्च
सद्यः प्रतिश्यायनिदानमुक्तम् ॥३॥

निदान—अतिशय स्त्रीसंग से, शिर में अभिताप पीड़ा होने से (धुवें से धूप आदि से), शीतल वस्तुओं से अतिसेवन से या सिर पर शीत लगने से, मल-मूत्र के रोकने के तुरन्त प्रतिश्याय उत्पन्न होता है ॥३॥

चयं गता मूर्धनि मारुतादयः
पृथक् समस्ताश्च तथैव शोणितम् ।
प्रकोप्यमाणा विविधैः प्रकोपणै-
र्नृणां प्रतिश्यायकरा भवन्ति हि ॥४॥

शिर में—वातादि तीनों दोष और रक्त पृथक्-पृथक् या समस्त रूप में एकत्रित होकर नानाप्रकार के प्रकोप कारणों से प्रकुपित किये हुए मनुष्यों में प्रतिश्यायरोग उत्पन्न करते हैं ॥४॥

शिरोगुरुत्वं क्षवथोः प्रवर्तनं
तथाऽङ्गमर्दः परिहृष्टरोमता ।
उपद्रवाश्चाप्यपरे पृथग्विधा
नृणां प्रतिश्यायपुरःसराः स्मृताः ॥५॥

पूर्वरूप शिर में भारीपन, छीकें आना, अंगों का टूटना, रोमांचता, अन्य दूसरे नानाप्रकार के उपद्रव, (ज्वर, अरोचक आदि), प्रतिश्याय के आगे होनेवाले पूर्वरूप हैं ॥५॥

आनद्धा पिहिता नासा तनुस्रावप्रवर्तिनी ।
गलताल्वोष्ठशोषश्च निस्तोदः शङ्खयोस्तथा ॥६॥
स्वरोपघातश्च भवेत्प्रतिश्यायेऽनिलात्मके ।

वातजन्यप्रतिश्याय—नाकरुकी हुई तथा श्वास में रुकावट होती है, इसमें पतला स्राव होता है, गला तालु और ओंठ सूखा रहता है, शंख प्रदेशों में चुभने की सी दर्द होती है, स्वर बैठ जाता है ॥६॥

उष्णः सपीतकः स्रावो घ्राणात् स्रवति पैत्तिके ॥७॥
कृशोऽतिपाण्डुः सन्तप्तो भवेत्तृष्णानि (भि) पीडितः ।
सधूमं सहसा वह्निं वमतीव च मानवः ॥८॥

पित्तजप्रतिश्याय में—नासा से गरम, पीलास्राव बहता है, रोगी कृश, अतिपाण्डुवर्ण (फीका), उष्णस्पर्शवाला, तथा प्यास से पीड़ित रहता है। नासा से अचानक धूमयुक्त आग निकलती प्रतीत होती है ॥७,८॥

कफः कफकृते घ्राणाच्छुक्लः शीतः स्रवेन्मुहुः ।
शुक्लावभासः शूनाक्षो भवेद्गुरुशिरोमुखः ॥९॥
शिरोगलौष्ठतालूनां कण्डूयनमतीव च ।

कफजन्यप्रतिश्याय में—नासिका से, श्वेत, शीतल, कफ बार-बार बहता है, रोगी का दिखाव श्वेत रहता है, आँखें भारी, शिर-मुख में भारीपन, शिर, गला, तालु और ओंठ में खाज का अनुभव होता है ॥९॥

भूत्वा भूत्वा प्रतिश्यायो योऽकस्माद्विनिवर्तते ॥१०॥
संपक्वो वाऽप्यपक्वो वा स सर्वप्रभवः स्मृतः ।
लिङ्गानि चैव सर्वेषां पीनसानां च सर्वजे ॥११॥

जो प्रतिश्याय बार-बार होकर अचानक स्वयं शान्त पड़ जाता है, पका हुआ हो या अपक्व हो, उसे सन्निपातज कहते

है। सन्निपातजन्य प्रतिश्याय में सब पीनसों के (प्रतिश्यायों के) लक्षण रहते हैं ॥१०,११॥

रक्तजे तु प्रतिश्याये रक्तस्रावः प्रवर्तते।
ताम्राक्षश्च भवेज्जन्तुरुरोघातप्रपीडितः ॥१२॥
दुर्गन्धोच्छ्वासवदनस्तथा गन्धान्न वेत्ति च।
मूर्च्छन्ति चात्र क्रमयः श्वेताः स्निग्धास्तथाऽणवः १३
क्रिमिमूर्धविकारेण समानं चास्य लक्षणम्।

रक्तजन्यप्रतिश्याय में नासा से लाल स्राव (रक्त का आना) होता है। रोगी की आँखें सुर्ख हो जाती हैं, उसे उरोघात की पीड़ा रहती है, श्वास और मुख में दुर्गन्ध, रोगी गन्ध को नहीं पहचानता। इसमें श्वेत, स्निग्ध, सूक्ष्म कृमि उत्पन्न हो जाते हैं, कृमिजन्यशिरोरोग के समान लक्षण होते हैं।

वक्तव्य—"उरःक्षतं गुरुस्तब्धं पूतिपूर्णकफोरसः। सकासः सज्वरो ज्ञेयः उरोघातः सपीनसः ॥" यह लक्षण प्रायः छाती के क्षय में मिलता है।

वि० मन्तव्य—उरोघातः—उरःक्षत जनित राजयक्ष्मा ही है। प्रतिश्यायात् अथो कासः कासात् सञ्जायते क्षयः। च० नि० अ० ८। रक्तज प्रतिश्याय के अनन्तर यक्ष्मा प्रायः हो जाता है। कृमि–जौ के समान आकारवाले श्वेत एवं काले मुखवाले होते हैं, कोई २ तो मोटे पुष्ट जौ से भी बड़े एवं पुष्ट होते हैं, प्रारम्भ में नासा से गिरते हैं, २–३ दिन के पश्चात् तालु में छिद्र हो जाता है या उक्त कृमि ही खा खाकर छिद्र कर डालते हैं, उस छिद्र में से वे मुख में गिरने लगते हैं, नासा के अर्द्ध छिद्र से कण्ठ में गिरते हैं यह दशा बड़ी ही करुणा जनक होती है। परन्तु वैद्य को घबराना नहीं चाहिये। उचित चिकित्सा करने पर सब उपद्रव शान्त हो जाते हैं और तालु का छिद्र भी ५–७–१० दिन में रोपित हो जाता है॥

प्रक्लिद्यति पुनर्नासा पुनश्च परिशुष्यति ॥१४॥
मुहुरानह्यते चापि मुहुर्विव्रियते तथा।
निःश्वासोच्छ्वासदौर्गन्ध्यं तथा गन्धान्न वेत्ति च ॥१५॥
एवं दुष्टप्रतिश्यायं जानीयात् कृच्छ्रसाधनम्।
सर्व एव प्रतिश्याया नरस्याप्रतिकारिणः ॥१६॥
कालेन रोगजनना जायन्ते दुष्टपीनसाः।
बाधिर्यमान्ध्यमघ्राणं घोरांश्च नयनामयान्।
कासाग्निसादशोफांश्च वृद्धाः कुर्वन्ति पीनसाः ॥१७॥

दुष्टप्रतिश्याय—नासिका कभी तो गीली रहती है, और कभी सूख जाती है, कभी खुली रहती है और कभी बन्द हो जाती है। श्वास, प्रश्वास में दुर्गन्धि रहती हैं, रोगी गन्ध को नहीं पहचानता। इन लक्षणों से दुष्ट प्रतिश्याय को पहचाने, यह कष्टसाध्य है। इसमें—

"अरुचिर्विरसं वक्त्रं नासास्रावो रुजाऽरतिः।
शिरोगुरुत्वं क्षवथुः ज्वरश्चामस्य लक्षणम् ॥
तनुत्वमामलिङ्गानां शिरोनासास्यलाघवम्।
घनपीनकफत्वं च पक्वपीनसलक्षणम् ॥

स्राव जब पतला-बहता रहे उसे प्रतिश्याय, जब पुराना, घट्ट हो जाये उसे पीनस कहते हैं।

वि० मन्तव्य—दुष्टप्रतिश्याय—इसी का प्रसिद्ध नाम है "बिगड़ा हुआ जुकाम" ॥१४–१७॥

नवं प्रतिश्यायमपास्य सर्व-
मुपाचरेत् सर्पिष एव पानैः।
स्वेदैर्विचित्रैर्वमनैश्च युक्तैः
कालोपपन्नैरवपीडनैश्च ॥१८॥

नूतनप्रतिश्याय को छोड़कर शेष सब प्रतिश्यायों में घी का ही पान करावे। नाना प्रकार के स्वेद देवे, युक्ति से वमन और अवपीड़न नस्य देवे।

घृतपान का कारण—"पीनसानां च सर्वेषां हेतुर्यस्मात् समीरणः। कफपित्ताधिकेऽप्यस्मात् मारुतं समुपक्रमेत् ॥" तस्मादभिष्यन्दमुदीर्यमाणमुपाचरेदादित एव धीमान्। घृतं सहिङ्ग्वम्लकटूष्णसिद्धैः स्वेदैः विचित्रैः वमनैश्च तीक्ष्णैः ॥ कटुत्रिकं चित्रकतिन्तिडीकं तालीशपत्रं चविकाम्लसंज्ञम्। विचूर्णितं जीरकचूर्णयुक्तमेलाच्छदत्वक् सुरभीकृतं च। मिश्रं पुराणेन गुडेन दद्यात् तत् पीनसानां परिपाचनार्थम्। पक्वं गुडं चापि कटुत्रिकेण घृतप्रगाढं प्रलिहेत् सुखोष्णम् ॥ सर्पिर्गुडाभ्यां कटुकैश्च पक्वान् खादेच्च शक्तूनपिनातिशीतान्। गुडाधिकं चार्द्रकमादिशन्ति शुक्तोषितं तत् परिपाचनार्थम्। शिरोविरेकं वमनं च केचिदामेन दातव्यमिति ब्रुवन्ति ॥ संस्कृत में सूक्ति है "गुडेनवर्धितःश्लेष्मा सुखं छेत्तुमसाम्प्रतम् ॥" गुड़ से बढ़ाया कफ मुख से निकाला जा सकता है ॥१८॥

अपच्यमानस्य हि पाचनार्थं
स्वेदो हितोऽम्लैरहिमं च भोज्यम्।
निषेव्यमाणं पयसाऽऽर्द्रकं वा
संपाचयेदिक्षुविकारयोगैः ॥१९॥

अपक्व प्रतिश्याय को पकाने के लिये स्वेद देवे, अम्ल और उष्ण वस्तुओं का भोजन देवे। दूध के साथ आर्द्रक या ईख की बनी वस्तुओं (गुड़ आदि से) से इसको पकाये। (दूध से सोंठ खाये)।

इसके आगे—"ग्राम्याणि मांसानि दधीनि मद्यं माषान् कुलत्थान् लवणं कटूनि। अम्लं तथा चामलकमूलकं च तथा घनत्वं तरुणः प्रयाति ॥" यह भी पाठ है ॥१९॥

पक्वं घनं चाप्यवलम्बमानं
शिरोविरेकैरपकर्षयेत्तम्।
विरेचनास्थापनधूमपानै-
रवेक्ष्य दोषान् कवलग्रहैश्च ॥२०॥

जो कफ पक गया हो, घट्ट हो गया हो, नीचे लटकता हो, उस कफ को शिरोविरेचनों से खींचे। दोषों को देखकर विरेचन, आस्थापन, धूम, नस्य और कवलग्रह बरते ॥२०॥

निवातशय्यासनचेष्टनानि
मूर्ध्नो गुरूष्णं च तथैव वासः।
तीक्ष्णा विरेकाः शिरसः सधूमा
रूक्षं यवान्नं विजया च सेव्या ॥२१॥

और वायुरहित घर में बैठना उठना, सोना, रहना करे, शिर को गरम एवं भारी वस्त्र से लपेटा रहे। तीक्ष्ण शिरोविरेचन देवे, धूमपान करे। रूक्ष एवं जौ का तथा हरड़ का सेवन करे ॥२१॥

शीताम्बुयोषिच्छिशिरावगाह-
चिन्तातिरूक्षाशनवेगरोधान्।
शोकं च मद्यानि नवानि चैव
विवर्जयेत् पीनसरोगजुष्टः ॥२२॥

शीतल पानी, स्त्रीसंग, शिर के साथ स्नान, चिन्ता, अतिरूक्षभोजन, उपस्थित वेगों को रोकना, शोक, नूतन बनाये मद्य, इनका पीनस रोगी सेवन न करे ॥२२॥

छर्द्यङ्गसादज्वरगौरवार्त-
मरोचकारत्यतिसारयुक्तम्।
विलङ्घनैः पाचनदीपनीयै-
रुपाचरेत् पीनसिनं यथावत् ॥२३॥

वमन, अंगों का टूटना, ज्वर, भारीपन, अरोचक, बेचैनी या अतिसार से पीड़ित पीनस रोगी की चिकित्सा लंघन से, दीपन-पाचन रोगों से, रोगों के अनुसार करे ॥२३॥

बहुद्रवैर्वातकफोपसृष्टं
प्रच्छर्दयेत् पीनसिनं वयःस्थम्।
उपद्रवांश्चापि यथोपदेशं
स्वैर्भेषजैर्भोजनसंविधानैः॥
जयेद्विदित्वा मृदुतां गतेषु
प्राग्लक्षणेषूक्तमथादिशेच्च ॥२४॥

तरुण पीनस रोगी यदि वात, कफ से युक्त हो तो उसे अतिशय द्रववाले वमनों से वमन कराये। कथनानुसार उपद्रवों की उनकी अपनी औषधियों से भोजनों की कल्पना से चिकित्सा करे। दोषों को कोमल हुआ जानकर (घट जाने पर) आमप्रतिश्याय के लक्षणों में उनकी कही चिकित्सा करे ॥२४॥

वातिके तु प्रतिश्याये पिबेत् सर्पिर्यथाक्रमम्।
पञ्चभिर्लवणैः सिद्धं प्रथमेन गणेन च ॥२५॥
नस्यादिषु विधिं कृत्स्नमवेक्षेतार्दितेरितम्।

वातिक प्रतिश्याय में—स्नेहपानविधि से पाँचों नमक से सिद्ध या विदार्यादि प्रथमगण से सिद्ध घृत को पिये। नस्य आदि में अर्दित रोग की सम्पूर्ण चिकित्सा को करे ॥२५॥

पित्तरक्तोत्थयोः पेयं सर्पिर्मधुरकैः शृतम् ॥२६॥
परिषेकान् प्रदेहांश्च कुर्यादपि च शीतलान्।
श्रीसर्जरसपत्तंगप्रियङ्गुमधुशर्कराः ॥२७॥
द्राक्षामधूलिकागोजीश्रीपर्णीमधुकैस्तथा।
युज्यन्ते कवलाश्चात्र विरेको मधुरैरपि ॥२८॥

पित्त-रक्तजन्य प्रतिश्याय में—काकोल्यादि गण से सिद्ध घृत पिये। शीतल परिषेक, शीतल प्रदेह करे। राल, श्री (श्रीवेष्टक विरोजा), लालचन्दन, प्रियंगु, मधु, शर्करा, द्राक्षा, मधूलिका (गिलोय) गाजवां, गम्भारी, मुलैठी इनसे सिद्ध घृत देवे। मधुर द्रव्यों से कवल और विरेचन देवे ॥२६-२८॥

धवत्वक्त्रिफलाश्यामातिल्वकैर्मधुकेन च।
श्रीपर्णीरजनीमिश्रैः क्षीरे दशगुणे पचेत् ॥२९॥
तैलं कालोपपन्नं तन्नस्यं स्यादनयोर्हितम्।

धवन की छाल, त्रिफला, कालीनिशोथ, तिल्वक, (लोध) मुलैठी, गम्भारी, हल्दी, इनसे, (तेल से) दस गुणे दूध में तैल सिद्ध करे। निराम हो जाने पर पित्त-रक्तजन्य प्रतिश्याय में इससे नस्य देवे। २९॥

कफजे सर्पिषा स्निग्धं तिलमाषविपक्वया ॥३०॥
यवाग्वा वामयेद्वान्तः कफघ्नं क्रममाचरेत्।
उभे बले बृहत्यौ च विडंगं सत्रिकण्टकम् ॥३१॥
श्वेतामूलं सदाभद्रां वर्षाभूं चात्र संहरेत्।
तैलमेभिर्विपक्वं तु नस्यमस्योपकल्पयेत् ॥३२॥
सरलाकिणिहीदारुनिकुम्भेङ्गुदिभिः कृताः।
वर्तयश्चोपयोज्याः स्युर्धूमपाने यथाविधि ॥३३॥

कफजन्य प्रतिश्याय में—रोगी को घी से स्निग्ध करके, तिल और उड़द से बनाई यवागू से वमन कराये और वमन के पीछे कफनाशक अन्न संसर्जन (पेया आदि) विधि बरते। बला, अतिबला, कटेरी, बड़ी कटेरी, वायविडंग, त्रिकटु, अपराजितामूल, गम्भारी, पुनर्नवा इनसे सिद्ध किया तैल इस रोगी को नस्य में देवे। चीड़, चिरचिटा, देवदारु, दन्ती, हिंगोट इनसे बनाई वर्त्तियाँ विधिपूर्वक धूमपान में बरतनी चाहिये ॥३०-३३॥

सर्पींषि कटुतिक्तानि तीक्ष्णधूमाः कटूनि च।
भेषजान्युपयुक्तानि हन्युः सर्वप्रकोपजम् ॥३४॥
रसाञ्जने सातिविषे मुस्तायां भद्रदारुणि।
तैलं विपक्वं नस्यार्थे विदध्यादत्र बुद्धिमान् ॥३५॥

कटु-तिक्त द्रव्यों से सिद्ध घृत, तीक्ष्णधूम, कटु औषधियों का उपयोग सन्निपातजन्य प्रतिश्याय को नष्ट कर देता है। इस प्रतिश्याय में बुद्धिमान् वैद्य-रसौत, अतीस, मुस्ता, देवदारु से सिद्ध तैल नस्य के लिये बरते ॥३४,३५॥

मुस्ता तेजोवती पाठा कट्फलं कटुका वचा।
सर्षपाः पिप्पलीमूलं पिप्पल्यः सैन्धवाग्निकौ ॥३६॥

तुत्थं करजबीजं च लवणं भद्रदारु च ।
एतैः कृतं कषायं तु कवले संप्रयोजयेत् ॥३७॥
हितं मूर्धविरेके च तैलमेभिर्विपाचितम् ।

मुस्ता, तेजबल, पाठा, कट्फल, कटुकी, बच, सरसों, पिप्पलीमूल, पिप्पली, सैन्धव, चित्रक, तुत्थ, करंजबीज, सैन्धव, देवदारु इनका कषाय कवल में बरते। इनसे सिद्ध किया तेल शिरोविरेचन में बरते ॥३६,३७॥

क्षीरमर्धजले क्वाथ्यं जाङ्गलैर्मृगपक्षिभिः ॥३८॥
पुष्पैर्विमिश्रं जलजैर्वातघ्नैरौषधैरपि ।
हिमे क्षीरावशिष्टेऽस्मिन् घृतमुत्पाद्य यत्नतः ॥३९॥
सर्वगन्धसितानन्तामधुकं चन्दनं तथा ।
आवाप्य विपचेद्भूयो दशक्षीरं तु तद्घृतम् ॥४०॥
नस्ये प्रयुक्तमुद्रिक्तान् प्रतिश्यायान् व्यपोहति ।
यथास्वं दोषशमनैस्तैलं कुर्याच्च यत्नतः ॥४१॥

दूध में आधा पानी मिलाकर, जांगल पशु-पक्षियों के मांसों से कमल आदि जलजन्य पुष्पों से विदारिगन्धादि वातनाशक द्रव्यों से पकाना चाहिये। जब केवल दूध मात्र रह जाये, तब इसे मथकर युक्ति से घी निकाल ले। इस घृत में दसगुणा दूध, एलादिगण के सुगन्धित द्रव्य, शर्करा, सारिवा, मुलैहठी, चंदन का प्रक्षेप देकर घृत करे। यह घृत नस्य में बरतने पर बढ़े हुए प्रतिश्यायों को नष्ट कर देता है। दोषों के अपने अनुसार वात-पित्त-कफहर द्रव्य समूहों से तैल को विधिपूर्वक बनाये ॥३८-४१॥

समूत्रपित्ताश्चोद्दिष्टाः क्रियाः क्रमिषु योजयेत् ।
यापनार्थं क्रमिघ्नानि भेषजानि च बुद्धिमान् ॥४२॥

क्रमिनाशक जो चिकित्सा कही है, उसे मूत्र और पित्त के साथ मिलाकर, तथा सुरसादिगण क्रमिघ्ननाशक चिकित्सा को क्रमिरोग के यापना के लिये बुद्धिमान् बरते ॥४२॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे प्रतिश्यायप्रतिषेधो नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥२४॥

पञ्चविंशतितमोऽध्यायः

अथातः शिरोरोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे शिरोरोग विज्ञानीय अध्याय का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था।

वि० मन्तव्य—इस अध्याय में शिर के भीतरी रोगों का वर्णन है शिर के बाहरी रोग अरुंषिका आदि का वर्णन क्षुद्र रोगों में किया गया है। इस प्रकरण में रोग शब्द का तात्पर्य केवल "वेदना" शूल या दर्द से है। शिरः शूलके ही निम्नलिखित ११ भेद हैं ॥१,२॥

शिरो रुजति मर्त्यानां वातपित्तकफैस्त्रिभिः ।
सन्निपातेन रक्तेन क्षयेण क्रमिभिस्तथा ॥३॥
सूर्यावर्तानन्तवाताधर्वभेदकशङ्खकैः ।
एकादशप्रकारस्य लक्षणं संप्रवक्ष्यते ॥४॥

वात, पित्त, कफ, इन तीन से, सन्निपात से, रक्त के क्षय से, क्रमियों से, सूर्यावर्त्त, अनन्त वात, अर्धावभेदक, शंखक से इन ग्यारह प्रकार से शिर में वेदना होती है, इसके लक्षणों को कहेंगे। ३-४ चरक—

"पृथग् दृष्टास्तु ये पंच संग्रहे परमर्षिभिः ।
शिरोगदांस्तान् शृणु मे यथास्वैः हेतुलक्षणैः ।
संधारणात् दिवास्वप्नात् रात्रौ जागरणात् मदात् ।
उच्चैः भाष्यादवश्यायात् प्राग्वातादतिमैथुनात् ॥
गन्धादसात्म्यादाघ्रातात् रजोधूमहिमातपात् ।
गुर्वम्लहरितादानादतिशीताम्बुसेवनात् ॥
शिरोभिघातात् दुष्टाभात् रोदनात् वाष्पनिग्रहात् ।
वातादयः प्रकुप्यन्ति शिरस्यस्रं प्रदुष्यति ॥

सूर्यावर्त्त का विपरीत सूर्यावर्त्तक विपर्यय भी एक रोग है—यथा—"तत्र वातानुगं पित्तं चित्तं शिरसि तिष्ठति। मध्याह्ने तेजसाऽर्कस्य तद् विवृद्धं शिरोरुजम्। करोति पैत्तिकीं घोरां संक्षाम्यति दिनक्षये। अस्तं गते प्रभाहीने सूर्ये वायुर्विवर्धते। पित्तं शान्तिमवाप्नोति ततः शाम्यति वेदना। एषपित्तानिलकृतः सूर्यावर्त्तविपर्ययः॥ "दूसरे—" वातपित्तात् पुरो जाता रुजाऽन्यैत्यपराह्नतः। सूर्यावर्त्तः सतु प्रोक्तो विपरीते विपर्ययः॥"—जिस प्रकार चातुर्थक ज्वर का चातुर्थक विपर्यय ज्वर होता है, उसी प्रकार सूर्यावर्त्त का सूर्यावर्त्तकविपर्यय होता है। कई लोग शीर्षक एक रोग मानते हैं—यथा—"आक्षुभ्यते कम्पति चापि मूर्धा, सर्पन्ति मध्ये च पिपीलका वा। स्कन्धः शिरश्चाप्यवघूर्णते च मूर्च्छा प्रलापश्च तथैव निद्रा॥ संज्ञाप्रकाशं जनयेद् विनिद्रां प्रातस्ततः पश्यति चातिचित्रम्। गृह्णाति मन्ये हृदयं च रूपैः सर्वैरमीभिः समभिद्रुतस्तु। तिस्रोहिरात्रिर्नसजातु जीवेत् तं शीर्षकं नैप्रवदन्ति रोगम्॥" डल्हन टीका से उद्धृत।

यस्यानिमित्तं शिरसो रुजश्च
भवन्ति तीव्रा निशि चातिमात्रम् ।
बन्धोपतापैश्च भवेद्विशेषः
शिरोभितापः स समीरणेन ॥५॥

जिस पुरुष में बिना किसी कारण के या थोड़े से भी कारण से शिर में दर्द हो जाता है, और रात में बहुत अधिक बढ़ जाता है, बांधने या सेकने से जो घट जाता हो, वह शिरोरोग वायु के कारण से होता है ॥५॥

यस्योष्णमङ्गारचितं यथैव
दूयेत धूप्येत शिरोक्षिनासम् ।

शीतेन रात्रौ च भवेद्विशेषः

शिरोभितापः स तु पित्तकोपात् ॥६॥

जिस रोगी का शिर गरम, अङ्गारों से भरा जैसा (उष्ण) हो, शिर, आंख, नाक जलती हो या धुंए के समान धुआं सा निकलता प्रतीत हों, शीतोपचार से या रात्रि में जो घट जाता हो, वह शिरोरोग पित्त के प्रकोप से होता है ॥६॥

शिरोगलं यस्य कफोपदिग्धं

गुरु प्रतिष्टब्धमथो हिमं च ।

शूनाक्षिकूटं वदनं च यस्य

शिरोभितापः स कफप्रकोपात् ॥७॥

जिस रोगी का शिर और गला कफ से भरा हुआ हो, भारी एवं स्थिर तथा ठण्डा हो, अक्षिकूट और मुख पर सूजन हो, यह शिरोरोग कफ के प्रकोप से होता है ॥७॥

शिरोभितापे त्रितयप्रवृत्ते

सर्वाणि लिङ्गानि समुद्भवन्ति ।

सन्निपातशिरोरोग में तीनों दोषों के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं ।

रक्तात्मकः पित्तसमानलिङ्गः

स्पर्शासहत्वं शिरसो भवेच्च ॥८॥

रक्तजन्यशिरोरोग में पित्तज शिरोरोग के समान लक्षण रहते हैं, स्पर्श को सहन नहीं करता (इसमें आवाज भी रोगी सहन नहीं करता--बोलना अच्छा नहीं लगता) ॥८॥

वसाबलासक्षतसंभवानां

शिरोगतानामिह संक्षयेण ।

क्षयप्रवृत्तः शिरसोऽभितापः

कष्टो भवेदुग्ररुजोऽति मात्रम् ॥९॥

संस्वेदनच्छर्दन धूमनस्यै-

रसृग्विमोक्षैश्च विवृद्धिमेति ।

आघात के कारण शिर में से वसा, कफ (देह स्नेह, मस्तिष्क-मेद-मज्जा आदि) के क्षीण हो जाने से, क्षयजन्य शिरोरोग होता है, इसमें अतिशय तीव्रवेदना रहती है । यह वेदना स्वेदन, वमन, धूम, नस्य, रक्तमोक्षण आदि से बढ़ जाती है ॥९॥

निस्तुद्यते यस्य शिरोऽतिमात्रं

संभक्ष्यमाणं स्फुरतीव चान्तः ॥१०॥

घ्राणाच्च गच्छेत्सलिलं सरक्तं

शिरोभितापः कृमिभिः स घोरः ।

जिस रोगी के शिर में अतिशय तीव्र वेदना होती हो (चुभती हुई वेदना) शिर के अन्दर खाने के समान या स्फुरण (रेंगने के--चलने के) समान अनुभव होता हो, नाक से ईषत् रक्त मिला पानी बहता हो, यह शिरोरोग कृमिजन्य होता है चरक में—

तिलक्षीरगुडाजीर्णपूति संकीर्ण भोजनात् ।

क्लेदोऽसृक्ककफमांसानां दोषलस्योपजायते ।

ततःशिरसि संक्लेदात् कृमयःपापकर्मणः ।

जनयन्ति शिरोरोगं जातबीभत्सलक्षणाः ।

व्यधच्छेदरुजाकण्डू शोफदौर्गत्यदुःखितम् ॥

कृमिरोगातुरं विद्यात् कृमीणां दर्शनेन च॥

वि० मन्तव्य—देखिये अ० २४ के श्लो० १३ का वक्तव्य ॥१०॥

सूर्योदयं या प्रति मन्दमन्दा-

मक्षिभ्रुवं रुक् समुपैति गाढम् ॥११॥

विवर्धते चांशुमता सहैव

सूर्यापवृत्तौ विनिवर्तते च ।

शीतेन शान्तिं लभते कदाचि-

दुष्णेन जन्तुः सुखमाप्नुयाच्च ॥१२॥

तं भास्करावर्तमुदाहरन्ति

सर्वात्मकं कष्टतमं विकारम् ।

सूर्योदय के साथ-साथ धीरे-धीरे—आंख, भ्रुवों से मन्द-मन्द वेदना आरम्भ होकर सूर्य के बढ़ने के साथ साथ तीव्र होती जाती हो, तथा सूर्य के घटने पर शान्त होती हो, तथा कभी कभी शीतल उपचार से और कभी उष्ण उष्ण उपचार से रोगी को सुख मिलता हो, इस वेदना को सूर्यावर्त्त कहते हैं। यह रोग सन्निपातजन्य और अतिकष्टदायक है । (गरम से शान्ति सूर्यावर्त्तविपर्यय में होती है) ॥

वक्तव्य—रात में क्यों दर्द नहीं होता—"स्वभाव शीता तमसोऽभिमूला रात्रिस्तयोद्भूतकफेन मार्गे । रुद्धे मरुत्कोपमियात् प्रभाते रुजं करोत्यत्र शिरोभितापे । मध्याह्नसूर्यातपतापयोगात् कफे विलीने मरुति प्रपन्ने । स्वमार्गमायाति तदा दिनान्ते प्रशान्तिमावर्त्त इहार्क पूर्वे ॥" चरक में—सि० अ० ९

संधारणात् अजीर्णाद्यैः मस्तिष्कं रक्तमारुतौ ।

दुष्टौ दूषयतस्तच्च दुष्टं ताभ्यां विमूर्छितम् ॥

सूर्योदयांशुसंतापात् दुष्टं विष्यन्दते शनैः ।

ततो दिने शिरः शूलं दिनवृद्ध्या च वर्द्धते ।

दिनक्षये ततः स्थाने मस्तिस्के संप्रशाम्यति ।

सूर्यावर्त्तः स एव स्यात् ॥११,१२॥

दोषास्तु दुष्टास्त्रय एव मन्यां

संपीड्य घाटासु रुजां सुतीव्राम् ॥१३॥

कुर्वन्ति साक्षिभ्रुवि शङ्खदेशे

स्थितिं करोत्याशु विशेषतस्तु ।

गण्डस्य पार्श्वे तु करोति कम्पं

हनुग्रहं लोचनजांश्च रोगान् ॥१४॥

अनन्तवातं तमुदाहरन्ति

दोषत्रयोत्थं शिरसो विकारम् ।

वातादि तीनों दोष कुपित होकर मन्या को दबाकर गले के पिछले भाग में (गुद्दी पर) तीव्र वेदना को करते हैं। विशेषकर ये दोष आंख, भ्रू और शंख देश में स्थित रहते हैं, इसमें गण्ड के पार्श्व में कम्पन होता है, हनुग्रह एवं आंख के रोग होते हैं। इस रोग को अनन्तवात कहते हैं, यह रोग त्रिदोषजन्य है।

चरक में—"उपवासातिशोकातिरूक्षशीताल्पभोजनैः। दुष्टा दोषास्त्रयो मन्यां पश्चाद् घाटासु वेदनाम्॥ तीव्रां कुर्वन्ति नासाक्षि भ्रूशंखेष्ववतिष्ठते। स्पन्दनं गण्डपार्श्वस्य नेत्ररोगं हनुग्रहम्॥ सोऽनन्तवातः॥१३,१४॥

यस्योत्तमाङ्गार्धमतीव जन्तोः
संभेदतोदभ्रमशूलजुष्टम्॥१५॥
पक्षाद्दशाहादथवाऽप्यकस्मा-
त्तस्यार्धभेदं त्रितयाद्व्यवस्येत्।

जिस रोगी के आधे सिर में अतिशय भेद पीड़ा (फटने की सी) तोद (चुभने का सा दर्द), भ्रम एवं शूल होता है, और बिना कारण के ही पन्द्रह या दस दिन में आक्रमण होता रहता है, इस रोग को अर्धभेद (आधासीसी) कहते हैं, यह रोग तीनों दोषों से होता है। चरकमें—

रूक्षात्यध्यशनात्पूर्वं वातावश्यायमैथुनैः
वेगसन्धारणायास व्यायामैः कुपितोऽनिलः॥
केवलःसकफोवाऽर्धं गृहीत्वा शिरसोऽनिलः।
मन्याभ्रूशंखकर्णाक्षि ललाटार्द्धे च वेदनाम्।
शस्त्राशनिनिभां कुर्यात् तीव्रां सोऽर्धावभेदकः।
नयनं वाऽथश्रोत्रं वा अति वृद्धे विनाशयेत्॥

वि० मन्तव्य—कभी २ सूर्यावर्त्त तथा अर्धावभेदक दोनों का रोगसंकर भी होता है॥१५॥

शङ्खाश्रितो वायुरुदीर्णवेगः
कृतानुयात्रः कफपित्तरक्तैः॥१६॥
रुजः सुतीव्राः प्रतनोति मूर्ध्नि
विशेषतश्चापि हि शङ्खयोस्तु।
सुकष्टमेनं खलु शङ्खकाख्यं
महर्षयो वेदविदः पुराणाः॥१७॥
व्याधिं वदन्त्युद्गतमृत्युकल्पं
भिषक्सहस्रैरपि दुर्निवारम्॥१८॥

उदीर्ण वेगवान् शंख में आश्रित वायु-कफ, पित्त, रक्त का अनुसरण करके, शिर में विशेषकर शंख प्रदेश में अतितीव्र वेदना को उत्पन्न करता है। वेदवित् पुरातन महर्षि इस अतिशय कष्टदायक रोग को शंखक कहते हैं। यह रोग मृत्यु के समान है, हजारों वैद्य भी इसको (जल्दी) अच्छा नहीं कर सकते। इसी से चरक में कहा है कि—

रक्तपित्तानिलादुष्टाः शंखदेशे विमूर्च्छिताः।
तीव्ररुग्दाहरागं हि शोफं कुर्वन्ति दारुणम्।
सशिरो विषवद्वेगी निरुध्याशु गलं तथा।
त्रिरात्राज्जीवितं हन्ति शंखको नाम नामतः॥
जीवेत् त्र्यहं चेद् भैषज्यं प्रत्याख्यायास्य कारयेत्।
शिरोविरेकसेकादि सर्वंवीसर्पनुच्च यद्॥
चरक—सि० अ० ९॥१६-१८॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे शिरोरोगविज्ञानीयो नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥२५॥

षड्विंशतितमोऽध्यायः

अथातः शिरोरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः॥२॥

अब इसके आगे शिरोरोगप्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे— जैसा भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था॥१,२॥

वातव्याधिविधिः कार्यः शिरोरोगेऽनिलात्मके।
पयोनुपानं सेवेत घृतं तैलमथापि वा॥३॥

वातजन्यशिरोरोग में वातव्याधि की चिकित्सा सम्पूर्णरूप में (अन्तः और बाह्य दोनों रूपों में) करनी चाहिये। दूध के अनुपान से घृत का (पित्त का अनुबन्ध वायु के साथ होनेपर) एवं तैल का (कफ का अनुबन्ध होने पर) सेवन करे॥३॥

मुद्गान् कुलत्थान्माषांश्च खादेच्च निशि केवलान्।
कटूष्णांश्च ससर्पिष्कानुष्णं चानु पयः पिबेत्॥४॥
पिबेद्वा पयसा तैलं तत्कल्कं वाऽपि मानवः।

रात्रि में मूंग, उड़द या कुलथी को अकेला (तीनों में से किसी एक को) खाये। इनको कटु और उष्ण द्रव्यों से संस्कृत करके, प्रचुर घी के साथ खाकर पीछे दूध पीये। अथवा दूध के साथ तिल तैल, या तिल का कल्क पीये॥४॥

वातघ्नसिद्धैः क्षीरैश्च सुखोष्णैः सेकमाचरेत्॥५॥
तत्सिद्धैः पायसैर्वाऽपि सुखोष्णैर्लेपयेच्छिरः।
स्विन्नैर्वा मत्स्यपिशितैः कृशरैर्वा ससैन्धवैः॥६॥
चन्दनोत्पलकुष्ठैर्वा सुश्लक्ष्णैर्मगधायुतैः।
स्निग्धस्य तैलं नस्यं स्यात् कुलीररससाधितम्॥७॥
वरुणादौ गणे क्षुण्णे क्षीरमर्धोदकं पचेत्।
क्षीरशेषं च तन्मथ्यं शीतं सारमुपाहरेत्॥८॥
ततो मधुरकैः सिद्धं नस्ये तत् पूजितं हविः।
तस्मिन् विपक्वे क्षीरे तु पेयं सर्पिः सशर्करम्॥९॥
धूमं चास्य यथाकालं स्नैहिकं योजयेद्भिषक्।

भद्रदार्व्यादि वातघ्न द्रव्यों से सिद्ध दूध से सुहाता हुआ गरम-गरम धारा सेक शिर पर करे। वातघ्न सिद्ध दूध में बनाई खीर से (अथवा मावे से) सुहाता गरम-गरम लेप सिर पर करे। मछली के मांस को स्विन्न करके या तिल तण्डुल माष से बनी यवागू को सैन्धव मिलाकर गरम-गरम लेप करे। चंदन,

कमल, कूठ, पिप्पली इनको बारीक पीसकर सिर पर लेप करे। स्निग्ध हुए पुरुष को केंकडे के मांसरस में सिद्ध किया तैल नस्य में देवे। वरुणादिगण को कूटकर इसमें आधा पानी मिलाया दूध क्षीरपाकविधि से पकाये। इस दूध में से मथकर घी निकाल ले। इस घी को काकोल्यादिगण से सिद्ध करके नस्य में बरते। वरुणादिगण में सिद्ध किये दूध में घी और शर्करा मिलाकर पीये। अवस्था के अनुसार मधूच्छिष्ट आदि स्नेह द्रव्यों से बनाये स्नैहिक धूम वैद्य बरते ॥५-९॥

पानाभ्यञ्जननस्येषु वस्तिकर्मणि सेचने ॥१०॥
विदध्यात्त्रैवृतं धीमान् बलातैलमथापि वा।

पान, अभ्यङ्ग, नस्य या बस्तिकर्म में त्रैवृत स्नेह (अपतानक रोग में कहा) या बला (मूढगर्भ में कहा) बुद्धिमान् वैद्य करते ॥१०॥

भोजयेच्च रसैः स्निग्धैः पयोभिर्वा सुसंस्कृतैः ॥११॥

स्निग्ध मांस रसों के साथ या वातहर द्रव्य साधित दूध भोजन देवे ॥११॥

पित्तरक्तसमुत्थानौ शिरोरोगौ निवारयेत्।
शिरोलेपैः ससर्पिष्कैः परिषेकैश्च शीतलैः ॥१२॥
क्षीरेक्षुरसधान्याम्लमस्तुक्षौद्रसिताजलैः।

पित्तजन्य एवं रक्तजन्य शिरोरोग में घृत मिश्रित लेप सिर पर करे, शीतलद्रव्यों से परिषेक करे। यथा-दूध, ईख का रस, काञ्जी, मस्तु, सिता-जल (शर्बत) से परिषेक करे ॥१२॥

नलवञ्जुलकह्लारचन्दनोत्पलपद्मकैः ॥१३॥
वंशशैवलयष्ट्याह्वमुस्ताम्भोरुहसंयुतैः।
शिरःप्रलेपैः सघृतैर्वैसर्पैश्च तथाविधैः ॥१४॥
मधुरैश्च मुखालेपैर्नस्यकर्मभिरेव च।

लेप के लिये नड़सर, वेतस, लालकमल, चन्दन, नीलोफर, पद्माख, बांस, शैवाल, मुलैहठी, मुस्ता, कमल, इनको घी में मिलाकर लेप करे, अथवा रक्त, पित्तजन्य विसर्प में बरते जानेवाले (उशीर लामज्जक, चन्दन आदि) द्रव्यों से लेप करे। काकोल्यादि मधुर द्रव्यों से मुख पर लेप करे तथा मधुर द्रव्यों से संस्कृत नस्य देवे, इनसे पित्त-रक्तजन्य शिरोरोग को शान्त करे ॥१३,१४॥

आस्थापनैर्विरेकैश्च पथ्यैश्च स्नेहबस्तिभिः ॥१५॥
क्षीरसर्पिर्हितं नस्यं वसा वा जाङ्गला शुभा।

आस्थापन, विरेचन (मधुर द्रव्यों से सिद्ध) हितकारी वस्तु (आहार-बिहार आदि), तथा स्नेहवस्तियों से पित्तरक्तजन्य शिरोरोग शान्त करे। दूध को मथकर निकाले घी का नस्य देवे। अथवा जांगल पशु-पक्षियों की वसा नस्य में उत्तम है॥

उत्पलादिविपक्वेन क्षीरेणास्थापनं हितम् ॥१६॥
भोजनं जाङ्गलरसैः सर्पिषा चानुवासनम्।
मधुरैः क्षीरसर्पिस्तु स्नेहने च सशर्करम् ॥१७॥

उत्पलादिगण से सिद्ध दूध से आस्थापन देना उत्तम है, जांगल मांसरसों से भोजन देवे, काकोल्यादिमधुरगण से संस्कृत घी से अनुवासन देवे। दूध को मथकर निकाला घी, शर्करा को मिलाकर स्नेहन नस्य में या स्नेहन वस्ति में देवे ॥१६,१७॥

पित्तरक्तघ्नमुद्दिष्टं यच्चान्यदपि तद्धितम्।

पान-आलेपन आदि में रक्त पित्तघ्न जो अन्य विधि कही है, वह भी यहाँ बरते।

कफोत्थितं शिरोरोगं जयेत् कफनिवारणैः ॥१८॥
शिरोविरेकैर्वमनैस्तीक्ष्णैर्गण्डूषधारणैः।
अच्छं च पाययेत्सर्पिः स्वेदयेच्चाप्यभीक्ष्णशः ॥१९॥
शिरो मधूकसारेण स्निग्धं चापि विरेचयेत्।
इङ्गुदस्य त्वचा वाऽपि मेषश्रृङ्गस्य वा भिषक् ॥२०॥

कफजन्य शिरोरोग को कफनाशक शिरोविरेचनादि द्रव्यों से शान्त करे इसके शिरोविरेचन, तीक्ष्णवमन, तीक्ष्णगण्डूष मुख में रखे। शुद्ध घी पिलाये, बार-बार स्वेद देवे। स्निग्ध हुए रोगी के सिर को मधुक सार (महुए की लकड़ी के चूर्ण से), हिंगोट की छाल के या मेषश्रृंगी के चूर्ण से वैद्य विरेचित करे।

आभ्यामेव कृतां वर्तिं धूमपाने प्रयोजयेत्।
घ्रेयं कट्फलचूर्णं च कवलाश्च कफापहाः ॥२१॥
सरलाकुष्ठशार्ङ्गेष्टादेवकाष्ठैः सरोहिषैः।
क्षारपिष्टैः सुलवणैः सुखोष्णैर्लेपयेच्छिरः ॥२२॥

हिंगोट की छाल और मेषश्रृङ्गी से बनाई वर्त्ति धूमपान में देवे। कट्फल का चूर्ण सूंघे, कफहर द्रव्यों से बनाये कवल धारण करे। चीड़, कूठ, शार्ङ्गेष्टा (छुई मुई), देवदारु, रोहिषघास, इनको क्षारोदक से पीसकर, थोड़ा नमक मिला, सुहाता गरम गरम शिर पर लेप करे ॥२१,२२॥

यवषष्टिकयोश्चान्नं व्योषक्षारसमायुतम्।
पटोलमुद्गकौलत्थैर्मात्रावद्भोजयेद्रसैः ॥२३॥

सोंठ, मरिच, पीपल, यवक्षार से मिश्रित जौ और सांठी का भोजन पटोल, मूँग, कुलत्थी इनके यूष के साथ, मात्रा में खिलाये ॥२३॥

शिरोरोगे त्रिदोषोत्थे त्रिदोषघ्नो विधिर्हितः।

त्रिदोषजन्य शिरोरोग में त्रिदोषनाशक विधि बरते।

सर्पिःपानं विशेषेण पुराणं वा दिशन्ति हि ॥२४॥

इसमें विशेषकर पुरातन घृत (दस साल पुराने) का पान उत्तम कहा जाता है ॥२४॥

क्षयजे क्षयमासाद्य कर्तव्यो बृंहणो विधिः।
पाने नस्ये च सर्पिः स्याद्वातघ्नमधुरैः श्रृतम् ॥२५॥
क्षयकासापहं चात्र सर्पिः पथ्यतमं विदुः।

क्षयजन्य शिरोरोग में रक्त आदि धातु के क्षय का निश्चय करके बृंहण चिकित्सा करनी चाहिये। वातघ्न

(भद्रदार्व्यादि), तथा काकोल्यादि मधुर द्रव्यों से सिद्ध घृत पान और नस्य में उत्तम है। क्षयकास नाशक घृत (कुलीर शुक्ति चटकैणलावान्-आदि से कहा) इसमें अतिशय पथ्य है।

वि० मन्तव्य—क्षयजनित शिरोरोग में-बृंहणविधि अर्थात् बादाम का हलुआ, खीर, मालपूआ, अखरोट, बादाम आदि सूखे फल एवं खशखश, मगद आदि पुष्टिकारक विशेषतः मस्तिष्क को पुष्ट करनेवाले आहारों का प्रयोग करे ॥२५॥

क्रिमिभिर्भक्ष्यमाणस्य वक्ष्यते शिरसः क्रिया ॥२६॥
नस्यं हि शोणितं दद्यात्तेन मूर्च्छन्ति जन्तवः।
मत्ताः शोणितगन्धेन समायान्ति यतस्ततः ॥२७॥

जिस रोगी के शिर को कृमि खाते हों—उसकी चिकित्सा के लिये रक्त का नस्य देवे इसमें कृमि मदयुक्त हो जाते हैं, रक्त के गन्ध से मत्त होकर कृमि इधर-उधर से नाक से बाहर आ जाते हैं।

वक्तव्य—"रक्त को देखकर या उसकी गन्ध से कई पुरुषों को मूर्च्छा आ जाती है, इसी प्रकार कृमि भी रक्त की तीव्र गन्ध से मूर्च्छित हो जाते हैं। इसी से कहा है—

पृथिव्यम्भस्तमोरूपं रक्तगन्धश्च तन्मयः।
तस्माद् रक्तस्य गन्धेन मूर्च्छन्ति भुवि मानवाः—सु० ॥

तेषां निर्हरणं कार्यं ततो मूर्धविरेचनैः।
ह्रस्वशिग्रुकबीजैर्वा कांस्यनीलीसमायुतैः ॥२८॥
क्रिमिघ्नैरवपीडैश्च मूत्रपिष्टैरुपाचरेत्।
पूतिमत्स्ययुतान् धूमान् क्रिमिघ्नांश्च प्रयोजयेत् ॥२९॥

इसके पीछे कृमियों को शिरोविरेचन से बाहर करना चाहिये। इसके लिये छोटा सुहाजना (कटुसहजन) के बीज, कांस्य नील मिलाकर नस्य देवे (या विडंग, मरिच, अपामार्ग आदि से देवे) कृमिनाशक द्रव्यों को मूत्र में पीसकर अवपीडन नस्य देवे। सड़ी मछली (सूखी मछली-जो नमक में रखकर बेची जाती है। एवं कृमिघ्न वस्तुओं से मिलाकर धूम देवे।

वि० मन्तव्य—उक्त उपायों से कृमि निकल जाते हैं और निम्नलिखित कृमिनाशक विविध अन्नों एवं पानों से उनकी उत्पत्ति रुक जाती है ॥२८,२९॥

भोजनानि क्रिमिघ्नानि पानानि विविधानि च।

कृमि प्रतिषेध में बताये धान्याम्ल आदि कृमिघ्न-नाना-प्रकार के भोजन, पान देवे।

सूर्यावर्ते विधातव्यं नस्यकर्मादिभेषजम् ॥३०॥
भोजनं जाङ्गलप्रायं क्षीरान्नविकृतिर्घृतम्।

सूर्यावर्त्त में नस्य आदि चिकित्सा करे। भोजन में मुख्यतः जांगलमांस, दूध से बने खाद्य पदार्थ, घृत देवे।

वि० मन्तव्य—निरामिषभोजियों के लिये-खीर, रबड़ी आदि दुग्ध के पदार्थ देवे परन्तु वे अत्यन्त शीतल हों, यथा-खीर आदि को रात्रि में बनाकर ओस में धर दिया जाय अथवा जिलेबी को दूध अथवा गुलाब जल में भिगोकर ओस में धर दिया जाय और प्रातः खाया जाय ॥३०॥

तथाऽर्धभेदके व्याधौ प्राप्तमन्यच्च यद्भवेत् ॥३१॥
शिरीषमूलकफलैरवपीडोऽनयोर्हितः।
वंशमूलककर्पूरैरवपीडं प्रयोजयेत् ॥३२॥
अवपीडो हितश्चात्र वचामागधिकायुतः।
मधुकेनावपीडो वा मधुना सह संयुतः ॥३३॥
मनःशिलावपीडो वा मधुना चन्दनेन वा।

अर्धावभेदक में भी यही उपचार करे, तथा स्नेह, सिरावेध, अवपीडक आदि जो योग्य उपचार हो वह भी करे। सूर्यावर्त्त और अर्धावभेदक में—शिरीषमूल एवं फल से अवपीडन नस्य देवे। बांस की जड़ और कपूर इनसे अवपीडन नस्य दे। पिप्पली और बच से अवपीडन नस्य देवे। मुलैहठी का रस मधु मिलाकर अवपीडन रूप से देवे। मुलैहठी, मैनसिल और मधु से या मुलैहठी, चन्दन और मधु से अवपीडन नस्य दे ॥

तेषामन्ते हितं नस्यं सर्पिर्मधुरसान्वितम् ॥३४॥

अवपीडन नस्यों के पीछे काकोल्यादिगण के रस से सिद्ध घृत का नस्य देवे।

वि० मन्तव्य—अर्द्धावभेदक में भी शीतल आहार ही लाभप्रद होता है देखिये श्लो० ३० का वि० व० ॥३४॥

सारिवोत्पलकुष्ठानि मधुकं चाम्लपेषितम्।
सर्पिस्तैलयुतो लेपो द्वयोरपि सुखावहः ॥३५॥
एष एव प्रयोक्तव्यः शिरोरोगे कफात्मके।

सारिवा, कमल, कूठ, मुलैहठी इनको कांजी से पीसकर घी और तैल मिलाकर सूर्यावर्त्त, अर्धावभेदक में शिर पर लेप करे। कफजन्य शिरोरोग में भी यही उपचार करे ॥३५॥

अनन्तवाते कर्तव्यः सूर्यावर्तहरो विधिः ॥३६॥
सिराव्यधश्च कर्तव्योऽनन्तवातप्रशान्तये।
आहारश्च विधातव्यो वातपित्तविनाशनः ॥३७॥
मधुमस्तकसंयावघृतपूरैश्च भोजनम्।

अनन्तवात में सूर्यावर्त्त नाशक विधि बरते। अनन्तवात की शान्ति के लिये सिरावेधविधि करनी चाहिये। वात-पित्त नाशक आहार देवे। इसके लिये मधु मस्तक (पूरनपोली या शहद की पोली जिसमें शहद ही भरा होता है), संयाव (लप्सी) घृतपूर (घेवर) देवे।

वि० मन्तव्य—अनन्तवात में भी वात पित्त विनाशक विधि करे यथा सूर्यावर्त्त एवं अर्द्धावभेदक में कही है ॥३६,३७॥

क्षीरसर्पिः प्रशंसन्ति नस्ये पाने च शङ्खके ॥३८॥

जाङ्गलानां रसैः स्निग्धैराहारश्चात्र शस्यते ।

शंखक रोग में नस्य और पान में दूध से निकाला घी बरते । स्निग्ध जांगल मांस रसों को भोजन दे ॥३८॥

शतावरीं तिलान् कृष्णान् मधुकं नीलमुत्पलम् ॥३९
दूर्वां पुनर्नवां चैव लेपे साध्ववचारयेत् ।
महासुगन्धामथवा पालिन्दीं चाम्लपेषिताम् ॥४०॥

शतावरी, काले तिल, मुलैहठी, नीलोफर, दूर्वा, पुनर्नवा इनको दूध में पीसकर शिर पर लेप करे । महासुगन्धा (रास्ना या सर्पगन्धा) और निशोथ को कांजी में पीसकर लेप करे ॥

शीतांश्चात्र परीषेकान् प्रदेहांश्च प्रयोजयेत् ।

शीतलपरिषेक, शीतलप्रदेह (शीतवीर्य विदारि गन्धादि काकोल्यादि उत्पलादि से) इसमें बरते ।

अवपीडश्च देयोऽत्र सूर्यावर्तनिवारणः ॥४१॥

सूर्यावर्तनाशक (शिरीषमूलकफलैः आदि) अवपीड़न नस्य देवे ॥४१॥

कृमिक्षयकृतौ हित्वा शिरोरोगेषु बुद्धिमान् ।
मधुतैलसमायुक्तैः शिरांस्यतिविरेचयेत् ॥४२॥
पश्चात्सर्षपतैलेन ततो नस्यं प्रयोजयेत् ।

कृमिजन्य और क्षयजन्य शिरोरोग को छोड़कर शेष रोगों में वैद्य शिरोविरेचन द्रव्यों में मधु और तैल मिलाकर नस्य देवे । पीछे सरसों के तेल से नस्य देवे ॥४२॥

न चेच्छान्ति व्रजन्त्येवं स्निग्धस्विन्नांस्ततो भिषक् ।४३।
पश्चादुपाचरेत्सम्यक् सिराणामथ मोक्षणैः ।

यदि इन सब उपचारों से रोग शान्त न हो तो रोगी को स्नेहन और स्वेदन देकर सिरामोक्षण करके भली प्रकार चिकित्सा करे ।

वि० मन्तव्य—क्षयजनित शिरोरोग एवं कृमिज-शिरोरोग के अतिरिक्त शिरोरोगों में सिरावेध सफल उपचार है । शिरोरोग एवं अधिमन्थ आदि नेत्र रोगों में ललाट गत अथवा अपाङ्गगत सिरा का वेध करे । देखिये सु० शा अ० ८ सू १७॥

षट्सप्ततिर्नेत्ररोगा दशाष्टादश कर्णजाः ॥४४॥
एकत्रिंशद् घ्राणगताः शिरस्येकादशैव तु ।
इति बिस्तरतो द (दि) ष्टाः सलक्षणचिकित्सिताः ।४५।
संहितायामभिहिताः सप्तषष्टिमुखामयाः ।
एतावन्तो यथास्थूलमुत्तमाङ्गगता गदाः ।
अस्मिञ्छास्त्रे निगदिताः सङ्ख्यारूपचिकित्सितैः ।४६।

छिहत्तर नेत्ररोग, अट्ठाईस कर्णरोग, इकतीस नासारोग, ग्यारह शिरोरोग, ये विस्तार से लक्षण एवं चिकित्सा से कह दियेहैं । संहिता में सरसठ (६७) मुखरोग कह दिये हैं । मुख्य रूप से उत्तमांग के इतने रोग इस शास्त्र में संख्या, लक्षण एवं चिकित्सा से कहे गये हैं[1] ॥४४–४६॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते शालाक्यतन्त्रे शिरोरोगप्रतिषेधो नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

सप्तविंशतितमोऽध्यायः

अथातो नवग्रहाकृतिविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे नवग्रहाकृतिविज्ञानीय अध्याय का व्याख्यान करेंगे—जैसा भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ।

वक्तव्य—बालकों के ग्रह नौ हैं, युवा व्यक्तियों के आठ हैं, आकृति से अभिप्राय लक्षणों से हैं ।

वि० मन्तव्य—अध्याय २७ से अ० ३७ तक बालग्रहों का वर्णन है । इन अध्यायों को भूतविद्या में ही गिनना चाहिये । कौमार भृत्य के लक्षणानुसार कौमार भृत्य में नहीं गिनना चाहिये । ये बालग्रह बालक-बालिकाओं पर ही आक्रमण करते हैं अतः बालग्रह कहे जाते हैं ॥१,२॥

बालग्रहाणां विज्ञानं साधनं चाप्यनन्तरम् ।
उत्पत्तिं कारणं चैव सुश्रुतैकमनाः शृणु ॥३॥

हे सुश्रुत ! बालकों के ग्रहों के लक्षण, उनकी चिकित्सा, उत्पत्ति और कारण को एकाग्र मन से सुनो ॥३॥

स्कन्दग्रहस्तु प्रथमः स्कन्दापस्मार एव च ।
शकुनी रेवती चैव पूतना चान्धपूतना ॥४॥
पूतना शीतनामा च तथैव मुखमण्डिका ।
नवमो नैगमेषश्च यः पितृग्रहसंज्ञितः ॥५॥

प्रथम स्कन्दग्रह, फिर स्कन्दापस्मार, शकुनी, रेवती पूतना, अन्धपूतना, शीतपूतना, मुखमण्डतिका, और नौवां नैगमेष-जिसे पितृग्रह भी कहते हैं ॥४,५॥

धात्रीमात्रोः प्राक्प्रदिष्टापचारा-
च्छौचभ्रष्टान्मङ्गलाचारहीनान् ।
त्रस्तान् हृष्टांस्तर्जितान् ताडितान् वा
पूजाहेतोर्हिंस्युरेते कुमारान् ॥६॥

धात्री (दाई) या माता के शरीर स्थान में कहे हुए मिथ्या आचरण के कारण (मांस सुरादि का खाना, लाल वस्त्र आदि का धारण), मूत्र मल आदि का शोधन न करने से, मंगल (स्वस्तिक, दाम, दूर्वा आदि पवित्र वस्तुओं का) एवं आचार (पापविरोधि) से हीन, डरे हुए, प्रसन्न हुए, धमकाये हुए, मारे

---

१ चरक में शिरः कम्प रोग अधिक कहा है यथा—
वातो रुक्षादिभिः क्रुद्धः शिरःकम्पमुदीरयेत् ।
तत्रामृता वला रास्ना महाश्वेताश्वगन्धकैः ॥
स्नेहस्वेदादिवातघ्नं शस्तं नस्यं च तर्पणम् ।
नस्तः कर्म च कुर्वीत शिरोरोगेषु सूक्ष्मवित् ।
द्वारं हि शिरसो नासा तेन तद्व्याप्य हन्ति तान् ॥

हुए बच्चों में पूजा प्राप्ति के उद्देश्य से या मारने की इच्छा से ये ग्रह आविष्ट होते हैं।

वक्तव्य—चरक में इसी से कहा है—"नह्यस्य वित्रासनं साधु, तस्मात्तस्मिन् रुदत्यभुंजानेवाऽन्यत्र वाऽविधेयतां गच्छति राक्षसपिशाचपूतनाद्यानां नामानि चाहृयता कुमारस्य वित्रासनार्थं नाम ग्रहणं न कार्यं स्यात्॥" हिंसा या पूजा के लिये आक्रमण करते हैं—"त्रिविधं तून्मादकराणां भूतानामुन्मादने प्रयोजनम्। तद्यथा—हिंसारतिरभ्यर्चनं चेति तेषां तत्प्रयोजनमुन्मत्ताचारविशेषलक्षणैः विद्यात्। तत्र हिंसार्थमुन्मद्यमानोऽग्निं प्रविशति। अप्सु निमज्जति, स्थानात् श्वभ्रे वा निपतति, शस्त्रकाष्ठलोष्टमुष्टिभिर्हन्ति आत्मानमन्यच्च, प्राणवधार्थमारभते।" चरक नि० अ० ७।१८॥६॥

ऐश्वर्यस्थास्ते न शक्या विशन्तो
देहं द्रष्टुं मानुषैर्विश्वरूपाः।
आप्तं वाक्यं तत्समीक्ष्याभिधास्ये
लिङ्गान्येषां यानि देहे भवन्ति॥७॥

वे ग्रह संसार के रूपवाले एवं अणिमा आदि ऐश्वर्य से युक्त होने के कारण शरीर में प्रविष्ट होते हुए मनुष्यों से नहीं देखे जा सकते। इसलिये इन ग्रहों के जो लक्षण होते हैं, उनको प्राप्त पुरुषों के कथनों के अनुसार कहेंगे।

वि० मन्तव्य—विश्वरूपाः—देवों के एक गण (समूह-जाति) का नाम "विश्व" है विशन्ति इति विश्वे—अर्थात् जो प्रवेश करते हैं विश्‌प्रवेशने धातुः तुदादिगणीयः। इस धातु से आगे उणादि गण के १।१५१ सूत्रानुसार क्वन् प्रत्यय लगाने पर विश्व शब्द निष्पन्न होता है। अस्तु। वेदों में अनेक स्थलों पर ॐ स्वस्ति नः इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्वेदेवाः स्वस्ति नः.......तथा ॐ अग्निर्देवता वातो देवता.......विश्वेदेवा देवता.......आदि वैदिक ऋचाओं में—विश्वेदेवा नामक देवताओं का नाम आया है। विश्वरूप अर्थात् देवरूप दिव्य-शक्ति सम्पन्न देवता हैं। अतएव ऐश्वर्य-ईश्वरता से युक्त—अणिमा आदि सिद्धियों से युक्त हैं। यद्यपि वे प्रवेश—आवेश करते हुए देखे नहीं जा सकते तथापि आप्तजनों के वाक्यों की समीक्षा करके उनके लक्षण कहे गये हैं केवल अन्धविश्वास करके नहीं। समीक्षा—सम्यक्—समीचीन प्रकार से ईक्षा—दर्शन—देखना। आप्त—यथार्थ वादी—ठीक २—सत्य२ कहनेवाले, भगवान् पुनर्वसु के शब्दों में—तप एवं ज्ञान की शक्ति द्वारा रजस् एवं तमस् (राग एवं द्वेष) से पूर्ण रूप से मुक्त, व्यवधान रहित निर्मल एवं त्रिकाल ज्ञान से युक्त आप्त होते हैं और वे शिष्ट समस्त संसार को कर्तव्य—अकर्तव्य का विवेक देनेवाले तथा विबुद्ध परम ज्ञान—जागरूक होते हैं उनका वाक्य संशय हीन एवं सत्य होता है। ऐसे जन असत्य क्यों बोलेंगे जब कि वे रजस् एवं तमस् से सर्वथा मुक्त हैं। (च० सू० अ० ११) ईश्वर तथा अन्यान्य वे भाव जो चक्षुःआदि इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष नहीं किये जा सकते उन सबको आप्तवाक्यों के आधार पर ही माना जाता है। तात्पर्य यह है कि वे चेतना धातु—आत्मा के समान अत्यन्त सूक्ष्म हैं अतएव देखे नहीं जा सकते। आयुर्वेद के विद्वानों को चाहिये कि वे उन लेखकों को समझावें जो देव, गन्धर्व आदि को कृमि लिखने का साहस करते हैं॥

अदूषयन्तः पुरुषस्य देहं
देवादयस्वैश्च गुणप्रभावैः।
विशन्त्यदृश्यास्तरसां यथैव-
च्छायातपौ दर्पणसूर्यकान्तौ॥
चरक चि० अ० ६।१८॥७॥

शूनाक्षः क्षतजसगन्धिकः स्तनद्विड्
वक्रास्यो हतचलितैकपक्ष्मनेत्रः।
उद्विग्नः सुलुलितचक्षुरल्परोदी
स्कन्दार्तो भवति च गाढमुष्टिवर्चाः॥८॥

स्कन्द ग्रह से पीड़ित शिशु—की आँखें सूजी, रक्त के समान शरीर से सड़ी गन्ध आती है, बच्चा स्तन नहीं पीता, मुख टेढ़ा हो जाता है, एक आँख और उसके पलक, क्रिया रहित हिलते रहते हैं, बच्चा उद्विग्न (बेचैन), आँखें थोड़ी खुली, थोड़ा रोनेवाला मुट्ठी जोर से बाँधे, सख्त मल आता है।

वक्तव्य—आँख से दीखता कम है, पलक हिलती है, यह एक आँख में होता है॥८॥

निःसंज्ञो भवति पुनर्भवेत्ससंज्ञः
संरब्धः करचरणैश्च नृत्यतीव।
विण्मूत्रे सृजति विनद्य जृम्भमाणः
फेनं च प्रसृजति तत्सखाभिपन्नः॥९॥

स्कन्दापस्मार से पीड़ित शिशु बेहोश हो जाता है, परन्तु कुछ समय पीछे चेतन हो जाता है, अच्छी प्रकार आवाज करता हुआ हाथ-पैर को नचाता सा प्रतीत होता है, शब्द करता हुआ मल मूत्र त्याग करता है, जम्भाई लेता हुआ मुख से झाग गिराता है॥९॥

स्रस्ताङ्गो भयचकितो विहङ्गगन्धिः
संस्राविव्रणपरिपीडितः समन्तात्।
स्फोटैश्च प्रचिततनुः सदाहपाकै-
र्विज्ञेयो भवति शिशुः क्षतः शकुन्या॥१०॥

शकुनिग्रह से पीड़ित शिशु के अंग ढीले पड़ जाते हैं, भय से घबराया प्रतीत होता है, शरीर से मांस खानेवाले या जलचर पक्षियों की गन्ध आती है। शरीर पर सब ओर स्राववाले व्रणों से पीड़ित रहता है, जलन और पकनेवाले छालों से शरीर भरा रहता है, यह शिशु शकुनिग्रह से पीड़ित जानना॥

रक्तास्यो हरितमलोऽतिपाण्डुदेहः
श्यावो वा ज्वरमुखपाकवेदनार्तः ।
रेवत्या व्यथिततनुश्च कर्णनासं
मृद्नाति ध्रुवमभिपीडितः कुमारः ॥११॥

रेवतीग्रह से पीड़ित शिशु का मुख लाल, मल हरा, शरीर अति पाण्डुवर्ण या काले रंग का होता है । बच्चे को ज्वर, मुखपाक, वेदना रहती है, बच्चा निरन्तर कान नाक को मलता रहता है ॥११॥

स्रस्ताङ्गः स्वपिति सुखं दिवा न रात्रौ
विड् भिन्नं सृजति च काकतुल्यगन्धिः ।
छर्द्याऽऽर्तो हृषिततनूरुहः कुमार-
स्तृष्णालुर्भवति च पूतनागृहीतः ॥१२॥

पूतनाग्रह से पीड़ित शिशु के अङ्ग शिथिल रहते हैं, दिन में सुख से सोता है, रात्रि में नहीं सोता । मल पतला त्याग करता है। एवं शरीर में कौए के समान गन्ध, वमन से पीड़ित, शरीर के रोमों में रोमांच रहता है, बच्चे को प्यास बहुत रहती है ॥१२॥

यो द्वेष्टि स्तनमतिसारकासहिक्का-
च्छर्दीभिर्ज्वरसहिताभिरर्द्यमानः ।
दुर्वर्णः सततमधःशयोऽम्लगन्धि-
स्तं ब्रूयुर्भिषज इहान्धपूतनार्तम् ॥१३॥

अन्धपूतना से पीड़ित शिशु स्तन से द्वेष करता है, यह अतिसार, कास, हिक्का, वमन, ज्वर से पीड़ित रहता है, शरीर का रंग बदल जाता है, निरन्तर सदा उल्टा मुख रखकर (नीचे मुख करके) सोता है, शरीर से खट्टी गन्ध आती है, इस बच्चे को अन्धपूतना से पीड़ित जाने ॥१३॥

उद्विग्नो भृशमतिवेपते प्ररुद्यात्
संलीनः स्वपिति च यस्य चान्त्रकूजः ।
विस्राङ्गो भृशमतिसार्यते च यस्तं
जानीयाद्भिषगिह शीतपूतनार्तम् ॥१४॥

शीतपूतना से पीड़ित बच्चा अतिशय बेचैन, बहुत काँपता रहता है, बहुत रोता है, खाट के एक पार्श्व पर लगा हुआ सोता है, आंत्रों में आवाज (गड़गड़ाहट) रहती है, अङ्गों में से सड़ी गन्ध आती है, और अतिसार रहता है, इस प्रकार का शिशु शीतपूतना से आक्रान्त होता है ॥१४॥

म्लानाङ्गः सुरुचिरपाणिपादवक्त्रो
बह्वाशी कलुषसिरावृतोदरो यः ।
सोद्वेगो भवति च मूत्रतुल्यगन्धिः
स ज्ञेयः शिशुरिह वक्त्रमण्डिकार्तः ॥१५॥

शरीर का मध्यभाग दुर्बल, हाथ-पैर-मुख सुन्दर, बहुत खानेवाला, उदर मलिन सिराओं से भरा, बेचैन, मूत्र के समान गन्धवाला शिशु मुखमण्डिका से पीड़ित जानना चाहिये ॥१५॥

यः फेनं वमति विनम्यते च मध्ये
सोद्वेगं विलपति चोर्ध्वमीक्षमाणः ।
ज्वर्येत प्रततमयो वसासगन्धि-
र्निःसंज्ञो भवति हि नैगमेषजुष्टः ॥१६॥

जिसके मुख से झाग गिरती हो, मध्यभाग से झुका-मुड़ा रहता है, बेचैन एवं ऊपर को देखता हुआ जो रोता हो, सदा–निरन्तर ज्वर रहता हो, वसा के समान गन्ध जिसके शरीर से आती हो, संज्ञारहित-बेहोश जो हो जाता है, उसे नैगमेष से आक्रान्त जानना चाहिये ॥१६॥

प्रस्तब्धो यः स्तनद्वेषी मुह्यते चाविशन्मुहुः ।
तं बालमचिराद्धन्ति ग्रहः संपूर्णलक्षणः ॥१७॥

जो बच्चा अतिशय स्तब्ध (जड़ीभूत) अङ्गोंवाला, स्तन से द्वेष करनेवाला, बार-बार जो मूर्छित होता है, उस बालक में बार-बार आवेश करता हुआ ग्रह, सम्पूर्ण लक्षण उत्पन्न करके मार देता है ॥१७॥

विपरीतमतः साध्यं चिकित्सेदचिरार्दितम् ।

इससे विपरीत अवस्था में (असम्पूर्ण लक्षणों में) तथा रोग की नूतनावस्था में चिकित्सा करनी चाहिये ॥

गृहे पुराणहविषाभ्यज्य बालं शुचौ शुचिः ॥१८॥
सर्षपान् प्रकिरेत्तत्र तैलैर्दीपं च कारयेत् ।
सदा सन्निहितं चापि जुहुयाद्धव्यवाहनम् ॥१९॥
सर्वगन्धौषधीबीजैर्गन्धमाल्यैरलङ्कृतम् ।
अग्नये कृत्तिकाभ्यश्च स्वाहा स्वाहेति संततम् ॥२०॥

वैद्य पवित्र होकर, बालक को पुरातन घृत से अभ्यंग करे, पवित्रस्थान पर सरसों को उसके चारों ओर बिखेरे, तैल का दिया जलावे। इस बच्चे के पास सदा अग्नि में एलादिगण में पठित औषधियों से, तिल, गेहूँ-उड़द आदि से, सुगन्ध (चन्दन-राल आदि) से हवन करे। बालक को गन्ध-माला से अलंकृत करे। अग्नि और कृत्तिका के लिये स्वाहा स्वाहा इस उच्चारण से आहुतियां देवे ॥१८–२०॥

नमः स्कन्दाय देवाय ग्रहाधिपतये नमः ।
शिरसा त्वाऽभिवन्देऽहं प्रतिगृह्णीष्व मे बलिम् ।
नीरुजो निर्विकारश्च शिशुर्मे जायतां द्रुतम् ॥२१॥

ग्रहों के स्वामी स्कन्ददेव के लिये मेरा नमस्कार है, मैं शिर झुकाकर आपको नमस्कार करता हूँ, मेरी बलि को आप ग्रहण करें। मेरा बच्चा वेदना रहित एवं रोग रहित जल्दी हो जाये ॥२१॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कुमारतन्त्रे नवग्रहाकृतिविज्ञानीयो नाम(प्रथमोऽध्यायः, आदितः)सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अष्टाविंशतितमोऽध्यायः

अथातः स्कन्दग्रहप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे स्कन्दग्रह प्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

स्कन्दग्रहोपसृष्टानां कुमाराणां प्रशस्यते ।
वातघ्नद्रुमपत्राणां निष्क्वाथः परिषेचने ॥३॥

स्कन्दग्रह से आक्रान्त बच्चों के लिये ऐरण्ड आदि वातघ्न वृक्षों के पत्तों का क्वाथ परिषेचन में उत्तम है ॥३॥

तेषां मूलेषु सिद्धं च तैलमभ्यञ्जने हितम् ।
सर्वगन्धसुरामण्डकैडर्यावापमिष्यते ॥४॥

वातघ्न वृक्षों के मूलों में (बिल्वादि महापंचमूल) के क्वाथ में, ऐलादिगण का, सुरा माण्ड और पर्वत निम्ब (बकायन) का कल्क मिलाकर तैल सिद्धकरे। इस तैलका अभ्यंग उत्तमहै॥४॥

देवदारुणि रास्नायां मधुरेषु द्रुमेषु च ।
सिद्धं सर्पिश्च सक्षीरं पानमस्मै प्रयोजयेत् ॥८॥

देवदारु, रास्ना, राजादन (खिरनी आदि) आदि मधुर वृक्षों के क्वाथ में दूध के साथ सिद्ध किया घृत इसे पीने को देवे ॥५॥

सर्षपाः सर्पनिर्मोको वचा काकादनी घृतम् ।
उष्ट्राजाविगवां चैव रोमाण्युद्धूपनं शिशोः ॥६॥

सरसों, सर्पनिर्मोक (केंचुला), बच, काकादनी, घी, ऊँट, बकरी, भेड़ तथा गौ के बालों की बालकों को धूप देवे ॥६॥

सोमवल्लीमिन्द्रवल्लीं शमीं बिल्वस्य कण्टकान् ।
मृगादन्याश्च मूलानि ग्रथितान्येव धारयेत् ॥ ॥

गिलोय, इन्द्रवल्ली, शमी (जड़), बिल्व के कांटे, इन्द्रायण की जड़ इनकी माला बनाकर पहनाये ॥७॥

रक्तानि माल्यानि तथा पताका
रक्ताश्च गन्धा विविधाश्च भक्ष्याः ।
घण्टा च देवाय बलिर्निवेद्यः
सकुक्कुटः स्कन्दग्रहे हिताय ॥८॥

पवित्र वैद्य स्नान करके, रात्रि में स्कन्दग्रह के लिये लाल-फूल की मालायें, लाल पताकायें, केसर आदि लालसुगन्ध, नानाप्रकार के भक्ष्य, घंटा, मुर्गा-इनकी बलि को बालक के हित के लिये स्कन्द ग्रह को देवे।

वि० मन्तव्य—यह बलि चौरास्ते पर देनी चाहिये अथवा स्कन्द के मन्दिर में ॥८॥

स्नानं त्रिरात्रं निशि चत्वरेषु
कुर्यात् पुरं शालियवैर्नवैस्तु
अद्भिश्च गायत्र्यभिमन्त्रिताभिः
प्रज्वालनं व्याहृतिभिश्च वह्नेः ॥९॥

चौरस्ते पर त्रिरात्र स्नान करके नूतन शाली (धान्य) यव से गायत्र्याभिमन्त्रित जल से व्याहृति पूर्वक अग्नि में हवन करे ॥९॥

रक्षामतः प्रवक्ष्यामि बालानां पापनाशिनीम् ।
अहन्यहनि कर्तव्या या भिषग्भिरतन्द्रितैः ॥१०॥
तपसां तेजसां चैव यशसां वपुषां तथा ।
निधानं योऽव्ययो देवः स ते स्कन्दः प्रसीदतु ॥११॥
ग्रहसेनापतिर्देवो देवसेनापतिर्विभुः
देवदेवस्य महतः पावकस्य च यः सुतः ।
गङ्गोमाकृत्तिकानां च स ते शर्म प्रयच्छतु ॥१३॥
रक्तमाल्याम्बरः श्रीमान् रक्तचन्दनभूषितः ।
रक्तदिव्यवपुर्देवः पातु त्वां क्रौञ्चसूदनः ॥१४॥

इसके आगे बालकों की रक्षाविधि को कहता हूँ, जिसे सावधान रहते हुए वैद्य प्रतिदिन करे, यह रक्षाविधि पाप (दुर्भाग्य) को नष्ट करती है। तप, तेज, यश, सुन्दरता का जो घर है, जो कभी विकृत होनेवाला न हों, वह स्कन्ददेव प्रसन्न हो। स्कन्ददेव, ग्रहों का सेनापति, देवताओं का सेनापति, विभु, देवताओं की सेना के शत्रुओं को नष्ट करनेवाला, स्कन्ददेव तुम्हारी रक्षा करे। भगवान् शंकर का, और बड़ी अग्नि का जो पुत्र है, गंगा, पार्वती-कृत्तिका का जो पुत्र है, वह तेरा मंगल करे। लाल-माला-वस्त्र धारण किये, श्रीयुक्त, रक्तचन्दन से शोभित, लालदिव्य शरीर, क्रौंच को नष्ट करनेवाले (क्रौंच नामक पर्वत को) देव (स्कन्ददेव) तुम्हारी रक्षा करें।

वि० मन्तव्य—इन मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण बालक के पास होना चाहिये अथवा लोहे का चिमटा अथवा दाती अथवा झाड़ू अथवा चमर अथवा मोर के पंखों द्वारा मन्त्रोच्चारण पूर्वक झाड़ना चाहिये। अथवा इन मन्त्रों से अभिमन्त्रित जल से प्रोक्षण करना चाहिये। स्मरणीय-प्रत्येक ग्रह की शान्ति के लिये—१—परिषेचन-प्रोक्षण-छींटे मारना-देना-जल छिड़कना। यह कार्य-औषधों के क्वाथ से अथवा उसे अभिमन्त्रित करके अथवा शुद्ध जल को अभिमन्त्रित करके किया जाता है अथवा मन्त्रोच्चारण पूर्वक किया जाता है। २—अभ्यंग के लिये तैल सिद्ध किये जाते हैं। ३—खाने के लिये घृत सिद्ध किये जाते हैं। बालकों के वपुः, मेधा, बल एवं बुद्धि के विवर्द्धनार्थ (शा० अ० १० श्लो० ७०) भी घृत का प्रयोग बतलाया है उसमें भी इन घृतों का प्रयोग किया जा सकता है। ४—धूपन किया जाता है—निर्दिष्ट द्रव्य अग्नि पर डालकर धूप दी जाती है। ५—द्रव्यौषधी धारण—निर्दिष्ट द्रव्य धागा में पिरोकर अथवा बांधकर अथवा पोटली बनाकर

ग्रीवा में लटका दिये जाते हैं अथवा बाहु आदि पर बांध दिये जाते हैं।

६—बलि देना—बलि का ही नाम उपहार तथा नैवेद्य है। इसमें-कुछ निर्दिष्ट भक्ष्य होते हैं और साथ में पुष्प, गन्ध (इत्र), पताका आदि रहते हैं। यह मन्दिर में, शून्य गृह में, चत्वर-चौरास्ता अथवा आंगन, किसी वृक्ष के नीचे तथा गोशाला आदि निर्दिष्ट स्थान पर रख दी जाती है।

७—स्नान-औषधियों के क्वाथ से अथवा उसे अभिमन्त्रित करके बालक अथवा बालिका एवं धात्री (माता अथवा दूध पिलानेवाली, दोनों को नहलाया जाता है।

८—उत्सादन-उबटन लगाना तथा तिलक लगाना।

९—रक्षा मन्त्र—देखिये ऊपर श्लो० १४ का वि० व०। रक्षा मन्त्रों में ग्रहों का वर्णन होता है और उनसे बालक की रक्षा के लिये प्रार्थना रहती है तथा बालक के लिये आशीर्वाद रहता है ॥१०–१४॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गत कुमारतन्त्रे स्कन्दप्रतिषेधो नाम द्वितीयोऽध्यायः आदितो) ऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः।

अथातः स्कन्दापस्मारप्रतिषेधं व्याख्याख्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे स्कन्दापस्मारप्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

बिल्वः शिरीषो गोलोमी सुरसादिश्च यो गणः।
परिषेके प्रयोक्तव्यः स्कन्दापस्मारशान्तये ॥३॥

स्कन्दापस्मारक की शान्ति के लिये-बिल्व, शिरीष, दूर्वा, और सुरसादि गण का क्वाथ परिषेक में बरते ॥३॥

सर्वगन्धविपक्वं तु तैलमभ्यञ्जने हितम्।
क्षीरवृक्षकषाये च काकोल्यादौ गणे तथा ॥४॥
विपक्तव्यं घृतं चापि पानीयं पयसा सह।

बिल्व, शिरीष आदि के क्वाथ में एलादिगण का कल्क मिलाकर तैल सिद्ध करना चाहिये। यह तैल अभ्यंग में बरते। बरगद आदि क्षीरि वृक्षों के कषाय में काकोल्यादिगण का कल्क मिलाकर, दूध के साथ घृत सिद्ध करे, यही घृत दूध के साथ पीने को देवे ॥४॥

उत्सादनं वचा हिङ्गुयुक्तं स्कन्दग्रहे हितम् ॥५॥
गृध्रोलूकपुरीषाणि केशा हस्तिनखा घृतम्।
वृषभस्य च रोमाणि योज्यान्युद्धूपनेऽपि च ॥६॥

स्कन्द ग्रह में उबटन के लिये उबटनों में बच और हींग मिलाये। धूपन के लिये गीध, उल्लू का मल, केश, हाथी के नख, घी, बैल के बालों को बरते ॥५,६॥

अनन्तां कुक्कुटीं बिम्बीं मर्कटीं चापि धारयेत्।

सारिवा, कुक्कुटी औषध, कौंच की जड़ अथवा कन्दूरी इनकी माला पहनाये।

पक्वापक्वानि मांसानि प्रसन्ना रुधिरं पयः ॥७॥
भूतौदनो निवेद्यश्च स्कन्दापस्मारिणेऽवटे।

पक्व-अपक्व मांस, सुरा, रक्त, दूध, भूतौदन,(घी के बिना भोजन या स्विन्नउड़द आदि), इनकी बलि स्कन्दापस्मार रोगी के हित के लिये गड्ढे में देनी चाहिये ॥७॥

चतुष्पथे च कर्तव्यं स्नानमस्य यतात्मना ॥८॥

उपवास रखकर सावधानी से बच्चे को चौराहे पर लेजाकर स्नान कराये ॥८॥

स्कन्दापस्मारसंज्ञो यः स्कन्दस्य दयितः सखा।
विशाखसंज्ञश्च शिशोः शिवोऽस्तु विकृताननः ॥९॥

रक्षामन्त्र—स्कन्द का प्रिय मित्र, विशाख नामक विकृत मुखवाला स्कन्दापस्मार नामक ग्रह शिशु के लिये कल्याणकारी हो ॥९॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कुमारतन्त्रे स्कन्दापस्मारप्रतिषेधो नाम (तृतीयोऽध्यायः, आदितः) एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

त्रिंशत्तमोऽध्यायः

अथातः शकुनीप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे शकुनीप्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

शकुन्यभिपरीतस्य कार्यो वैद्येन जानता।
वेतसाम्रकपित्थानां निष्क्वाथः परिषेचने ॥३॥

शकुनी ग्रह से पीड़ित बच्चे के लिये जाननेवाला वैद्य जलवेतस, आम, कैथ इनका क्वाथ परिषेचन में बरते ॥३॥

कषायमधुरैस्तैलं कार्यमभ्यञ्जने शिशोः।

बरगद आदि कषाय वृक्षों के क्वाथ में, काकोल्यादि मधुर द्रव्यों का कल्क मिलाकर तैल सिद्ध करे। यह तैल शिशु के लिये अभ्यंग में बरते।

मधुकोशीरह्रीवेरसारिवोत्पलपद्मकैः ॥४॥
रोध्रप्रियङ्गुमञ्जिष्ठागैरिकैः प्रदिहेच्छिशुम्।

मुलैहठी, खस, बालक, सारिवा, कमल, पद्माख, लोध, प्रियंगु, मजीठ, गेरू इनसे शिशु के शरीर पर लेप करे ॥४॥

व्रणेषूक्तानि चूर्णानि पथ्यानि विविधानि च ॥५॥

द्विव्रणीय और मिश्रकोक्त नाना प्रकार के चूर्ण शकुनीग्रह से युक्त बच्चे के लिए युक्त हैं ॥५॥

स्कन्दग्रहे धूपनानि तानीहापि प्रयोजयेत् ।

स्कन्दग्रह में कहे धूपन द्रव्यों को इसमें भी बरते ।

शतावरीमृगैर्वारुनागदन्तीनिदिग्धिकाः ॥६॥

लक्ष्मणां सहदेवीं च बृहतीं चापि धारयेत् ।

शतावरी, इन्द्रायण, बड़ीदन्ती, कटेरी, सहदेवी, लक्ष्मणा और बड़ीकटेरी इनको धारण करे ॥६॥

तिलतण्डुलकं माल्यं हरितालं मनःशिला ॥७॥

बलिरेष करञ्जेषु निवेद्यो नियतात्मना ।

तिल-तण्डुल, माला, हरताल, मैनसिल इनकी बलि संयतेन्द्रिय होकर करंजों में देवे। (करंज वृक्षों में बलि देने के स्थान पर निकुञ्जों में बलि देना ठीक है, पाठ भी निकुंजेषु है) ॥७॥

निष्कुटे च प्रयोक्तव्यं स्नानमस्य यथाविधि ॥८॥

बालक को विधिपूर्वक स्नान घर के बगीचे में कराये (निष्कुट का अर्थ कई घना जंगल करते हैं) ॥८॥

स्कन्दापस्मारशमनं घृतं चापीह पूजितम् ।

स्कन्दापस्मारनाशक घृत भी (क्षीरिवृक्ष इत्यादि वाला) उत्तम है।

कुर्याच्च विविधां पूजां शकुन्याः कुसुमैः शुभैः ॥९॥

चमेली या कमल जैसे शुभ पुष्पों से शकुनीग्रह की नाना प्रकार की पूजा करनी चाहिये ॥९॥

अन्तरिक्षचरा देवी सर्वालङ्कारभूषिता ।
अयोमुखी तीक्ष्णतुण्डा शकुनी ते प्रसीदतु ॥१०॥
दुर्दर्शना महाकाया पिङ्गाक्षी भैरवस्वरा ।
लम्बोदरी शङ्कुकर्णी शकुनी ते प्रसीदतु ॥११॥

रक्षामन्त्र—अन्तरिक्ष में विचरनेवाली, सम्पूर्ण अलंकारों से शोभित, लोहे के मुख की, तीक्ष्ण मुखवाली शकुनी तू बालक के लिये प्रसन्न हो। दूषित विकराल दांतोंवाली, बड़े शरीर की, पिंगल आंखों की, भैरवस्वर की, लम्बे पेटवाली, शंकु (कीला) के समान कानवाली शकुनी देवी तुझ पर प्रसन्न हो ॥१०॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कुमारतन्त्रे शकुनीप्रतिषेधो नाम (चतुर्थोऽध्यायः, आदितः) त्रिंशोऽध्याय ॥३०॥

एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः

अथातो रेवतीप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे रेवती प्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

अश्वगन्धाऽजश्रृङ्गी च सारिवा सपुनर्नवा ।
सहे तथा विदारी च कषायाः सेचने हिताः ॥३॥

अश्वगन्धा, काकड़ाश्रृङ्गी, सारिवा, पुनर्नवा, मुद्गपर्णी माषपर्णी, विदारी इनका कषाय परिषेक में उत्तम है। (इनको अलग अलग या समुदाय रूप में बरते) ॥३॥

तलमभ्यञ्जने कार्यं कुष्ठे सर्जरसेऽपि च ।
पलङ्कषायां नलदे तथा गिरिकदम्बके ॥४॥

कूठ, राल, गुग्गुल, जटामांसी और गिरिकदम्ब (अपराजिता) इनके कल्क से अभ्यङ्ग के लिये तैल सिद्ध करे। (द्रव्यकार्य पानी से करना चाहिये) ॥४॥

धवाश्वकर्णककुम्भधातकीतिन्दुकीषु च ।
काकोल्यादिगणे चैव पानीयं सर्पिरिष्यते ॥५॥

धव, अश्वकर्ण, अर्जुन, धातकी, तिन्दुक इनके कषाय में काकोल्यादि गण के कल्क से घृत सिद्ध करे यह घृत पीने के लिये देवे।

वक्तव्य—कोई आचार्य धव अश्वकर्ण आदि कषाय उपरोक्त तैलपाक के लिये गिनते हैं ॥५॥

कुलत्था शङ्खचूर्णं च प्रदेहः सार्वगन्धिकः ।
गृध्रोलूकपुरीषाणि यवा यवफलो घृतम् ॥६॥
सन्ध्ययोरुभयोः कार्यमेतदुद्धूपनं शिशोः ।
वरुणारिष्टकमयं रुचकं सैन्दुकं तथा ॥७॥
सततं धारयेच्चापि कृतं वा पौत्रजीविकम् ।
शुक्लाः सुमनसो लाजाः पयः शाल्योदनं तथा ॥८॥
बलिर्निवेद्यो गोतीर्थे रेवत्यै प्रयतात्मना ।

कुलत्थी, शंख का चूर्ण और एलादि गण की औषधियों का सब शरीर पर प्रदेह करे। गीध, उल्लू का मल, जौ, बाँस और घी इनसे दोनों संध्या काल में बच्चे को धूप देवें। वारणा और नीम की लकड़ी का बना, सैन्दुक (निर्गुण्डी) का बना या जीया पोता की लकड़ी का बना रुचक (आभूषण) सदा धारण कराये। श्वेतफूल, लाजा, दूध, शालीभात इनकी बलि, गोतीर्थ में (जहाँ गायें पानी पीती हों) उपवासादि से पवित्र होकर रेवतीग्रह के लिए देवे ॥६-८॥

सङ्गमे च भिषक् स्नानं कुर्याद्धात्रीकुमारयोः ॥९॥
नानावस्त्रधरा देवी चित्रमाल्यानुलेपना ।
चलत्कुण्डलिनी श्यामा रेवती ते प्रसीदतु ॥१०॥
उपासते यां सततं देव्यो विविधभूषणाः ।
लम्बा कराला विनता तथैव बहुपुत्रिका ॥
रेवती शुष्कनामा या सा ते देवी प्रसीदतु ॥११॥

दो नदियों के संगम में वैद्य धात्री और बालक को स्नान कराये। रक्षामन्त्र—नाना प्रकार के वस्त्रों को धारण करनेवाली, चित्र विचित्र माला एवं अनुलेप वाली, हिलते हुए कुण्डलोंवाली, श्याम वर्ण की रेवतीदेवी तेरे पर प्रसन्न हो। नाना

प्रकार के भूषण पहने हुए जिस देवी की निरन्तर उपासना करते हैं, लम्बी-कराल (विकट दान्तों की), बिनता (कुबड़ी) बहुपुत्रों वाली, शुष्क नाम की जो रेवती देवी हैं, वह तुझ पर प्रसन्न हो ॥६-११॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कुमारतन्त्रे रेवती प्रतिषेधोनाम (पञ्चमोऽध्यायः, आदितः) एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः

अथातः पूतनाप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे पूतनाप्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे जैसा—भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

कपोतवङ्काऽरलुको वरुणः पारिभद्रकः।
आस्फोता चैव योज्याः स्युर्बालानां परिषेचने ॥३॥
वचा वयःस्था गोलोमी हरितालं मनःशिला।
कुष्ठं सर्जरसश्चैव तैलार्थे वर्ग इष्यते ॥४॥

बालकों को स्नान करने के लिये कपोतवंका (ब्राह्मी), अरलु, वरना, बकायन, सारिवा इनका क्वाथ बरतना चाहिये। अभ्यङ्ग करने के लिये बच, गिलोय (या हरड़), दूर्वा, हरताल, मैनसिल, कुष्ठ और राल इनका कल्क और कषाय इनमें तेल सिद्ध करे (हरताल मैनसिल का कषाय नहीं होगा इसलिये इनका कल्क ही लेकर द्रव कार्य जल से करे) ॥३,४॥

हितं घृतं तुगाक्षीर्या सिद्धं मधुरकेषु च।
कुष्ठतालीशखदिरचन्दनस्यन्दने तथा ॥५॥
देवदारुवचाहिंगुकुष्ठगिरिकदम्बकः।
एलाहरेणवश्चापि योज्या उद्धूपने सदा ॥६॥
गन्धनाकुलिकुम्भीके मज्जानो बदरस्य च।
कर्कटास्थि घृतं चापि धूपनं सर्षपैः सह ॥७॥

वंशलोचन, काकोल्यादि मधुरगण, इनके क्वाथ में कुष्ठ, तालीश, खैर, चन्दन और साँदन इनके कल्क से सिद्ध घृत पीने में बरते। देवदारु, बच, हींग, कूठ, कोयल, इलायची और हरेणु इनसे सदा धूम देवे। गन्धनाकुली (रास्ना), कुंभिका (जल कुम्भि), बेरकी मज्जा, केंकड़े की अस्थि, घी और सरसों इनसे सदा धूप देवे ॥५-७॥

काकादनीं चित्रफलां बिम्बीं गुञ्जां च धारयेत्।
मत्स्यौदनं च कुर्वीत कृशरां पललं तथा ॥
शरावसंपुटे कृत्वा बलिं शून्यगृहे हरेत् ॥८॥

काकादनी (वायसी या कौआ ठूंठी), चित्रफला (इन्द्रायण) कन्दूरी और रत्ती बच्चे को धारण कराये। मछली और भात, तिल-तण्डुल की खिचड़ी, तिलकल्क इनको एक शराब सम्पुट (दोहने) में रखकर शून्यघर में (जहाँ कोई नहीं रहता हो) बलि देवे ॥८॥

उच्छिष्टेनाभिषेकेण शिशोः स्नपनमिष्यते।
पूज्या च पूतना देवी बलिभिः सोपहारकैः ॥९॥
मलिनाम्बरसंवीता मलिना रूक्षमूर्धजा।
शून्यागाराश्रिता देवी दारकं पातु पूतना ॥१०॥
दुर्दर्शना सुदुर्गन्धा कराला मेघकालिका।
भिन्नागाराश्रया देवी दारकं पातु पूतना ॥११॥

जूठे पानी से बच्चे को स्नान कराये। बलि एवं उपहार से पूतना देवी का पूजन करना चाहिये। रक्षामन्त्र-मैले वस्त्रों को धारण किये हुए, मलिन, रूक्ष बालों की, शून्यघर में रहनेवाली, पूतना देवी बच्चे की रक्षा करे। देखने में भद्दी, दुर्गन्धवाली, कराल, मेघ के समान काली, टूटे घर में रहनेवाली, पूतना देवी बच्चे की रक्षा करे ॥९-११॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कुमारतन्त्रे पूतनाप्रतिषेधो नाम (षष्ठोऽध्यायः, आदितः) द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

अथातोऽन्धपूतनाप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे अन्धपूतना प्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥ १,२॥

तिक्तकद्रुमपत्राणां कार्यः क्वाथोऽवसेचने।

बच्चे को स्नान कराने के लिए नीम आदि तिक्त वृक्षों के पत्तों का क्वाथ बरतना चाहिये।

सुरा सौवीरकं कुष्ठं हरितालं मनःशिला ॥३॥
तथा सर्जरसश्चैव तैलार्थमुपदिश्यते।
पिप्पल्यः पिप्पलीमूलं वर्गो मधुरको मधु ॥४॥
शालपर्णी बृहत्यौ च घृतार्थमुपदिश्यते।

सुरा, काञ्जी, कूठ, हरताल, मैनसिल और राल इनमें तैल सिद्ध करे। पिप्पली, पिप्पलीमूल, काकोल्यादिमधु, शालपर्णी, कटेरी, बड़ी कटेरी, इनमें घृत सिद्ध करे ॥३,४॥

सर्वगन्धैः प्रदेहश्च गात्रेष्वक्ष्णोश्च शीतलैः ॥५॥

एलादि सर्वगन्धद्रव्यों से तथा शीतल द्रव्यों से शरीर पर और आंखों पर लेप करना चाहिये ॥५॥

पुरीषं कौक्कुटं केशांश्चर्म सर्पत्वचं तथा।
जीर्णां च भिक्षुसंघाटीं धूपनायोपकल्पयेत् ॥६॥

मुर्गे का मल, केश, चर्म, सांप की कैंचुली, भिक्षु की पुरानी कन्था (गुदड़ी) इनसे धूप देवे।

वक्तव्य—"भिक्षुसंघाटी भिक्षुरत्रशाक्यभिक्षुर्बौद्धाख्यः, परिव्राजकश्च, तयोः जीर्णसंघाटी जीर्णवस्त्रम्" ॥६॥

कुक्कुटीं मर्कटीं शिम्बीमनन्तां चापि धारयेत्।
मांसमामं तथा पक्वं शोणितं च चतुष्पथे ॥७॥
निवेद्यमन्तश्च गृहे शिशो रक्षानिमित्ततः।

शिशोश्च स्नपनं कुर्यात् सर्वगन्धोदकैः शुभैः ॥८॥
कराला पिङ्गला मुण्डा कषायाम्बरवासिनी ।
देवी बालमिमं प्रीता संरक्षत्वन्धपूतना ॥९॥

कुक्कुटी, कौंच, शिम्बी (सेम), सारिवा इनको धारण कराये। कच्चा और पका मांस, रक्त इनको चौराहे पर और भग्न घर के अन्दर बच्चे की रक्षा के लिये बलि देवे। शिशु को और धात्री को, एलादि सर्वगन्ध द्रव्यों से स्नान कराये। रक्षामन्त्र—कराल, पिंगल, मुण्ड, कषाय वस्त्र को धारण करनेवाली, अन्धपूतना देवी इस बालक की रक्षा करे ॥७॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कुमारतन्त्रेऽन्धपूतनाप्रतिषेधो नाम (सप्तमोऽध्यायः आदितः) त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

अथातः शीतपूतनाप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे शीतपूतनाप्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

कपित्थं सुवहां निम्बीं तथा बिल्वं प्रचीबलम् ।
नन्दीं भल्लातकं चापि परिषेके प्रयोजयेत् ॥३॥
बस्तमूत्रं गवां मूत्रं मुस्तं च सुरदारु च ।
कुष्ठं च सर्वगन्धांश्च तैलार्थमवचारयेत् ॥४॥
रोहिणीसर्जखदिरपलाशककुभत्वचः ।
निष्क्वाथ्य तस्मिन्निष्क्वाथे सक्षीरं विपचेद्घृतम् ॥५॥
गृध्रोलूकपुरीषाणि बस्तगन्धानहेस्त्वचः ।
निम्बपत्राणि मधुकं धूपनार्थं प्रयोजयेत् ॥६॥
धारयेदपि लम्बां च गुञ्जां काकादनीं तथा ।

कैथ, सुवहा (गोधापदी या रास्ना) कन्दूरी, बिल्व, प्रचीबलम् (मछेछी या आँवला), नन्दी (अश्वत्थ, पारस पीपल), भिलावा इनका क्वाथ परिषेक में बरते। बकरी का मूत्र, गोमूत्र, मुस्ता, देवदारु, कुष्ट और एलादिगण इनसे तैल सिद्ध करे। रोहिणी (कट्फल), चीड़, खैर, ढाक और अर्जुन की छाल, इनका क्वाथ करके इस क्वाथ में दूध मिलाकर घृत सिद्ध करे। गीध, उल्लू की बिष्ठा, बस्तगन्धा (अजगन्धा), साँप की केंचुली, नीम के पत्ते और मुलैहठी इनसे धूप देवे। लम्बा (कडुवातुम्बा), रत्ती, काकादनी, (कौआठूंठी या श्वेत रत्ती) को धारण कराये।

वक्तव्य—डल्हण ने नन्दी भल्लातक पाठ पढ़कर जलपिप्पली अर्थ किया है ॥३-६॥

नद्यां मुद्गकृतैश्चान्नैस्तर्पयेच्छीतपूतनाम् ॥७॥
देव्यै देयश्चोपहारो वारुणी रुधिरं तथा ।
जलाशयान्ते बालस्य स्नपनं चोपदिश्यते ॥८॥

मूँग से बने भक्ष्यों से नदी में बलि देकर शीतपूतना को प्रसन्न करे। इस देवी के लिये वारुणी (मद्य) और रक्त का उपहार देना चाहिये। बालक को जलाशय के किनारे स्नान कराये। (नदी के समीप स्नान कराये) ॥७,८॥

मुद्गौदनाशना देवी सुराशोणितपायिनी ।
जलाशयालया देवी पातु त्वां शीतपूतना ॥९॥

रक्षामन्त्र—मूंग और चावल को खानेवाली, सुरा एवं रक्त को पीनेवाली, जलाशय में रहनेवाली शीतपूतना देवी तेरी रक्षा करे ॥९॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कुमारतन्त्रे शीतपूतनाप्रतिषेधो नाम (अष्टमोऽध्यायः, आदितः) चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः

अथातो मुखमण्डिकाप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे मुखमण्डिकाप्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा कहा था ॥१,२॥

कपित्थबिल्वतर्कारीवांशीगन्धर्वहस्तकाः ।
कुबेराक्षी च योज्याः स्युर्बालानां परिषेचने ॥३॥

कैथ, बिल्व, अरणि (अग्निमन्थ), वंशलोचन, एरण्ड, कुबेराक्षी (रुद्राक्षा या काष्ठ पाटला) इनके क्वाथ से बालक को स्नान कराये ॥३॥

स्वरसैर्भृङ्गवृक्षाणां तथाऽजहरिगन्धयोः ।
तैलं वसां च संयोज्य पचेदभ्यञ्जने शिशोः ॥४॥

वातहर-एरण्ड आदि वृक्षों के कोमल पत्तों के तथा अजगन्धा और अश्वगन्धा के कषाय में वसा और तैल को मिलाकर सिद्ध करे। इस तैल से बच्चे का अभ्यंग करे। (भृंगवृक्षः भृंगराज इति श्री हाराणचन्द्रः) ॥४॥

मधूलिकायां पयसि तुगाक्षीर्यां गणे तथा ।
मधुरे पञ्चमूले च कनीयसि घृतं पचेत् ॥५॥

मधूलिका—मूर्वा में, दूध में, वंशलोचन काकोल्यादि मधुर गण में, शालपर्ण्यादि लघु पंचमूल में घृत को सिद्ध करे ॥५॥

वचा सर्जरसः कुष्ठं सर्पिश्चोद्धूपनं हितम् ।
धारयेदपि जिह्वाश्च चाषचीरल्लिसर्पजाः ॥६॥
वर्णकं चूर्णकं माल्यमञ्जनं पारदं तथा ।
मनःशिलां चोपहरेद्गोष्ठमध्ये बलिं तथा ॥७॥
पायसं सपुरोडाशं बल्यर्थमुपसंहरेत् ।
मन्त्रपूताभिरद्भिश्च तत्रैव स्नपनं हितम् ॥८॥

वच, राल, कूठ, घी इनसे धूप देना उत्तम है। चाष, चील, साँप की जीभ को धारण कराये। कमीला, चूना, पुष्प, सुरमा, पारा, मैनसिल, खीर, पुरोडाश इनसे गौ शाला में बलि

देवे। मंत्र से पवित्र किये जल से बच्चे को गौशाला में ही स्नान कराये ॥

वक्तव्य—पुरोडाश-अष्टाकपालः पिष्टमयः कपालोपरिपक्कः तृणाग्नि ॥" मंत्र से—पवित्रगायत्री मंत्र से अभिमन्त्रित जल से स्नान कराये। गोष्ठ का अर्थ-जहाँ गायें बैठकर मध्याह्न में जुगाली या आराम करती हैं—उस स्थान से है ॥६-८॥

अलङ्कृता रूपवती सुभगा कामरूपिणी।
गोष्ठमध्यालयरता पातु त्वां मुखमण्डिका ॥९॥

रक्षामन्त्र—अलंकृत, रूपवती, सौभाग्यवती, कामरूपी, गौशाला के बीच में रहनेवाली मुखमण्डिका देवी तेरी रक्षा करे ॥९॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कुमारतन्त्रे मुखमण्डिकाप्रतिषेधो नाम (नवमोऽध्यायः, आदितः) पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३५॥

षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

अथातो नैगमेषप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे नैगमेषप्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

बिल्वाग्निमन्थपूतीकाः कार्याः स्युः परिषेचने।
सुरा सबीजं धान्याम्लं परिषेके च शस्यते ॥३॥
प्रियङ्गुसरलानन्ताशतपुष्पाकुटन्नटैः।
पचेत्तैलं सगोमूत्रैर्दधिमस्त्वम्लकाञ्जिकैः ॥४॥

बच्चे को स्नान कराने के लिये बिल्व, अग्निमन्थ, करंज का कषाय बरते। सुरा, सुराबीज (किण्व) और कांजी से परिषेक करना उत्तम है। प्रियंगु, चीड़ (बिरोजा), सारिवा, सौंफ, केवड़ी मोथा इनके कल्क से, गोमूत्र, दही, मस्तु, बिजौरे का रस, कांजी इनमें तैल पकाये (गोमूत्र आदि तैल के बराबर ले) ॥

पञ्चमूलद्वयक्वाथे क्षीरे मधुरकेषु च।
पचेद्घृतं च मेधावी खर्जूरीमस्तकेऽपि वा ॥५॥

दशमूल का क्वाथ, दूध, इनमें काकोल्यादिगण और खर्जूर का शिरोभाग इनके कल्क से बुद्धिमान् घृतपाक करे। (दशमूल का क्वाथ तीन भाग, दूध एक भाग लेकर पकाये)॥५॥

वचां वयःस्थां गोलोमीं जटिलां चापि धारयेत्।
उत्सादनं हितं चात्र स्कन्दापस्मारनाशनम् ॥६॥

वच, गिलोय (या हरड़), दूर्वा और जटामासी इनको धारण कराये। स्कन्दापस्मार नाशक कही औषधियों से बच्चे को उत्सादन करे ॥६॥

सिद्धार्थकवचाहिङ्गुकुष्ठं चैवाक्षतैः सह।
भल्लातकाजमोदाश्च हितमुद्धूपनं शिशोः ॥७॥

सरसों, वच, हींग, कूठ, अक्षत (जौ), भिलावा, अजवायन इनसे बच्चे को धूप देवे ॥७॥

मर्कटोलूकगृध्राणां पुरीषाणि नवग्रहे।
धूपः सुप्ते जने कार्यो बालस्य हितमिच्छता ॥८॥

बन्दर, उल्लू, गीध इनकी विष्ठा का अक्षत (जौ) के साथ, नवग्रह में बच्चे को रात्रि में धूप देवे ॥८॥

तिलतण्डुलकं माल्यं भक्ष्यांश्च विविधानपि।
कुमारपितृमेषाय वृक्षमूले निवेदयेत् ॥९॥

तिल, तण्डुल, माला (पुष्प), नाना प्रकार के भक्ष्यपदार्थों की कुमारपितृमेष ग्रह के लिये वृक्षमूल में बलि देवे ॥९॥

अधस्ताद्वटवृक्षस्य स्नपनं चोपदिश्यते।
बलिं न्यग्रोधवृक्षेषु तिथौ षष्ठ्यां निवेदयेत् ॥१०॥
अजाननश्चलाक्षिभ्रूः कामरूपी महायशाः।
बालं बालपिता देवो नैगमेषोऽभिरक्षतु ॥११॥

बच्चे को बरगद के वृक्ष के नीचे स्नान कराये। बरगद के वृक्षों में छठी तिथि में बलि देवे। रक्षामन्त्र—बकरी के समान मुख को, चंचल आँख एवं भ्रूवाला, कामरूप, बड़े यशवाला, बालकों का पिता नैगमेष देव, बालक की रक्षा करे॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कुमारतन्त्रे नैगमेषप्रतिषेधो नाम (दशमोऽध्यायः आदितः) षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः

अथातो ग्रहोत्पत्तिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे ग्रहोत्पत्ति अध्याय का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था।

वि० मन्तव्य—इस अध्याय में भूतविद्या के अनुसार ग्रहों की उत्पत्ति आदि का वर्णन है ॥१,२॥

नव स्कन्दादयः प्रोक्ता बालानां य इमे ग्रहाः।
श्रीमन्तो दिव्यवपुषो नारीपुरुषविग्रहाः ॥३॥

बालकों के स्कन्दादि जो ये नौ ग्रह कहे हैं, ये सब ऐश्वर्यशाली, दिव्य तनु एवं स्त्री पुरुष शरीरवाले हैं ॥३॥

एते गुहस्य रक्षार्थं कृत्तिकोमाग्निशूलिभिः।
सृष्टाः शरवणस्थस्य रक्षितस्यात्मतेजसा ॥४॥

शरवणस्थ एवं अपनी शक्ति से रक्षित होने पर भी गुह (कार्तिकेय) की रक्षा के लिये कृत्तिका पार्वती अग्नि और महादेव ने इन ग्रहों को उत्पन्न किया है।

वक्तव्य—जिस प्रकार अपनी शक्ति से रक्षित इन्द्र की दूसरे देव रक्षा करते हैं, उसी प्रकार कार्तिकेय की ये ग्रह रक्षा करते हैं।

वि० मन्तव्य—गुह अर्थात् कार्तिकेय की कथा शिवपुराण तथा कुमारसम्भव नामक काव्य में देखिये। संक्षेपतः यह शिव के पुत्र थे और इन्होंने तारकासुर का वध किया था। तारकासुर का वध करने के लिये ही भगवान् शिव ने कार्त्तिकेय को उत्पन्न किया था ॥४॥

स्त्रीविग्रहा ग्रहा ये तु नानारूपा मयेरिताः।
गङ्गोमाकृत्तिकानां ते भागा राजसतामसाः ॥५॥

स्त्री शरीरवाले जो ये नानाप्रकार के ग्रह मैंने कहे हैं, जिनको गंगा, पार्वती, और कृत्तिका ने बनाया है, ये ग्रह राजस एवं तामस हैं (रजतमोमय हैं) ॥५॥

नैगमेषस्तु पार्वत्या सृष्टो मेषाननो ग्रहः।
कुमारधारो देवस्य गुहस्यात्मसमः सखा ॥६॥

नैगमेष ग्रह को पार्वती ने बनाया है, इसका मुख मेष (मेढ़) के समान है, कुमार की रक्षा करनेवाला गुह (कार्त्तिकेय) देव का अभिन्न मित्र है ॥६॥

स्कन्दापस्मारसंज्ञो यः सोऽग्निनाऽग्निसमद्युतिः।
स च स्कन्दसखा नाम विशाख इति चोच्यते ॥७॥

स्कन्दापस्मारग्रह अग्नि से उत्पन्न हुआ है, इसकी द्युति अग्नि के समान है, यह स्कन्द का मित्र है, इसका दूसरा नाम विशाख है ॥७॥

स्कन्दः सृष्टो भगवता देवेन त्रिपुरारिणा।
बिभर्ति चापरां संज्ञां कुमार इति स ग्रहः ॥८॥

रुद्रदेवता ने स्कन्द को उत्पन्न किया है, इसी ग्रह को 'कुमार' इस नाम से भी कहते हैं ॥८॥

बाललीलाधरो योऽयं देवो रुद्राग्निसंभवः।
मिथ्याचारेषु भगवान् स्वयं नैष प्रवर्तते ॥९॥

बालकों की लीला को धारण करनेवाला, रुद्र एवं अग्नि से उत्पन्न यह देव, मिथ्या आचरणों में स्वयं प्रवृत्त नहीं होता, (भगवान् होने से) अपितु इसके नौकर प्रविष्ट होते हैं। कहा भी है—

"तेषां ग्रहाणां परिचारका ये कोटीसहस्रायुतपद्मसंख्याः। असृग्वसामांसभुजः सुभीमा निशाविहाराश्च तमाविशन्ति ॥" सु० अ० ६०।२२।

वि० मन्तव्य—तात्पर्य यह है कि कुमार अर्थात् कार्तिकेय स्वयं बालकों में आवेश नहीं करता अपितु उसके स्कन्द आदि अनुचर ही आवेश करते हैं ॥९॥

कुमारः स्कन्दसामान्यादत्र केचिदपण्डिताः।
गृह्णातीत्यल्पविज्ञाना ब्रुवते देहचिन्तकाः ॥१०॥

कार्तिकेय स्कन्दग्रह के नाम की समानता से बालक को आक्रान्त करते हैं, ऐसा कई अपण्डित, देहचिन्तक वैद्य कहते हैं, वे अल्प ज्ञानवाले और मूर्ख हैं ॥१०॥

ततो भगवति स्कन्दे सुरसेनापतौ कृते।
उपतस्थुर्ग्रहाः सर्वे दीप्तशक्तिधरं गुहम् ॥११॥

ऊचुः प्राञ्जलयश्चैनं वृत्तिं नः संविधत्स्व वै।
तेषामर्थं ततः स्कन्दः शिवं देवमचोदयत् ॥१२॥
ततो ग्रहांस्तानुवाच भगवान् भगनेत्रहृत्।
तिर्यग्योनिं मानुषं च देवं च त्रितयं जगत् ॥१३॥
परस्परोपकारेण वर्तते धार्यतेऽपि च।
देवा मनुष्यान् प्रीणन्ति तैर्यग्योनींस्तथैव च ॥१४॥
वर्तमानैर्यथाकालं शीतवर्षोष्णमारुतैः।
इज्याञ्जलिनमस्कारजपहोमव्रतादिभिः ॥१५॥
नराः सम्यक् प्रयुक्तैश्च प्रीणन्ति त्रिदिवेश्वरान्।
भागधेयं विभक्तं च शेषं किञ्चिन्न विद्यते ॥१६॥
तद्युष्माकं शुभा वृत्तिर्बालेष्वेव भविष्यति।
कुलेषु येषु नेज्यन्ते देवाः पितर एव च ॥१७॥
ब्राह्मणाः साधवश्चैव गुरवोऽतिथयस्तथा।
निवृत्ताचारशीलेषु परपाकोपजीविषु ॥१८॥
उत्सन्नबलिभिक्षेषु भिन्नकांस्योपभोजिषु।
गृहेषु तेषु ये बालास्तान् गृह्णीध्वमशङ्किताः ॥१९॥
तत्र वो विपुला वृत्तिः पूजा चैव भविष्यति।
एवं ग्रहाः समुत्पन्ना बालान् गृह्णन्ति चाप्यतः ॥२०॥
ग्रहोपसृष्टा बालास्तु दुश्चिकित्स्यतमा मताः।

फिर देवताओं के सेनापति बना देने पर भगवान् स्कन्द, चमकती हुई शक्ति को धारण करनेवाले गुह के पास पहुँचकर सब ग्रहोंने हाथ जोड़कर कहा कि, आप हमारी वृत्ति (जीविका) का प्रबन्ध करो। इनके लिये तब स्कन्द ने महादेव जी को कहा—भगनेत्र का नाश करनेवाले भगवान् शम्भु ने तब उन ग्रहों को कहा कि—तिर्यग्योनि (पक्षि, पशु आदि), मानुष, और देव यह तीनों प्रकार का जगत् एक दूसरे के उपकार से धारण किया जाता है, और स्थिर रहता है। देवता मनुष्यों का और तिर्यग् योनि का पोषण करते हैं, यथा समय पर शीत, वर्षा, ग्रीष्म और वायु से इस जगत् की रक्षा करते हैं। मनुष्य यज्ञ, अंजलि नमस्कार (हाथ जोड़ना), जप, होम, व्रत आदि को भलीप्रकार करके देवताओं को प्रसन्न करते हैं। इस अंश समूह को देवता, मनुष्य तिर्यग्योनि ने आपस में बाँट लिया है, इस लिये इससे तो कुछ बचता नहीं। इसलिये तुम्हारी उत्तम जीविका बालकों में ही होगी। उनमें भी जिन कुलों में देवताओं और पितरों के लिये यज्ञ नहीं होता, ब्राह्मण, साधु, (सज्जन पुरुष), गुरु, एवं अतिथियों की जहाँ पूजा नहीं होती, आचार-पवित्रता जहाँ नष्ट हो गई, दूसरे के ऊपर जीनेवाले, जहाँ बलि एवं भिक्षा नष्ट हो गई हो, टूटे-पात्रों में भोजन करनेवाले, घरों में जो बालक हों उनको तुम बिना शंका के आक्रान्त करो। वहाँ तुमको प्रचुर जीविका मिलेगी और तुम्हारी पूजा भी होगी। इस प्रकार से उत्पन्न ग्रह बालकों को पीड़ित करते हैं, ग्रह से आक्रान्त बच्चे-कष्ट साध्य माने गये हैं ॥

वक्तव्य—गीता में भगवान् ने कहा है—"देवान् भावयतानेन, ते देवा भावयन्तु वः। परस्परं भावयन्तः, श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥" चरक में कहा है—"विरुद्धदुष्टाशुचिभोजनानि, प्रधर्षणं देवगुरुद्विजानां। उन्मादहेतुः भयहर्षपूर्वो मनोऽभिघातो विषमाश्च चेष्टाः ॥" चरक ॥११-२०॥

वैकल्यं मरणं चापि ध्रुवं स्कन्दग्रहे मतम् ॥२१॥
स्कन्दग्रहोऽत्युग्रतमः सर्वेष्वेव यतः स्मृतः।
अन्यो वा सर्वरूपस्तु न साध्यो ग्रह उच्यते ॥२२॥

स्कन्दग्रह के आक्रमण से विकलांगता और मृत्यु निश्चित है। क्योंकि इन सब में स्कन्दग्रह सबसे अधिक उग्र कहा है। दूसरे किसी ग्रह में सम्पूर्ण लक्षण होनेपर वह असाध्य होता है॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कुमारतन्त्रे ग्रहोत्पत्त्यध्यायो नाम (एकादशोऽध्यायः, आदितः) सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

अष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः

अथातो योनिव्यापत्प्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे योनिव्यापत्प्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था।

वि० मन्तव्य—योनि-भग (मैथुनोपयोगी अवयव) तथा गर्भाशय नामक अवयवों का सम्मिलित नाम योनि है इस अवयव के तीन आवर्त्त हैं-दो भग कहलाते हैं और तीसरे आवर्त्त में गर्भशय्या-गर्भाशय रहता है। इस अध्याय में भग एवं गर्भाशय की व्यापदों—विकृतियों का वर्णन तथा उनकी चिकित्सा का वर्णन है। व्यापद् शब्द रोग वाचक है ॥१,२॥

प्रवृद्धलिङ्गं पुरुषं याऽत्यर्थमुपसेवते।
रूक्षदुर्बलबाला या तस्या वायुः प्रकुप्यति ॥३॥
स दुष्टो योनिमासाद्य योनिरोगाय कल्पते।

अतिप्रलम्ब (अधिक पुष्ट एवं लम्बे) मेहनवाले पुरुष का जो रूक्ष, दुर्बल शरीरवाली स्त्री अथवा बालिका अतिशय सेवन करती है, उसमें वायु प्रकुपित हो जाती है, यह दूषित वायु योनि में पहुँचकर योनिरोगों को उत्पन्न करती है। चरक में—
"मिथ्याचारेण ताः स्त्रीणां प्रदुष्टेनार्त्तवेन च।
जायन्ते बीजदोषाच्च दैवाच्च ताः शृणु पृथक् ॥" ॥३॥

त्रयाणामपि दोषाणां यथास्वं लक्षणेन तु ॥४॥
विंशतिर्व्यापदो योनेर्निर्दिष्टा रोगसंग्रहे।
मिथ्याचारेण या स्त्रीणां प्रदुष्टेनार्तवेन च ॥५॥
जायन्ते बीजदोषाच्च दैवाच्च शृणु ताः पृथक्।

वातादि तीनों दोषों के उनके अपने अपने लक्षणों के अनुसार बीस योनिरोग रोगसंग्रह में कहे हैं। जो कि स्त्रियों के मिथ्या आचार से, दूषित आर्त्तव से, बीज दोष से और दैव (प्राक्तन कर्म) के कारण उत्पन्न होते हैं उनको पृथक्-पृथक् सुनो।

वि० मन्तव्य—इन बीस प्रकार की व्यापदों के चार कारण हैं—१ नारी का मिथ्या आचार अर्थात् प्रकृति विरुद्ध आहार एवं विहार। २—आर्त्तव अर्थात् रजस् की विकृति-जैसा सु० शा० अ० २ सू० ५ में बतलाया गया है। ३-बीज दोष माता पिता के शोणित एवं शुक्र की विकृति-जैसे कुष्ठ, अर्श, प्रमेह एवं स्थौल्य आदि विकार सहज होते हैं वैसे योनिव्यापद् भी होती हैं-प्रायः—अत्यानन्दा योनिव्यापद्वाली माता की पुत्री भी अत्यानन्दा से पीड़ित देखी जाती हैं। ४—दैवात्-दैवयोग से-उक्त तीनों कारण न होने पर भी किसी को योनिव्यापद् हो जाती है ॥४,५॥

उदावर्ता तथा बन्ध्या विप्लुता च परिप्लुता ॥६॥
वातला चेति वातोत्थाः पित्तोत्थाः रुधिरक्षरा।
वामिनी स्रंसिनी चापि पुत्रघ्नी पित्तला च या ॥७॥
अत्यानन्दा च या योनिः कर्णिनी चरणाद्वयम्।
श्लेष्मला च कफाज्ज्ञेया षण्डाख्या फलिनी तथा ॥८॥
महती सूचीवक्त्रा च सर्वजेति त्रिदोषजा।

वातज पाँच योनि रोग—उदावर्त्ता, बन्ध्या, विप्लुता, परिप्लुता और वातला। पित्तज पाँच-रुधिरक्षरा, वामिनी स्रंसिनी, पुत्रघ्नी, पित्तला। कफज पाँच—अत्यानन्दा, कर्णिनी, अचरणा, अतिचरणा, श्लेष्मला। सन्निपातज पाँच—षण्डी, फलिनी, महती, सूचीवक्त्रा, सर्वजा ॥६-८॥

सफेनिलमुदावर्ता रजः कृच्छ्रेण मुञ्चति ॥९॥
बन्ध्यां नष्टार्तवां विद्याद्विप्लुतां नित्यवेदनाम्।
परिप्लुतायां भवति ग्राम्यधर्मे रुजा भृशम् ॥१०॥
वातला कर्कशा स्तब्धा शूलनिस्तोदपीडिता।
चतसृष्वपि चाद्यासु भवन्त्यनिलवेदनाः ॥११॥

उदावर्त्ता योनि में झाग के साथ रज कठिनाई से आता है। बन्ध्या में आर्त्तव नष्ट होता है, विप्लुता में नित्य वेदना रहती है। परिप्लुता में—सहवास करते समय अतिशय पीड़ा होती है। वातलायोनि-कर्कश, स्तब्ध (कठोर), शूल एवं चुभने की वेदनावाली होती है। प्रथम चारों योनियों में वात की पीड़ायें रहती हैं ॥९—११॥

सदाहं क्षरते रक्तं यस्यां सा लोहितक्षरा।
सवातमुद्गिरेद्बीजं वामिनी रजसा युतम् ॥१२॥
प्रस्रंसिनी स्यन्दते तु क्षोभिता दुःप्रसूश्च या।
स्थितं स्थितं हन्ति गर्भं पुत्रघ्नी रक्तसंस्रवात् ॥१३॥
अत्यर्थं पित्तला योनिर्दाहपाकज्वरान्विता।
चतसृष्वपि चाद्यासु पित्तलिङ्गोच्छ्रयो भवेत् ॥१४॥

जिस योनि में से निरन्तर दाह के साथ थोड़ा थोड़ा रक्त बहता रहता है, वह लोहितक्षरा है। वामिनी योनि

बीज को (शुक्रकीट को) वायु के साथ रजःकाल में बाहर कर देती है। प्रस्रंसिनी-योनि में विक्षोभ होने पर (सहवास में) बहुत स्राव होता है, और कठिनाई से प्रसव होता है। पुत्रघ्नी योनि में—रक्त के स्राव होने से गर्भ रह कर नष्ट हो जाता है। पित्तला योनि में अतिशय दाह, पाक, ज्वर रहता है। प्रथम चार योनि रोगों में पित्त के लक्षणों की अधिकता रहती है।

वि० मन्तव्य—प्रस्रंसिनी—इस योनि व्यापद् में गर्भाशय खिसककर नीचे आ जाता है। इसे (धरा गिरना) कहते हैं। धरा गर्भाशय का नाम है ॥१२–१४॥

अत्यानन्दा न सन्तोषं ग्राम्यधर्मेण गच्छति।
कर्णिन्यां कर्णिका योनौ श्लेष्मासृग्भ्यां प्रजायते ॥१५॥
मैथुनेऽचरणा पूर्वं पुरुषादतिरिच्यते।
बहुशश्चातिचरणादन्या बीजं न विन्दति ॥१६॥
श्लेष्मला पिच्छिला योनिः कण्डूयुक्ताऽतिशीतला।
चतसृष्वपि चाद्यासु श्लेष्मलिङ्गोच्छ्रितिर्भवेत् ॥१७॥

अत्यानन्दायोनि में—मैथुन से कभी तृप्ति नहीं होती। कर्णिनीयोनि में कफ रक्त के कारण योनि में कर्णिका उत्पन्न हो जाती है। अचरणायोनि में मैथुन क्रिया में-पुरुष से पूर्व ही स्राव हो जाता है। अतिचरणायोनि—बहुत मैथुन करने से बीज (गर्भ) को ग्रहण नहीं करती (यथा-वेश्याओं में) श्लेष्मला योनि—पिच्छिल, कण्डु-युक्त और अति शीतल रहती है (प्रायः मोटी-फैट वाली औरतों में ऐसा दीखता है)। प्रथम चारों में कफ के लक्षणों की अधिकता रहती है।

वि० मन्तव्य-बहुशश्चाति चरणा-अतिचरणा नामक योनि व्यापद में—बहुत बार स्खलन हो जाता है और इन अचरणा तथा अतिचरणा में गर्भाधान नहीं होता। योनिस्राव वस्तुतः नारी का शुक्र है और शुक्र कफ वर्ग का पदार्थ है अतः कफ-जनित योनि व्यापद् में ऐसा होता है। अत्यानन्दा नामक योनि व्यापद् का भी यही कारण हैं और कर्णिनी तथा श्लेष्मला का भी यही कारण है। इन रोगों से पीड़ित नारियाँ इन रोगों के कारण बहुपुरुष गामिनी हो जाती हैं, इस दशा में सदुपदेश के साथ २ उचित चिकित्सा भी होनी चाहिये। "बहुशश्चाति चरणादन्या बीजं न विन्दति" के स्थान पर "बहुशश्चाति चरणा तयोर्बीजं न तिष्ठति" पाठान्तर है, दे० डल्लन टीका। इसी पाठान्तर को भावमिश्र तथा माधवाचार्य ने उत्तम समझा है। अतः अपने ग्रन्थों में इसी पाठ को उद्धृत किया है॥

वक्तव्य—अचरणा-पुरुषात् पूर्वमतिरिच्यते-अत्यर्थं कण्डूयते। वात्स्यायन ने स्त्री पुरुष की प्रकृति का भेद किया है—यथा पुरुष में काम की अधिकता प्रथम अधिक होती है, फिर उत्तरोत्तर घटती जाती है, स्त्री में इससे विपरीत रहता है, उनमें पहले कम रहती है फिर उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। उनके मानसिक भाव पुरुष से सब अवस्थाओं में विपरीत हैं, यथाः "स्त्रिय कामयंते, न तु प्रार्थयंते," स्त्री पुरुष की कामना करती है, परन्तु प्रेम या विवाह का प्रस्ताव पेश नहीं करती, पुरुष चाहना भी करता है और प्रेम या विवाह की मंगनी भी करता है। इसी प्रकार मैथुन में होता है। इसी से कहा है कि न स्त्रीपुरुषवदेवभावमधिगच्छति। (२) दूसरा पक्ष चिरवेगे नायके स्त्रियोऽनुरज्यन्ते। शीघ्रवेगस्य भावमनासाद्यावसानेऽभ्य-सूयिन्यो भवन्ति। तत्सर्वभावप्राप्तेरप्राप्तेश्च लक्षणम्॥ सातत्यात् युवतिरारम्भात्प्रभृति भावमधिगच्छति, पुरुषःपुनरन्त एव। "सुरतान्ते सुखं पुंसां स्त्रीणां तु सततं सुखम्। धातुक्षयनिमित्ता च विरामाच्चोपजायते॥" वात्स्यायन कामसूत्र ॥१५-१७॥

अनार्तवस्तना षण्डी खरस्पर्शा च मैथुने।
अतिकायगृहीतायास्तरुण्याः फलिनो भवेत् ॥१८॥
विवृताऽतिमहायोनिः सूचीवक्त्राऽतिसंवृता।
सर्वलिङ्गसमुत्थाना सर्वदोषप्रकोपजा ॥१९॥
चतसृष्वपि चाद्यासु सर्वलिङ्गोच्छ्रितिर्भवेत्।
पञ्चासाध्या भवन्तीमा योनयः सर्वदोषजाः ॥२०॥

षण्डी योनि में न तो आर्त्तव आता है, और न स्तन ही उभरे होते हैं, मैथुन में कठोर स्पर्शवाली होती है। अति लम्बे या पुष्ट मेहनवाले पुरुष के साथ छोटी उमर की स्त्री के मैथुन करने से फलिनी योनि होती है। अतिविवृता को ही महायोनि कहते हैं, सूचिवक्त्रा योनि अतिशय सूक्ष्म मुखवाली होती है (इनमें योनि पटल-योनिविवर पर रहता है, उसका छेद बहुत छोटा या सदा बन्द होता है)। सन्निपातज योनि में-सब दोषों के लक्षण रहते हैं। प्रथम चारों में तीनों दोषों के लक्षण अधिकता से रहते हैं। सन्निपातज ये पांचों योनिरोग असाध्य हैं।

वक्तव्य—वात्स्यायन में इसी से कहा है-न प्रसह्य किंचिदाचरेत्। "इसी विचार से कामशास्त्र से शशादि भेद पुरुषों के एवं स्त्रियों के किये हैं। जिससे मेहन के दोषजन्य, या योनि-दोषजन्य रोग उत्पन्न न हों। योनि विवर पर योनिछद कई कई बार बिल्कुल बन्द ही रहता है, या इसका मुख तंग रहता है, जिससे आर्तव नहीं आता—उस समय चिकित्सक इसको काट देता है[१]।

वि० मन्तव्य—षण्डी नामक योनिव्यापद में आर्त्तव नहीं होता। फलतः उससे पीड़ित नारी वन्ध्या होती है, क्योंकि भग-

१ शशो वृषोऽश्व इति लिंगतो नायक विशेषः।
नायिका पुनः मृगी वडवा हस्तिनी चेति॥
स्त्रीणां साधनमार्गोऽपि तद्वदेव प्रभिद्यते।
आयामपरिणाहाभ्यां मृगादीनां शशादिवत्॥

वान् पुनर्वसु के कथनानुसार इस व्यापद् में बीज (माता पिता के शोणित एवं शुक्र) के दोष से गर्भ निर्माण काल में ही वायु द्वारा गर्भाशय का उपघात हो जाता है, और यह नारी नर से द्वेष रखती है, अर्थात् इसे मैथुन की अभिलाषा ही नहीं होती और इसके स्तन अपुष्ट होते हैं अथवा उभरते ही नहीं हैं, अर्थात् सर्वतो भाव से यह नारी अपूर्व नारी होती है। च० शा० स्था अ० ४ में भी यही कहा गया है। सच यह है, कि गर्भाशय तथा स्तन ही नारी के प्रधान-मुख्य लक्षण हैं, यह दोनों अवयव जितने अधिक पुष्ट होते हैं, उतने ही उत्तम नारीत्व के सूचक हैं। फलिनी—डल्लना चार्य ने लिखा है, कि कुछ आचार्य फलिनी के स्थान में "अफलिनी" भी पढ़ते हैं, और व्याख्या करते हैं, अप्रजा अर्थात् इसमें गर्भाधान ही नहीं होता है। महायोनि—इस व्यापद् में गर्भाशय का मुख सर्वदा अत्यन्त विवृत अर्थात् खुला ही रहता है, पुनर्वसु के कथनानुसार गर्भाशय पर मांस अधिक सञ्चित हो जाता है, सर्वदा वेदना होती है, रूक्ष एवं झागयुक्त रजः स्राव होता है, तथा पोर २ एवं वंक्षण में शूल होता रहता है। देखिये च० चि० अ० ३०। सूचीवक्त्रा—इस व्यापद् में गर्भाशय का मुख अत्यन्त संवृत—बन्द रहता है। फलतः उसमें शुक्र का प्रवेश ही नहीं होता। इस व्यापद् को योनि छद कहना उचित नहीं प्रतीत होता। सर्वदोष प्रकोपजा—इस व्यापद् में पुनर्वसु के कथनानुसार 'सा भवेत् दाहशूलार्त्ता श्वेतपिच्छिलवाहिनी।

अर्थात् पित्त से दाह, वायु से शूल और कफ से श्वेत एवं पिच्छिल स्राव होता है। च० चि० अ० ३० में योनि व्यापदों के साथ २ शुक्र एवं शुक्रवह स्रोतों की विकृतियों का विशद वर्णन किया गया है ॥१८-२०॥

प्रतिदोषं तु साध्यासु स्नेहादिक्रम इष्यते।
दद्यादुत्तरबस्तींश्च विशेषेण यथोदितान् ॥२१॥

साध्य योनिरोगों में दोष के अनुसार स्नेहन आदि चिकित्सा करे। वातादि भेद से कही हुई उत्तर वस्तियों को विशेष रूप में बरते। (जो स्नेह जिस दोष से विपरीत हो, उससे स्नेहन करके वमनादि करे) ॥२१॥

कर्कशां शीतलां स्तब्धामल्पस्पर्शां च मैथुने।
कुम्भीस्वेदैरुपचरेत् सानूपौदकसंयुतैः ॥२२॥
मधुरौषधसंयुक्तान् वेशवारांश्च योनिषु।
निक्षिपेद्धारयेच्चापि पिचुतैलमतन्द्रितः ॥२३॥
धावनानि च पथ्यानि कुर्वीतापूरणानि च।

कर्कश, शीतल, कठिन, मैथुन के स्पर्शसुख का पूर्ण अनुभव न करनेवाली योनि में—आनूपमांस और औदक मांस (कछुए-मछली आदि का मांस) के साथ कुम्भीस्वेद देवे। काकोल्यादि मधुर औषधियों से मिला कुट्टित मांस योनि में रक्खे। वातहर औषधियों से प्रक्षालन करे, इनसे भीगे वस्त्र योनि में रक्खे ॥२२,२३॥

ओषचोषान्वितासूक्तं कुर्याच्छीतं विधिं भिषक् ॥२४॥

ओष—चोष (जलन, दाह) संयुक्त योनि में वैद्य कही हुई शीतल चिकित्सा (रक्त-पित्त, नाशक) बरते ॥२४॥

दुर्गन्धां पिच्छिलां चापि चूर्णैः पञ्चकषायजैः।
पूरयेद्राजवृक्षादिकषायैश्चापि धावनम् ॥२५॥

दुर्गन्धित एवं पिच्छिलयोनि में बरगद-पीपल-पिलखन आदि कषाय वृक्षों का चूर्ण भरे, और आरग्वधादि गण के कषाय से योनि का प्रक्षालन करे ॥२५॥

योन्यां तु पूयस्राविण्यां शोधनद्रव्यसंभृतैः।
सगोमूत्रैः सलवणैः शोधनं हितमिष्यते ॥२६॥

पूयस्रावियोनि में मिश्रकोक्त शोधनद्रव्यों से, गोमूत्र से—थोड़ा नमक मिलाकर शोधन करना चाहिये ॥२६॥

बृहतीफलकल्कस्य द्विहरिद्रायुतस्य च।
कण्डूमतीमल्पस्पर्शां पूरयेद्धूपयेत्तथा ॥२७॥
वर्तिं प्रदद्यात् कर्णिन्यां शोधनद्रव्यसंभृताम् ॥
प्रस्रंसिनीं घृताभ्यक्तां क्षीरस्विन्नां प्रवेशयेत् ॥२८॥
पिधाय वेशवारेण ततो बन्धं समाचरेत्।
प्रतिदोषं विदध्याच्च सुरारिष्टासवान् भिषक् ॥२९॥
प्रातः प्रातर्निषेवेत रसोनादुद्धृतं रसम्।
क्षीरमांसरसप्रायमाहारं विदधीत च ॥३०॥

कण्डुयुक्त, अल्पस्पर्शवाली—योनि में बड़ी कटेरी के फल का कल्क, हल्दी, दारुहल्दी इनसे योनि में धूप देवे, और इनसे योनि को भरे। कर्णिनी में शोधन द्रव्यों से बनी वर्ति योनि में रक्खे। प्रस्रंसिनी (जो योनि बाहर आ जाती है) योनि में घी से अभ्यंग करके, दूध से स्वेदन देकर इसे अन्दर प्रविष्ट करे, वेशवार (कुट्टित मांस) से बन्द करके, पट्टी बाँध देवे। दोष के अनुकूल-सुरा, आसव, अरिष्टों को बरते। प्रतिदिन प्रातःकाल लहसुन का निकाला रस पीये। दूध, मांसरसवाले अन्न का सेवन करे ॥२७-३०॥

शुक्रार्तवादयो दोषाः स्तनरोगाश्च कीर्तिताः।
क्लैब्यस्थानानि मूढस्य गर्भस्य विधिरेव च ॥३१॥
गर्भिणीप्रतिरोगेषु चिकित्सा चाप्युदाहृता।
सर्वथा तां प्रयुञ्जीत योनिव्यापत्सु बुद्धिमान्।
अपप्रजातारोगांश्च चिकित्सेदुत्तराद्भिषक् ॥३२॥

शुक्र-आर्तव आदि दोष, स्तनरोग, जो कहे हैं, क्लैब्य के कारण, मूढगर्भ के कारण और इनकी चिकित्सा, गर्भवती की मासानुमासिक एवं रक्तस्रावादि

की चिकित्सा जो कही है, इन सबको योनिव्यापत् रोगों में बुद्धिमान् बरते। अकालप्रसूता के ज्वर आदि रोगों को वैद्य उत्तरतंत्र विधिसे चिकित्सा करे ॥३२॥

इति श्री सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कुमारतन्त्रे योनिव्यापत्प्रतिषेधो नाम (द्वादशोऽध्यायः, आदितः) अष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३८॥

उत्तरतन्त्रे द्वितीयं कौमारतन्त्रं समाप्तम् ॥२॥

एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

अथातो ज्वरप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे ज्वर प्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था।

वि० मन्तव्य—ज्वर प्रत्यात्मिकं लिंगं सन्तापी देहमानसः। ज्वरेणाऽऽविशता भूतं नहि किञ्चित् न तप्यते। च०चि०।

अर्थात्—ज्वर का आत्मिक-स्वीय लक्षण है देह एवं मनस् का सन्ताप—स्वाभाविक सन्ताप से शरीर में अधिक सन्ताप-उष्णता हो जाना—क्योंकि प्राणी में ज्वर का आवेश-प्रवेश हो जाने पर कोई भी भाव तप्त हुए बिना नहीं रहता। तात्पर्य यह है कि समस्त शरीर पर ज्वर का प्रभाव होता है। अन्य सब रोगों का शरीर के भिन्न अवयवों पर ही प्रभाव पड़ता है। देह का सन्ताप स्पर्श से एवं थर्मामीटर से जाना जाता है और मनस् का सन्ताप—वैचित्यं अरतिः ग्लानिः मनस्सन्तापलक्षणम्, और-इन्द्रियाणां च वैकृत्यं ज्ञेयं सन्तापलक्षणम् ॥१,२॥

येनामृतमपां मध्यादुद्धृतं पूर्वजन्मनि।
यतोऽमरत्वं संप्राप्तास्त्रिदशास्त्रिदिवेश्वरात् ॥३॥
शिष्यास्तं देवमासीनं पप्रच्छुः सुश्रुतादयः।
व्रणस्योपद्रवाः प्रोक्ता व्रणिनामप्यतः परम् ॥४॥
समासाद् व्यासतश्चैव ब्रूहि नो भिषजांवर!।

जिसने पूर्वजन्म में समुद्र में से अमृत को निकाला, जिस धन्वन्तरि के कारण देवताओं ने अमरत्व प्राप्त किया, बैठे हुए उस देव धन्वन्तरि भगवान् से सुश्रुत आदि ने पूछा, आपने व्रण के उपद्रव तथा व्रणवाले पुरुष के उपद्रव संक्षेप में पहले कह दिये हैं, हे वैद्यों में श्रेष्ठ! आप उनको विस्तार से कहो।

वक्तव्य—व्रण के उपद्रव-वेदना, वर्ण स्राव आदि। व्रणवाले पुरुष के उपद्रव-

"विसर्पः पक्षघातश्च सिरास्तम्भोऽपतानकः।
मोहोन्मादौ व्रणरुजा ज्वरस्तृष्णा हनुग्रहः॥
कासश्छर्दिरतीसारो हिक्का श्वासः सवेपथुः।
षोडशोपद्रवाः प्रोक्ताः व्रणिनां व्रणचिन्तकैः" ॥३,४॥
उपद्रवेण जुष्टस्य व्रणः कृच्छ्रेण सिध्यति ॥५॥
उपद्रवास्तु व्रणिनः कृच्छ्रसाध्याः प्रकीर्तिताः।
प्रक्षीणबलमांसस्य शेषधातुपरिक्षयात् ॥६॥
तस्मादुपद्रवान् कृत्स्नान् ब्रूहि नः सचिकित्सितान्।
सर्वकायचिकित्सासु ये दृष्टाः परमर्षिभिः ॥७॥

उपद्रव से युक्त रोगी का व्रण कठिनाई से अच्छा होता है, व्रणरोगी के उपद्रव कष्टसाध्य होते हैं, क्योंकि व्रणरोगी का बल (उत्साह) और मांस क्षीण हो जाता है, मेद आदि दूसरे धातु भी क्षीण हो जाते हैं। इसलिये आप सब उपद्रवों को चिकित्सा के साथ हमको कहिये, जिन उपद्रवों को सम्पूर्ण काय-चिकित्सा में परमर्षि (भारद्वाज या आत्रेय) ने देखा है-कहा है।

वि० मन्तव्य—ईसवी सन् १९३६-३७ की बात है श्री दुर्गाप्रसाद जी बी० ए० कलाविशारद श्री अर्जुन आयुर्वेद विद्यालय काशी के सभापति थे। मैं कार्यवश प्रायः उनके निवास स्थान (लकसा) पर जाया-आया करता था, विद्यालय के कार्यों के अतिरिक्त अन्य विषयों पर भी वार्तालाप हुआ करता था। एक दिन उन्होंने मुझसे कहा कि वैद्यजन ज्वर को मूल व्याधि मानते हैं, परन्तु अमेरिका के एक विद्वान् ने सिद्ध कर दिया है कि ज्वर कोई मूल व्याधि नहीं है, अपितु—किसी न किसी अन्य मूल व्याधि का लक्षण है। मैंने उनसे निवेदन किया कि यह कोई नई वस्तु नहीं है। प्राचीन शल्य-शालाक्य तन्त्रों में भी ज्वर को उपद्रव माना गया है यह सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए और तत्काल उन्होंने अपने पुस्तकालय से सुश्रुत निकालकर मेरे सामने रख दिया, मैंने यही पाठ उनको सुनाए और वे चकित होकर कहने लगे कि वह सब तो सुश्रुत के इन्हीं पाठों का अनुवाद या भावार्थ प्रतीत होता है। अस्तु, बाबू दुर्गाप्रसाद जी खत्री अपने समय के बहुत बड़े विद्वान् माने जाते थे। काशीस्थ भारत माता के मन्दिर में जो कुछ भी है वह सब उनकी ही कलाकौशल की देन है। अस्तु तात्पर्य यह है कि-काय चिकित्सा के ग्रन्थों में ज्वर आदि को मूल व्याधियां माना गया है और आयुर्वेद के अन्य अङ्गों में-शल्य तथा शालाक्य नामक अंगों में उसको उपद्रव माना गया है और उपद्रव का लक्षण काय चिकित्सा (चरक संहिता) में-उपद्रवस्तु खलु रोगोत्तरकालजो रोगाश्रयो रोग एव स्थूलोऽणुर्वा रोगात् पश्चात् जायते इति उपद्रवसंज्ञः (च० चि० अ० २१-४०) तथा शल्यतन्त्र (सुश्रुत) में—औपसर्गिको नाम यः पूर्वोत्पन्नं व्याधिं जघन्यकालजातो व्याधिः उपसृजति स तन्मूल एव उपद्रवसंज्ञः (सु० सू० अ० ३५।१८)। दोनों में एक समान माना गया है। उपसर्ग का पर्याय ही उपद्रव है ॥५-७॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा प्राब्रवीद्भिषजांवरः।
ज्वरमादौ प्रवक्ष्यामि स रोगानीकराट् स्मृतः ॥८॥
रुद्रकोपाग्निसंभूतः सर्वभूतप्रतापनः।
तैस्तैर्नामभिरन्येषां सत्त्वानां परिकीर्त्यते ॥९॥

सुश्रुत आदि के इन वचनों को सुनकर वैद्यों में श्रेष्ठ धन्व-

न्तरि ने कहा—कि-सबसे प्रथम ज्वर को कहूँगा, क्योंकि वह ज्वर रोगसमूहों का राजा है, यह ज्वर रुद्र की कोपाग्नि से उत्पन्न हुआ है, सब प्राणियों को तपानेवाला है। हाथी, घोड़े आदि दूसरे प्राणियों में भिन्न-भिन्न नामों से कहा जाता है।

वक्तव्य—भिन्न-भिन्न नामों से ज्वर, यथा—हस्तिषु पाकलः, गोषु खैरिको, मत्स्यानामिद्र जालो, विहंगानां भ्रामरकः इत्यादि शब्दों से कहा जाता है ॥८,९॥

जन्मादौ निधने चैव प्रायो विशति देहिनम्।
अतः सर्वविकाराणामयं राजा प्रकीर्तितः ॥१०॥

यह ज्वर जन्म के प्रारम्भ में और मृत्यु काल में प्रायः करके प्राणियों में होता है, इसलिये सब रोगों का यह राजा कहा जाता है।

"ज्वरस्तु खलु महेश्वरकोपप्रभवः सर्वप्राणिनां प्राणहरः देहेन्द्रियमनस्तापकरः प्रज्ञाबलवर्णहर्षोत्साहह्रासकरः श्रमक्लममोहाहारोपरोधसंजननो, ज्वरयति शरीराणि इति ज्वरः स सर्वरोगाधिपतिः नानातिर्यग्योनिषु च बहुविधैः शब्दैः अभिधीयते। सर्वे प्राणभृतश्च सज्वरा एव जायन्ते, सज्वरा एव म्रियन्ते च, स महामोहः" । चरक नि० अ० १-४० ॥१०॥

ऋते देवमनुष्येभ्यो नान्यो विषहते तु तम्।
कर्मणा लभते यस्माद्देवत्वं मानुषादपि ॥११॥
पुनश्चैव च्युतः स्वर्गान्मानुष्यमनुवर्तते।
तस्मात्ते देवभावेन सहन्ते मानुषा ज्वरम् ॥१२॥
शेषाः सर्वे विपद्यन्ते तैर्यग्योना ज्वरार्दिताः।

देवताओं और मनुष्यों के बिना कोई भी प्राणी ज्वर को सहन नहीं करता। कर्म के कारण से ही मनुष्य देवत्व को प्राप्त करते हैं। और फिर ये ही स्वर्ग से च्युत होकर पृथ्वी पर मनुष्य रूप में लौट आते हैं। इसलिये देवत्व गुण के होने से मनुष्य ज्वर को सहन कर लेते हैं, शेष पशु-पक्षियोनि के प्राणी ज्वर से पीड़ित होने पर नष्ट हो जाते हैं ॥११,१२॥

स्वेदावरोधः सन्तापः सर्वाङ्गग्रहणं तथा ॥१३॥
विकारा युगपद्यस्मिन् ज्वरः स परिकीर्तितः।

पसीने का अवरोध, सन्ताप, सब अंगों का पकड़ा जाना, ये सब लक्षण एक साथ-मिलित रूप से जिस रोग में होते हैं, उसे ज्वर कहते हैं।

वक्तव्य—स्वेदावरोध, यह लक्षण प्रायिक है, क्योंकि पित्त ज्वर में पसीना आता है। सन्ताप-शरीर और मन दोनों का होता है, यथा—"वैचित्यमरतिर्ग्लानिः मनस्संतापलक्षणम्। इन्द्रियाणां च वैकृत्यं ज्ञेयं सन्तापलक्षणम्। ज्वरेणाविशता भूतं न हि किञ्चिन्न तप्यते। ज्वरप्रत्यात्मिकं लिंगं सन्तापो देहमानसः॥" शरीर और मन का सन्ताप होना ही, ज्वर का अपना विशेष लक्षण है ॥१३॥

दोषैः पृथक् समस्तैश्च द्वन्द्वैरागन्तुरेव च ॥१४॥
अनेककारणोत्पन्नः स्मृतस्त्वष्टविधो ज्वरः।

ज्वर आठ प्रकार का है, यथा-पृथग् दोषों से तीन, सन्निपातज एक, दो-दो दोषों से तीन, आगन्तुज एक, इस प्रकार से ज्वर आठ प्रकार का है ॥१४॥

दोषाः प्रकुपिताः स्वेषु कालेषु स्वैः प्रकोपणैः ॥१५॥
व्याप्य देहमशेषेण ज्वरमापादयन्ति हि।
दुष्टाः स्वहेतुभिर्दोषाः प्राप्यामाशयमूष्मणा ॥१६॥
सहिता रसमागत्य रसस्वेदप्रवाहिणाम्।
स्रोतसां मार्गमावृत्य मन्दीकृत्य हुताशनम् ॥१७॥
निरस्य बहिरूष्माणि पक्तिस्थानाच्च केवलम्।
शरीरं समभिव्याप्य स्वकालेषु ज्वरागमम् ॥१८॥
जनयन्त्यथ वृद्धिं वा स्ववर्णं च त्वगादिषु।

सम्प्राप्ति—प्रावृड् शरद् वसन्त ऋतु अथवा दिन रात के अपने-अपने समय में अपने प्रकोपक कारणों से प्रकुपित हुए दोष सम्पूर्ण शरीर में फैलकर ज्वर को उत्पन्न करते हैं। क्योंकि अपने कारणों से दूषित हुए दोष आमाशय में पहुँचकर उष्मिमा के साथ मिलकर रस (हृदय) में आकर, रस एवं स्वेदवह स्रोतों के मार्गों को बन्द करके, अग्नि को मन्द बनाकर, और पक्तिस्थान (अग्निस्थान) से उष्मिमा को बाहर निकालकर सम्पूर्ण शरीर में फैलाकर अपने समय में (वातादि के प्रकोपक समय पर) ज्वर के वेग को उत्पन्न करते हैं, अथवा अपने समय में ज्वर को बढ़ाते हैं, और त्वचा, नख, नयन, मूत्र आदि में अपना वर्ण (दोष का वर्ण) उत्पन्न करते हैं।

"स यदा प्रकुपितः प्रविश्यामाशयमूष्मणः स्थानमूष्मणा सह मिश्रीभूयाद्यमाहारपरिणामं धातुं रसनामानमन्ववेत्य रसस्वेदवहानि स्रोतांसि पिधायाग्निमुपहत्य पक्तिस्थानादूष्माणं बहिः निरस्य केवलं शरीरमनुप्रपद्यते, तदा ज्वरमभिनिर्वर्तयति ॥"
चरक नि० अ० १-३०

वातज्वर—"जरणान्ते दिवसान्ते निशान्ते घर्मान्ते ज्वराभ्यागमनमभिवृद्धिर्वा ज्वरस्य, विशेषेण परुषारुणवर्णत्वं, नखनयनवदनमूत्रपुरीषत्वचामत्यर्थंक्लृतीभावश्च अनेकविधोष्माणश्चलाश्च वेदनास्तेषां तेषामंगावयवानाम्।"

पित्तज्वर—"युगपदेव केवले शरीरेज्वरस्यागमनमभिवृद्धिर्वा भुक्तस्य विदाहकाले मध्यन्दिनेऽर्धरात्रे शरदि वा विशेषेण, कटुकास्यता····हरितहारित्वं नखनयनवदनमूत्रपुरीषत्वचामत्यर्थमुष्मणस्तीव्रभावोऽतिमात्रं चदाहः॥"

कफज्वर—"युगपदेव शरीरे ज्वरस्यागमनमभिवृद्धिर्वा, भुक्तमात्रे, पूर्वाह्णे, पूर्वरात्रे, वसन्तकाले वा विशेषेण गुरुगात्रत्वम्,·······श्वैत्ये च नखनयनवदनमूत्रपुरीषत्वचामत्यर्थं च॥"
चरक नि० अ० १ ॥१५-१८॥

मिथ्यातियुक्तैरपि च स्नेहाद्यैः कर्मभिर्नृणाम् ॥१६॥
विविधादभिघाताच्च रोगोत्थानात् प्रपाकतः ।
श्रमात् क्षयादजीर्णाच्च विषात्सात्म्यर्तुपर्ययात् ॥२०॥
ओषधीपुष्पगन्धाच्च शोकान्नक्षत्रपीडया ।
अभिचाराभिशापाभ्यां मनोभूताभिशङ्कया ॥२१॥
स्त्रीणामपप्रजातानां प्रजातानां तथाऽहितैः ।
स्तन्यावतरणे चैव ज्वरो दोषैः प्रवर्तते ॥२२॥

स्नेहन-वमन आदि कार्यों के मिथ्यारूप में या अतिमात्रा में सेवन करने से, नानाप्रकार के अभिघात से, विद्रधि आदि रोगों के कारणों से तथा विद्रधि आदि रोगों के प्रपाक से, श्रम से, क्षय से, आम–अजीर्ण से, विष से, सात्म्य या ऋतु के परिवर्तन से, औषधि पुष्प की गन्ध से, शोक से, जन्म नक्षत्र की क्रूर पीड़ा से, अभिचार (कृत्या-या मंत्रादि जनित पीड़ा) से, अभिशाप से (देवता-गुरु-वृद्ध आदि के शाप से), मन के अभिषंग से (काम-क्रोधादि से), भूताभिषंग से (देवादि ग्रह से), असम्यक् प्रसूता स्त्रियों के भी मिथ्या आहार-विहार से, धावन के उतरने के समय दोषजन्य ज्वर होता है।

वक्तव्य—औषधिपुष्प गन्धक ज्वर—जैसे 'हे फीवर' (Hay Fever) अभिषंग-सम्बन्ध, ऋतु विपर्यय, से यथा—Summer diarhold (ग्रीष्मातीसार), धावन का ज्वर—Milk fever ॥१६–२२॥

तैर्वेगवद्भिर्बहुधा समुद्भ्रान्तैर्विमार्गगैः ।
विक्षिप्यमाणोऽन्तरग्निर्भवत्याशु बहिश्चरः ॥२३॥
रुणद्धि चाप्यपां धातुं यस्मात्तस्माज्ज्वरातुरः ।
भवत्यत्युष्णगात्रश्च ज्वरितस्तेन चोच्यते ॥२४॥

उन वेगवाले, इधर-उधर विक्षिप्त हुए, विमार्गगामि (तिर्यग्गामि) बने दोषों से बहुत प्रकार से प्रेरित की हुई अन्तरग्नि शीघ्र ही बाहर आ जाती है, और स्वेद को रोक देती है, इसलिये ज्वर रोगी का सारा शरीर गरम हो जाता है, इससे उसे 'ज्वरित' ज्वरवाला कहा जाता है।

वक्तव्य—अन्तरग्नि रोमकूपों में बाहर आ जाती है, परन्तु स्वेदवह स्रोतों के बन्द होने से पसीना नहीं होता ॥२३,२४॥

श्रमोऽरतिर्विवर्णत्वं वैरस्यं नयनप्लवः ।
इच्छाद्वेषौ मुहुश्चापि शीतवातातपादिषु ॥२५॥
जृम्भाऽङ्गमर्दो गुरुता रोमहर्षोऽरुचिस्तमः ।
अप्रहर्षश्च शीतं च भवत्युत्पत्स्यति ज्वरे ॥२६॥
सामान्यतो विशेषात्तु जृम्भाऽत्यर्थं समीरणात् ।
पित्तान्नयनयोर्दाहः कफान्नान्नाभिनन्दनम् ॥२७॥
सर्वलिङ्गसमवायः सर्वदोषप्रकोपजे ।
द्वयोर्द्वयोस्तु रूपेण संसृतं द्वन्द्वजं विदुः ॥२८॥

पूर्वरूप—थकान, बेचैनी, विवर्णता, विरसता आंखों में आंसू, शीत-वायु-धूप आदि में बार-बार कभी इच्छा और कभी द्वेष होना, जम्भाई, अंगों का टूटना, भारीपन, रोमांचता, अरुचि, अन्धकार (मन में तमोभाव-बुद्धि का काम न करना), आनन्द का अभाव, शीत की प्रतीति होना–ये लक्षण उत्पन्न होनेवाले ज्वर में होते हैं। ये सामान्य पूर्वरूप के लक्षण हैं। विशेष पूर्वरूप के लक्षण–वात में जम्भाई विशेषकर आती है, पित्त से आंखों में दाह, कफ से अन्न में अरुचि होती है, तीनों दोषों का प्रकोप होने पर तीनों दोषों के लक्षण मिले रहते हैं। दो-दो दोषों के संसर्ग से, दो-दो दोषों के सम्मिलित लक्षण द्वन्द्व ज्वरों में होते हैं ॥२५–२८॥

वेपथुर्विषमो वेगः कण्ठौष्ठपरिशोषणम् ।
निद्रानाशः क्षुतः स्तम्भो गात्राणां रौक्ष्यमेव च ॥२९॥
शिरोहृद्गात्ररुग्वक्त्रवैरस्यं बद्धविट्कता ।
जृम्भाऽऽध्मानं तथा शूलं भवत्यनिलजे ज्वरे ॥३०॥

वातजन्यज्वर में—कम्पन, ज्वर का वेग अनियमित, कण्ठ और ओठ का सूखना, नींद न आना, छींक का रुकना, शरीर में रूक्षता, शिर हृदय और अंगों में दर्द, मुख की विरसता, मल का अवरोध, जम्भाई, आध्मान, शूल होता है ॥२९,३०॥

वेगस्तीक्ष्णोऽतिसारश्च निद्राल्पत्वं तथा वमिः ।
कण्ठौष्ठमुखनासानां पाकः स्वेदश्च जायते ॥३१॥
प्रलापः कटुता वक्त्रे मूर्च्छा दाहो मदस्तृषा ।
पीतविण्मूत्रनेत्रत्वं पैत्तिके भ्रम एव च ॥३२॥

पित्तजन्यज्वर में—ज्वर का वेग तीक्ष्ण रहता है, अतीसार, नींद का कम आना, वमन, कण्ठ-ओठ-मुख और नासा का पकना, पसीना आना, प्रलाप, मुख में कटुता, मूर्च्छा दाह, मद, प्यास, मल-मूत्र और नेत्र में पीलापन, और चक्कर आना होता है ॥३१,३२॥

गौरवं शीतमुत्क्लेशो रोमहर्षोऽतिनिद्रता ।
स्रोतोरोधो रुगल्पत्वं प्रसेको मधुरास्यता ॥३३॥
नात्युष्णगात्रता छर्दिरङ्गसादोऽविपाकता ।
प्रतिश्यायोऽरुचिः कासः कफजेऽक्ष्णोश्च शुक्लता ॥३४॥

कफजन्यज्वर में—भारीपन, शीतलता, जी मचलाना, रोमहर्ष, नींद की अधिकता, स्रोतों का बन्द होना, मन्द वेदनायें, मुख से थूक आना, मुख में मिठास, अंगों का बहुत गरम न होना, वमन, अंगों का टूटना, अजीर्ण, प्रतिश्याय, अरुचि, कास और आंखों में सफेदी होती है ॥३३,३४॥

निद्रानाशो भ्रमः श्वासस्तन्द्रा सुप्ताङ्गताऽरुचिः ।
तृष्णा मोहो मदः स्तम्भो दाहः शीतं हृदि व्यथा ॥
पक्तिश्चिरेण दोषाणामुन्मादः श्यावदन्तता ।
रसना परुषा कृष्णा सन्धिमूर्धास्थिजा रुजः ॥३६॥

निर्भुग्ने कलुषे नेत्रे कर्णौ शब्दरुगन्वितौ ।
प्रलापः स्रोतसां पाकः कूजनं चेतनाच्युतिः ॥३७॥
स्वेदमूत्रपुरीषाणामल्पशः सुचिरात् स्रुतिः ।

सन्निपातज्वर में—निद्रानाश, भ्रम, श्वास, तन्द्रा, अंगों का सोना (स्पर्शाज्ञता), अरुचि, प्यास, मूर्छा, मद, स्तब्धता, शीतप्रतीति, हृदय में पीड़ा, देर से दोषों का परिपाक, उन्माद, दांतों का काला पड़ना, जिह्वा-कर्कश और काली, सन्धि-शिर और अस्थियों में दर्द, नेत्र कुटिल और मलिन, कानों में शब्द और वेदना, प्रलाप, मुख-नासा आदि छिद्रों का पाक, कराहना, चेतनानाश, पसीना-मूत्र मल का बहुत देर में—थोड़ा-थोड़ा करके बाहर आना होता है। सन्निपातजन्य ज्वर में सब दोषों के लक्षण होते हैं ॥३५–३७॥

सर्वजे सर्वलिङ्गानि विशेषं चात्र मे शृणु ॥३८॥
नात्युष्णशीतोऽल्पसंज्ञो भ्रान्तप्रेक्षी हतस्वरः ।
खरजिह्वः शुष्ककण्ठः स्वेदविण्मूत्रवर्जितः ॥३९॥
सास्रो निर्भुग्नहृदयो भक्तद्वेषी हतप्रभः ।
श्वसन्निपतितः शेते प्रलापोपद्रवायुतः ॥४०॥
तमभिन्यासमित्याहुर्हतौजसमथापरे ।

इसमें विशेष सन्निपात के लक्षण सुनो—रोगी के अंगों का स्पर्श साधारण रहता है, थोड़ी चेतना, सब पदार्थों को मिथ्या देखनेवाला (आंखों के सामने धागे या जाल देखना), स्वर का बैठ जाना (आवाज न निकलना), जिह्वा में कर्कशता, गले का सूखना, पसीना-मूत्र-मल का अभाव, आंखों में आंसू, हृदय में ऐंठन, भोजन से द्वेष, प्रभा का नष्ट होना, जोर से या कठिनाई से श्वास लेते हुए गिरना या लेटे रहना, प्रलाप करते रहना, इस सन्निपात को अभिन्यास या हतौजस कहते हैं।

वक्तव्य—'ओज'—एक अदृश्य वस्तु होते हुए भी दृश्य है, जिस प्रकार की बिजली या बिजली का स्पार्क, इनको हम देखते हुए भी नहीं देखते, जैसे क्रोध को। ओज—कान्ति, बल है, वह इसमें चला जाता है[1]। ये लक्षण विकृति विषम समवेत दोषों के हैं। प्रकृति सम समवेत सन्निपात के लक्षण ऊपर कह दिये हैं ॥३८–४०॥

सन्निपातज्वरं कृच्छ्रमसाध्यमपरे विदुः ॥४१॥

सन्निपातजन्य कष्ट साध्य हैं, दूसरे उसे असाध्य कहते हैं ॥

निद्रोपेतमभिन्यासं क्षीणमेनं हतौजसम् ।
संन्यस्तगात्रं संन्यासं विद्यात्सर्वात्मके ज्वरे ॥४२॥

जिस सन्निपातज्वर में निद्रा की अधिकता रहे—रोगी सोया ही रहे (बेमान पड़ा रहे), उसे अभिन्यास कहते हैं। दिन प्रतिदिन क्षीण होता जाये वह हतौजस, जिसमें गात्र (अंग) ढीले रह जायें (रोगी का उनपर अधिकार न रहे) उसे संन्यास कहते हैं।

वक्तव्य—तृण पुष्पक ज्वर के लक्षण—ड० टी० 'पुष्पेभ्यो गन्धरजसी तेजस्विभ्यो यदाऽनिलः। उपादाय मनुष्यस्य प्राणापानौ नियच्छति ॥ सौक्ष्म्यादनुसृतौ धातून् मर्माण्यपि च तेजसा। कर्म चित्तं बलं ज्ञानं तदास्याभ्येति मारुतः ॥ कर्मादिषु निरुद्धेषु स्वपितीति सुहृज्जनः। मन्यते हतचित्तत्वादोजस्युपरते सति ॥ तस्यादितः शिरोरोगः ससंज्ञस्यैव जायते। विगन्धं च सुगन्धं च दृष्ट्वाऽकस्मात् स मूर्च्छति ॥ तृणपुष्पकमित्येवं ज्वरं विद्याद् विचक्षणः ॥' इसका अन्तर्भाव आगन्तुज ज्वर में है।

ओजो विस्रंसते यस्य पित्तानिलसमुच्छ्रयात् ।
स गात्रस्तम्भशीताभ्यां शयनेप्सुरचेतनः ॥४३॥
अपि जाग्रत् स्वपन् जन्तुस्तन्द्रालुश्च प्रलापवान् ।
संहृष्टरोमा स्रस्ताङ्गो मन्दसन्तापवेदनः ॥४४॥
ओजोनिरोधजं तस्य जानीयात् कुशलो भिषक् ।

पित्त और वायु की अधिकता के कारण जिसका ओज विस्रंसित (चलायमान) हो जाता है, उसका शरीर ठण्डा और स्तब्ध बन जाता है, रोगी सदा सोना ही चाहता है, जागते हुए या सोते हुए वह बेमान रहता है, तन्द्रा एवं प्रलाप की अधिकता रहती है, शरीर की रुआंट खड़ी रहती है, अंग ढीले रहते हैं, वेदना और सन्ताप (हाथ से छूने पर भी) कम रहता है, इस सन्निपात को वैद्य ओज के निरोध से उत्पन्न हुआ जाने ॥४३,४४॥

सप्तमे दिवसे प्राप्ते दशमे द्वादशेऽपि वा ॥४५॥
पुनर्घोरतरो भूत्वा प्रशमं याति हन्ति वा ।

सातवें दिन या दसवें दिन अथवा बारहवें दिन फिर एक बार तीव्र रूप में आकर सन्निपात ज्वर या तो शांत हो जाता है, अथवा रोगी को मार देता है।

वक्तव्य—सात, दस या बारह दिन की कल्पना वात, पित्त कफ की दृष्टि से की है, इन दिनों में यदि दोष का पाक हो गया तब ज्वर शान्त हो जाता है, अन्यथा फिर बढ़ता है। धातुपाक का लक्षण—संबाध्यमानो हृदि नाभिदेशे गात्रेषु वा पाकरुजोज्झितेषु। पक्वेष्विवाणैतिरुजं ज्वरार्त्तः सधातुपाकी कथितो भिषग्भिः ॥" कई आचार्यों ने सन्निपात ज्वर का मोक्षकाल उपर्युक्त समय से दुगुना माना है, यथा—"सप्तमी द्विगुणा या तु नवम्येकादशी तथा, एषा त्रिदोषमर्यादा मोक्षाय च वधाय च ॥" प्रत्येक आक्रमण में (रिलेप्स में) ज्वर की भयानकता रोगी के लिये बढ़ती जाती है ॥४५॥

द्विदोषोच्छ्रायलिङ्गास्तु द्वन्द्वजास्त्रिविधाः स्मृताः ॥४६॥

दो दोषों के संयोग से संग्रह ज्वर दो दोषों के लक्षणों की अधिकतावाले होते हैं, ये तीन हैं, यथा–वात-पित्तजन्य, वात-कफजन्य, पितकफजन्य ॥४६॥

१ लेखक की 'भारतीय रस पद्धति' पुस्तक में ओज को समझिये।

तृष्णा मूर्च्छा भ्रमो दाहः स्वप्ननाशः शिरोरुजा ।
कण्ठास्यशोषो वमथू रोमहर्षोऽरुचिस्तथा ॥४७॥
पर्वभेदश्च जृम्भा च वातपित्तज्वराकृतिः ।

वात-पित्तजन्य ज्वर के लक्षण—प्यास, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, निद्रानाश, शिर में वेदना, गले और मुख में शुष्कता, वमथु (छर्दि), रोमांचता, अरुचि, पर्वभेद (सन्धियों में दर्द), और जम्भाई आना ये वातपित्तज ज्वर के लक्षण हैं ॥४७॥

स्तैमित्यं पर्वणां भेदो निद्रा गौरवमेव च ॥४८॥
शिरोग्रहः प्रतिश्यायः कासः स्वेदप्रवर्तनम् ।
सन्तापो मध्यवेगश्च वातश्लेष्मज्वराकृतिः ॥४९॥

स्तिमितता (शरीर का गीले वस्त्र से ढंपा सा रहना), पर्वभेद, निद्रा की अधिकता, भारीपन शिर का जकड़ना, प्रतिश्याय, कास, पसीना आना, सन्ताप, ज्वर मध्यम रहना वात-पित्त ज्वर के लक्षण हैं ॥४८,४९॥

लिप्ततिक्तास्यता तन्द्रा मोहः कासोऽरुचिस्तृषा ।
मुहुर्दाहो मुहुः शीतं श्लेष्मपित्तज्वराकृतिः ॥५०॥

मुख में लिसलिसापन और कडुआहट, तन्द्रा, मोह, कास, अरुचि, प्यास, कभी दाह और कभी शीत यह कफ-पित्त जन्य ज्वर के लक्षण हैं। (जम्भाई, आध्मान, मद, उत्कम्पन, पर्वभेद शरीर में निर्बलता, प्यास, प्रलाप, सन्ताप वात पित्तजज्वर में होते हैं। शूल कास, कफ की अधिकता, शीत, कम्पन, पीनस, भारीपन, अरुचि, विष्टम्भ ये वात कफ ज्वर के लक्षण हैं। शीत, दाह, अरुचि, स्तम्भ, स्वेद, मोह, मद, भ्रम, कास, अंगों की शिथिलता, जीमचलाना, कफ पित्त-ज्वर में होते हैं)।

कृशानां ज्वरमुक्तानां मिथ्याहारविहारिणाम् ।
दोषः स्वल्पोऽपि संवृद्धो देहिनामनिलेरितः ॥५१॥
सततान्येद्युष्कत्र्याख्यचातुर्थान् सप्रलेपकान् ।
कफस्थानविभागेन यथासंख्यं करोति हि ॥५२॥

ज्वर से मुक्त हुए कृश पुरुषों के मिथ्या आहार-विहार करने के कारण थोड़ा सा भी (रहा) दोष-वायु की प्रेरणा से बढ़कर कफस्थान के विभाग से सतत, अन्येद्युष्क, त्र्याख्य चातुर्थक और प्रलेपक ज्वरों को उत्पन्न करता है।

वक्तव्य—कफस्थान-आमाशय, उरः, कण्ठ, शिर और सन्धि हैं। इनमें आमाशयस्थ दोष सततज्वर को करता है, यह ज्वर प्रतिदिन दो समय आता है। (उरःस्थ दोष दूसरे दिन, कण्ठस्थ दोष तीसरे दिन, शिरस्थ दोष चौथे दिन, सन्धिस्थ दोष) प्रलेपक ज्वर करता है। चरक में इनको अन्य रूप से धातुओं की दृष्टि से कहा है, यथा—

"रक्तधात्वाश्रयः प्रायो दोषः सततकं ज्वरम् ।
सप्रत्यनीकः कुरुते कालवृद्धिक्षयात्मकम् ॥
अहोरात्रे सततकौ द्वौ कालावनुवर्तते ।
कालप्रकृतिदूष्याणां प्राप्यैवान्यतमाद् बलम् ॥
दोषो मेदोवहा रुध्वा नाडीरन्येद्युकं ज्वरम् ।
सप्रत्यनीकः कुरुते एककालमहर्निशि ॥
दोषोऽस्थिमज्जगः कुर्यात् तृतीयकचतुर्थकौ ।
गतिः द्व्येकान्तरान्येद्युः दोषस्योक्तान्यथा परैः ॥
रक्तमेवाभिसंसृज्य कुर्यादन्येद्युकं ज्वरम् ।
मांसस्रोतांस्यनुसृतो जनयेत्तु तृतीयकम् ॥
ज्वरं दोषः संश्रितो हि मेदोमार्गं चतुर्थकम् ।
अन्येद्युष्कः प्रतिदिने दिनं हित्वा तृतीयकः ॥
दिनद्वयं यो विश्रम्य प्रत्येति स चतुर्थकः ।
अधिशेते यथा भूमिं बीजकाले च रोहति ॥
अधिशेते तथा धातुं दोषः काले च कुप्यति ।
स वृद्धिं बलकालं च प्राप्य दोषस्तृतीयकम् ॥
चतुर्थकं च कुरुते प्रत्यनीकबलक्षयात् ।
कृत्वा वेगं गतबलाः स्वे स्वे स्थाने व्यवस्थिताः ॥
पुनर्विवृद्धाः स्वे काले ज्वरयन्ति नरं मलाः ॥"

जब दोष अधिक मात्रा से सब स्रोतों में फैले रहते हैं, तब सन्तत ज्वर रहता है, यथा—

स्रोतोभिः विसृता दोषा गुरवो रसवाहिभिः ।
सर्वगात्रानुगा स्तब्धा ज्वरं कुर्वन्ति सन्ततम् ॥
दशाहं द्वादशाहं वा सप्ताहं वा सुदुःसहः ।
स शीघ्रं शीघ्रकारित्वात् प्रशमं याति हन्ति वा ॥
कालदूष्यप्रकृतिभिः दोषस्तुल्यो हि सन्ततम् ।
निष्प्रत्यनीकं कुरुते तस्माज् ज्ञेयः सुदुःसहः ।
यथा धातुं यथा मूत्रं पुरुषं चानिलादयः ।
युगपच्चानुपद्यन्ते नियमात् सन्तते ज्वरे ॥
स शुद्ध्या वाप्यशुद्ध्या वा रसादीनामशेषतः ।
सप्ताहादिषु कालेषु प्रशमं याति हन्ति वा ॥
यदा तु नातिशुध्यन्ति न वा शुध्यन्ति सर्वशः ।
द्वादशैते समुद्दिष्टा सन्ततस्याश्रयास्तदा ॥

(बारह—तीन दोष, सात रक्तादि धातु, मल और मूत्र—ये बारह)।

विसर्गं द्वादशे कृत्वा दिवसे व्यक्तलक्षणम् ।
दुर्लभोपशमः काले दीर्घमप्यनुवर्त्तते ॥
इति बुद्ध्वा ज्वरं वैद्यः उपक्रामेत्तु सन्ततम् ।
क्रियाक्रमविधौ युक्तः प्रायः प्रागपतर्पणैः ॥

सुश्रुत के प्रलेपक, वातबलासक, आदि ज्वरों का अन्तर्भाव इसी संतत में हो जाता है। केवल बारह वस्तुओं में न्यूनाधिक भाव रहता है।

काश्यप संहिता में इसी को अन्य प्रकार से कहा है—

"अल्पहेतुः बहिर्मार्गो नैकृतो निरुपद्रवः।
एकाश्रयः सुखोपायो लघुपाकः समो ज्वरः।
बिषमस्तद्विपर्यस्तः तीक्ष्णत्वात् संततो मतः।
तद्वत् प्रेतग्रहोत्था ये चत्वारो विषमागमात् ॥
दुर्जयत्वाद् दुर्ग्रहत्वाद् उग्रग्रहपरिग्रहात्।
वैषम्यं संततादीनां दारुणत्वादुदाहृतम्।
तथा सततकादीनां चतुर्णां कालकारितम्।
विषमत्वं प्रवक्ष्यामि ज्वराणां जायते तथा ॥
समस्तो द्वन्द्वशो वाऽपि धमनी रसवाहिनीः।
दोषाः प्रपन्नाः कुर्वन्ति विषमा विषमज्वरम्।
ज्वरितो मुच्यमानो वा मुक्तमानश्च यो नरः।
व्यायामगुर्वसात्म्यान्नमतिमात्रमथो जलम् ॥
पायसं कृशरं पिष्टं पललं दधिमन्दकम्।
पिण्याकमाषविकृतिग्राम्यानूपं यथाऽऽमिषम् ॥
ज्वरोऽभिवर्धते तस्य विषमं वाऽऽशु जायते ॥

❀ ❀ ❀

सद्यो वान्तो विरिक्तो वा स्नेहपीतोऽनुवासितः।
शीतोपचारे गुर्वन्नं व्यवाये यश्च सेवते ॥
तस्यापि सहसा वायुरस्थिमज्जान्तरं गतः।
कुपितः कोपयत्याशु श्लेष्माणं पित्तमेव च ॥
ततोऽस्य धातुवैषम्याद् विषमो जायते ज्वरः।
सततोऽन्येद्युको वाऽपि तृतीयः स चतुर्थकः ॥
न च नोपशमं याति न च भूयो न कुप्यति।
शमप्रकोपयोः कालं न चायमतिवर्त्तते ॥
ज्वरप्रवेगोपरमे देही मुक्त इवेक्ष्यते।
नात्यन्नलिप्साग्लानिभ्यां शिरसो गौरवेण च ॥
पुनः पुर्नयथा चैष जायते तन्निबोध मे ॥
काश्यपसंहिता खिल० ।१ ॥५२॥

अहोरात्रादहोरात्रात् स्थानात् स्थानं प्रपद्यते।
ततश्चामाशयं प्राप्य दोषः कुर्याज्ज्वरं नृणाम् ॥५३॥

एक एक दिन रात में दोष एक स्थान से दूसरे स्थान में पहुँचता है। फिर आमाशय में पहुँचकर दोष मनुष्यों में ज्वर को करते हैं।

वक्तव्य—उर में स्थित दोष अहोरात्र में आमाशय में पहुँचकर दूसरे दिन अन्येद्युष्कज्वर को करता है। कण्ठ में स्थित दोष दो अहोरात्र में आमाशय में पहुँचकर तीसरे दिन तृतीयक को करता है। शिर में स्थित दोष तीन अहोरात्र में आमाशय में पहुँचकर चौथे दिन चतुर्थक ज्वर को करता है। सन्धि में स्थित दोष नित्य ही प्रलेपक को करता है, यह राजयक्ष्मा के रोगियों को होता है ॥५३॥

तथा प्रलेपको ज्ञेयः शोषिणां प्राणनाशनः।
दुश्चिकित्स्यतमो मन्दः सुकष्टो धातुशोषकृत् ॥५४॥

प्रलेपकज्वर शोषरोगियों (क्षयरोगियों) के लिये प्राणनाशक है। यह ज्वर अतिशय कष्ट से चिकित्सा करने योग्य है, मन्द वेग (धीमा ज्वर), अतिकष्टदायक, धातुओं को सुखानेवाला है ॥५४॥

कफस्थानेषु वा दोषस्तिष्ठन् द्वित्रिचतुर्षु वा।
विपर्ययाख्यान् कुरुते विषमान् कृच्छ्रसाधनान् ॥५५॥

अथवा—कफ स्थानों में स्थित दोष दो तीन अथच चार में—विपर्यय नामक विषमज्वरों को करते हैं ये अतिशय कष्टसाध्य हैं।

वक्तव्य—उर और आमाशय इन दो कफ स्थानों में स्थित दोष-अन्येद्युष्क के विपर्य्यय ज्वर को करता है, यथा—पूर्वाह्न में एक समय छोड़कर सारे दिन रात में ज्वर रहता है। इसी प्रकार कण्ठ, उर और आमाशय में स्थित दोष तृतीयक विपर्यय को करता है, इसमें ज्वर तीसरे दिन उतरता है। शिर, कण्ठ, उर, आमाशय इन चार स्थानों में स्थित दोष चातुर्थिक विपर्यय को करता है, इसमें ज्वर चौथे दिन उतरता है। सतत का विपर्यय नहीं होता, क्योंकि दोष एक ही कफ-स्थान में रहता है, या व्याधि का स्वभाव ही ऐसा है ॥५५॥

परो हेतुः स्वभावो वा विषमे कैश्चिदीरितः।
आगन्तुश्चानुबन्धो हि प्रायशो विषमज्वरे ॥५६॥

विषमज्वर का कारण कई तो भूतादि को मानते हैं, कई स्वभाव को ही कारण कहते हैं। क्योंकि प्रायः करके विषम-ज्वर में आगन्तुज (बाह्य) कारण का सम्बन्ध रहता ही है।

वक्तव्य—विषमज्वर में स्वभाव ही उत्कृष्ट कारण है, ऐसा अर्थ करके पर का अर्थ उत्कृष्ट मानते हैं। संतत आदि को कोई आचार्य विषमज्वर मानते हैं, यथा—"ज्वराः पञ्च मयोक्ता ये पूर्वसंततकादयः। चत्वारः संततं हित्वा ज्ञेयास्ते विषमज्वराः ॥ (२) सूक्ष्मसूक्ष्मतरास्येषु दूरदूरतरेषु च। दोषो रक्तादिमार्गेषु शनैरल्पं चिरेण यत् ॥ याति देहं नवाऽशेषं भूयिष्ठं प्रतिपद्यते। क्रमोऽयं तेन विच्छिन्ने सन्तापो लक्ष्यते ज्वरे ॥ चक्रपाणि की टीका।

भूतसम्बन्ध—"त्रिदोषसंभवत्वाच्च भूतसंस्पर्शनादपि। दुश्चिकित्स्यतमो ह्येष तस्माद्ध्येनमुपक्रमेत् ॥ बलिभिः शान्ति-होमैश्च सिद्धैः मन्त्रपदैस्तथा। पापापहरणं चास्य कर्त्तव्यं सिद्धि-मिच्छता ॥ काश्यपसंहिता ॥"

वाताधिकत्वात् प्रवदन्ति तज्ज्ञा-
स्तृतीयकं चापि चतुर्थकं च ।
औपत्यके मद्यसमुद्भवे च
हेतुं ज्वरे पित्तकृतं वदन्ति ॥५७॥
प्रलेपकं वातबलासकं च
कफाधिकत्वेन वदन्ति तज्ज्ञाः ।
मूर्च्छानुबन्धा विषमज्वरा ये
प्रायेण ते द्वन्द्वसमुत्थितास्तु ॥५८॥

तन्त्रान्तरवाले तृतीयक और चतुर्थक ज्वर को वात की अधिकता से द्वन्द्वज कहते हैं । औपत्यक (पर्वत की तराई में होनेवाला) तथा मद्यजनित ज्वर को पित्तजन्य कहते हैं । प्रलेपक और वातबलासक को कफ की अधिकता से होनेवाला कहते हैं । जिन ज्वरों में मूर्च्छा का सम्बन्ध या विषमज्वर रहता है, वे ज्वर प्रायः करके द्वन्द्वज कारणों से उत्पन्न होते हैं ।

वक्तव्य—तंत्रान्तरमें यथा—कफपित्तात् त्रिकग्राही पृष्ठाद् वातकफात्मकः । वातपित्ताच्छिरोग्राही विविधः स्यात्तृतीयकः ॥ चतुर्थको दर्शयति प्रभावं द्विविधं ज्वरः । जंघाभ्यां श्लैष्मिकः पूर्वं शिरस्तोऽनिलसंभवः ॥ चरक ।

औपत्यकज्वर—पर्वत या पर्वत के समीप की भूमियों में होनेवाली तीक्ष्ण-उष्ण वीर्य एवं उग्रगन्धवाली औषधियों के कारण पित्तप्रकोप होता है । प्रलेपक में सन्धियों में कफ की प्रधानता से होता है । वात बलासक ज्वर—"नित्यं मन्दज्वरो रूक्षःशूनःकृच्छ्रेण सिध्यति । स्तब्धाङ्गः श्लेष्मभूयिष्ठो नरो वातबलासकी ॥" घोड़ों में वातबलासक नाम का ज्वर होता है, इसमें घोड़े की छाती बैठ जाती है । मूर्च्छानुबन्धा—जिन ज्वरों में रोगी को निरन्तर मूर्च्छा बनी रहती है ॥५७,५८॥

त्वक्स्थौ श्लेष्मानिलौ शीतमादौ जनयतो ज्वरे ।
तयोः प्रशान्तयोः पित्तमन्ते दाहं करोति च ॥५९॥
करोत्यादौ तथा पित्तं त्वक्स्थं दाहमतीव च ।
प्रशान्ते कुरुतस्तस्मिंश्छीतमन्ते च तावपि ॥६०॥
द्वावेतौ दाहशीतादी ज्वरौ संसर्गजौ स्मृतः ।
दाहपूर्वस्तयोः कष्टः कृच्छ्रसाध्यश्च स स्मृतः ॥६१॥

त्वचा में स्थित कफ और वायु ज्वर में प्रथम शीत उत्पन्न करते हैं, इनके शान्त हो जाने पर अन्त में पित्त दाह करता है । त्वचा में स्थित पित्त ज्वर में प्रथम अतिशय दाह करता है, इस पित्त के शान्त हो जाने पर वायु और कफ अन्त में शीत उत्पन्न करते हैं । ये दोनों प्रकार के दाहपूर्वक एवं शीतपूर्वक ज्वर संसर्गज कहे हैं । इनमें से जिस ज्वर में प्रथम दाह होता है, वह दुःखदायी और कष्ट साध्य है ।

अन्तर्दाहोऽधिकस्तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः ।
सन्ध्यस्थिशूलमस्वेदो दोषवर्चोविनिग्रहः ॥
अन्तर्वेगस्य लिंगानि ज्वरस्यैतानि लक्षयेत् ।
संतापोऽभ्यधिको बाह्यः तृष्णादीनां च मार्दवम् ॥
वहिर्वेगस्य लिङ्गानि सुखसाध्यत्वमेव च ॥
चरक चि० अ० ३।४०-४१ ॥५६-६१॥

प्रसक्तश्चाभिघातोत्थश्चेतनाप्रभवस्तु यः ।

चोट आदि अभिघात से उत्पन्न तथा चेतना प्रभव (काम-शोक-क्रोधजन्य) ज्वर निरन्तर बना रहता है ।

कामशोकभयक्रोधैरभिषक्तस्य यो ज्वरः ।
सोऽभिषङ्गज्वरो ज्ञेयो यश्च भूताभिषङ्गजः ॥
कामशोकभयाद् वायुः क्रोधात् पित्तं भयो मलाः ।
भूताभिषङ्गात् कुप्यन्ति भूतसामान्यलक्षणाः ॥
विषवृक्षानिलस्पर्शात् तथाऽन्यैः विषसंभवैः ।
अभिषक्तस्य चाप्याहुः ज्वरमेकेऽभिषङ्गजम् ॥
तत्राभिघातजे वायुः प्रायो रक्तं प्रदूषयन् ।
सव्यथाशोफवैवर्ण्यं करोति सरुजे ज्वरम् ॥च०॥

रात्र्यह्नोः षट्सु कालेषु कीर्तितेषु यथा पुरा ॥६२॥
प्रसह्य विषमोऽभ्येति मानवं बहुधा ज्वरः ।

रात और दिन के छै समय (पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न, प्रदोष, अर्धरात्रि और प्रत्यूष) जो मैंने व्रणप्रश्नाध्याय में पहले कहे हैं, इन पूर्वोक्त समयों में--अपने दोष के प्रकोप समयों में विषमज्वर बलपूर्वक मनुष्य को अनेक प्रकार से आता है ।

वक्तव्य—बहुधा (अनेक रूप में) यथा—कभी शीत, कभी उष्ण, कभी हाथ पैर में, कभी अंसादि में ॥६२॥

स चापि विषमो देहं न कदाचिद्विमुञ्चति ॥६३॥
ग्लानिगौरवकार्श्यभ्यः स यस्मान्न प्रमुच्यते ।
वेगे तु समतिक्रान्ते गतोऽयमिति लक्ष्यते ॥६४॥

विषमज्वर कभी भी शरीर को नहीं छोड़ता, क्योंकि ग्लानि, भारीपन, तथा कृशता शरीर को नहीं छोड़ती । ज्वरवेग के बीत जाने पर, यह ज्वर चला गया, ऐसा दीखता है ।

वक्तव्य—शिरसो गौरवं ग्लानिर्नातिश्रद्धा च भोजने । माधुर्यमथवैरस्यं तिक्तत्वमथवा पुनः ॥ वक्त्रस्य जायते यस्मात् प्रवेगेऽपि गते सति । तस्मात्तु नियतो लीनः शरीरे विषमज्वरः ॥

धात्वन्तरस्थो लीनत्वान्न सौक्ष्म्यादुपलभ्यते ।
अल्पदोषेन्धनः क्षीणः क्षीणेन्धन इवानलः ॥६५॥

धातुओं के अन्दर छिपा रहने से सूक्ष्म होने के कारण अनुभव नहीं होता, थोड़ा दोष होने से इस ज्वर का पता नहीं लगता । जिस प्रकार इन्धन के क्षीण होने से क्षीण ईन्धनवाली अग्नि दृश्यमान नहीं होती ॥ (धात्वन्तरस्थ का अर्थ कई कला कहते हैं, क्योंकि, "धात्वन्तरस्था या मर्यादा-सा कला परिकीर्त्तिता" सुश्रुत) ॥६५॥

दोषोऽल्पोऽहितसंभूतो ज्वरोत्सृष्टस्य वा पुनः ।
धातुमन्यतमं प्राप्य करोति विषमज्वरम् ॥६६॥

अहित के कारण—अपथ्य सेवन से या ज्वर से मुक्त कृश व्यक्ति में अपथ्याचारण से बढ़ा हुआ थोड़ा दोष किसी एक धातु का आश्रय लेकर विषमज्वर करता है। यथा काश्यपसंहिता में—

ज्वरप्रवेगोपरमे देही मुक्त इवेक्षते।
तथाऽप्यस्यामवस्थायामेभिः लिंगैः न मुच्यते॥
मुखवैरस्यकाटुक्य माधुर्यादिभिरल्पशः।
नात्यन्नलिप्साग्लानिभ्यां शिरसो गौरवेण च॥
पुनः पुनर्यथा चैष जायते तन्निबोध मे।
निरुद्धमार्गो दोषेण विषमज्वरहेतुना॥
वायुस्तद्दोषकोपान्ते लब्धमार्गो यथाक्रमम्।
दोषशेषं तमादाय यथास्थानं प्रपद्यते॥
सदोषशेषः स्वे स्थाने लीनः कालबलाश्रयात्।
रसस्थानमुपागम्य भूयो जनयति ज्वरम्॥
उपक्रमविशेषेण स्वबलस्य व्ययेन च।
क्षयं प्राप्नोति वृद्धिं च समानगुणसंश्रयात्॥
सोऽयं निवृत्तं संप्राप्य यथा दीपः स्वभावतः।
पुनः पुनः प्रज्वलति क्षीणतैलेन्धनोऽपि सन्॥

सततं रसरक्तस्थः सोऽन्येद्युः पिशिताश्रितः।
मेदोगतस्तृतीयेऽह्नि त्वस्थिमज्जगतः पुनः॥६७॥
कुर्याच्चातुर्थकं घोरमन्तकं रोगसंकरम्।

सततज्वर रस रक्त में स्थित होकर, अन्येद्यु मांस में, तृतीयक ज्वर मेद में, चतुर्थक ज्वर अस्थि और मज्जा में स्थित होकर, भयानक यमसदृश रोगसमूहवाले ज्वर को उत्पन्न करते हैं॥६७॥

केचिद्भूताभिषङ्गोत्थं ब्रुवते विषमज्वरम्॥६८॥

कई आचार्य विषमज्वर को भूत के सम्बन्ध से (आवेश में) उत्पन्न हुआ कहते हैं॥६८॥

सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा।
सन्तत्या योऽविसर्गी स्यात्सन्ततः स निगद्यते॥६९॥

सात दिन तक, दस दिन या बारह दिन तक निरन्तर बिना किसी विच्छेद के जो ज्वर बना रहता है, उसको सन्तत कहते हैं।

वक्तव्य—सन्ततज्वर सुखसाध्य है—

"सन्ततज्वर एवान्यः स्वल्पदुर्बलकारणः।
एकदोषो द्विदोषो वा सुखसाध्यः प्रकीर्त्तितः॥

परन्तु चरक में इसको कष्टसाध्य कहा है, यथा—

"स्रोतोभिः विसृता दोषा गुरवो रसवाहिभिः।
सर्वदेहानुगाः स्तब्धा ज्वरं कुर्वन्ति सन्ततम्॥
दशाहे द्वादशाहे वा सप्ताहे वा सुदुःसहः।
सशीघ्रं शीघ्रकारित्वात् प्रशमं याति हन्ति वा॥
कालदूष्यप्रकृतिभिः दोषस्तुल्यो हि सन्ततम्।
यथाधातूंस्तथा मूत्रं पुरीषं चानिलादयः।
युगपच्चानुपद्यन्ते नियमात् सन्तते ज्वरे॥
स शुद्धया वाऽप्यशुद्धया वा रसादीनामशेषतः।
सप्ताहादिषु कालेषु प्रशमं याति हन्ति वा॥
यदा तु नाति शुध्यन्ति न वा शुध्यन्ति सर्वशः।
द्वादशैते समुद्दिष्टाः सन्ततस्याश्रयास्तदा॥६९॥

अहोरात्रे सततको द्वौ कालावनुवर्तते।
अन्येद्युष्कस्त्वहोरात्रादेककालं प्रवर्तते॥७०॥
तृतीयकस्तृतीयेऽह्नि चतुर्थेऽह्नि चतुर्थकः।

सततक ज्वर दिन रात में दो समय आता है। अन्येद्युष्कज्वर दिन रात में एक समय आता है। तृतीयक ज्वर तीसरे दिन, चतुर्थक ज्वर चौथे दिन आता है॥७०॥

वातेनोदीर्यमाणाश्च ह्रियमाणाश्च सर्वतः।
एकद्विदोषा मर्त्यानां तस्मिन्नेवोदितेऽहनि॥७१॥
वेलां तामेव कुर्वन्ति ज्वरवेगे मुहुर्मुहुः।
(वातेनोद्धूयमानस्तु यथा पूर्यत सागरः॥७२॥
वातेनोदीरितास्तद्वद्दोषाः कुर्वन्ति वै ज्वरान्।
यथा वेगागमे वेलां छादयित्वा महोदधेः॥७३॥
वेगहानौ तदेवाम्भस्तत्रैवान्तर्निलीयते।
दोषवेगोदये तद्वदुदीर्येत ज्वरोऽस्य वै॥७४॥
वेगहानौ प्रशाम्येत यथाऽम्भः सागरे तथा)।

एक दोष या दो दोष वायु से प्रेरित होकर, उसी दिन मनुष्यों में ज्वर को उत्पन्न करते हैं, और सम्पूर्ण रूप में घटकर उसी दिन ज्वर को कम भी कर देते हैं। इस प्रकार से ज्वर वेग बार-बार वेला (तरंग) को उत्पन्न करते हैं। (जिस प्रकार कि समुद्र में से वायु के कारण उत्पन्न हुई लहर सारे समुद्र में फैल जाती है, उसी प्रकार वायु से प्रेरित दोष ज्वर को उत्पन्न करते हैं। जिस प्रकार वेग के आने पर वेला (तरंग-लहर) समुद्र के ऊपर फैलती है, वेग के शान्त होने पर वह पानी उसी समुद्र के पानी में लीन हो जाता है, इसी प्रकार दोष वेग के उत्पन्न होने से मनुष्य में ज्वर चढ़ता है, और दोष के शान्त होने पर शान्त हो जाता है। जिस प्रकार कि पानी-समुद्र में से उठता है, और फिर समा जाता है)॥७१-७४॥

विविधेनाभिघातेन ज्वरो यः संप्रवर्तते॥७५॥
यथादोषप्रकोपं तु तथा मन्येत तं ज्वरम्।

नाना प्रकार के अभिघात से जो ज्वर उत्पन्न होता है, उस ज्वर को दोष के प्रकोप के अनुसार वैसा ही माना जाता है॥७५॥

श्यावास्यता विषकृते दाहातीसारहृद्ग्रहाः ॥७६॥
अभक्तरुक् पिपासा च तोदो मूर्च्छा बलक्षयः ।
ओषधीगन्धजे मूर्च्छा शिरोरुक् वमथुः क्षयः ॥७७॥
कामजे चित्तविभ्रंशस्तन्द्राऽऽलस्यमरोचकः ।
हृदये वेदना चास्य गात्रं च परिशुष्यति ॥७८॥
भयात् प्रलापः शोकाच्च भवेत् कोपाच्च वेपथुः ।
अभिचाराभिशापाभ्यां मोहस्तृष्णा च जायते ॥७९॥
भूताभिषङ्गादुद्वेगहास्यकम्पनरोदनम् ।

यथा–विषमजन्यज्वर में मुख का काला होना, दाह, अतिसार, हृदय का जकड़ जाना, आलस्य, आरोचक, प्यास, तोद, मूर्च्छा, बलक्षय, होता है। औषधि गन्धजन्य ज्वर में मूर्च्छा, शिर में दर्द, वमन, छींक आना होता हैं। कामजन्यज्वर में चित्तविभ्रंश, तन्द्रा, आलस्य, अरोचक हृदय में वेदना होती है और शरीर सूख जाता है। भय से प्रलाप, शोक और कोप से कम्पन, अभिचार-अभिशाप से-मूर्च्छा और तृष्णा होती है। भूताभिषंग जन्य ज्वर में-उद्वेग, हास्य, कम्पन और रोना होता है।

वक्तव्य—"ध्याननिःश्वासबहुलं लिंगं कामज्वरे स्मृतम्। शोकजे बाष्पबहुलं त्रासप्रायं भयज्वरे ॥ क्रोधजे बहुसंरम्भं भूतावेशे त्वमानुषम्। मूर्छामोहमदग्लानिभूयिष्टं विषसंभवे ॥ केषाञ्चिदेषां लिंगानां संतापो जायते पुरः। पश्चात्तुल्यं तु केषाञ्चिदेषु कामज्वरादिषु ॥ मनस्यभिहते पूर्वं कामाद्यैर्न तथाबलम्। ज्वरः प्राप्नोति वाताद्यैः देहो यावन्न दुष्यति ॥ देहे चाभिद्रुते पूर्वं वाताद्यैर्न तथा बलम्। ज्वरः प्राप्नोति कामाद्यैः मनो यावन्न दुष्यति" ॥ चरक ॥ ७६-७९ ॥

श्रमक्षयाभिघातेभ्यो देहिनां कुपितोऽनिलः ॥८०॥
पूरयित्वाऽखिलं देहं ज्वरमापादयेद् भृशम् ।

श्रम, क्षय और चोट से कुपित वायु मनुष्यों के सम्पूर्ण शरीर में फैलकर अतिशय ज्वर को करता है ॥८०॥

रोगाणां तु समुत्थानाद्विदाहागन्तुतस्तथा ॥८१॥
ज्वरोऽपरः संभवति तैस्तैरन्यैश्च हेतुभिः ।
दोषाणां स तु लिङ्गानि कदाचिन्नातिवर्तते ॥८२॥

विद्रधि आदि दूसरे रोगों के कारणों से विदाह से, आगन्तुज कारणों से-तथा अन्य दूसरे कारणों से दूसरे प्रकार का ज्वर होता है। इस प्रकार ज्वर कभी भी वातादि दोषों के लक्षणों का अतिक्रमण नहीं करता। अर्थात् आगन्तुज या अन्य ज्वर भी वातादि दोषों के लक्षणोंवाला ही होता है ॥८१,८२॥

गुरुता हृदयोत्क्लेशः सदनं छर्द्यरोचकौ ।
रसस्थे तु ज्वरे लिङ्गं दैन्यं चास्योपजायते ॥८३॥
रक्तनिष्ठीवनं दाहः स्वेदश्छर्दनविभ्रमौ ।
प्रलापः पिटिका तृष्णा रक्तप्राप्ते ज्वरे नृणाम् ॥८४॥
पिण्डिकोद्वेष्टनं तृष्णा सृष्टमूत्रपुरीषता ।
ऊष्माऽन्तर्दाहविक्षेपौ ग्लानिः स्यान्मांसगे ज्वरे ॥८५॥
भृशं स्वेदस्तृषा मूर्च्छा प्रलापश्छर्दिरेव च ।
दौर्गन्ध्यारोचकौ ग्लानिर्मेदःस्थे चासहिष्णुता ॥८६॥
भेदोऽस्थ्नां कुञ्च (ज) नं श्वासो विरेकश्छर्दिरेव च ।
विक्षेपणं च गात्राणामेतदस्थिगते ज्वरे ॥८७॥
तमःप्रवेशनं हिक्का कासः शैत्यं वमिस्तथा ।
अन्तर्दाहो महाश्वासो मर्मच्छेदश्च मज्जगे ।
मरणं प्राप्नुयात्तत्र शुक्रस्थानगते ज्वरे ॥८८॥
शेफसः स्तब्धता मोक्षः शुक्रस्य तु विशेषतः ।
दग्ध्वेन्धनं यथा वह्निर्धातून् हत्वा यथा विषम् ॥८९॥
कृतकृत्यो व्रजेच्छान्तिं देहं हत्वा तथा ज्वरः ।

रसधातु में स्थित ज्वर से भारीपन, हृदय में बेचैनी, अंगों में शिथिलता, वमन, अरुचि, दीनता होती है। रक्त में स्थित ज्वर से लाल थूक आना, दाह, पसीना, वमन, विभ्रम, प्रलाप, पिटका, प्यास, होती है। मांसगत ज्वर में पिण्डलियों में ऐंठन प्यास, मल-मूत्र की प्रवृत्ति, उष्मा, अन्दर जलन, विक्षेप और ग्लानि होती है। मेदगतज्वर में—अतिस्वेद, प्यास, मूर्च्छा, प्रलाप, वमन, दुर्गन्धता, अरोचक, ग्लानि; आवाज आदि की असहनशीलता होती है। अस्थिगतज्वर में–अस्थियों का चटकना तथा संकोचना, श्वास, अतिसार, वमन, अंगों का फेंकना इधर-उधर चलाना, होता है। मज्जागतज्वर में—रोगी अन्धकार में घुसना अनुभव करता है, हिक्का, कास, शीतलता, वमन, अन्दर दाह, महाश्वास (श्वास का जोर से चलना), मर्मस्थानों में छेदनवत् पीड़ा होती है। शुक्रस्थानगतज्वर में रोगी मर जाता है, मेहन में कठोरता, तथा शुक्र का क्षरण विशेष रूप में होता है। जिस प्रकार इन्धन को जलाकर आग तथा जिस प्रकार धातुओं को नष्ट करके विष स्वयं शान्त हो जाते हैं; इसी प्रकार ज्वर देह को नष्ट करके शान्त हो जाता है, देह ठण्डा हो जाता है ॥८३-८९॥

वातपित्तकफोत्थानां ज्वराणां लक्षणं यथा ॥९०॥
तथा तेषां भिषग्ब्रूयाद्रसादिष्वपि बुद्धिमान् ।
समस्तैः सन्निपातेन धातुस्थमपि निर्दिशेत् ॥९१॥
द्वन्द्वजं द्वन्द्वजैरेव दोषैश्चापि वदेत् कृतम् ।

जिस प्रकार वात-पित्त-कफ जन्य ज्वरों के लक्षण होते हैं, उसी तरह रस आदि धातुओं में वात आदि दोषों के लक्षण बुद्धिमान् वैद्य जाने। समस्त सन्निपात से भी धातुस्थज्वर को समझे। इसी प्रकार द्वन्द्वज दोषों से भी रसादि धातुस्थ द्वन्द्वज ज्वर को भी समझे ॥९०,९१॥

गम्भीरस्तु ज्वरो ज्ञेयो ह्यन्तर्दाहेन तृष्णया ॥९२॥
आनद्धत्वेन चात्यर्थं श्वासकासोद्गमेन च ।

अन्तर्दाह, तृष्णा, दोष-मल के रुके होने से, अतिशय श्वास, कास की उत्पत्ति से गम्भीर ज्वर को पहचाने। (प्रलाप, भ्रम, सन्धि, अस्थि, शूलादि से आक्रान्त होने पर भी गम्भीर जाने)

हतप्रभेन्द्रियं क्षीणमरोचकनिपीडितम् ॥९३॥
गम्भीरतीक्ष्णवेगार्तं ज्वरितं परिवर्जयेत् ।

शरीर की दीप्ति नष्ट हो जाने पर, श्रोत्र–चक्षु आदि शक्ति के नष्ट हो जाने पर, क्षीण, अरोचक से पीड़ित, गम्भीर वेग-वाले, तीक्ष्ण वेग से पीड़ित ज्वररोगी की चिकित्सा न करे ॥

हीनमध्याधिकैर्दोषैस्त्रिसप्तद्वादशाहिकः ॥९४॥
ज्वरवेगो भवेत्तीव्रो यथापूर्वं सुखक्रियः ।

हीनवेगज्वर तीन दिन में, मध्यवेगज्वर सात दिन में, अधिकदोषज्वर बारह दिन में अधिक तीव्र होता है। इनमें पूर्व के क्रम से ज्वर सुखसाध्य है, अर्थात् तीन दिन का हीन वेग ज्वर सबसे अधिक सुखसाध्य है, मध्यमवेगज्वर उससे कम और अधिक ज्वर सबसे अधिक कष्ट साध्य है ॥९४॥

कालो ह्येष यमश्चैव नियतिर्मृत्युरेव च ॥९५॥
तस्मिन् व्यपगते देहाज्जन्मेह पुनरुच्यते ।
इति ज्वराः समाख्याता, कर्मेदानीं प्रवक्ष्यते ॥९६॥

यह ज्वर कालरूप है, यम है, नियति है, मृत्यु है, शरीर से ज्वर निकल जाने पर दुबारा जन्म हुआ कहा जाता है। इस प्रकार से ज्वर कह दिया, अब चिकित्सा को कहेंगे ॥९५,९६॥

ज्वरस्य पूर्वरूपेषु वर्तमानेषु बुद्धिमान् ।
पाययेत घृतं स्वच्छं ततः स लभते सुखम् ॥९७॥
विधिर्मारुतजेष्वेष, पैत्तिकेषु विधीयते ।
मृदु, प्रच्छर्दनं तद्वत्कफजेषु विधीयते ॥९८॥

ज्वर के पूर्वरूपों में बुद्धिमान् वैद्य शुद्ध निर्मल घृत ही पिलाये, इससे रोगी को सुख मिलता है। यह घृतपान विधि वातजन्य (अर्थात् श्रम-क्षय आदि से कुपित वातज्वर) ज्वरों के पूर्वरूपों में है, (न कि आमाशय से उत्पन्न ज्वरों में)। पित्तजन्य ज्वरों में विरेचन मृदु देवें। कफजन्य ज्वरों में वमन कराये ।

वक्तव्य—"ज्वरे लंघनमेवादावुपदिष्टमृते ज्वरात् । क्षयानिलभयक्रोधकामशोकश्रमोद्भवात् ॥" चरक ॥९७,९८॥

सर्वद्विदोषजेषूक्तं यथादोषं विकल्पयेत् ।
अस्नेहनीयोऽशोध्यश्च संयोज्यो लङ्घनादिना ॥९९॥

सन्निपातज्वर के तथा द्विदोषजज्वर के पूर्वरूपों में दोषानुसार घृतपान आदि का निश्चय करना चाहिये ।

तरुण ज्वरादि जो स्नेह के अयोग्य हैं, वमन विरेचन के जो अयोग्य हैं, उनको लंघन (षडंगपानीय आदि) आदि करे ॥९९॥

रूपप्राग्रूपयोर्विद्यान्नानात्वं वह्निधूमवत् ।
प्रव्यक्तरूपेषु हितमेकान्तेनापतर्पणम् ॥१००॥

अग्नि और धूम की भाँति रूप और पूर्वरूपों में पृथक्त्व समझना चाहिये। रूपों के स्पष्ट हो जाने पर विना अपवाद के उपवास (आमाशयजन्य ज्वरों में) हितकारी है ॥१००॥

आमाशयस्थे दोषे तु सोत्क्लेशे वमनं परम् ।
आनद्धः स्तिमितैर्दोषैर्यावन्तं कालमातुरः ॥१०१॥
कुर्यादनशनं तावत्ततः संसर्गमाचरेत् ।

दोष के आमाशय उत्क्लेशित (बाहर निकलने के लिये) होने पर वमन देना श्रेष्ठ है ।

जितने समय तक स्तिमित (जकड़े हुए) दोषों से रुका हुआ रहे, उतने सयय तक रोगी उपवास करे। इसके पीछे पेयादि क्रम विधि पालन करे ॥१०१॥

न लङ्घयेन्मारुतजे क्षयजे मानसे तथा ॥१०२॥
अलङ्घ्याश्चापि ये पूर्वं द्विव्रणीये प्रकीर्तिताः ।

वातजन्य, क्षयजन्य (धातुक्षयजन्य) और मानस ज्वर में लंघन नहीं करना चाहिये। तथा द्विव्रणीय अध्याय में कहे हुए गर्भिणी बाल वृद्ध दुर्बल आदि जो लंघन के अयोग्य कहे हैं, उनको भी लंघन न कराये ॥१०२॥

अनवस्थितदोषाग्नेर्लङ्घनं दोषपाचनम् ॥१०३॥
ज्वरघ्नं दीपनं काङ्क्षारुचिलाघवकारकम् ।

अस्थिर दोषाग्निवाले पुरुष के लिये लघन दोषों का पाचन करनेवाला है, लंघन ज्वरनाशक, अग्निदीपक, भोजन में चाह, रुचि तथा शरीर में लघुता उत्पन्न करता है ॥१०३॥

सृष्टमारुतविण्मूत्रं क्षुत्पिपासाऽसहं लघुम् ॥१०४॥
प्रसन्नात्मेन्द्रियक्षामं नरं विद्यात् सुलङ्घितम् ।

भली प्रकार लंघन होने से मल-वायु मूत्र की प्रवृत्ति भूख और प्यास का सहन न होना, शरीर में हल्कापन, आत्मा और इन्द्रिय में प्रसन्नता तथा शरीर में कृशता आ जाती है। कहा भी है—

"वातमूत्रपुरीषाणां विसर्गे गात्रलाघवे। हृदयोदरकण्ठास्यशुद्धौ तन्द्राक्लमे गते ॥ स्वेदे जाते रुचौ चापि क्षुत्पिपासासहोदये। कृतं लंघनमादेश्यं निर्व्यथे चान्तरात्मनि" ॥१०४॥

बलक्षयस्तृषा शोषस्तन्द्रानिद्राभ्रमक्लमाः ॥१०५॥
उपद्रवाश्च श्वासाद्याः संभवन्त्यतिलङ्घनात् ।

अतिशय लंघन से-बल का ह्रास, प्यास, शोष, तन्द्रा-निद्रा-भ्रम-थकान, श्वास आदि उपद्रव होते हैं ॥१०५॥

दीपनं कफविच्छेदि पित्तवातानुलोमनम् ॥१०६॥
कफवातज्वरार्तेभ्यो हितमुष्णाम्बु तृट्छिदम् ।
तद्धि मार्दवकृद्दोषस्रोतसां

ज्वर में गरम पानी अग्नि दीपक, कफ को तोड़नेवाला, पित्त और वायु का अनुलोमक, कफ-वात ज्वर से पीड़ित रोगियों में हितकारी तथा तृषा नाशक है। क्योंकि यह दोष एवं स्रोतों को कोमल करता है ।

"ज्वरितस्य कायसमुत्थानदेशकालानभिसमीक्ष्य पाचनार्थं पानीयमुष्णं प्रयच्छन्ति भिषजः। ज्वरो ह्यामाशयसमुत्थः, प्रायो भेषजानि चामाशयसमुत्थानां विकाराणां पाचनवमनापतर्पणसमर्थानि भवन्ति, पाचनार्थं च पानीयमुष्णं तस्मादेतज्ज्वरितेभ्यः प्रयच्छन्ति भिषजो भूयिष्ठम्। तद्धि तेषां पीतं वातमनुलोमयति, अग्नि चोदर्यमुदीरयति, क्षिप्रं जरो गच्छति श्लेष्माणं, परिशोषयति, स्वल्पमपि च पीतं तृष्णाप्रशमनायोपकल्पते"॥ चरक[1] वि० अ० ३।४६॥१०६॥

शीतमन्यथा ॥१०७॥

सेव्यमानेन तोयेन ज्वरः शीतेन वर्धते।

शीतल जल इससे विपरीत गुणवाला होता है, शीतल जल सेवन करने से ज्वर बढ़ता है ॥१०७॥

पित्तमद्यविषोत्थेषु शीतलं तिक्तकैः शृतम् ॥१०८॥
गाङ्गेयनागरोशीरपर्पटोदीच्यचन्दनैः।

पित्तजन्य मद्यजन्य विषजन्य ज्वरों में—शीतल या तिक्त द्रव्यों से शोधित शीतल जल देना चाहिये। ये द्रव्य-भद्रमोथा, सोंठ, खस, पित्तपापड़ा, खस और लालचन्दन हैं।

वक्तव्य—इन द्रव्यों का क्वाथ षडंग परिभाषा से बनाना चाहिये, यथा—"कर्षमानं ततो द्रव्यं साधयेत् प्रास्थिकेऽम्भसि। अर्धशृतं प्रयोक्तव्यं पाने पेयादि संविधौ॥" चरक में—तथायुक्तमपि चैतन्नात्यर्थोत्सन्नपित्ते ज्वरे सदाहभ्रमप्रलापातिसारे वा प्रदेयम्। उष्णेन हि दाहभ्रमप्रलापातिसारा भूयोऽभिवर्धन्ते, शीतेन चोपशाम्यन्ति॥ चरक वि० अ० ३।४०॥१०८॥

दीपनी पाचनी लघ्वी ज्वरार्तानां ज्वरापहा ॥१०९॥
अन्नकाले हिता पेया यथास्वं पाचनैः कृता।

दोषों के उनके अपने अनुसार पाचन द्रव्यों के संयोग से दीपनी (अग्नि दीपक), दोषों को पचानेवाली, लघु, ज्वरनाशक, ज्वररोगियों के लिये अन्नकाल में हितकारी है ॥१०९॥

बहुदोषस्य मन्दाग्नेः सप्तरात्रात् परं ज्वरे ॥११०॥
लङ्घनाम्बुयवागूभिर्यदा दोषो न पच्यते
तदा तं मुखवैरस्यतृष्णारोचकनाशनैः ॥१११॥
कषायैः पाचनैर्हृद्यैर्ज्वरघ्नैः समुपाचरेत्।

बहुत दोषवाले, मन्दाग्निवाले पुरुष में लंघन, षडंगपानीय, यवागू देने पर भी यदि सात दिन में ज्वर के अन्दर दोषों का पाचन न हो, तब रोगी को मुख की विरसता, प्यास, अरोचक नाशक, हृदय के लिये प्रिय, ज्वरघ्न एवं पाचन कषायों से चिकित्सा करे ॥११०,१११॥

1 तृप्यते सलिलं चोष्णं दद्यात् वातकफज्वरे।
मद्योत्थे पैत्तिके चाथ शीतलं तिक्तकैः शृतम्॥
चरक।

पञ्चमूलीकषायं तु पाचनं पवनज्वरे ॥११२॥
सक्षौद्रं पैत्तिके मुस्तकटुकेन्द्रयवैः कृतम्।
पिप्पल्यादिकषायं तु कफजे परिपाचनम् ॥११३॥
द्वन्द्वजेषु तु संसृष्टं दद्या-

यथा—वातज्वर में बृहत्पंचमूल का कषाय पाचक है। पित्तज्वर में मुस्ता, कुटकी, इन्द्रजौ के क्वाथ में मधु मिलाकर देवे। कफज्वर में पिप्पल्यादिगण का क्वाथ देवे। द्वन्द्वज ज्वरों में इनको मिलाकर देवे ॥११२,११३॥

द्थ विवर्जयेत्।

पीताम्बुर्लङ्घितो भुक्तोऽजीर्णी क्षीणः पिपासितः ॥११४॥

तुरन्त पानी पीने पर, उपवास किया होने पर, तुरन्त भोजन किया होने से, अजीर्णवाले तीक्ष्ण एवं प्यास लगे व्यक्ति को पाचन कषाय मत देवे ॥११४॥

(तीक्ष्णे ज्वरे गुरौ देहे विबद्धेषु मलेषु च।
सामदोषं विजानीयाज्ज्वरं पक्वमतोऽन्यथा॥)
मृदौ ज्वरे लघौ देहे प्रचलेषु मलेषु च।
पक्वं दोषं विजानीयाज्ज्वरे देयं तदौषधम् ॥११५॥

(ज्वर के तीक्ष्ण होने पर, शरीर में भारीपन, मलों के रुका होने पर, ज्वर को आमदोषयुक्त जाने, इससे विपरीत अवस्था में निराम या पका जाने) ज्वर के मृदु हो जाने पर, शरीर में हल्कापन, मलों के चलायमान होने पर, दोष को पका हुआ जाने, तब ज्वर में ज्वरनाशक औषध देना ॥११५॥

दोषप्रकृतिवैकृत्यादेकेषां पक्वलक्षणम्।
हृदयोद्वेष्टनं तन्द्रा लालास्रुतिररोचकः ॥११६॥
दोषप्रवृत्तिरालस्यं विबन्धो बहुमूत्रता।
गुरूदरत्वमस्वेदो न पक्तिः शकृतोऽरतिः ॥११७॥
स्वापः स्तम्भो गुरुत्वं च गात्राणां वह्निमार्दवम्।
मुखस्याशुद्धिरग्लानिः प्रसङ्गो बलवाञ्ज्वरः ॥११८॥
लिङ्गैरेभिर्विजानीयाज्ज्वरमामं विचक्षणः।

कोई आचार्य दोष की प्रकृति को प्रकृति होने से पक्व लक्षण मानते हैं।

आम ज्वर के लक्षण—हृदय में ऐंठन, तन्द्रा, लालास्राव, अरोचक, दोषों की अप्रवृत्ति, आलस्य, मलादि का अवरोध, मूत्र की अधिकता, उदर में भारीपन, पसीना न आना, मल का पाचन न होना, बेचैनी, स्वाप (नींद), जड़ता, अंगों में भारीपन, अग्नि की मृदुता, मुख की अशुद्धि, मुख में ग्लानि न होना (कृशता-चेहरे पर न आना), ज्वर का निरन्तर बलवान् रहना, इन लक्षणों से बुद्धिमान् आमज्वर को जाने।

वि० मन्तव्य—दोष—पक्वलक्षणम् का तात्पर्य है—दोष अर्थात् वातादि दुष्ट दोष—की प्रकृति अर्थात् स्वभाव है रोग को उत्पन्न करना, इस प्रकृति की जो विकृति अर्थात् विपरीतता दोष के पक्व हो जाने का लक्षण है। इस

सन्दर्भ का निष्कर्ष यह है कि साम दोष रोगोत्पादक होता है और निराम दोष रोगोत्पादक नहीं होता। जब दोष साम होता है तब रोगोत्पत्ति होती है, जब वह निराम हो जाता है तब रोग शान्त हो जाता है। सामदोषोत्पन्न रोग को भी 'साम' कहा जाता है और जब दोष निराम होता है अथवा कुछ २ निराम होने लगता है तब रोग को भी निराम कहा जाता है। यथा आमज्वर, आमातिसार तथा निरामज्वर तथा पक्वातिसार आदि २। दोषाऽप्रवृत्तिः—जब दोष-वातादि दोष साम रहते हैं तब उनकी उचित प्रवृत्ति-गति नहीं होती, यथा वायु का अपानवायु तथा उद्गार आदि के रूप में और शरीर के भीतरी अवयवों में उचित रूप से गति न करना, पित्त का मूत्र के साथ, पुरीष के साथ न निकलना और शरीर के भीतरी अवयवों में पाचन रञ्जन आदि क्रिया न करना और कफ का खखार एवं सिंघाणक आदि के रूप में न निकलना और शरीर के भीतरी अवयवों में रसन, अवलम्बन आदि क्रिया न करना ॥११६-११८॥

सप्तरात्रात्परं केचिन्मन्यन्ते देयमौषधम् ॥११९॥
दशरात्रात्परं केचिद्दातव्यमिति निश्चिताः।

कई आचार्य कहते हैं कि सात दिन के पीछे औषध देनी चाहिये। दूसरे आचार्य दस दिन के पीछे औषध देने का विधान कहते हैं।

वक्तव्य—चरक में पच्यमान ज्वर के भी लक्षण हैं, यथा—
"ज्वरवेगोऽधिकस्तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः।
मलप्रवृत्तिरुत्क्लेशः पच्यमानस्य लक्षणम् ॥"
चरक० चि० अ० ३।११६॥११९॥

पैत्तिके वा ज्वरे देयमल्पकालसमुत्थिते ॥१२०॥
अचिरज्वरितस्यापि देयं स्याद्दोषपाकतः।

पित्तजन्य या अल्पकाल से उत्पन्न पित्तज्वर में भी, शीघ्र उत्पन्न हुए ज्वर में भी दोषों का पाक हो जाने पर सात दिन से पूर्व भी औषध दे देनी चाहिये ॥१२०॥

भेषजं ह्यामदोषस्य भूयो ज्वलयति ज्वरम् ॥१२१॥
शोधनं, शमनीयं तु करोति विषमज्वरम्।

आमदोषवाले पुरुष में दी गई शोधन औषध ज्वर को और भी अधिक बढ़ा देती है। शमनीय औषध ज्वर को विषम ज्वर में बदल देती है, शोधनीय औषध ज्वर को बढ़ाती है॥

च्यवमानं ज्वरोत्क्लिष्टमुपेक्षेत मलं सदा ॥१२२॥
अतिप्रवर्तमानं च साधयेदतिसारवत्।

ज्वर के आक्रान्त रोगी के प्रवृत्त हुए पुरीषादि मलों की सदा उपेक्षा करे। यदि ये अतिमात्रा में प्रवृत्त हो रहे हों तो अतिसार की भाँति चिकित्सा करे। चरक में—

"पित्तं वा कफपित्तं वा पित्ताशयगतं हरेत्।
स्रंसनं, त्रीन्मलान् बस्तिहरेत् पक्वाशयस्थितान्" ॥

यदा कोष्ठानुगाः पक्वा विबद्धाः स्रोतसां मलाः ॥१२३॥
अचिरज्वरितस्यापि तदा दद्याद्विरेचनम्।

जब मल कोष्ठ में पहुँचे हुए हों, पक गये हों स्रोतों में रुके हों, तो यदि ज्वर पुराना न भी हुआ हो तो भी इस रोगी को विरेचन देवे। (मल शब्द पुरीष के लिए है)। चरक—

दाहतृष्णापरीतस्य वातपित्तोत्तरं ज्वरम्।
बद्धप्रच्युतदोषं वा निरामे पयसा जयेत् ॥
क्रियाभिराभिः प्रशमं न प्रयाति यदा ज्वरः।
अक्षीणबलमांसाग्नेः शमयेत्तं विरेचनैः ॥
ज्वरक्षीणस्य न हितं वमनं न विरेचनम्।
कामं तु पयसा तस्य निरूहैर्वा हरेन्मलान् ॥१२३॥

पक्वो ह्यनिर्हृतो दोषो देहे तिष्ठन् महात्ययम् ॥१२४॥
विषमं वा ज्वरं कुर्याद्बलव्यापदमेव च।
तस्मान्निर्हरणं कार्यं दोषाणां वमनादिभिः ॥१२५॥

क्योंकि पका हुआ दोष यदि बाहर न निकाला जाय, शरीर में रह जाये तो गम्भीर रोग को, विषमज्वर को, और बल हानि को करता है, इसलिये वमन आदि से दोषों को निकालना चाहिये ॥१२४,१२५॥

प्राक्कर्म वमनं चास्य कार्यमास्थापनं तथा।
विरेचनं तथा कुर्याच्छिरसश्च विरेचनम् ॥१२६॥

अवस्थानुसार प्रथम रोगी को वमन देवे, फिर आस्थापन, फिर विरेचन, इसके पीछे शिरोविरेचन देवे, क्रम से चिकित्सा करे।

गौरवे शिरसः शूले विबद्धेष्विन्द्रियेषु च।
जीर्णज्वरे रुचिकरं कुर्यान्मूर्धविरेचनम् ॥च०॥१२६॥

क्रमशो बलिने देयं वमनं श्लैष्मिके ज्वरे।
पित्तप्राये विरेकस्तु कार्यः प्रशिथिलाशये ॥१२७॥
सरुजेऽनिलजे कार्यं सोदावर्ते निरूहणम्।
कटीपृष्ठग्रहार्तस्य दीप्ताग्नेरनुवासनम् ॥१२८॥
शिरोगौरवशूलघ्नमिन्द्रियप्रतिबोधनम्।
कफाभिपन्ने शिरसि कार्यं मूर्धविरेचनम् ॥१२९॥

कफज्वर में बलवान् रोगी को वमन देवे। पक्वाशय के शिथिल (अस्तब्ध) होने पर पित्त प्रधान ज्वर में विरेचन देवे। वातजन्य एवं उदावर्त्तयुक्त ज्वर में वेदना होने पर निरूहण देवे। कटिग्रह से पीड़ित दीप्ताग्नि पुरुष को अनुवासन देवे। कफ से भरे हुए शिर में शिर का भारीपन नाशक, शूल नाशक, इन्द्रियों को जाग्रत करनेवाला शिरोविरेचन देवे।

ज्वरे पुराणे संक्षीणे कफपित्ते दृढाग्नये।
रूक्षबद्धपुरीषाय प्रदद्यादनुवासनम् ॥"चरक ॥१२७-१२९॥

दुर्बलस्य समाध्मातमुदरं सरुजं दिहेत् ।
दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिङ्गुसैन्धवैः ॥१३०॥

दुर्बल रोगी को आध्मान एवं उदर में शूल होने पर—देवदारु, वच, कूठ, सौंफ, हींग, सैन्धव, इनको कांजी में पीसकर सुहाता गरम लेप उदर पर करे ॥१३०॥

अम्लपिष्टैः सुखोष्णैश्च पवने तूर्ध्वमागते ।
रुद्धमूत्रपुरीषाय गुदे वर्तिं निधापयेत् ॥१३१॥

वायु के ऊर्ध्वगामि होने पर, मल मूत्र रुके हुए रोगी की गुदा में वर्त्ति रक्खे । वर्त्ति-मैनफल, सैन्धव, पिप्पली आदि की बनाई या उपर्युक्त देवदारु आदि से बनाई रक्खे ॥१३१॥

पिप्पलीपिप्पलीमूलयवानीचव्यसाधिताम् ।
पाययेत यवागूं वा मारुताद्यनुलोमिनीम् ॥१३२॥

पवन के ऊर्ध्वगामि होने पर पिप्पली, पिप्पलीमूल, अजवायन, चव्य से सिद्ध की यवागू को पिलाये, यह वायु आदि का अनुलोमन करती है ॥१३२॥

शुद्धस्योभयतो यस्य ज्वरः शान्तिं न गच्छति ।
सशेषदोषरूक्षस्य तस्य तं सर्पिषा जयेत् ॥१३३॥

वमन विरेचन से शुद्ध होने पर भी जिस रोगी का ज्वर दोष बचे होने से शान्त नहीं होता, घी से उसका ज्वर शान्त करे । चरक में—

ज्वराः कषायैः वमनैः लंघनैर्लघुभोजनैः ।
रूक्षस्य ये न शाम्यन्ति सर्पिस्तेषां भिषगूजितम् ॥
रूक्षं तेजो ज्वरकरं तेजसा रूक्षितस्य च ।
यः स्यादनुबलो धातुः स्नेहवध्यः स चानिलः ॥१३३॥

कृशं चैवाल्पदोषं च शमनीयैरुपाचरेत् ।
उपवासैर्बलस्थं तु ज्वरे सन्तर्पणोत्थिते ॥१३४॥

कृश एवं अल्पदोषवाले रोगी की चिकित्सा शमनीय औषधियों से करे । सन्तर्पणजन्य ज्वर में बलवान् रोगी की उपवास से चिकित्सा करे ।

वक्तव्य—यहाँ पर "चतुष्प्रकारा संशुद्धिः पिपासामारुतातपौ । पाचनान्युपवासश्च व्यायामश्चेति लंघनम् ॥" इनका भी समावेश करना चाहिये ॥१३४॥

क्लिन्नां यवागूं मन्दाग्निं तृषार्तं पाययेन्नरम् ।
तृट्छर्दिदाहघर्मार्तं मद्यपं लाजतर्पणम् ॥१३५॥
सक्षौद्रसम्भसां पश्चाज्जीर्णे यूषरसौदनम् ।
उपवासश्रमकृते क्षीणं (णे) वाताधिके ज्वरे ॥१३६॥
दीप्ताग्निं योजयेत् प्राज्ञो नरं मांसरसौदनम् ।
मुद्गयूषौदनश्चापि हितः कफसमुत्थिते ॥१३७॥
स एव सितया युक्तः शीतः पित्तज्वरे हितः ।

मन्दाग्नि एवं प्यास से पीड़ित मनुष्य को खूब गली यवागू पिलाये ।

प्यास, वमन, दाह, गरमी से पीड़ित मनुष्य को या मद्यपी को लाज से बना तर्पण (लाजा-सत्तू को पानी में घोलकर) मधु के साथ मिलाकर देवे । इसके जीर्ण होने पर पीछे से मूँग आदि के यूष से या मांस रस से भात देवे । उपवास या श्रम के कारण क्षीण हुए, वात की अधिकतावाले ज्वर में, प्रदीप्ताग्नि पुरुष को वैद्य मांस रस के साथ भात देवे । कफजन्यज्वर में मूँग के यूष के साथ भात देवे । पित्त ज्वर में इसी यूष को ठण्डा करके शर्करा के साथ देवे ॥१३५-१३७॥

दाडिमामलमुद्गानां यूषश्चानिलपैत्तिके ॥१३८॥
ह्रस्वामलकयूषस्तु वातश्लेष्माधिके हितः ।
पटोलनिम्बयूषस्तु पथ्यः पित्तकफात्मके ॥१३९॥
दाहच्छर्दियुतं क्षामं निरन्नं तृष्णयाऽर्दितम् ।
सिताक्षौद्रयुतं लाजतर्पणं पाययेत च ॥१४०॥

वातपित्तज्वर में अनारदाना, आंवला और मूँग का यूष देवे । वातकफज्वर में छोटी मूली का यूष देवे । पित्त कफ ज्वर में परवल और नीम का यूष पथ्य है । दाह, वमन से युक्त, कृश, भोजन न करनेवाले, तथा प्यास से पीड़ित मनुष्य को लाजाओं के सत्तु को पानी में घोलकर शर्करा और मधु मिलाकर पीने को देवे ॥१३८-१४०॥

कफपित्तपरीतस्य ग्रीष्मेऽसृक्पित्तिनस्तथा ।
मद्यनित्यस्य न हिता यवागूस्तमुपाचरेत् ॥१४१॥
यूषैरम्लैरनम्लैर्वा जाङ्गलैश्च रसैर्हितैः ।

कफ पित्त की शिकायतवाले नित्य मद्य पीनेवाले के लिये यवागू उत्तम नहीं । उसकी चिकित्सा खट्टे या खट्टाश रहित यूषों से या जांगलमांस रसों से करनी चाहिये । चरक में—ऊर्ध्वग रक्तपित्त में यवागू का निषेध किया है, यथा—ऊर्ध्वगे रक्तपित्ते च यवागूर्न हिता ज्वरे[1] ।

वक्तव्य—रक्तपित्त में यवागू उत्तम कही है, परन्तु ज्वर होने से यह अपथ्य है । वह भी कफ पित्त दोनों दोषों का संयोग होने पर अहित है ॥१४१॥

मद्यं पुराणं मन्दाग्नेर्यवान्नोपहितं हितम् ॥१४२॥

मन्दाग्नि पुरुष को पुरातन मद्य जौ के भोजन के साथ देवे (मद्य-दीपक एवं कफनाशक है) ॥१४२॥

सव्योषं वितरेत्तक्रं कफारोचकपीडिते ।

कफजन्य अरोचक में त्रिकटु (सोंठ, मरिच, पिप्पली) के साथ तक्र पीये ।

कृशोऽल्पदोषो दीनश्च नरो जीर्णज्वरार्दितः ॥१४३॥
विबद्धः सृष्टदोषश्च रूक्षः पित्तानिलज्वरी ।
पिपासार्तः सदाहो वा पयसा स सुखी भवेत् ॥१४४॥

कृश, अल्पदोषवाला, दीन, जीर्णज्वर से पीड़ित, अप्रवृत्तदोष में, प्रच्युत दोषों में, रूक्ष या पित्तवातज्वर रोगी मनुष्य

---

१ आहारभावात् प्राणाय सरत्वाल्लाघवाय च ॥
ज्वरघ्नो ज्वरसात्म्यत्वाद् तस्मात् पेयाभिरादितः ॥

को, प्यास तथा दाह से पीड़ित को दूध पिलाये, इससे उसे सुख (आरोग्य) होता है। (थोड़ा थोड़ा मल आने में, या अतिसार में दोनों अवस्थाओं में दूध पथ्य है। जीर्णज्वर की अवस्था में दूध विधेय है ॥१४३,१४४॥

तदेव तरुणे पीतं विषवद्धन्ति मानवम्।
सर्वज्वरेषु सुलघु मात्रावद्भोजनं हितम् ॥१४५॥
वेगापायेऽन्यथा तद्धि ज्वरवेगाभिवर्धनम्।

यही दूध तरुणज्वर में पीने से विष की भाँति रोगी को मार देता है।

सब प्रकार के ज्वरों में अतिशय लघु भोजन मात्रा में ज्वरवेग के शान्त होनेपर देवे। अन्यथा रूप में देने से यह भोजन ज्वरवेग को ही बढ़ाता है ॥१४५॥

ज्वरितो हितमश्नीयाद्यद्यप्यस्यारुचिर्भवेत् ॥१४६॥
अन्नकाले ह्यभुञ्जानः क्षीयते म्रियतेऽथवा।
स क्षीणः कृच्छ्रतां याति यात्यसाध्यत्वमेव च ॥१४७॥
तस्माद्रक्षेद्बलं पुंसां बले सति हि जीवितम्।
गुर्वभिष्यन्द्यकाले च ज्वरी नाद्यात् कथञ्चन ॥१४८॥
न तु तस्याहितं भुक्तमायुषे वा सुखाय वा।

जीर्णज्वर रोगी को यदि किसी कारण से हित भोजन में अरुचि हो जाये, तो अनेक प्रकार की कल्पनाओं से इसे हितकारी भोजन ही देवे। क्योंकि भूख लगनेपर न खाने से रोगी क्षीण हो जाता है या मर जाता है। क्षीण होनेपर ज्वर कष्टसाध्य हो जाता है, या असाध्य हो जाता है। इसलिये मनुष्य के बल की रक्षा करे, बल होनेपर ही जीवन है। ज्वर रोगी गुरु, अभिष्यन्दि भोजन एवं अकाल में भोजन कभी न करे, क्योंकि खाया हुआ अहित भोजन उसको न तो आरोग्य देता है, और न आयु देता है।

वक्तव्य—"सातत्याद् स्वादुभावाच्च पथ्यं द्वेष्यत्वमागतम्। कल्पनाविधिभिस्तैस्तैः प्रियत्वं गमयेत् पुनः॥ प्राणाविरोधिना चैनं लंघनेनोपपादयेत्। बलाधिष्ठानमारोग्यं यदर्थोऽयं क्रियाक्रमः॥ मनसोऽर्थानुकूल्याद्धि, तुष्टिरूर्जारुचिर्बलम्। सुखोपभोगता च स्याद् व्याधेश्चातो बलक्षयः॥ लौल्याद् दोषक्षयाद् व्याधेः वैधर्म्याच्चापि या रुचिः। तासु पथ्यापचारः स्याद् योगेनाद्यं विकल्पयेत्॥" चरक ॥१४६-१४८॥

संततं विषमं वाऽपि क्षीणस्य सुचिरात्थितम् ॥१४९॥
ज्वरं सभाजनैः पथ्यैर्लघुभिः समुपाचरेत्।

क्षीण व्यक्ति के संतत ज्वर की विषम ज्वर की या अतिपुरातन ज्वर की चिकित्सा पथ्य, लघु इच्छित भोजनों से करे॥

मुद्गान्मसूरांश्चणकान् कुलत्थान् समकुष्ठकान् ॥१५०॥
आहारकाले यूषार्थं ज्वरिताय प्रदापयेत्।

रोगियों को यूष की चाह हो, उनको भूख लगनेपर मूँग, मसूर, चने, कुलथी, मोथ इनका यूष ज्वर रोगियों को देवे॥

पटोलपत्रं वार्ताकं कठिल्लं पापचेलिकम् ॥१५१॥
कर्कोटकं पर्पटकं गोजिह्वां बालमूलकम्।
पत्रं गुडूच्याः शाकार्थं ज्वरितानां प्रदापयेत् ॥१५२॥

परवल के पत्ते, बैंगन, पुनर्नवा शाक, पाठा शाक, ककोड़ा, शहतरा, गाँजवा, पतली नरम मूली, गिलोय के पत्ते, इनका शाक, ज्वर रोगी को (शाक की चाह में) देवे ॥१५१,१५२॥

लावान् कपिञ्जलानेणान् पृषताञ्छरभाञ्छशान्।
कालपुच्छान् कुरङ्गांश्च तथैव मृगमातृकान् ॥१५३॥
मांसार्थं मांससात्म्यानां ज्वरितानां प्रदापयेत्।

बटेर, कपिंजल (घर की चिड़िया), हरिण पृषत, शरभ, खरगोश, कालपुच्छ, कुरंग, मृगमातृका, इनका मांस, सात्म्य ज्वर रोगियों को मांस की चाह होनेपर देवे ॥१५३॥

सारसक्रौञ्चशिखिनः कुक्कुटास्तित्तिरा (रीं) स्तथा॥
गुरूष्णत्वान्न शंसन्ति ज्वरे केचिच्चिकित्सकाः॥

सारस, क्रौंच, मोर, कुक्कुट, तीतर, इनको गुरु एवं उष्ण होने के कारण कई चिकित्सक ज्वर में उत्तम नहीं मानते॥

ज्वरितानां प्रकोपं तु यदा याति समीरणः ॥१५५॥
तदैतेऽपि हि शस्यन्ते मात्राकालोपपादिताः।

ज्वर रोगियों में जब वायु का प्रकोप हो जाये, तब इन सारस, मुर्गे आदि को भी—मात्रा एवं काल के अनुसार देना चाहिये।

"लंघनेनानिलबलं ज्वरे यद्यधिकं भवेत्।
भिषङ् मात्राविकल्पज्ञो दद्यात्तानपि कालवित्॥"

वक्तव्य—चरक में दातुन के लिये विशेष विधान किया है, यथा—"अन्नकालेषु चाप्यस्मै विधेयं दन्तधावनम्। योऽस्य वक्त्ररसस्तस्माद् विपरीतं प्रियं च तत्॥ तदस्य मुखवैशद्यं प्रकाङ्क्षां चान्नपानयोः। धत्ते रसविशेषाणामभिज्ञत्वं करोति यत्॥ विशोध्यद्रुमशाखाग्रैरास्यं प्रक्षाल्य चासकृत्। मस्त्विक्षुरसमद्याद्यैर्यथाहारमवाप्नुयात्॥, चरक ॥१५५॥

परिषेकान् प्रदेहांश्च स्नेहान् संशोधनानि च ॥१५६॥
(स्नानाभ्यङ्गदिवास्वप्नशीतव्यायामयोषितः।)
कषायगुरुरूक्षाणि क्रोधादीनि तथैव च ॥१५७॥
सारवन्ति च भोज्यानि वर्जयेत्तरुणज्वरी।
तथैव नवधान्यादिं वर्जयेच्च समासतः ॥१५८॥

तरुणज्वर रोगी—परिषेक (स्नान), प्रदेह, स्नेहन, संशोधन (वमन विरेचन), (स्नान, अभ्यंग दिन में सोना, शीत व्यायाम, स्त्री सेवन) कषाय, गुरु, रूक्ष भोजन, क्रोध आदि, स्निग्ध एवं अभिष्यन्दि (दही आदि) भोजन,

इनको, तथा नवधान्यादि वर्ग (सूत्र स्थान में व्रणितोपासनीय में कहे) का संक्षेप में त्याग करे ॥१५६-१५८॥

अनवस्थितदोषाग्नेरेभिः सन्धुक्षितो ज्वरः ।
गम्भीरतीक्ष्णवेगत्वं यात्यसाध्यत्वमेव च ॥१५९॥

परिषेक आदि आहार विहार के सेवन करने से अस्थिर दोषवाले तरुणज्वर रोगी में ज्वर बढ़कर गम्भीर एवं तीक्ष्ण वेगवाला हो जाता है अथवा असाध्य हो जाता है ॥१५९॥

शीततोयदिवास्वप्नक्रोधव्यायाममयोषितः ।
न सेवेत ज्वरोत्सृष्टो यावन्न बलवान् भवेत् ॥१६०॥
मुक्तस्यापि ज्वरेणाशु दुर्बलस्याहितैर्ज्वरः ।
प्रत्यापन्नो दहेद्देहं शुष्कं वृक्षमिवानलः ॥१६१॥
तस्मात्कार्यः परीहारो ज्वरमुक्तैर्विरिक्तवत् ।
यावन्न प्रकृतिस्थः स्याद्दोषतः प्राणतस्तथा ॥१६२॥

ज्वरमुक्त मनुष्य जब तक बलवान् न हो तब तक शीतल जल, दिन में सोना, क्रोध, व्यायाम और स्त्री सेवन न करे। क्योंकि ज्वरमुक्त रोगी के दुर्बल होने से अहित सेवन करने पर ज्वर शीघ्र ही लौटकर शरीर को जला देता है, जिस प्रकार शुष्क वृक्ष को अग्नि जला देती है। इसलिये ज्वर मुक्त रोगी को विरेचन की भाँति परहेजी पालनी चाहिये। जब तक कि वह दोष एवं प्राण (बल) से असली स्वभाव में न आजाये।

"व्यायामं च व्यवायं च स्नानं चंक्रमणानि च । ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्न बलवान् भवेत् ॥ असंजातबलो यस्तु ज्वरमुक्तो निषेवते । वर्ज्यमेतन्नरस्तस्य पुनरावर्तते ज्वरः ॥ विगतक्लमसंतापमव्यथं विमलेन्द्रियम् । युक्तं प्रकृतिसत्त्वेन विद्यात् पुरुषमज्वरम् ॥" चरक ॥१६०-१६२॥

ज्वरे प्रमोहो भवति स्वल्पैरप्यवचेष्टितैः ।
निषण्णं भोजयेत्तस्मान्मूत्रोच्चारौ च कारयेत् ॥१६३॥

ज्वर में थोड़ासा भी उठना-बैठना-चलना करने से मूर्च्छा हो जाती है। इसलिये बिस्तर पर बिठाये या लिटाये रोगी को ही भोजन देवे और वहीं पर मल-मूत्र त्याग कराये ॥१६३॥

अरोचके गात्रसादे वैवर्ण्येऽङ्गमलादिषु ।
शान्तज्वरोऽपि शोध्यः स्यादनुबन्धभयान्नरः ॥१६४॥

अरोचक, अंगों में शिथिलता, विवर्णता, अंगों में मलिनता होने पर-ज्वर के शान्त (लीनरूप) हो जाने पर भी रोगी को शोधन देना चाहिये, जिससे कि पुनः ज्वर का आक्रमण न हो।

"दुर्हृतेषु च दोषेषु यस्य वा विनिवर्त्तते ।
स्वल्पेनाप्यवचारेण तस्य व्यावर्त्तते पुनः ॥" च० ॥

न जातु स्नापयेत् प्राज्ञः सहसा ज्वरकर्शितम् ।
तेन संदूषितो ह्यस्य पुनरेव भवेज्ज्वरः ॥१६५॥

ज्वर से कृश हुए व्यक्ति को बुद्धिमान् सहसा स्नान न कराये। इस स्नान से दूषित हुआ ज्वर पुनः लौट आता है (जल्दी स्नान न कराये, बल आने पर स्नान करावे) ॥१६५॥

चिकित्सेच्च ज्वरान् सर्वान्निमित्तानां विपर्ययैः ।
श्रमक्षयाभिघातोत्थे मूलव्याधिमुपाचरेत् ॥१६६॥
स्त्रीणामपप्रजातानां स्तन्यावतरणे च यः ।
तत्र संशमनं कुर्याद्यथा दोषं विधानवित् ॥१६७॥

सब ज्वरों की चिकित्सा इनके कारणों से विपरीत करे। परन्तु श्रम, क्षय या अभिघातजन्य ज्वर में मूल दोष (वायु) की चिकित्सा करे। स्त्रियों में सम्यक् प्रसव न होने के कारण या स्तन्य (धावन) के प्रथम अवतरणकाल में जो ज्वर हो, उसमें दोष के अनुसार संशमन चिकित्सा वैद्य करे। (अपप्रजाता—पतितगर्भाः स्त्रियः—डल्हण) संशमन—पाचन कषाय ॥

अतः संशमनीयानि कषायाणि निबोध मे ।
सर्वज्वरेषु देयानि यानि वैद्येन जानता ॥१६८॥

इसके आगे मुझ से संशमन कषायों को सुनो, जिन कषायों को जाननेवाला वैद्य सब ज्वरों में दे सकता है।

वक्तव्य—कषाय कल्पना। "भेषजात् षोडशगुणं जलं, क्वाथ्यं पलं मतम्। चतुर्भागावशेषं तु पेयमेवं सुखार्थिना। उत्तमस्य पलं मानं त्रिभिः कर्षैश्च मध्यमे। जघन्यस्य पलार्धं च स्नेहक्वाथौषधेषु च ॥" वृद्धवैद्य अष्ट गुण जल में क्वाथ करते हैं। साधारणतः अमलतास आदि कोमल द्रव्यों में चार गुणा, हरड़ आदि में आठ गुणा, खैर आदि कठिन द्रव्यों में सोलह गुणा जल लेकर चतुर्थांश रखते हैं। यदि द्रव्य की मात्रा अधिक हो, अथवा पूरा रस न आये, तो इसको सायंकाल फिर क्वाथ करके देते हैं ॥१६८॥

पिप्पलीसारिवाद्राक्षाशतपुष्पाहरेणुभिः ।
कृतः कषायः सगुडो हन्याच्छ्वसनजं ज्वरम् ॥१६९॥

पिप्पली, सारिवा, द्राक्षा, सौंफ, हरेणु इनके कषाय में गुड़ मिलाकर देना वातज्वर को नष्ट करता है ॥१६९॥

शृतं शीतकषायं वा गुडूच्याः पेयमेव तु ।

कफानुबन्ध वातज्वर में गिलोय का शृत कषाय देवे, पित्तानुबन्ध वातज्वर में गिलोय का शीत कषाय देवे। शीत कषाय कल्पना—

"द्रव्यादापोथिताक्तोये प्रतप्ते संस्थितान्निशि। कषायो योऽभिनिर्याति स शीतः समुदाहृतः" ॥१६९॥

बलादर्भश्वदंष्ट्राणां कषायं पादशेषितम् ॥१७०॥
शर्करामधुसंयुक्तं पिबेद्वातज्वरापहम् ।

बला, दाभ, गोखरू इनका क्वाथ चौथाई शेष रखकर शर्करा और घृत के साथ मिलाकर पीये, यह वातज्वर नाशक है ॥१७०॥

शतपुष्पावचाकुष्ठदेवदारुहरेणुकाः ॥१७१॥
कुस्तुम्बुरूणि नलदं मुस्तं चैवाप्सु साधयेत् ।
क्षौद्रेण सितया चापि युक्तः क्वाथोऽनिलाधिके ।१७२।

सौफ, वच, कूठ, देवदारु, हरेणु, धनिया, खस, मुस्ता इनका जल में क्वाथ करे, इसमें मधु और शर्करा मिलाकर पीये, वातप्रधान ज्वर में यह क्वाथ उत्तम है ॥१७१,१७२॥

द्राक्षागुडूचीकाश्मर्यत्रायमाणाः ससारिवाः ।
निष्क्वाथ्य सगुडं क्वाथं पिबेद्वातकृते ज्वरे ॥१७३॥

गुडूच्याः स्वरसो ग्राह्यः शतावर्याश्च तत्समः ।
निहन्यात्सगुडः पीतः सद्योऽनिलकृतं ज्वरम् ॥१७४॥

द्राक्षा, गिलोय, गाम्भारी, त्रायमाण, सारिवा इनका क्वाथ करके गुड़ मिलाकर वातजन्यज्वर में पीये। गिलोय का स्वरस, इनके समान शतावरी का स्वरस मिलाकर—गुड़ के साथ पीने से वातजन्यज्वर शान्त होता है ॥१७३,१७४॥

घृताभ्यङ्गस्वेदलेपानवस्थासु च योजयेत् ।

जीर्णज्वर त्वचा में स्थित हो तो घी का अभ्यंग करे। शीत होने पर स्वेदन और आलेपन करे ।

श्रीपर्णीचन्दनोशीरपरूषकमधूकजः ॥१७५॥
शर्करामधुरो हन्ति कषायः पैत्तिकं ज्वरम् ।

गम्भारी, चन्दन, खस, फालसा, महुआ इनके कषाय को शर्करा मिलाकर मधुर बना कर देवे, इससे पित्तज्वर शान्त होता है ॥१७५॥

पीतं पित्तज्वरं हन्यात्सारिवाद्यं सशर्करम् ॥१७६॥

सारिवादिद्रव्य गण का क्वाथ शर्करा के साथ पीने से पित्तज्वर को नष्ट करता है ।।१७६॥

सयष्टीमधुकं हन्यात्तथैवोत्पलपूर्वकम् ।

उत्पलादिगण में मुलैहठी मिलाकर क्वाथ करके पीने से (शर्करा मिलाकर) पित्तज्वर नष्ट होता है ।

शृतं शीतकषायं वा सोत्पलं शर्करायुतम् ॥१७७॥

उत्पलादि गण का क्वाथ या शीतकषाय शर्करा के साथ पित्तज्वर में पीये ॥१७७॥

गुडूचीपद्मरोध्राणां सारिवोत्पलयोस्तथा ।
शर्करामधुरः क्वाथः शीतः पित्तज्वरापहः ॥१७८॥

गिलोय, कमल, लोध, सारिवा, नीलोफर इनका शीतकषाय शर्करा से मधुर बनाकर पीने से पित्तज्वर नाशक है ॥१७८॥

द्राक्षारग्वधयोश्चापि काश्मर्यस्याथवा पुनः ।
स्वादुतिक्तकषायाणां कषायैः शर्करायुतैः ॥१७९॥
सुशीतः शमयेत्तृष्णां प्रवृद्धां दाहमेव च ।

द्राक्षा और अमलतास का शीतकषाय, गम्भारी का शीतकषाय, द्राक्षा-मुलैहठी, सारिवादि मधुर, धमास, पित्तपापड़ा, चिरायता आदि तिक्त, पद्मा-नीलोफर आदि कषाय द्रव्यों का शीतकषाय शर्करा से मधुर करके पीने पर तृष्णा एवं प्रवृद्ध दाह को शान्त करता है। (ये तीन योग हैं) अथवा कषाय करके इसे ठण्डा करके देवे ॥१७९॥

शीतं मधुयुतं तोयमाकण्ठाद्वा पिपासितम् ॥१८०॥
वामयेत्पाययित्वा तु तेन तृष्णा प्रशाम्यति ।

प्यास से पीड़ित रोगी को मधु मिश्रित शीतल जल पेट भरके पिलाकर वमन कराये, इससे प्यास शान्त होती है ।१८०।

क्षीरैः क्षीरिकषायैश्च सुशीतैश्चन्दनायुतैः ॥१८१॥
अन्तर्दाहे विधातव्यमेभिश्चान्यैश्च शीतलैः ।

अन्तर्दाह होने पर दूध से, बरगद आदि क्षीरि वृक्षों के कषाय में चन्दन आदि शीतल द्रव्य मिलाकर इनको शीतल करके इनसे, तथा काकोल्यादि शीतवीर्य शीतस्पर्शद्रव्यों से बहिः परिमार्जन करना चाहिये। (पान, आलेपन, परिषेक, अवगाहन करे) ।

वक्तव्य—कांजी, सिरका, कोलनवाटर—मद्य—ये अम्ल बाह्य उपचार में शीतल हैं। इसलिये इनका उपयोग ज्वर में बाह्य होता है ॥१८१॥

पद्मकं मधुकं द्राक्षां पुण्डरीकमथोत्पलम् ॥१८२॥
यवान् भृष्टानुशीराणि समङ्गां काश्मरीफलम् ।
निदध्यादप्सु चालोड्य निशापर्युषितं ततः ॥१८३॥
क्षौद्रेण युक्तं पिबतो ज्वरदाहौ प्रशाम्यतः ।

पद्माख, मुलैहठी, द्राक्षा, कमल, नीलोफर भूने हुए जौ, खस, मजीठ, गम्भारीफल, इनका चूर्ण पानी में घोलकर रात भर रक्खा रहने देवे। प्रातः इसको नितारकर मधु मिलाकर पीने से रोगी का ज्वर और दाह शान्त होता है ॥१८२,१८३॥

जिह्वातालुगलक्लोमशोषे मूर्ध्नि च दापयेत् ॥१८४॥

जिह्वा—तालु—गला—क्लोम के शुष्क होने पर शिर पर पद्माख आदि का शीतल लेप या परिषेक करे ॥१८४॥

केशरं मातुलुङ्गस्य मधुसैन्धवसंयुतम् ।
शर्करादाडिमाभ्यां वा द्राक्षाखर्जूरयोस्तथा ॥१८५॥
वैरस्ये धारयेत्कल्कं गण्डूषं च तथा हितम् ।

बिजौरे के केसर, मधु और सैन्धव अथवा शर्करा, अनार, द्राक्षा और खर्जूर इनका कल्क या गण्डूष मुख में धारण करना उत्तम है। (चरक ने दातुन करने का विधान किया है) ॥

सप्तच्छदं गुडूचीं च निम्बं स्फूर्जकमेव च ॥१८६॥
क्वाथयित्वा पिबेत् क्वाथं सक्षौद्रं कफजे ज्वरे ।

कफज्वर में—सप्तपर्ण, गिलोय, नीम, स्फूर्जक (मरवा)

इनका क्वाथ करे। इस क्वाथ में मधु मिलाकर देवे ॥१८६॥

कटुत्रिकं नागपुष्पं हरिद्रा कटुरोहिणी ॥१८७॥
कौटजं च फलं हन्यात् सेव्यमानं कफज्वरम्।

त्रिकटु, नागकेसर, हल्दी, कटुकी, इन्द्रजौ इनका क्वाथ या चूर्ण कई बार उपयोग करने से कफज्वर को नष्ट करता है ॥

हरिद्रां चित्रकं निम्बमुशीरातिविषे वचाम् ॥१८८॥
कुष्ठमिन्द्रयवान् मूर्वां पटोलं चापि साधितम्।
पिबेन्मरिचसंयुक्तं सक्षौद्रं कफजे ज्वरे ॥१८९॥

कफजन्यज्वर में—हल्दी, चित्रक, नीम, खस, अतीस, वच, कूट, इन्द्रजौ, मूर्वा, पटोल इनके क्वाथ में मधु और मरिच मिलाकर पीये। इससे कफज्वर नष्ट होता है।१८८,१८९।

सारिवातिविषाकुष्ठपुराख्यैः सदुरालभैः।
मुस्तेन च कृतः क्वाथः पीतो हन्यात् कफज्वरम् १९०

सारिवा, अतीस, कुष्ठ, गुग्गुलु, धमासा और मुस्ता इनका क्वाथ पीने से कफज्वर नष्ट होता है ॥१९०॥

मुस्तं वृक्षकबीजानि त्रिफला कटुरोहिणी।
परूषकाणि च क्वाथः कफज्वरविनाशनः ॥१९१॥

मुस्ता, इन्द्रजौ, त्रिफला, कुटकी, फालसा इनका क्वाथ कफज्वर नाशक है ॥१९१॥

राजवृक्षादिवर्गस्य कषायो मधुसंयुतः।
कफवातज्वरं हन्याच्छीघ्रं कालेऽवचारितः ॥१९२॥

औषधकाल में पिया हुआ मधु मिश्रित आरग्वधादिगण का क्वाथ कफ-वातज्वर को शीघ्र नष्ट करता है ॥१९२॥

नागरं धान्यकं भार्गीमभयां सुरदारु च।
वचां पर्पटकं मुस्तं भूतीकमथ कट्फलम् ॥१९३॥
निष्क्वाथ्य कफवातोत्थे क्षौद्रहिङ्गुसमन्वितम्।
दा (पा) तव्यं श्वासकासघ्नं श्लेष्मोत्सेके गलग्रहे १९४
हिक्कासु कण्ठश्वयथौ शूले हृदयपार्श्वजे।

सोंठ, धनियाँ, भार्गी, हरड़, देवदारु, वच, शाहतरा, मोथा, भूतीक (रोहित घास) और कट्फल इनका क्वाथ करके, इसमें मधु और हींग मिलाकर कफ-वातजन्य ज्वर में, कफ की अधिकता में, गलग्रह में, हिक्का में, गले की सूजन में, हृदयशूल में, पार्श्वशूल में पीना चाहिये, यह श्वास कास नाशक है ॥

बलापटोलत्रिफलायष्ट्याह्वानां वृषस्य च ॥१९५॥
क्वाथो मधुयुतः पीतो हन्ति पित्तकफज्वरम्।
कटुकाविजयाद्राक्षामुस्तपर्पटकैः कृतः ॥१९६॥
कषायो नाशयेत् पीतः श्लेष्मपित्तभवं ज्वरम्।
भार्गीवचापर्पटकधान्यहिङ्ग्वभयाघनैः ॥१९७॥
काश्मर्यनागरैः क्वाथः सक्षौद्रः श्लेष्मपित्तजे।
सशर्करामक्षमात्रां कटुकामुष्णवारिणा ॥१९८॥
पीत्वा ज्वरं जयेज्जन्तुः कफपित्तसमुद्भवम्।

बला, पटोल, त्रिफला, मुलैहठी, अडूसा, इनका क्वाथ मधु के साथ पीने से पित्त-कफज्वर को नष्ट करता है। कुटकी, हरड़, द्राक्षा, मुस्ता शाहतरा इनका क्वाथ मधु के साथ पीने से कफपित्तजन्य ज्वर को नष्ट करता है। भार्गी, वच, शाहतरा, धनियाँ, हींग, हरड़, मुस्ता, गम्भारी और सोंठ इनका क्वाथ मधु के साथ कफ-पित्त-जन्य ज्वर में पीये। कुटकी और शर्करा को एक कर्ष की मात्रा में गरम पानी से पीने पर कफपित्त-जन्यज्वर नष्ट होता है ॥१९५–१९८॥

किराततिक्तममृतां द्राक्षामामलकं शटीम् ॥१९९॥
निष्क्वाथ्य वातपित्तोत्थे तं क्वाथं सगुडं पिबेत्।
रास्ना वृषोऽथ त्रिफला राजवृक्षफलैः सह ॥२००॥
कषायः साधितः पीतो वातपित्तज्वरं जयेत्।

चिरायता, गिलोय, द्राक्षा, आंवला, कचूर, इनका क्वाथ करके, इसमें गुड़ मिलाकर वातपित्तजज्वर में पीये। रास्ना, अडूसा, त्रिफला, अमलतास का फल, इनका बना क्वाथ पीने से वातपित्तज्वर नष्ट होता है ॥१९९,२००॥

सर्वदोषसमुत्थे तु संसृष्टानवचारयेद् ॥२०१॥

समसन्निपात में-वातादि में कहे कषायों को मिलाकर बरते॥

यथादोषोच्छ्रयं चापि ज्वरान् सर्वानुपाचरेत्।

ज्वर में जिस दोष की अधिकता हो, उस दोष के प्रतीकार से सब सन्निपातों में चिकित्सा करे।

वृश्चीवबिल्ववर्षाभ्वः पयश्चोदकमेव च ॥२०२॥
पचेत् क्षीरावशिष्टं तु तद्धि सर्वज्वरापहम्।

श्वेतपुनर्नवा, बिल्व, रक्त पुनर्नवा, दूध और पानी इनको मिलाकर पकाये। जब दूध मात्र रह जाये तब पीये, यह सब प्रकार के ज्वर को नष्ट करता है।

वक्तव्य—द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरात्तोयं चतुर्गुणम्। क्षीरावशेषः कर्त्तव्यं क्षीरपाके त्वयं विधिः ॥२०२॥

उदकांशास्त्रयः क्षीरं शिंशपासारसंयुतम् ॥२०३॥
तत् क्षीरशेषं कथितं पेयं सर्वज्वरापहम्।

दूध आठपल, दूध की अपेक्षा से पानी तीन भाग (२४ पल), शीशम का सार भाग एक पल, इनसे दूध मात्र पाक करे। यह दूध सब प्रकार के ज्वर को नष्ट करता है ॥२०३॥

नलवेतसयोर्मूले मूर्वायां देवदारुणि ॥२०४॥
कषायं विधिवत् कृत्वा पेयमेतज्ज्वरापहम्।
हरिद्रा भद्रमुस्तं च त्रिफला कटुरोहिणी ॥२०५॥
पिचुमन्दः पटोली च देवदारु निदिग्धिका।
एषां कषायः पीतस्तु सन्निपातज्वरं जयेत् ॥२०६॥
अविपक्तिं प्रसेकं च शोफं कासमरोचकम्।
त्रैफलो वा ससर्पिष्कः क्वाथः पेयस्त्रिदोषजे ॥२०७॥

नड़सर की जड़, बेंत की जड़, मूर्वा, देवदारु इनका कषाय विधिपूर्वक करे, यह ज्वरनाशक है। हल्दी, भद्रमुस्त

त्रिफला, कुटकी, नीम, पटोल, देवदारु, कटेरी, इनका क्वाथ पीने से सन्निपातज्वर नष्ट होता है। अविपाक, लालाप्रसेक, शोफ, कास, अरोचक को यह नष्ट करता है। त्रिदोषज्वर में त्रिफला का क्वाथ घी के साथ पीये ॥२०४-२०७॥

अनन्तां बालकं मुस्तां नागरं कटुरोहिणीम्।
सुखाम्बुना प्रागुदयात्पाययेताक्षसंमितम् ॥२०८॥
एष सर्वज्वरान् हन्ति दीपयत्याशु चानलम्।

सारिवा, नेत्रवाला, मुस्ता, सोंठ, कुटकी, इनको एक कर्ष की मात्रा में गरम पानी से सूर्य के निकलने से पूर्व पीये। यह योग सब प्रकार के ज्वरों को नष्ट करता है, और अग्नि को बढ़ाता है ॥२०८॥

द्रव्याणि दीपनीयानि तथा वैरेचनानि च ॥२०९॥
एकशो वा द्विशो वाऽपि ज्वरघ्नानि प्रयोजयेत्।

पिप्पल्यादि दीपनीय, त्रिवृत्तादि विरेचक, जीर्णज्वरनाशक द्रव्यों को अकेला अकेला या दो-दो अथवा तीन तीन मिलाकर बरते। "सारिवाशर्करापाठामंजिष्ठाद्राक्षापीलुपरूषकाभयामलकविभीतकानि इति दशेमानि ज्वरहराणि ॥" चरक ॥२०९॥

सर्पिर्मध्वभयातैललेहोऽयं सर्वजं ज्वरम् ॥२१०॥
शान्तिं नयेत्त्रिवृच्चापि सक्षौद्रा प्रबलं ज्वरम्।

घी, मधु, हरड़ और तेल इनका यह लेह सन्निपातजन्यज्वर को शान्त करता है। मधु के साथ निशोथ प्रबलज्वर को नष्ट करती है। तंत्रान्तर में—

पथ्यातैलघृतक्षौद्रैः लेहो दाहश्रमज्वरान्।
कासासृक्पित्तवीसर्पश्वासान् हन्ति वमीरपि ॥२१०॥

ज्वरे तु विषमे कार्यमूर्ध्वं चाधश्च शोधनम् ॥२११॥

विषमज्वर में रोगी को वमन (कफाधिक्य में) और विरेचन (पित्ताधिक्य में) देवे ॥२११॥

घृतं प्लीहोदरोक्तं वा निहन्याद्विषमज्वरम्।

प्लीहोदर में कहा षट्पलघृत विषमज्वर में देवे।

गुडप्रगाढां त्रिफलां पिबेद्वा विषमार्दितः ॥२१२॥

विषमज्वर से पीड़ित रोगी प्रचुर गुड़मिश्रित त्रिफला को खाये ॥२१२॥

गुडूचीनिम्बधात्रीणां कषायं वा समाक्षिकम्।

गिलोय, नीम, आंवला इनका क्वाथ मधु के साथ पीये।

प्रातः प्रातः ससर्पिष्कं रसोनमुपयोजयेत् ॥२१३॥

प्रतिदिन प्रातःकाल लहसुन के रस में घी मिलाकर पीये ॥

त्रिचतुर्भिः पिबेत् क्वाथं पञ्चभिर्वा समन्वितैः।
मधुकस्य पटोलस्य रोहिण्या मुस्तकस्य च ॥२१४॥
हरीतक्याश्च सर्वोऽयं त्रिविधो योग इष्यते।

मुलैठी, पटोल, कुटकी, मुस्ता, हरड़ इनमें से किन्हीं तीन, या किन्हीं चार या इन पांचों को मिलाकर क्वाथ करके पीये। (इस प्रकार तीन भेदों से सोलह योग बरते हैं)॥

सर्पिःक्षीरसिताक्षौद्रमागधीर्वा यथाबलम् ॥२१५॥
दशमूलीकषायेण मागधीर्वा प्रयोजयेत्।

बल के अनुसार घी, दूध, शर्करा, मधु और पिप्पली को बरते। अथवा दशमूल के कषाय से एक कर्ष पिप्पली पीये।

वि० मन्तव्य—घृतं १ से ४ तो०, दूध १ पाव से १ सेर, श्वेतखण्ड ४ तो० से १६ तो०, मधु १ से ४ तो० और पीपल ३-५-७-८ संख्यक पीसकर सबको मिलाकर विषमज्वर से १-२ घण्टा पूर्व पिला देना चाहिये। उसी दिन ज्वर रुक जाता है। परन्तु यह योग निराम विषम ज्वर में दिया जाता है, साम में नहीं। और साम ज्वर को रोकना निषिद्ध है देखिये श्लो० १२१। साम-निराम का विचार किये बिना अंधाधुंध कुनायन का प्रयोग किये जाने से उत्पन्न दुष्परिणामों को चिकित्सक-समाज भलीभाँति देख सुन रहा है। निम्नलिखित वर्द्धमान पिप्पली तथा मद्य का प्रयोग भी उक्त दशा में ही करना चाहिये। इसी योग को श्लो० २५५ में "पञ्चसार" नाम से लिखा है और इसके विशिष्टगुण भी लिखे हैं। प्रयोग कीजिये और लाभ उठाइये ॥२१५॥

पिप्पलीवर्धमानं वा पिबेत् क्षीररसाशनः ॥२१६॥

दूध या मांसरस का ही भोजन करते हुए वर्धमान पिप्पली का (व्रत व्याधि में कही) उपयोग करे ॥२१६॥

ताम्रचूडस्य मांसेन पिबेद्वा मद्यमुत्तमम्।

मुर्गे के मांस के साथ उत्तम मद्य को पीये।

कोलाग्निमन्थत्रिफलाक्वाथे दध्ना घृतं पचेत् ॥२१७॥
तिल्वकावापमेतद्धि विषमज्वरनाशनम्।

पंचकोल, (पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, सोंठ), अग्निमन्थ, त्रिफला-इनका एक सौ पल, पानी पांच सौ बारह पल, मिलाकर क्वाथ करे। एक सौ अट्ठाइस पल क्वाथ, एक सौ अट्ठाइस पल दही और बत्तीस पल घी, आठ पल तिल्वक का कल्क मिलाकर घृत सिद्ध करे। यह विषमज्वर नाशक है॥

पिप्पल्यतिविषाद्राक्षासारिवाबिल्वचन्दनैः ॥२१८॥
कटुकेन्द्रयवोशीरसिंहीतामलकीघनैः।
त्रायमाणास्थिराधात्रीविश्वभेषजचित्रकैः ॥२१९॥
पक्वमेतैर्घृतं पीतं विजित्य विषमाग्निताम्।
जीर्णज्वरशिरःशूलगुल्मोदरहलीमकान् ॥२२०॥
क्षयकासं ससंतापं पार्श्वशूलानपास्यति।

पिप्पली, अतीस, द्राक्षा, सारिवा, बिल्व, चन्दन, कुटकी, इन्द्रजौ, खस, कटेरी, भूंईआंवला, मुस्ता, त्राय-

माणा, शालपर्णी, आँवला, सोंठ, चित्रक इनके कल्क और कषाय से सिद्ध किया घृत विषमाग्नि को नष्ट करके जीर्णज्वर, शिरः शूल, गुल्म, उदर, हलीमक, क्षयकास, संताप, पार्श्वशूल को नष्ट करता है ॥२१८-२२०॥

गुडूचीत्रिफलावासात्रायमाणायवासकैः ॥२२१॥
क्वथितैर्विधिवत्पक्वमेतैः कल्कीकृतैः समैः।
द्राक्षामागधिकाम्भोदनागरोत्पलचन्दनैः ॥२२२॥
पीतं सर्पिः क्षयश्वासकासजीर्णज्वरान् जयेत्।

गिलोय, त्रिफला, वासा, त्रायमाण, धमासा, इनसे विधिपूर्वक बनाये क्वाथ में द्राक्षा, पिप्पली, मोथा, सोंठ, कमल, चन्दन, इसको समान भाग लेकर इनके कल्क से घृत सिद्ध करे। इस घी के पीने से क्षय, श्वास, कास, जीर्णज्वर नष्ट होते हैं ॥२२१,२२२॥

कलशीबृहतीद्राक्षात्रायन्तीनिम्बगोक्षुरैः ॥२२३॥
बलापर्पटकाम्भोदशालपर्णीयवासकैः।
पक्वमुत्क्वथितैः सर्पिः कल्कैरेभिः समन्वितम् ॥२२४॥
शटीतामलकीभार्गीमेदामलकपौष्करैः।
क्षीरद्विगुणसंयुक्तं जीर्णज्वरमपोहति ॥२२५॥
शिरःपार्श्वरुजाकासक्षयप्रशमनं परम्।

पृश्निपर्णी, कटेरी, द्राक्षा, त्रायमाण, नीम, गोखरू, बला, पित्तपापड़ा, मोथा, शालपर्णी, जवासा, इनका क्वाथ करे। इसमें कचूर, भूंई आंवला, भार्गी, मेदा, आंवला, पुष्करमूल, इनका कल्क और घी से दुगुना दूध मिलाकर घृतपाक करे। इस घी के पीने से जीर्णज्वर नष्ट होता है, शिरःशूल, कास, क्षय नष्ट होता है ॥२२३-२२५॥

पटोली पर्पटारिष्टगुडूचीत्रिफलावृषैः ॥२२६॥
कटुकाम्बुदभूनिम्बयासयष्ट्याह्वचन्दनैः।
दार्वीशक्रयवोशीरत्रायमाणाकणोत्पलैः ॥२२७॥
धात्रीभृङ्गरजोभीरुकाकमाचीरसैर्घृतम्।
सिद्धमाश्वपचीकुष्ठज्वरशुक्रार्जुनव्रणान् ॥२२८॥
हन्यान्नयनवदनश्रवणघ्राणजान् गदान्।

पटोल, पित्तपापड़ा, नीम, गिलोय, त्रिफला, अडूसा, कुटकी, मोथा, चिरायता, जवासा, मुलैहठी, चन्दन, दारुहल्दी, इन्द्रजौ, खस, त्रायमाण, पिप्पली, कमल इनके कल्क से आंवला, भांगरा, शतावरी, मकोय, इनके स्वरसों से सिद्ध किया घृत शीघ्र ही अपची, कुष्ठ, ज्वर, शुक्रव्रण, अर्जुनव्रण, नेत्र-मुख-कान-नासिका के रोगों को नष्ट करता है। (डल्हण ने उत्पल का अर्थ नीलोफर किया है) ॥२२६-२२८॥

विडङ्गत्रिफलामुस्तमञ्जिष्ठादाडिमोत्पलैः ॥२२९॥
प्रियङ्ग्वेलैलवालूकचन्दनामरदारुभिः ॥
बर्हिष्ठ कुष्ठरजनीपर्णिनीसारिवाद्वयैः ॥२३०॥
हरेणुकात्रिवृद्दन्तीवचातालीशकेसरैः।
द्विक्षीरं विपचेत्सर्पिर्मालतीकुसुमैः सह ॥२३१॥
जीर्णज्वरश्वासकासगुल्मोन्मादगरापहम्।
एतत्कल्याणकं नामसर्पिर्माङ्गल्यमुत्तमम ॥२३२॥
अलक्ष्मीग्रहरक्षोऽग्निमान्द्यापस्मारपापनुत्।
शस्यते नष्टशुक्राणां वन्ध्यानां गर्भदं परम् ॥२३३॥
मेध्यं चक्षुष्यमायुष्यं रेतोमार्गविशोधनम्।
एतैरेव तथा द्रव्यैः सर्वगन्धैश्च साधितम् ॥२३४॥
कपिलाया घृतप्रस्थं सुवर्णमणिसंयुतम्।

विडंग, त्रिफला, मुस्ता, मजीठ, अनार, नीलोफर, प्रियंगु, इलायची, ऐलवालुक, चन्दन, देवदारु, बर्हिष्ठ (वालक), कूठ, हल्दी, शालपर्णी, सारिवा, कालीसारिवा, हरेणु, निशोथ, जमालगोटा, वच, तालीश, नागकेसर, चमेली के फूल, इनका कल्क, दुगुना दूध, इनसे घृत सिद्ध करे। यह घृत जीर्णज्वर कास,श्वास, गुल्म उन्माद, गरनाशक है। यह कल्याणक घृत है। यह घृत मंगलकारी श्रेष्ठ है। अलक्ष्मी, ग्रह, राक्षस, अग्निमान्द्य, अपस्मार, पापनाशक है। नष्टशुक्र पुरुषों के लिये उत्तम है, वन्ध्याओं को गर्भप्रद है। मेध्य, चक्षुष्य, आयुष्य है, रेतोमार्ग का शोधक है।

वक्तव्य—इसमें पानी घी से चारगुणा मिलाना चाहिये। कल्क आठ पल, घी एक प्रस्थ, पानी चार प्रस्थ, दूध दो प्रस्थ ले। चरक में—"विशाला त्रिफला कौन्ती देवदार्वैलवालुकम्। स्थिरानतं रजन्यौ द्वे सारिवे द्वे प्रियंगुका। नीलोत्पलैला मञ्जिष्ठा दन्तीदाडिमकेसरान्। तालीशपत्रं बृहती मालत्याः कुसुमंनवम्॥ विडंगं पृश्निपर्णी च कुष्ठं चन्दनपद्मकौ। अष्टाविंशतिभिः कल्कैरेतैरक्ष समन्वितैः। चतुर्गुणे जले सम्यग् घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥" इसमें दूध नहीं है ॥२२९-२३४॥

तत्क्षीरेण सहैकध्यं प्रसाध्य कुसुमैरिमैः ॥२३५॥
सुमनश्चम्पकाशोकशिरीषकुसुमैर्वृतम्।
तथा नलदपद्मानां केशरैर्दाडिमस्य च ॥२३६॥
तिथौ प्रशस्ते नक्षत्रे साधकस्यातुरस्य च।
कृतं मनुष्यदेवाय ब्राह्मणैरभिमन्त्रितम् ॥२३७॥
दत्तं सर्वज्वरान् हन्ति महाकल्याणकं त्विदम् ॥२३८॥
दर्शनस्पर्शनाभ्यां च सर्वरोगहरं शिवम्।
अधृष्यः सर्वभूतानां वलीपलितवर्जितः ॥२३९॥
अस्याभ्यासाद् घृतस्येह जीवेद्वर्षशतत्रयम्।

इन कल्याणक घृत के द्रव्यों से तथा सर्वगन्धगण के द्रव्यों से चमेली, चम्पा, अशोक, शिरीष, इनके नूतन कुसुमों के साथ, जटामांसी, लालकमल, अनार का केसर, इन द्रव्यों से, सुवर्ण, मणि आदि के साथ, कपिला (लाल) गाय के दूध में कपिलगाय का एक प्रस्थ घृत सिद्ध करे। ब्राह्मणों से अभिमंत्रित करके, प्रशस्त तिथि एवं नक्षत्र में वैद्य, रोगी और राजा के लिये देने से यह घृत सब ज्वरों को नष्ट करता है। इसका नाम महाकल्याणक घृत है। देखने छूने से सब रोग नाशक

एवं कल्याणकारी है। इससे सब प्राणियों से अतिरस्कृत, वली-पलित रहित होकर निरन्तर सेवन करते रहने से तीन सौ वर्ष तक जीता है।

एभ्य एव स्थिरादीनि जले पक्त्वैकविंशतिम्।
रसे तस्मिन्पचेत् सर्पिः गृष्टीक्षीरे चतुर्गुणे॥
वीराद्धिमाषककाकोली स्वयंगुप्तर्षभर्धिभिः।
मेदया च समैः कल्कैः तत्स्यात् कल्याणकं महत्॥
बृंहणीयं विशेषेण सन्निपातहरं परम्॥
चरक चि० अ० ९।४९-५१।२३४-२३९॥

गव्यं दधि च मूत्रं च क्षीरं सर्पिः शकृद्रसः॥२४०॥
समभागानि पाच्यानि कल्कांश्चैतान् समावपेत्।
त्रिफलां चित्रकं मुस्तं हरिद्राऽतिविषे वचाम्॥२४१॥
विडङ्गं त्र्यूषणं चव्यं सुरदारु तथैव च।
पञ्चगव्यमिदं पानाद्विषमज्वरनाशनम्॥२४२॥

पंचगव्यघृत-गाय का दही, गोमूत्र, गोदूध, गोघृत और गोबर का रस, ये पांचों वस्तुएं समभाग लेकर त्रिफला, चित्रक, मुस्ता, हल्दी, अतीस, वच, विडंग, त्रिकटु, चव्य, देवदारु इनके कल्क से घृत पाक करे। यह पंचगव्यघृत पीने से विषमज्वर नाशक है। (यह महत् पंचगव्यघृत है) ॥२४०-२४२॥

पञ्चगव्यघृते गर्भात्पाच्यमन्यद् वृषेण च।
बलयाऽथ परं पाच्यं गुडूच्या तद्वदेव तु॥२४३॥
जीर्णज्वरे च शोफे च पाण्डुरोगे च पूजितम्।

इसी पंचगव्यघृत में कल्क न मिलाकर घृतपाक करे तो यह दूसरा पंचगव्यघृत (लघु) है। अडूसे के पत्तों के, या बला के अथवा गिलोय के स्वरस से घृत सिद्ध करे। ये तीनों घृत जीर्णज्वर, शोफ और पाण्डुरोग में उत्तम हैं॥२४३॥

एतेनैव तु कल्पेन घृतं पञ्चाविकं पचेत्।
पञ्चाजं पञ्चमहिषं चतुरुष्ट्रमथापि च॥२४४॥

पंचगव्य के विधान से पंचआविक (भेड़ के दूध, घी, मूत्र, मलरस, दही से), पञ्चाज (बकरी के दूध आदि), पञ्चमहिष (भैंस के दूध आदि), चार ऊंट के (गोबर-मल को छोड़कर दूध, दही आदि से) घृत सिद्ध करे॥२४४॥

त्रिफलोशीरशम्पाककटुकातिविषाघनैः।
शतावरीसप्तपर्णगुडूचीरजनीद्वयैः॥२४५॥
चित्रकत्रिवृतामूर्वापटोलारिष्टवालकैः।
किराततिक्तकवचाविशालापद्मकोत्पलैः॥२४६॥
सारिवाद्वययष्ट्याह्वचविकारक्तचन्दनैः।
दुरालभापर्पटकत्रायमाणाटरूषकैः॥२४७॥
रास्नाकुंकुममञ्जिष्ठामागधीनागरैस्तथा।
धात्रीफलरसैः सम्यग्द्विगुणैः साधितं हविः॥२४८॥
परिसर्पज्वरश्वासगुल्मकुष्ठनिवारणम्।
पाण्डुप्लीहाग्निसादिभ्य एतदेव परं हितम्॥२४९॥

त्रिफला, खस, अमलतास, कुटकी, अतीस, मुस्ता, शतावरी, सप्तपर्ण, गिलोय, हल्दी, दारुहल्दी, चित्रक, निशोथ, मूर्वा, पटोल, नीम, नेत्रवाला, चिरायता, वच, इन्द्रायण, पद्माख, नीलोफर, सारिवा, कालीसारिवा, मजीठ, चविका, लालचन्दन, धमासा, पित्तपापड़ा, त्रायमाण, अडूसा, रास्ना, केसर, मजीठ, पिप्पली, सोंठ, इनके कल्क से आँवले का स्वरस (या क्वाथ) घी से दुगुना लेकर घृत सिद्ध करे। यह घृत विसर्प, ज्वर, श्वास, गुल्म, कुष्ठनाशक है। पाण्डु, प्लीहा, अग्निमान्द्य के लिये हितकारी है॥२४५-२४९॥

पटोलकटुकादार्वीनिम्बवासाफलत्रिकम्।
दुरालभापर्पटकत्रायमाणाः पलोन्मिताः॥२५०॥
प्रस्थमामलकानां च क्वाथयेत्सलिलार्मणे।
तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥२५१॥
कल्कैः कुटजभूनिम्बघनयष्ट्याह्वचन्दनैः।
सपिप्पलीकैस्तत्सिद्धं चक्षुष्यं शुक्लयोर्हितम्॥२५२॥
घ्राणकर्णाक्षिवदनवर्त्मरोगव्रणापहम्।
रक्तपित्तकफस्वेदक्लेदपूयोपशोषणम्॥२५३॥
कामलाज्वरवीसर्पगण्डमालाहरं परम्।

पटोल, कुटकी, दारुहल्दी, नीम अडूसा, त्रिफला, धमासा, पित्तपापड़ा, त्रायमाण प्रत्येक एकपल, आँवला एक प्रस्थ-इनको एक द्रोण जल में क्वाथ करे। चौथाई रहने पर क्वाथ से एक प्रस्थ घी, कुटज, चिरायता, मोथा, मुलैहठी, चन्दन, पिप्पली इनके कल्क से सिद्ध करे। यह घृत नेत्र के लिये तथा नेत्रगत शुक्लभाग के रोगों में उत्तम है। नासिका, कान, आंख, मुख, वर्त्म रोग एवं व्रणका नाशक है। रक्तपित्त, कफ स्वेद, क्लेद, पूय को सुखाता है। कामला, ज्वर, विसर्प, गण्डमाला को नष्ट करने में उत्तम है॥२५०-२५३॥

शृतं पयः शर्करा च पिप्पल्यो मधुसर्पिषी॥२५४॥
पञ्चसारमिदं पेयं मथितं विषमज्वरे।
क्षतक्षीणे क्षये श्वासे हृद्रोगे चैतदिष्यते॥२५५॥

गरम किया दूध, शर्करा, पिप्पली, मधु, घृत, इनको मथ कर, इसको पीये। यह पंचसार विषमज्वर में, क्षतक्षीण में क्षय में, श्वास में, हृदय रोग में उत्तम है। (इनको हाथ से बिलोना चाहिये)॥२५४,२५५॥

लाक्षाविश्वानिशामूर्वामञ्जिष्ठावर्जिकामयैः।
षड्गुणेन च तक्रेण सिद्धं तैलं ज्वरान्तकृत्॥२५६॥

लाख, सोंठ, हल्दी, मूर्वा, मंजीठ, सर्जक्षार, कूठ (आठ पल) इनसे तैल (३२ पल) को, तैल से छै गुने तक्र में सिद्ध करे। यह तैल शीतपूर्व, दाहपूर्व ज्वरों को नष्ट करता है॥

क्षीरीवृक्षासनारिष्टजम्बूसप्तच्छदार्जुनैः।
शिरीषखदिरास्फोटामृतवल्ल्याटरूषकैः॥२५७॥

कटुकापर्पटोशीरवचातेजोवतीघनैः ।
साधितं तैलमभ्यङ्गादाशु जीर्णज्वरापहम् ॥२५८॥

बरगद आदि क्षीरिवृक्ष, विजयसार, नीम, जामुन, सप्तपर्ण, अर्जुन, शिरीष, खैर, सारिवा, गिलोय, अडूसा, कुटकी, पित्तपापड़ा, खस, वच, तेजबल, मुस्ता, इनके कल्क से सिद्ध किया तैल (द्रवकार्य में जल या तक्र, तैल से छै गुणा ले या चार गुणा ले) जीर्ण ज्वर नाशक है ॥२५७,२५८॥

निर्विषैर्भुजगैर्नागैर्विनीतैः कृततस्करैः ।
त्रासयेदागमे चैनं तदहर्भोजयेन्न च ॥२५९॥
अत्यभिष्यन्दिगुरुभिर्वामयेद्वा पुनः पुनः ।
मद्यं तीक्ष्णं पाययेत घनं वा ज्वरनाशनम् ॥२६०॥
पुराणं वा घृतं कामसुंदारं वा विरेचनम् ।
निरूहयेद्वा मतिमान् सुस्विन्नं तदहर्नरम् ॥२६१॥

ज्वर आने के समय रोगी को विषरहित सांपों से, सिखाये हाथियों से, चोरी के आरोप से इसे डराये, उस दिन इसे खाने को न देवे। अथवा अतिशय अभिष्यन्दि एवं गुरुभोजन खिलाकर इसको बार बार वमन कराये। तीक्ष्णमद्य या ज्वरनाशक घृत पिलाये। पुरातनघृत को (दस साल के) पेट भरके पिलाये। उसी दिन रोगी को भली प्रकार स्वेदन करके-अपीड़ाकर विरेचन पिलाये अथवा निरूह देवे। यह चिकित्सा ज्वर वेग के दिन करे ॥२५९-२६१॥

अजाव्योश्चर्मरोमाणि वचा कुष्ठं पलङ्कषा ।
निम्बपत्रं मधुयुतं धूपनं तस्य दापयेत् ॥२६२॥

बकरी, भेड़ की खाल, रोम, वच, कूठ, गुग्गुल, नीम के पत्ते, इनको मधु में मिलाकर रोगी को धुँवा देवे ॥२६२॥

वैडालं वा शकृद्योज्यं वेपमानस्य धूपनम् ।

रोगी को जब कंपकंपी होती हो, तब बिल्ली के विष्ठा का धूप देवे।

पिप्पली सैन्धवं तैलं नेपाली चेक्षणाञ्जनम् ॥२६३॥

पिप्पली, सैन्धव, तैल, मैनसिल इनसे आंखों में अञ्जन करे।

उदरोक्तानि सर्पींषि यान्युक्तानि पुरा मया ।
कल्पोक्तं चाजितं सर्पिः सेव्यमानं ज्वरं जयेत् ॥२६४॥

उदररोग में जो घृत देने कहे हैं, उनको सेवन करने से तथा कल्पोक्त अजित घृत के सेवन से विषमज्वर शान्त हो जाता है ॥२६४॥

भूतविद्यासमुद्दिष्टैबन्धावेशनपूजनैः ।
जयेद्भूताभिषङ्गोत्थं विज्ञानाद्यैश्च मानसम् ॥२६५॥

भूत से सम्बन्धित ज्वर में भूतविद्या में कहे—रज्जु आदि से बांधना, आवेशन (सर्षप आदि से मंत्रपूर्वक ताडन) पूजन आदि से ज्वर को शान्त करे और काम-शोक-क्रोध आदि मानसज्वर को—ज्ञान, विज्ञान, सान्त्वना आदि से शान्त करे ॥२६५॥

श्रमक्षयोत्थे भुञ्जीत घृताभ्यक्तो रसौदनम् ।

श्रम या क्षयजन्य ज्वर में प्रचुर घृत युक्त मांसरस के साथ चावल खाये।

अभिशापाभिचारोत्थौ ज्वरौ होमादिना जयेत् ।२६६।

अभिचार एवं अभिशापजनित ज्वर को होम, शान्तिपाठ, प्रायश्चित आदि से शान्त करे ॥२६६॥

दानस्वस्त्ययनातिथ्यैरुत्पातग्रहपीडितम् ।

उत्पात एवं ग्रह से पीड़ित व्यक्ति की दान, स्वस्तिवाचन, अतिथिपूजन से चिकित्सा करे।

अभिघातज्वरे कुर्यात् क्रियामुष्णविवर्जिताम् ॥२६७॥
कषायमधुरां स्निग्धां यथादोषमथापि वा ।

अभिघातजन्यज्वर में उष्ण क्रिया को छोड़कर चिकित्सा करे। कषाय, मधुर, स्निग्ध उपचार बरते। अथवा दोष के अनुसार चिकित्सा करे ॥२६७॥

औषधीगन्धविषजौ विषपित्तप्रसाधनैः ॥२६८॥
जयेत् कषायं च हितं सर्वगन्धकृतं तथा ।
निम्बदारुकषायं वा हितं सौमनसं यथा ॥२६९॥

औषधि गन्धजन्य और विषजन्य ज्वर में विषनाशक, पित्तनाशक चिकित्सा करे, एलादिगण का क्वाथ पीनेको देवे। नीम, दारुहल्दी, चमेली इनका कषाय पीने को देना हितकारी है ॥२६८,२६९॥

यवान्नविकृतिः सर्पिर्मद्यंच विषमे हितम् ।

विषमज्वर में जौ के बने भक्ष्य, घी और मद्य उत्तम हैं।

संपूजयेद् द्विजान् गाश्च देवमीशानमम्बिकाम् ।२७०।

ब्राह्मण, गाय, देवता, शिव, अम्बिका (चण्डी) की पूजा करे ॥२७०॥

कफवातोत्थयोश्चापि ज्वरयोः शीतपीडितम् ।
दिह्यादुष्णेन वर्गेण परश्वोष्णो विधिर्हितः ॥२७१॥
सिञ्चेत् कोष्णैरारनालशुक्तगोमूत्रमस्तुभिः ।
दिह्यात् पलाशैः पिष्टैर्वा सुरसार्जकशिग्रुजैः ॥२७२॥
क्षारतैलेन वाऽभ्यङ्गः सशुक्तेन विधीयते ।
पानमारग्वधादेश्च क्वथितस्य विशेषतः ॥२७३॥
अवगाहः सुखोष्णश्च वातघ्नक्वाथयोजितः ।
जित्वा शीतं क्रमैरेभिः सुखोष्णजलसेचितम् ॥२७४॥
प्रवेश्योर्णिककार्पासकौशेयाम्बरसंवृतम् ।
शाययेत् क्षामदेहं च कालागुरुविभूषितम् ॥२७५॥
स्तनाढ्या रूपसंपन्नाः कुशला नवयौवनाः ।
भजेयुः प्रमदा गात्रैः शीतदैन्यापहाः शुभाः ॥२७६॥
शरच्छशाङ्कवदना नीलोत्पलविलोचनाः ।
स्फुरितभ्रूलताभङ्गललाटतटकम्पनाः ॥२७७॥
प्रलम्बबिम्बप्रवालद्बिम्बीफलनिभाधराः ।
कृशोदर्योऽतिविस्तीर्णजघनोद्वहनालसाः ॥२७८॥
कुङ्कुमागुरुदिग्धाङ्ग्यो घनतुङ्गपयोधराः ।

सुगन्धिधूपितश्लक्ष्णस्रस्तांशुकविभूषणाः ॥२७९॥
गाढमालिङ्गयेयुस्तं तरुं वनलता इव ।
प्रह्लादं चास्य विज्ञाय ताः स्त्रीरपनयेत् पुनः ॥२८०॥
तासामङ्गपरिष्वङ्गनिवारितहिमज्वरम् ।
भोजयेद्धितमन्नं च यथा सुखमवाप्नुयात् ॥२८१॥

कफ-वातजन्य ज्वरों में रोगी को शीत होनेपर भद्रदार्व्यादि, सुरसादि या एलादि उष्णगण के कल्क से लेप करे एवं स्वेद देवे। गुनगुनाती कांजी, शुक्त, गोमूत्र, या मस्तु से सिंचन करे। सुरस (तुलसी), अर्जक, शिग्रु के पत्तों को पीसकर इनसे लेप करे। शुक्त मिश्रित क्षार तैल से अभ्यंग करना चाहिये। आरग्वधादि गण का क्वाथ पीने को देवे। एरण्डादि वातघ्न द्रव्यों के सुहाते गरम क्वाथ पीने को देवे। एरण्डादि वातघ्न द्रव्यों के सुहाते गरम क्वाथ में स्नान करना उत्तम है। इन उपायों से शीत को शान्त करके गुनगुनाते जल से स्नान कराके, ऊन, कपास, रेशम के बने वस्त्रों से ढाँपकर रोगी को सुला देवे। काले अगरु का अंगोंपर लेप की हुई, पीनस्तनोंवाली, रूप से फूटी फटती, चतुर, उठती जवानीवाली, स्त्रियाँ अंगों से लिपटा लें। ये स्त्रियाँ शीत एवं दीनता को नष्ट करने में श्रेष्ठ हैं। शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान निर्मल मुखवाली, नीले कमल की सी आँखोंवाली चंचलभ्रू, अंगभंग, ललाट, स्तन को कम्पाती हुई, लटकते-हिलाते भारी नितम्बोंवाली, कुन्दुरू के समान ओठोंवाली, कृश उदरवाली, अतिविस्तृत जघनों के उठाने से थकी, केशर एवं अगरु का अंगोंपर लेप किये, भारी, उन्नत स्तनोंवाली, सुगन्धित, धूप दिये चिकने नरम-कोमल-शिथिल वस्त्रों से विभूषित, स्त्रियाँ कृशशरीरवाले रोगी को कसकर आलिंगन करें। रोगी का आह्लाद हुआ जानकर स्त्रियों को अलग कर देवे। इन स्त्रियों के अंगों के आलिंगन से शीतज्वर नष्ट हो जानेपर हितकारी अन्न खिलाये। जिससे उसे सुख प्राप्त हो।

वक्तव्य—ज्वर में बाह्य परिशीलन करे, अन्तः परिशीलन या सम्भोग निषिद्ध है ॥२७१-२८१॥

दाहाभिभूते तु विधिं कुर्याद्दाहविनाशनम् ।
मधुफाणितयुक्तेन निम्बपत्राम्भसाऽपि वा ॥२८२॥
दाहज्वरार्तं मतिमान् वामयेत् क्षिप्रमेव च ।
शतधौतघृताभ्यक्तं दिह्याद्वा यवशक्तुभिः ॥२८३॥
कोलामलकसंयुक्तैः शुक्तधान्याम्लसंयुतैः ।
अम्लपिष्टैः सुशीतैश्च फेनिलापल्लवैस्तथा ॥२८४॥
अम्लपिष्टैः सुशीतैर्वा पलाशतरुजैर्दिहेत् ।
बदरीपल्लवोत्थेन फेनेनारिष्टकस्य च ॥२८५॥
लिप्तेऽङ्गे दाहतृण्मूर्च्छाः प्रशाम्यन्ति च सर्वशः ।

रोगी को दाह होने पर दाहनाशक विधि बरते। इसके लिये नीम के पत्तों को पानी में मथकर इसमें मधु और राब मिलाकर इससे लेप करे। दाह ज्वर से पीड़ित रोगी को तुरन्त वमन कराये। अथवा जौ के सत्तू को शतधौत घृत में मिलाकर लेप करे। बेर, आँवला, इनको शुक्त और कांजी में मिलाकर इनसे, या शीतल, फेनिल (रीठा या उपोदिका या चांगेरी) के पत्तों को कांजी में पीसकर लेप करे। ढाक के कोमल शीतल पत्तों को कांजी में पीसकर लेप करे। बेर के पत्तों की या रीठे के (या नीम के) पत्तों की झाग शरीर पर लेप करे। इनसे अंगोंपर लेप करने से दाह, प्यास, मूर्च्छा, सम्पूर्ण रूप में नष्ट होती है ॥ २८२-२८५ ॥

यवार्धकुडवं पिष्ट्वा मञ्जिष्ठार्धपलं तथा ॥२८६॥
अम्लप्रस्थशतोन्मिश्रं तैलप्रस्थं विपाचयेत् ।
एतत् प्रह्लादनं तैलं ज्वरदाहविनाशनम् ॥२८७॥

जौ का कल्क आधा कुडव, मंजीठ आधापल, कांजी एक सौ प्रस्थ, तैल एक प्रस्थ मिलाकर तैल सिद्ध करे। यह प्रह्लादन तैल ज्वर दाह को नष्ट करता है ॥२८६,२८७॥

न्यग्रोधादिर्गणो यस्तु काकोल्यादिश्च यो गणः ।
उत्पलादिर्गणो यस्तु पिष्टैर्वा तैः प्रलेपयेत् ॥२८८॥
तत्कषायाम्लसंसिद्धाः स्नेहाश्चाभ्यञ्जने हिताः ।
तेषां शीतकषाये वा दाहार्तमवगाहयेत् ॥२८९॥
दाहवेगे त्वतिक्रान्ते तस्मादुद्धृत्य मानवम् ।
परिषिच्याम्बुभिः शीतैः प्रलिम्पेच्चन्दनादिभिः ॥२९०॥
ग्लानं वा दीनमनसमाश्लिषेयुर्वराङ्गनाः ।
पेलवक्षौमसंवीताश्चन्दनार्द्रपयोधराः ॥२९१॥
बिभ्रत्योऽब्जस्रजश्चित्रा मणिरत्नविभूषिताः ।
भजेयुस्ताः स्तनैः शीतैः स्पृशन्त्योऽम्बुरुहैः सुखैः ॥
प्रह्लादं चास्य विज्ञाय ताः स्त्रीरपनयेत् पुनः ।
हितं च भोजयेदन्नं तथाऽऽप्नोति सुखं महत् ॥२९३॥

न्यग्रोधादिगण, काकोल्यादिगण, उत्पलादिगण, इनमें से किसी एक के द्रव्यों को पीसकर लेप करे। इन गणों के क्वाथ में तथा कांजी में सिद्ध किये तैल अभ्यंग में हितकारी हैं। अथवा इसके शीत कषाय में दाह से पीड़ित रोगी को गोता लगाये (बैठाये)। दाहवेग के शान्त हो जाने पर रोगी को उसमें से निकालकर शीतल जल से स्नान कराके चन्दन आदि का लेप कर देवे। ग्लान (उदास) या दीनमनवाले रोगी को, कोमल रेशमी वस्त्रों से ढँपी, स्तनों पर चन्दन का गीला लेप की हुई, कमल की माला पहने, नाना प्रकार के मणिरत्नों से भूषित स्त्रियाँ स्तनों से इसको आलिङ्गन देवें। खिलते हुए सुखदायक कमलों को धारण करती हुई स्त्रियाँ आलिंगन करें। रोगी को आनन्द हुआ जानकर स्त्रियों को दूर हटा देवे। फिर हितकारी अन्न खिलाये, इससे बहुत सुख होता है ॥२८८-२९३॥

पित्तज्वरोक्तं शमनं विरेकोऽन्यद्धितं च यत् ।

पित्तज्वरोक्त शमन चिकित्सा, विरेचन तथा जो हितकारी हो, वह भी करे ।

निर्हरेत्पित्तमेवादौ दोषेषु समवायिषु ॥२९४॥

दुर्निवारतरं तद्धि ज्वरार्तानां विशेषतः ।

संसर्गि दोषों में सबसे प्रथम पित्त को निकाले । क्योंकि ज्वररोगियों में यह पित्त ही विशेष कठिनाई से शान्त होता है।

वक्तव्य—उष्मा पित्तादृते नास्ति, ज्वरो नास्ति, उष्मणा बिना ॥ इसी से कहा है 'समवाये तु दोषाणां पूर्वं पित्तमुपाचरेत् । ज्वरे चैवातीसारे च सर्वत्रान्यत्र मारुतम् ॥' सन्निपातज्वर में कफ का शमन प्रथम होता है, पित्त का निर्हरण प्रथम होता है । इसीसे 'सन्निपातज्वरे पूर्वं कुर्यादामविशोषणम् । पश्चात् श्लेष्मणि संक्षीणे शमयेत् पित्तमारुतौ ॥' अष्टांगसंग्रह में इसका उत्तमता से विचार किया है । विज्ञपाठक उसे वहीं देख सकते हैं ॥२९४॥

छर्दिमूर्च्छापिपासादीनविरोधाज्ज्वरस्य च ॥॥२९५॥

उपद्रवाञ्जयेच्चापि प्रत्यनीकेन हेतुना ।

ज्वर के वमन, मूर्च्छा, प्यास आदि उपद्रवों को ज्वर के अविरोधि, कारण से विपरीत अपनी चिकित्सा से शान्त करे । उपद्रव—

"व्याधेरुपरि यो व्याधिः भवत्युत्तरकालजः ।

उपक्रमाविरोधी च स उपद्रव उच्यते ॥" २९५॥

विशेषमपरं चात्र शृणूपद्रवनाशनम् ॥२९६॥

मधुकं रजनी मुस्तं दाडिमं साम्लवेतसम् ।

अञ्जनं तिन्तिडीकं च नलदं पत्रमुत्पलम् ॥२९७॥

त्वचं व्याघ्रनखं चैव मातुलुङ्गरसो मधु ।

दिह्यादेभिर्ज्वरार्तस्य मधुशुक्तयुतैः शिरः ॥२९८॥

शिरोभितापसंमोहवमिहिक्काप्रवेपथून् ।

प्रदेहो नाशयत्येष ज्वरितानामुपद्रवान् ॥२९९॥

उपद्रवनाशक विशेष चिकित्सा को सुनो । मुलैहठी, हल्दी, मुस्ता, अनारदाना, अम्लवेतस, अंजन (सुरमा), इमली, खस, कमल का पत्ता, दालचीनी, व्याघ्रनख, बिजौरे का रस, मधु इनको मधु शुक्त में मिलाकर ज्वररोगी के सिर पर लेप करे । इससे शिरकी पीड़ा, संमोह, वमन, हिचकी, कम्पन नष्ट होते हैं । ज्वर के उपद्रवों को यह प्रदेह नष्ट करता है ॥२९६-२९९॥

मधूकमथ ह्रीबेरमुत्पलानि मधूलिकाम् ॥३००॥

लीढ्वा चूर्णानि मधुना सर्पिषा च जयेद्वमिम् ।

कफप्रसेकासृक्पित्तहिक्काश्वासांश्च दारुणान् ॥३०१॥

महुआ, बालक, कमल, जलयष्टी इनका चूर्ण मधु और घृत से चाटने पर वमन नष्ट होती है । कफप्रसेक, रक्तपित्त, भयानक श्वास, कास नष्ट होते हैं ॥३००,३०१॥

लिहन् ज्वरार्तस्त्रिफलां पिप्पलीं च समाक्षिकाम् ।

कासे श्वासे च मधुना सर्पिषा च सुखी भवेत् ॥३०२॥

ज्वरपीड़ितरोगी त्रिफला, पिप्पली, मधु को पीसकर—मधु और घृत में मिलाकर कास श्वास में चाटे, इससे सुख होता है । (मधु के साथ पीसे, फिर मधु से घोलकर चाटे) ॥३०२॥

विदारी दाडिमं लोध्रं दधित्थं बीजपूरकम् ।

एभिः प्रदिह्यान्मूर्धानं तृड्दाहार्तस्य देहिनः ॥३०३॥

तृषा एवं दाह से पीड़ित रोगी के सिर पर—विदारी, अनारदाना, लोध, कैथ, बिजौरे से लेप करे ॥३०३॥

दाडिमस्य सितायाश्च द्राक्षामलकयोस्तथा ।

वैरस्ये धारयेत् कल्कं गण्डूषं च यथाहितम् ॥३०४॥

क्षीरेक्षुरसमाक्षीकसर्पिस्तैलोष्णवारिभिः ।

मुख की विरसता में अनारदाना, शर्करा, द्राक्षा और आँवले का कल्क मुख में धारण करे । दूध, ईख का रस, मधु, घृत, तैल, गरम पानी का कवल मुख में धारण करे ॥३०४॥

शून्ये मूर्ध्नि हितं नस्यं जीवनायश्रृतं घृतम् ॥३०५॥

शिरके शून्य (खाली) होने पर जीवनीय गण की दस औषधियों से सिद्ध घृत का नस्य देवे ॥२०५॥

चूर्णितैस्त्रिफलाश्यामात्रिवृत्पिप्पलिसंयुतैः ।

सक्षौद्रः शर्करायुक्तो विरेकस्तु प्रशस्यते ॥३०६॥

पक्वे पित्तज्वरे रक्ते चोर्ध्वगे वेपथौ तथा ।

पित्तज्वर के पक जाने पर (निरामावस्था में), ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त में, कम्पन में—त्रिफला, निशोथ, काली निशोथ, पिप्पली इनका चूर्ण मधु और शर्करा के साथ मिलाकर विरेचन के लिये देवे ॥३०६॥

कफवातोत्थयोरेवं स्नेहाभ्यंगैर्विशोधयेत् ॥३०७॥

कफ-वातजन्य ज्वररोगी का स्नेहन और अभ्यंग से शोधन करे ॥३०७॥

हृतदोषो भ्रमार्तस्तु लिह्यात् क्षौद्रसिताभयाः ।

दोष के निकल जाने पर भी यदि चक्कर आते हों तो मधु, शर्करा, हरड़ को चाटे ।

वातघ्नमधुरैर्योज्या निरूहा वातजे ज्वरे ॥३०८॥

अवेक्ष्य दोषं प्राणं च यथास्वं चानुवासनाः ।

वातजन्यज्वर में भद्रदार्व्यादि वातघ्न एवं काकोल्यादि मधुर द्रव्यों से निरूह देवे । दोष एवं बल का विचार करके, दोषहर (वात दोष हर) द्रव्यों से साधित स्नेह का अनुवासन करते ॥३०८॥

उत्पलादिकषायाद्या (द्या) श्चन्दनोशीरसंयुताः ॥३०९

शर्करामधुराः शीताः पित्तज्वरहरा मताः ।

आम्रादीनां त्वचं शङ्खं चन्दनं मधुकोत्पले ॥३१०॥

गैरिकाञ्जनमञ्जिष्ठामृणालान्यथ पद्मकम् ।

श्लक्ष्णपिष्टं तु पयसा शर्करामधुसंयुतम् ॥३११॥

सुपूतं शीतलं बस्तिं दह्यमानाय दापयेत् ।

चन्दन, खस युक्त उत्पलादिगण के कषायों में शर्करा मिलाकर मधुर बनाकर, शीतल करके निरूह देवे, ये पित्तज्वर नाशक हैं। न्यग्रोधादि गण में कहे आम्र से लेकर नन्दीवृक्ष पर्यन्त वृक्षों की त्वचा, शंख, लालचन्दन, मुलैहठी, कमल, गेरू, अंजन (सुरमा), मंजीठ, कमलनाल, पद्माख, इनको बारीक पीसकर, दूध में घोलकर, शर्करा-मधु मिलाकर, भली प्रकार छानकर ठण्डा करके जलन अनुभव करनेवाले रोगी को बस्ति देवे ॥३०९-३११॥

ज्वरदाहापहं तेषु सिद्धं चैवानुवासनम् ॥३१२॥

न्यग्रोधादि के छालों में सिद्ध किया अनुवासन ज्वर एवं दाह को नष्ट करता है ॥३१२॥

आरग्वधगणक्वाथाः पिप्पल्यादिसमायुताः ।
सक्षौद्रमूत्रा देयाः स्युः कफज्वरविनाशनाः ॥३१३॥

आरग्वधादिगण के क्वाथ में पिप्पल्यादिगण का कल्क, मधु और गोमूत्र मिलाकर निरूह देवे, यह कफज्वरनाशक है। आरग्वधादि कफनाशक द्रव्यों से सिद्ध अनुवासन देवे ॥३१३॥

कफघ्नैरेव संसिद्धा द्रव्यैश्चाप्यनुवासनाः ।

आरग्वधादि कफनाशक द्रव्यों से सिद्ध अनुवासन देवे।

संसर्गे सन्निपाते च संसृष्टा बस्तयो हिताः ॥३१४॥

दोषों के संसर्ग और सन्निपात में दोषों के अनुसार वस्तियों को मिलाकर देवे ॥३१४॥

संसृष्टैरेव संसृष्टा द्रव्यैश्चाप्यनुवासनाः ।

दोषों के संसर्ग में द्रव्यों को मिलाकर अनुवासन देवे ॥

वातरोगापहाः सर्वे स्नेहा ये सम्यगीरिताः ॥३१५॥
विना तैलं त एव स्युर्योज्या मारुतजे ज्वरे ।

वातरोग नाशक जो सब स्नेह (घी, तैल, वसा, मज्जा)- भली प्रकार कहे हैं, वे सब स्नेह वातजन्यज्वर में तैल को छोड़कर बरतने चाहिये। अनुवासन में तैल नहीं देना चाहिये ॥

निखिलेनोपयोज्याश्च त एवाभ्यञ्जनादिषु ॥३१६॥

अभ्यंग आदि कार्यों में सम्पूर्ण रूप से ये सब स्नेह (घी, तैल, वसा, मज्जा) बरतने चाहिये ॥३१६॥

पैत्तिके मधुरैस्तिक्तैः सिद्धं सर्पिश्च पूज्यते ।

पित्तज्वर में-मधुर एवं तिक्त द्रव्यों में सिद्ध घृत अभ्यंग आदि में उत्तम है।

श्लैष्मिके कटुतिक्तैश्च संसृष्टानीतरेषु च ॥३१७॥

श्लेष्मज्वर में-कटु, तिक्त द्रव्यों से सिद्ध घृत (या तैल अभ्यंग आदि में बरते। संसृष्ट एवं सन्निपात दोषों में वातादि-हरद्रव्यों से मिश्रित घी तैल आदि को परस्पर मिलाकर बरते।

वक्तव्य—डल्हण ने कफ में भी घृत का उपयोग अभ्यंग आदि में करने के लिये कहा है। इसमें संस्कार के कारण घृत कफनाशक है। तुल्य गुण होने पर घृत कफ को नहीं बढ़ाता ॥३१७॥

हृतावशेषं पित्तं तु त्वक्स्थं जनयति ज्वरम् ।
पिबेदिक्षुरसं तत्र शीतं वा शर्करोदकम् ॥३१८॥
शालिषष्टिकयोरन्नमश्नीयात् क्षीरसंप्लुतम् ।

निकालने से बचा पित्त त्वचा में स्थित होकर ज्वर उत्पन्न करता है, इसमें ईख का रस या शर्करा का शीतल शरबत पीये। दूध में भिगोये शाली चावल या सांठी के चावल खाये ॥३१८॥

कफवातोत्थयोरेव स्वेदाभ्यङ्गौ प्रयोजयेत् ॥३१९॥

निकलने से बचे कफ और वायु के कारण यदि ज्वर हो तो स्वेदन एवं अभ्यंग करे ॥३१९॥

घृतं द्वादशरात्रात्तु देयं सर्वज्वरेषु च ।
तेनान्तरेणाशयं स्वं गता दोषा भवन्ति हि ॥३२०॥

सब प्रकार के ज्वरों में बारह दिन के पीछे घृत देना चाहिये। क्योंकि इतने समय में दोष अपने अपने स्थान पर पहुँच जाते हैं, उनका परिपाक हो जाता है ॥

ज्वरः कषायैः वमनैः लंघनैः लघुभोजनैः ।
रूक्षस्य ये न शाम्यन्ति सर्पिस्तेषां भिषग्जितम् ॥
यः स्यादनुबलो धातुः स्नेहवध्यः सचानिलः ॥
कषायाः सर्व एवैते सर्पिषा सहयोजिताः ।
प्रयोज्या ज्वरशान्त्यर्थमग्निसंधुक्षणाः शुभाः ॥चरक ॥

धातून् प्रक्षोभयन् दोषो मोक्षकाले बलीयते ।
तेन व्याकुलचित्तस्तु म्रियमाण इवेहते ॥३२१॥

मोक्षसमय में धातुओं को चलायमान करते हुए दोष बलवान् की भाँति आचरण करते हैं। इस दोष के कारण रोगी व्याकुल होता है और मरते हुए मनुष्य के समान कराहना, गात्रविक्षेपण आदि चेष्टाओं को करता है।

वक्तव्य—जिस प्रकार बुझता हुआ दीपक एक बार जोर से चमकता है। चरक—"ज्वरप्रमोक्षे पुरुषः कूजन् वमति चेष्टते। श्वसन्विवर्णः स्विन्नाङ्गो वेपते लीयते मुहुः ॥ प्रलपत्युष्णसर्वाङ्गः शीताङ्गश्च भवत्यपि। विसंज्ञो ज्वरवेगार्तः सक्रोध इव वीक्ष्यते ॥ सदोषशब्दं च शकृद् एवं स्रवति वेगवत्। लिंगान्येतानि जानीयात् ज्वरमोक्षे विचक्षणः[1] ॥३२१॥

१ (१) ज्वर दो प्रकार से उतरता है—या तो एकदम से ताप परिमाण साधारण बिन्दु पर आता है, या धीरे धीरे आता है। इसी को क्रायसिस और लायसिस कहते हैं यथा—
बहुदोषस्य बलवान् प्रायेणाभिनवो ज्वरः ।
सत्क्रियादोषपक्त्या चेद् विमुञ्चति सुदारुणम् ॥

लघुत्वं शिरसः स्वेदो मुखमापाण्डु पाकि च ।
क्षवथुश्चान्नकाङ्क्षा च ज्वरमुक्तस्य लक्षणम् ॥३२२॥

ज्वरमुक्तरोगी के लक्षण—शिर में हल्कापन, पसीना आना, मुख में पीलापन (कमजोरी), मुख का पकना, छींक आना और अन्न की चाह होती है ।

विगतक्लमसन्तापमव्यथं विमलेन्द्रियम् ।
युक्तं प्रकृतिसत्त्वेन विद्यात् पुरुषमज्वरम् ॥
सज्वरो ज्वरमुक्तश्च विदाहीनि गुरूणि च ।
असात्म्यान्यन्नपानानि विरुद्धानि च वर्जयेत् ॥
व्यायाममतिचेष्टाश्च स्नानमध्यशनानि च ।
तथा ज्वरः शमं याति प्रशान्तो जायते न च ॥
चरक ॥३२२॥

शम्भुक्रोधोद्भवो घोरो बलवर्णाग्निसादकः ।
रोगराट् रोगसंघातो ज्वर इत्युपदिश्यते ॥३२३॥
व्यापित्वात् सर्वसंस्पर्शात् कृच्छ्रत्वादन्तसंभवात् ।
अन्तको ह्येष भूतानां ज्वर इत्युपदिश्यते ॥३२४॥

ज्वर महादेव के क्रोध से उत्पन्न हुआ, भयानक, बल वर्ण और अग्नि को मन्द करनेवाला, रोगों का राजा, रोगों का समूह–ऐसा कहा जाता है । पुरुष–पशु आदि सब प्राणियों में फैला होने से, मन और इन्द्रियों समेत सम्पूर्ण शरीर को स्पर्श करने से, अग्नि का नाश करने के कारण अतिशय कष्ट साध्य होने से, अन्य-व्याधि से पीड़ित होने पर भी अन्त में यह ज्वर होने से, यह ज्वर प्राणियों को मारनेवाला कहा जाता है॥३२३॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे ज्वरप्रतिषेधो नाम (प्रथमोऽध्यायः, आदितः) एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

कृत्वा दोषवशाद् वेगं क्रमादुपरमन्ति ये ।
तेषामदारुणो मोक्षः ज्वराणां चिरकारिणाम् ॥
(२) असंजातबलो यस्तु ज्वरमुक्तो निषेवते ।
वर्ज्यमेतन्नरस्तस्य पुनरावर्त्तते ज्वरः ॥
दुर्हृतेषु च दोषेषु यस्य वा विनिवर्त्तते ।
स्वल्पेनाप्यपचारेण तस्य व्यावर्तते पुनः ॥
चिरकालपरिक्लिष्टं दुर्बलं हीनतेजसम् ।
अचिरेणैव कालेन स हन्ति पुनरायतः ॥
अथवाऽपि परोपाकं धातुष्वेव क्रमान्मलाः ।
यान्ति ज्वरमकुर्वन्तस्ते तथाऽप्यपकुर्वते ॥
एवमन्येऽपि च गदा व्यावर्तन्ते पुनर्गताः ।
अनिर्घातेन दोषाणामल्पैरप्यहितैर्नृणाम् ॥
चरक० चि० अ० ३-३३३-३८ ।

चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

अथातोऽतीसारप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे अतीसारप्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

गुर्वतिस्निग्धरूक्षोष्णद्रवस्थूलातिशीतलैः ।
विरुद्धाध्यशनाजीर्णैरसात्म्यैश्चापि भोजनैः ॥३॥
स्नेहाद्यैरतियुक्तैश्च मिथ्यायुक्तैर्विषाद्भयात् ।
शोकाद् दुष्टाम्बुमद्यातिपानात् सात्म्यर्तुपर्ययात् ॥४॥
जलातिरमणैर्वेगविघातैः कृमिदोषतः ।
नृणां भवत्यतीसारो लक्षणं तस्य वक्ष्यते ॥५॥

गुरु, अतिस्निग्ध, रूक्ष, उष्ण, द्रव, स्थूल, अतिशीतल, विरुद्ध भोजन, अध्यशन, अजीर्ण में भोजन, असात्म्य भोजन, स्नेह-वमन-विरेचनादि के अतिसेवन या असम्यग् सेवन से, विष से, भय से, शोक से, दूषित जल के पीने से, मद्य के अतिपान से, सात्म्य के विपर्यय से, ऋतुपरिवर्तन से, जल में अधिक क्रीड़ा करने से, मूत्रादिवेग रोधन से, कृमिरोग से, मनुष्यों को अतीसार होता है, इसके लक्षण कहे जाते हैं ।

वक्तव्य—चरक में अतिसार का इतिहास दिया है । इसको कई आचार्य सुश्रुत में भी पढ़ते हैं, यथा—

"दीर्घसत्रेण यजतः पृषध्रस्य महात्मनः ।
आलम्भ्याः पशवः क्षीणास्ततो गावः प्रकल्पिताः ॥
तासामुपाकृतानां च गवामत्यर्थसेवनात् ।
असात्म्यत्वादथोष्णत्वाद् गौरवाच्च विशेषतः ॥
अतिस्नेहाच्च संक्षीणो जाठरोऽग्निस्तदा किल ।
अतीसारः पुरोत्पन्नो दोषधातुमलाश्रयः ॥
अथ तेनैव कल्पेन संप्रत्येष महागदः ॥" डल्हण ॥

संशम्यापां धातुरन्तः कृशानुं
वर्चोमिश्रो मारुतेन प्रणुन्नः ।
वृद्धोऽतीवाधः सरत्येष यस्माद्
व्याधिं घोरं तं त्वतीसारमाहुः ॥६॥

सम्प्राप्ति—बढ़ा हुआ शरीर का जलीय धातु (कफ-पित्त-रस आदि) अन्तरग्नि को मन्द करके, मल के साथ मिलकर वायु से प्रेरित हुआ अतिमात्रा में गुदामार्ग से नीचे-बाहर आता है, इसलिये इस भयानक रोग को अतीसार कहते हैं॥६॥

एकैकशः सर्वशश्चापि दोषैः
शोकेनान्यः षष्ठ आमेन चोक्तः ।
केचित् प्राहुर्नैकरूपप्रकारं
नैवेत्येवं काशिराजस्त्वबोचत् ॥७॥
दोषावस्थास्तस्य नैकप्रकाराः
काले काले व्याधितस्योद्भवन्ति ।

अतीसार छै प्रकार का है, वातादि दोषों से तीन प्रकार का, सन्निपात से चौथा, शोकजन्य पांचवाँ और आमजन्य

छठा है। कई (हारीत आदि) आचार्य कहते हैं कि अतीसार द्वन्द्वज आदि भेद से अनेक प्रकार के हैं, परन्तु काशीराज धन्वन्तरि का कहना है कि यह ठीक नहीं। आमावस्था, पक्वावस्था, रक्तावस्था, ये भेद दोष की अवस्था से ही होते हैं, इसलिये अनेक प्रकार का अतिसार नहीं हैं, इस अतिसार में समय समय पर ये अवस्थायें उत्पन्न हो जाती हैं।

वक्तव्य—द्वन्द्वज आमातिसार, पक्वातिसार आदि भेद धन्वन्तरि को मान्य नहीं हैं। ये भेद अतिसार की अवस्था भेद से उत्पन्न होते हैं। प्रथम आमावस्था फिर पक्वावस्था, पित्तातिसार में पित्तकारक वस्तुओं के सेवन से रक्तातिसार उत्पन्न होता है ॥७॥

हृन्नाभिपायूदरकुक्षितोद-
गात्रावसादानिलवृन्तिरोधाः ॥८॥
विट्सङ्ग आध्मानमथाविपाको
भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि।

पूर्वरूप-हृदय-नाभि गुद, उदर, कुक्षि (कोख) में चुभने की सी दर्द, अंगों में शिथिलता, वायु का अवरोध, मल की रुकावट. आध्मान, अविपाक-इस अतिसार रोग के पूर्वरूप हैं॥

शूलाविष्टः सक्तमूत्रोऽन्त्रकूजी
स्रस्तापानः सन्नकट्यूरुजङ्घः ॥९॥
वर्चो मुञ्चत्यल्पमल्पं सफेनं
रूक्षं श्यावं सानिलं मारुतेन।

वातातीसार में रोगी को शूल रहता है, मूत्र रुकता है, आँतों में गड़गड़ाहट होती है, गुद शिथिल रहती है, कटि, ऊरु और जंघा ढीली सुस्त, झाग के साथ साथ थोड़ा मल बाहर आता है, यह मल रूक्ष, श्याव वर्ण और वायु से मिला होता है ॥९॥

दुर्गन्ध्युष्णं वेगवन्मांसतोय-
प्रख्यं भिन्नं स्विन्नदेहोऽतितीक्ष्णम् ॥१०॥
पित्तात् पीतं नीलमालोहितं वा
तृष्णन्मूर्च्छादाहपाकज्वरार्तः।

पित्तातिसार में मल दुर्गन्धयुक्त, उष्ण, वेग के साथ (एकदम) प्रवाहित होता है, इसका रंग मांस के धोवने के समान, तथा पुरीष फटा हुआ होता है, रोगी को पसीना आता है, पित्त के कारण मल में तीक्ष्णता पीलापन, नीलापन या रक्तिमा रहती है। रोगी को प्यास, दाह, मूर्च्छा, गुदपाक, ज्वर आता है ॥१०॥

तन्द्रानिद्रागौरवोत्क्लेशसादी
वेगाशङ्की सृष्टविट्कोऽपि भूयः ॥११॥
शुक्लं सान्द्रं श्लेष्मणा श्लेष्मयुक्तं
भक्तद्वेषी निःस्वनं हृष्टरोमा।

कफ के कारण अतिसार रोगी को तन्द्रा, नींद, भारीपन, जीमचलाना, शिथिलता रहती है, मलका त्याग कर चुकने पर भी मल की आशंका बनी रहती है। मल-श्वेत, घट्ट, कफ से मिला होता है। भोजन से अरुचि, मल बिना शब्द के आता है, शरीर में रोमांच रहता है ॥११॥

तन्द्रायुक्तो मोहसादास्यशोषी
वर्चः कुर्यान्नैकवर्णं तृषार्तः ॥१२॥
सर्वोद्भूते सर्वलिङ्गोपपत्तिः
कृच्छ्रश्चायं बालवृद्धेष्वसाध्यः।

सन्निपातजन्य अतीसार में तन्द्रा होती है, मूर्च्छा, शिथिलता, मुख में शुष्कता रहती है, मल भी अनेक वर्णों का होता है, रोगी को प्यास रहती है, सब दोषों के लक्षण रहते हैं, यह कष्टसाध्य है, बालक एवं वृद्धों में असाध्य है ॥१२॥

तैस्तैर्भावैः शोचतोऽल्पाशनस्य
बाष्पावेगः पक्तिमाविश्य (श्य) जन्तोः ॥१३॥
कोष्ठं गत्वा क्षोभयत्यस्य रक्तं
तच्चाधस्तात् काकणन्तीप्रकाशम्।
वर्चोमिश्रं निःपुरीषं सगन्धं
निर्गन्धं वा सार्यते तेन कृच्छ्रात् ॥१४॥
शोकोत्पन्नो दुश्चिकित्स्योऽतिमात्रं
रोगी वैद्यैः कष्ट एष प्रदिष्टः।

बन्धुवियोग, धननाश आदि कारण से चिन्ता करते हुए एवं थोड़ा भोजन लेनेवाले मनुष्य में बाष्प का आवेग (शोकजन्य उद्रेक) कोष्ठ में जाकर अन्तरग्नि के साथ मिलकर इस पुरुष के रक्त चिनौठी (गुंजा) के समान, मल से मिला या मल के बिना, गन्ध के साथ, या बिना गन्ध के कष्ट से गुदामार्ग द्वारा प्रवृत्त होता है। यह शोकजन्य अतीसार अतिशय कष्ट साध्य है, यह रोग वैद्यों ने कष्टसाध्य कहा है।

वक्तव्य—इसमें कोई-कोई-"शुष्कं मुक्तं तेज ऊष्मगृहीतं कोष्ठं गत्वा रक्तमत्यर्थमुष्णम्। गुञ्जाप्रख्यं प्रेरयेच्चाप्यधस्ताद् वर्चोयुक्तं निष्पुरीषं सगन्धम् ॥" यह पढ़ते हैं ॥१३,१४॥

आमाजीर्णोपद्रुताः क्षोभयन्तः
कोष्ठं दोषाः संप्रदुष्टाः सभक्तम् ॥१५॥
नानावर्णं नैकशः सारयन्ति
कृच्छ्राज्जन्तोः षष्ठमेनं वदन्ति ॥१६॥

आमाजीर्ण से कुपित हुए दूषित हुए दोष कोष्ठ को विक्षोभित करते हुए, भोजन के साथ मल को प्रवाहित करते हैं, यह मल अनेक वर्णों का बहुत बार कठिनाई से प्रवृत्त होता है। यह छठा अतीसार होता है ॥१६॥

संसृष्टमेभिर्दोषैस्तु न्यस्तमप्स्ववसीदति।
पुरीषं भृशदुर्गन्धि विच्छिन्नं चामसंज्ञकम् ॥१७॥

इन दोषों से मिला मल पानी में डाला हुआ डूब

जाता है। मल-अतिशय दुर्गन्धयुक्त, टूटा-टूटा थोड़ा प्रवृत्त होता है, इसको आमातीसार कहते हैं।

मज्जत्यामागुरुत्वाद् विट् पक्वात्तु प्लवते जले। विनाऽतिद्रवसंघातैः शैत्यश्लेष्मप्रदूषणात्। परीक्ष्यैवं पुरा सामं निरामं चामदोषिणाम्। विधिनोपचरेत् सम्यक् पाचनेनेतरेण वा ॥ चरक ॥१७॥

एतान्येव तु लिङ्गानि विपरीतानि यस्य तु।
लाघवं च मनुष्यस्य तस्य पक्वं विनिर्दिशेत् ॥१८॥

उपर्युक्त लक्षणों से विपरीत लक्षण जिस मल में हों, (जो मल पानी में तैरे), रोगी के शरीर में हल्कापन रहे उसको पक्वातीसार जानना ॥१८॥

सर्पिर्मेदोवेसवाराम्बुतैल-
　　मज्जाक्षीरक्षौद्ररूपं स्रवेद्यत्।
मञ्जिष्ठाभं मस्तुलुङ्गोपमं वा
　　विस्रं शीतं प्रेतगन्ध्यञ्जनाभम् ॥१९॥
राजीमद्वा चन्द्रकैः सन्ततं वा
　　पूयप्रख्यं कर्दमाभं तथोष्णम्।
हन्यादेतद्यत् प्रतीपं भवेच्च
　　क्षीणं हन्युश्चोपसर्गा प्रभूताः ॥२०॥
असंवृतगुदं क्षीणं दुराध्मातमुपद्रुतम्।
गुदे पक्वे गतोष्माणमतीसारकिणं त्यजेत् ॥२१॥

असाध्यलक्षण—जिस मल का रूप घी, मेद, वेसवार (कुट्टितमांस), पानी, तैल, मज्जा, दूध, मधु के समान, या मंजीठ अथवा मस्तुलुंग के समान हो, सड़ी गन्ध का, ठण्डा, मुर्दे की गन्ध का, या काला हो, जिस मल में रेखायें या चन्द्रिका (मोर पंख का रंग) सारे में फैली हो, पूय के या कीचड़ के समान, उष्ण हो, तथा दोष के अपने लक्षणों से विपरीत लक्षणों से युक्त, बहुत से उपद्रवों से युक्त, एवं क्षीण पुरुष को अतिसार नष्ट कर देता है। जिस रोगी की गुदा ढीली पड़ गई (संकुचन शक्ति नष्ट हो गई), क्षीण अतिशय आध्मानयुक्त, उपद्रवों से पीड़ित, गुदा के पक जाने पर भी जिसमें उष्मिमा कम हो गई हो, ऐसे अतिसार रोगी को छोड़ देवे।

वक्तव्य—शोफं शूलं ज्वरं तृष्णां श्वासं कासमरोचकम्। छर्दिं हिक्कां च मूर्छां च दृष्ट्वाऽतीसारिणं त्यजेत् ॥१९-२१॥

शरीरिणामतीसारः संभूतो येन केनचित्।
दोषाणामेव लिङ्गानि कदाचिन्नातिवर्तते ॥२२॥
स्नेहाजीर्णनिमित्तस्तु बहुशूलप्रवाहिकाः।
विसूचिकानिमित्तस्तु चान्योऽजीर्णनिमित्तजः।
विषार्शःकृमिसंभूतो यथास्वं दोषलक्षणः ॥२३॥

पुरुषों में अतीसार चाहे किसी भी कारण से क्यों न हों, वह वातादि दोषों के लक्षणों का अतिक्रमण नहीं करता। स्नेहजन्य अजीर्ण के कारण, अतिशयशूलयुक्त प्रवाहिका होती है। विसूचिकाजन्य अतीसार, अजीर्णजन्य अतीसार का ही रूपान्तर है। विष, अर्श एवं कृमि से उत्पन्न अतीसार में अपने-अपने दोषों के लक्षण होते हैं। (इसलिये अतीसार छैः ही हैं)।

आमपक्वक्रमं हित्वा नातिसारे क्रियायुतः।
अतः सर्वेऽतिसारास्तु ज्ञेयाः पक्वामलक्षणैः ॥२४॥

अतीसार में चिकित्सा आम और पक्व के लक्षणों से की जाती है, इसलिए सब अतीसारों में आमातीसार और पक्वातीसार के लक्षणों को जानना चाहिये ॥२४॥

तत्रादौ लङ्घनं कार्यमतिसारेषु देहिनाम्।
ततः पाचनसंयुक्तो यवाग्वादिक्रमो हितः ॥२५॥

मनुष्यों के सब अतीसारों में सबसे प्रथम लंघन कराना चाहिये। फिर लंघन के उपरांत पाचन से मिला यवागू-यूष आदि विधि बरतनी चाहिये ॥२५॥

अथवा वामयित्वाऽऽमे शूलाध्माननिपीडितम्।
पिप्पलीसैन्धवाम्भोभिर्लङ्घनाद्यैरुपाचरेत् ॥२६॥

अथवा आमातीसार में शूल, आध्मान होने पर रोगी को, पिप्पली और सैन्धव मिश्रित गरम पानी से वमन कराके लंघन यवागू आदि से चिकित्सा करे ॥२६॥

कार्यं च वमनस्यान्ते प्रद्रवं लघुभोजनम्।
खडयूषयवागूषु पिप्पल्याद्यं च योजयेत् ॥२७॥

वमन के पीछे द्रवबहुल एवं लघु भोजन देना खडयूष, यवागू आदि साधन में पिप्पल्यादिगण का उपयोग करे।

वक्तव्य—कपित्थ, मरिच, अनारदाना आदि से पकाया तक्र खडयूष है, अनारदाना, तक्र, शाकादि से संस्कृत द्रवों को खडयूष कहते हैं। मूंग मसूर आदि से बना यूष है ॥२७॥

अनेन विधिना चामं यस्य वै नोपशाम्यति।
हरिद्रादिं वचादिं वा पिबेत् प्रायः स मानवः ॥२८॥

इस विधि से जिस रोगी का आमातिसार शान्त न हो, वह रोगी प्रातःकाल हरिद्रादि या वाचादिगण का क्वाथ प्रातः पीये ॥२८॥

आमातीसारिणां कार्यं नादौ संग्रहणं नृणाम्।
तेषां दोषा विबद्धाः प्राग्जनयन्त्यामयानमान् ॥२९॥
प्लीहपाण्ड्वामयानाहमेहकुष्ठोदरज्वरान्।
शोफगुल्मग्रहण्यर्शःशूलालसकहृद्ग्रहान् ॥३०॥

आमातीसार में मनुष्यों को संग्राहक औषध नहीं देनी चाहिये। क्योंकि इनसे रोके हुए दोष निम्न रोगों को उत्पन्न करते हैं, यथा—प्लीहा, पाण्डुरोग, आनाह, प्रमेह, कुष्ठ, उदर, ज्वर, शोफ, गुल्म, पाण्डु, ग्रहणी, अर्श, शूल, अलसक, हृद्ग्रह-इन रोगों को उत्पन्न करते हैं ॥२९,३०॥

सशूलं बहुशः कृच्छ्राद्विबद्धं योऽतिसार्यते।
दोषान् सन्निचितान् तस्य पथ्याभिः संप्रवर्तयेत् ॥३१॥

शूल के साथ, बहुत बार, कठिनाई से रुक-रुककर जो मल त्याग करता हो, उस रोगी के एकत्रित हुए दोषों को हरड़ों से प्रवृत्त करे। (हरीतकी अनुलोमनी है) ॥३१॥

योऽतिद्रवं प्रभूतं च पुरीषमतिसार्यते।
तस्यादौ वमनं कुर्यात् पश्चाल्लंघनपाचनम् ॥३२॥

जो रोगी अतिशयद्रव, मात्रा में बहुत मल प्रवाहित करता है, उसे सबसे प्रथम वमन कराये, फिर लंघन और पाचन देवे।

स्तोकं स्तोकं विबद्धं वा सशूलं योऽतिसार्यते।
अभयापिप्पलीकल्कैः सुखोष्णैस्तं विरेचयेत् ॥३३॥

जो रोगी, थोड़ा-थोड़ा, रुक-रुक कर शूल के साथ मल त्याग करता हो, उसे गरम पानी के साथ हरड़ और पिप्पली का चूर्ण देकर विरेचन देवे। ("कृच्छ्रं वा वहतां दद्यादभयां संप्रवर्तिनीम्" चरक) ॥३३॥

आमे च लंघनं शस्तमादौ पाचनमेव वा।
आमातीसार में प्रथम लंघन अथवा पाचन उत्तम है।
योगाश्चात्र प्रवक्ष्यन्ते त्वामातीसारनाशनाः ॥३४॥
आमातीसारनाशक योगों को यहाँ कहा जाता है ॥३४॥

कलिङ्गातिविषाहिङ्गुसौवर्चलवचाभयाः।
देवदारुवचामुस्तानागरातिविषाभयाः ॥३५॥
अभयाधान्यकं मुस्तं पिप्पली नागरं वचा।
नागरं धान्यकं मुस्तं वालकं बिल्वमेव च ॥३६॥
मुस्तं पर्पटकं शुण्ठी वचा प्रतिविषाऽभया।
अभयाऽतिविषा हिंगु वचा सौवर्चलं तथा ॥३७॥
चित्रकः पिप्पलीमूलं वचा कटुकरोहिणी।
पाठा वत्सकबीजानि हरीतक्यो महौषधम् ॥३८॥
मूर्वा निर्दहनी पाठा त्र्यूषणं गजपिप्पली।
सिद्धार्थका भद्रदारु शताह्वा कटुरोहिणी ॥३९॥
एला सावरकं कुष्ठं हरिद्रे कौटजा यवाः।
मेषशृङ्गी त्वगेले च कृमिघ्नं वृक्षकाणि च ॥४०॥
वृक्षादनी वीरतरुर्बृहत्यौ द्वे सहे तथा।
अरलुत्वक् तैन्दुकी च दाडिमी कौटजी शमी ॥४१॥
पाठा तेजोवती मुस्तं पिप्पली कौटजं फलम्।
पटोलं (ली) दीप्यको बिल्वं हरिद्रे देवदारु च ॥४२॥
विडङ्गमभया पाठा शृंगवेरं घनं वचा।
वचा वत्सकबीजानि सैन्धवं कटुरोहिणी ॥४३॥
हिंगुर्वत्सकबीजानि वचा बिल्वशलाटु च।
नागरातिविषे मुस्तं पिप्पल्यो वात्सकं फलम् ॥४४॥
महौषधं प्रतिविषा मुस्तं चेत्यामपाचनाः।
प्रयोज्या त्रिंशतिर्योगाः श्लोकार्धविहितास्त्विमे ॥४५॥
धान्याम्लोष्णाम्बुमद्यानां पिबेदन्यतमेन वा।
निष्क्वाथान् वा पिबेदेषां सुखोष्णान् साधु साधितान्।

बीस योग (१) इन्द्रजौ, अतीस, हींग, संचल और हरड़ (२) देवदारु, वच, मुस्ता, सोंठ, अतीस, हरड़, (३) हरड़, धनिया, मोथा, पिप्पली, सोंठ, वच, (४) सोंठ, धनिया, मोथा, नेत्रवाला बिल्व, (५) मोथा, पित्तपापड़ा, सोंठ, वच, अतीस, हरड़, (६) हरड़, अतीस, हींग, वच, संचल, (७) चित्रक, पिप्पलीमूल, वच, कुटकी, (८) पाठा, इन्द्रजौ, हरड़, सोंठ, (९) मूर्वा, चित्रक, पाठा, त्रिकटु, गजपिप्पली, (१०) सरसों, देवदारु, सौंफ, कुटकी, (११) इलायची, लोध, कूट, हल्दी, दारुहल्दी, इन्द्रजौ, (१२) मेषशृंगी, दालचीनी, इलायची, विडंग, कूटज, (१३) वन्दा, वीरतरु, कटेरी, मुद्गपर्णी, (१४) श्योनाक की छाल, तिन्दुक की छाल, अनार की और कुटज की छाल, शमी की छाल, (१५) पाठा, तेजबल, मोथा, पिप्पली, इन्द्रजौ, (१६) पटोल, अजवायन, बिल्व, हल्दी, दारुहल्दी, देवदारु, (१७) विडंग, हरड़, पाठा, सोंठ, मोथा, वच, (१८) वच, इन्द्रजौ, सैन्धव, कुटकी, (१९) हींग, इन्द्रजौ, वच, कच्चे बिल्व (२०) सोंठ, अतीस, मोथा, पिप्पली, इन्द्रजौ ये आधे श्लोक में कहे योग कांजी, गरम पानी या मद्य किसी एक के साथ पीने चाहिये। अथवा इनका क्वाथ भली प्रकार करके, सुहाता गरम गरम पीये। सोंठ, अतीस और मोथा ये आम के पाचक हैं।

वक्तव्य—डल्हण का कहना है कि अतीसार में द्रव औषध बड़ी मात्रा में नहीं देनी चाहिये। इसलिये इन योगों का चूर्ण करके ही बरते ॥३५-४६॥

पयस्युत्क्वाथ्य मुस्तानां विंशतिं त्रिगुणाम्भसि।
क्षीरावशिष्टं तत्पीतं हन्त्यामं शूलमेव च ॥४७॥
निखिलेनोपदिष्टोऽयं विधिरामोपशान्तये।
हरीतकीमतिविषां हिंगु सौवर्चलं वचाम् ॥४८॥
पिबेत् सुखाम्बुना जन्तुरामातीसारपीडितः।
पटोलं दीप्यकं बिल्वं वचापिप्पलिनागरम् ॥४९॥
मुस्तं कुष्ठं विडङ्गं च पिबेद्वाऽपि सुखाम्बुना।
शृंगवेरं गुडूचीं च पिबेदुष्णेन वारिणा ॥५०॥
लवणान्यथ पिप्पल्यो विडंगानि हरीतकी।
चित्रकं शिंशपा पाठा शार्ङ्गेष्टा लवणानि च ॥५१॥
हिंगुर्वृक्षकबीजानि लवणानि च भागशः।
हस्तिदन्त्यथ पिप्पल्यः कल्कावक्षसमौ स्मृतौ ॥५२॥
वचा गुडूचीकाण्डानि योगोऽयं परमो मतः।
एते सुखाम्बुना योगा देयाः पञ्च सतां मताः ॥५३॥

मुस्ता बीस, दूध एक भाग और पानी तीन भाग (मिलित चतुर्गुण) लेकर क्वाथ करे। जब केवल दूध मात्र शेष रहे, उसको पीये, इससे आम और शूल नष्ट होता है। आम को शान्त करने के लिये विधि सम्पूर्ण रूप में कह दी है। हरड़, अतीस, हींग, सौवर्चल, वच इनको

गरम पानी के साथ अतीसार पीड़ित रोगी पीये। पटोल, अजवायन, बिल्व, वच, पिप्पली, सोंठ, मोथा, कूठ और विडंग इनको गरम पानी से पीये। सोंठ और गिलोय को गरम पानीसे पीये। (१) पांचोंनमक, पिप्पली, विडंग, हरड़, (२) चित्रक, शीशम पाठ, लाजवन्ती, पांचो नमक, (३) हींग पांचोनमक, इन्द्रजौ समभाग, (४) हस्तिदन्ती (मोगलई एरण्ड), पिप्पली-प्रत्येक का एक अक्ष कल्क, (५) वच, गिलोय, यह श्रेष्ठ योग है, ये पांचों योग गरम पानी से देने चाहिये, सज्जनों से मान्य हैं ॥४७-५३॥

निवृत्तेष्वामशूलेषु यस्य न प्रगुणोऽनिलः।
स्तोकं स्तोकं रुजावच्च सशूलं योऽतिसार्यते ॥५४॥
सक्षारलवणैर्युक्तं मन्दाग्निः स पिबेद्घृतम्।
क्षीरनागरचाङ्गेरीकोलदध्यम्लसाधितम् ॥५५॥
सर्पिरच्छं पिबेद्वापि शूलातीसारशान्तये।
दध्ना तैलघृतं पक्वं सव्योषजातिचित्रकैः ॥५६॥
सबिल्वपिप्पलीमूलदाडिमैर्वा रुगन्वितैः।
निखिलो विधिरुक्तोऽयं वातश्लेष्मोपशान्तये ॥५७॥

आम एवं शूल के निवृत्त हो जाने पर भी जिसकी वायु (अपान वायु) अनुकूल न हो, वेदना एवं शूल के साथ थोड़ा थोड़ा मल त्याग करता हो उसे मन्दाग्नि हो तो यवक्षार, सैन्धव के साथ घृत को पीये। दूध, सोंठ, चांगेरी (तिपतीया), बेर, दही, कांजी से सिद्ध किया निर्मूल घृत पीये, इससे शूल एवं अतीसार शान्त होता है। त्रिकटु, जातीफल, चित्रक के कल्क से या, बिल्व, पिप्पलीमूल, अनारदाना तथा कूठ इनके कल्क से दही के साथ सिद्ध किये तैल घृत पीये। वात कफ अतीसार की शान्ति के लिये सम्पूर्ण रूप में यह विधि कह दी है ॥५४-५७॥

तीक्ष्णोष्णवर्ज्यमेनं तु विदध्यात्पित्तजे भिषक्।
यथोक्तमुपवासान्ते यवागूश्च प्रशस्यते ॥५८॥
बल्योरंशुमत्यां च श्वदंष्ट्राबृहतीषु च।
शतावर्यां च संसिद्धाः सुशीता मधुसंयुताः ॥५९॥
मुद्गादिषु च यूषाः स्युर्द्रव्यैरेतैः सुसंस्कृताः।

पित्तज अतिसार में तीक्ष्ण एवं उष्ण उपचार को छोड़कर इस विधि को बरते। कहे अनुसार उपवास के पीछे यवागू प्रशस्त है। बला, अतिबला और पृश्निपर्णी में या गोखरु एवं बड़ी कटेरी में अथवा शतावरी में भली प्रकार बनाई, अतिशीतल एवं मधु मिश्रित यवागू उत्तम हैं। तथा बला, अतिबला आदि उपर्युक्त द्रव्यों से मूंग, मसूर आदि से बनाये यूष संस्कृत बनाकर (घी आदि से बघारकर) देवे ॥५८,५९॥

मृदुभिर्दीपनैस्तिक्तैर्द्रव्यैः स्यादामपाचनम् ॥६०॥
हरिद्रातिविषापाठावत्सबीजरसाञ्जनम्।
रसाञ्जनं हरिद्रे द्वे बीजानि कुटजस्य च ॥६१॥
पाठा गुडूची भूनिम्बस्तथैव कटुरोहिणी।
एतैः श्लोकार्धनिर्दिष्टैः क्वाथाः स्युः पित्तपाचनाः ॥६२॥

मृदु अग्निदीपक, तिक्तद्रव्यों (दुरालभा, गिलोय, अतीस आदि) से आम का पाचन करना चाहिये (१) हल्दी, अतीस, पाठा, इन्द्रजौ, रसौंत, (२) रसौत, हल्दी, दारुहल्दी, इन्द्रजौ, (३) पाठा, गिलोय, चिरायता, कुटकी, ये आधे श्लोकों में कहे क्वाथ पित्त के पाचक हैं।

वक्तव्य—तिक्तद्रव्य दोषों के तथा आम के पाचक हैं—यथा, "स्वेदनं लंघनं कालो यवाग्वस्तिक्तको रसः। पाचनान्यविपक्वानां दोषाणां तरुणज्वरे।।" इससे तिक्तद्रव्य आम एवं दोष के पाचक हैं ॥६०-६२॥

मुस्तं कुटजबीजानि भूनिम्बं सरसाञ्जनम्।
दार्वी दुरालभा बिल्वं बालकं रक्तचन्दनम् ॥६३॥
चन्दनं बालकं मुस्तं भूनिम्बं सदुरालभम्।
मृणालं चन्दनं रोध्रं नागरं नीलमुत्पलम् ॥६४॥
पाठा मुस्तं हरिद्रे द्वे पिप्पली कौटजं फलम्।
फलत्वचं वत्सकस्य शृङ्गवेरं घनं वचा ॥६५॥
षडेतेऽभिहिता योगाः पित्तातीसारनाशनाः।

छै योग—(१) मोथा, इन्द्रजौ, चिरायता, रसौत, (२) दारुहल्दी, धमासा, बिल्व, नेत्रबाला, लालचन्दन, (३) चन्दनलाल, नेत्रबाला, मोथा, चिरायता, धमासा, (४) कमलनाल, लालचन्दन, लोध, सोंठ, नीलोफर, (५) पाठा, मोथा, हल्दी, दारुहल्दी, पिप्पली, इन्द्रजौ, (६) इन्द्रजौ, कूड़े की छाल, सोंठ, मुस्त, बच, ये छै योग पित्तातिसार नाशक कहे हैं ॥६३-६५॥

बिल्वशक्रयवाम्भोदवालकातिविषाकृतः।
कषायो हन्त्यतीसारं सामं पित्तसमुद्भवम् ॥६६॥

बिल्व, इन्द्रजौ, मोथा, नेत्रवाला, अतीस इनका कषाय पित्तजन्य आमातीसार को नष्ट करता है ॥६६॥

मधुकोत्पलबिल्वाब्दह्रीबेरोशीरनागरैः।
कृतः क्वाथो मधुयुतः पित्तातीसारनाशनः ॥६७॥

मुलैहठी, कमल, बिल्व, मोथा, नेत्रवाला, खस, सोंठ इनके क्वाथ में मधु मिलाकर पीने से पित्तातीसार नष्ट होता है॥६७॥

यदा पक्वोऽप्यतीसारः सरत्येव मुहुर्मुहुः।
ग्रहण्या मार्दवाज्जन्तोस्तत्र संस्तम्भनं हितम् ॥६८॥

ग्रहणी के कोमल (दुर्बल) होने से पका हुआ भी अतिसार-बार-बार प्रवृत्त होता है, तब रोगी को स्तम्भन देना उत्तम है। (स्तम्भन संग्रहण) ॥६८॥

समङ्गा धातकीपुष्पं मञ्जिष्ठा लोध्रमुस्तकम्।
शाल्मलीवेष्टको रोध्रं वृक्षदाडिमयोस्त्वचौ ॥६९॥
आम्रास्थिमध्यं लोध्रं च बिल्वमध्यं प्रियङ्गवः।
मधुकं शृङ्गवेरं च दीर्घवृन्तत्वगेव च ॥७०॥

चत्वार एते योगाः स्युः पक्कातीसारनाशनाः ।
उक्ता य उपयोज्यास्ते सक्षौद्रास्तण्डुलाम्बुना ॥७१॥

चार योग (१) समंगा (लाजवन्ती), धायके फूल, मजीठ लोध, मुस्ता, (२) मोचरस, लोध, अनार की छाल, कूड़े की छाल, (३) आमकी गुठली की मज्जा, लोध, बेल का गूदा, प्रियंगू, (४) मुलैहठी, सोंठ, श्योनाक की छाल; ये चार योग पक्व अतिसार नाशक हैं। इन योगों को मधु और चावलों के पानी के साथ पीना चाहिये ॥६९-७१॥

मौस्तं कषायमेकं वा पेयं मधुसमायुतम् ।
लोध्राम्बष्ठाप्रियङ्ग्वादीन् गणानेवं प्रयोजयेत् ॥७२॥

अकेले मोथे का ही क्वाथ मधु के साथ पक्वातिसार में पीये। लोध्रादि गण, अम्बष्ठादिगण, प्रियंग्वादिगणों को इसी प्रकार (कषाय करके मधु के साथ) पीये। कहा भी है—

"पक्वातीसारिणे देयो मुस्ताक्वाथः समाक्षिकः ॥"७२॥

पद्मां समङ्गां मधुकं बिल्वतम्बूशलाटु च ।
पिबेत्तण्डुलतोयेन सक्षौद्रमगदंकरम् ॥७३॥

भार्गी, लाजवन्ती, मुलैहठी, कच्चे बिल्व, कच्चे जामुन इनको मधुमिश्रित चावल के धोवन के साथ पीवे। यह अतिसारनाशक है ॥७३॥

कच्छुरामूलकल्कं वाऽप्युदुम्बरफलोपलम् ।
पयस्या चन्दनं पद्मा सितामुस्ताब्जकेशरम् ॥७४॥
पक्वातिसारं योगोऽयं जयेत्पीतः सशोणितम् ।

कच्छूरा (कौंच या धमासा) के मूल का कल्क, गूलर के फल के बराबर मात्रा में (कर्षमात्रा में) मधु के साथ चावल के धोवन से पीये। विदारी, लालचन्दन, भार्गी, शर्करा, मोथा, कमलकेशर, इनको मधु एवं चावल के धोवन के साथ पीने से रक्त मिश्रित पित्तज पक्वातीसार नष्ट होता है।

वक्तव्य—डल्हण ने इनका क्वाथ करने को कहा है। पयस्या-अर्कपुष्पी या दुग्धिका अर्थ, डल्हण ने दिया है ॥७४॥

निरामरूपं शूलार्तं लङ्घनाद्यैश्च कर्षितम् ॥७५॥
नरं रूक्षमवेक्ष्याग्निं सक्षारं पाययेद् घृतम् ।

निराम के लक्षण होने पर शूल से पीड़ित, लंघन आदि से कृश एवं रूक्ष व्यक्ति में अग्नि की दीप्ति को देखकर यवक्षार मिश्रित घृत पिलाये ॥७५॥

बलाबृहत्यंशुमतीकच्छुरामूलसाधितम् ॥७६॥
मधूक्षितं समधुकं पिबेच्छूलैरभिद्रुतः ।

शूल से पीड़ित मनुष्य बला, पृश्निपर्णी, बड़ी कटेरी, कौंच, (या धमासा) का मूल, इनके क्वाथ में मुलैहठी का कल्क और मधु मिलाकर पीये ॥७६॥

दार्वीबिल्वकणाद्राक्षाकटुकेन्द्रयवैर्घृतम् ॥७७॥
साधितं हन्त्यतीसारं वातपित्तकफात्मकम् ।
दध्ना चाम्लेन संपक्वं सव्योषाजाजिचित्रकम् ॥७८॥
सचव्यपिप्पलीमूलं दाडिमैर्वा रुगर्दितः ।

दारुहल्दी, बिल्व, पिप्पली, द्राक्षा, कुटकी, इन्द्रजौ से सिद्ध किया घृत वात, कफ, पित्तजन्य अतीसार को नष्ट करता है। त्रिकटु, जीरा, चित्रक इनके कल्क से चव्य, पिप्पलीमूल और अनारदाना, इनके कल्क से दही और कांजी से सिद्ध किया घृत पीड़ा से पीड़ित मनुष्य पीये ॥७७,७८॥

पयो घृतं च मधु च पिबेच्छूलैरभिद्रुतः ॥७९॥
सिताजमोदकट्वङ्गमधुकैरवचूर्णितम् ।

शूल से पीड़ित मनुष्य शर्करा, अजवायन, श्योनाक, मुलैहठी इनका चूर्ण दूध घी और मधु इन तीनों में मिलाकर (ये तीनों समान भाग) पीये ॥७९॥

अवेदनं सुसंपक्वं दीप्ताग्नेः सुचिरोत्थितम् ॥८०॥
नानावर्णमतीसारं पुटपाकैरुपाचरेत् ।

जिसे वेदना न हो, अतीसार पक गया हो, अग्नि प्रदीप्त हो, अतीसार बहुत पुराना हो, मल में रंग अनेक प्रकार के हों, उसकी चिकित्सा पुटपाकों से करे ॥८०॥

त्वक्पिण्डं दीर्घवृंतस्य पद्मकेसरसंयुतम् ॥८१॥
काश्मरीपद्मपत्रैश्चावेष्ट्य सूत्रेण संदृढम् ।
मृदाऽवलिप्तं सुकृतमङ्गारेष्ववकूलयेत् ॥८२॥
स्विन्नमुद्धृत्य निष्पीड्य रसमादाय तं ततः ।
शीतं मधुयुतं कृत्वा पाययेतोदरामये ॥८३॥
जीवन्तीमेषशृङ्ग्यादिष्वेवं द्रव्येषु साधयेत् ।

श्योनाक की छाल (या अरलू की छाल) और कमल का केसर दोनों को समान भाग लेकर पीसकर, इस पिण्ड को गम्भारी और कमल के पत्तों से लपेटकर सूत से मजबूती से बाँध देवे। इस पर मिट्टी का लेप करके भलीप्रकार अंगारों में पकाये। जब पक जाये तो निकालकर निचोड़कर रस निकाले। रस के ठण्डा होने पर मधु मिलाकर अतिसार में पिलाये। अरलू की भांति जीवन्ती, मेषश्रृङ्गी आदि द्रव्यों से भी पुटपाक बनाये। (पुटपाक जब बाहर से लाल हो जाये तब निकाल ले) ॥८१-८३॥

तित्तिरिं लुञ्चितं सम्यक् निष्कुष्टान्त्रं तु पूरयेत् ॥८४॥
न्यग्रोधादित्वचां कल्कैःपूर्ववच्चावकूलयेत् ।
रसमादाय तस्याथ सुस्विन्नस्य समाक्षिकम् ॥८५॥
शर्करोपहितं शीतं पाययेतोदरामये ।

तीतर के पर आदि नोचकर-भलीप्रकार साफ करके, इसकी आंतें निकाल देवे। फिर बरगद आदि क्षीरी वृक्षों का कल्क इसके पेट में भरकर आग में पकाये। भली प्रकार पक जानेपर इसको निचोड़कर रस निकाले। इसमें मधु और शर्करा मिलाकर ठण्डा होने पर अतिसार में पिलाये। (न्यग्रोध आदि शब्द से ढाक, नन्दीवृक्ष का ग्रहण करते हैं। यथा-संग्राहि स्तम्भनाद् भिन्नं यथा तदभिदध्महे । आग्नेयगुणभूयिष्ठं तोयांश

परिशोषयेत् ॥ संगृह्णाति मलं तस्याद् ग्राहि शुण्ठ्यादयो यथा। समीरगुणभूयिष्ठं शीतत्वाद्यन्नभस्वतः ॥ विधाय वृद्धिं स्तम्भाति स्तम्भनं तद्यथा वटः।' यह वातपित्तातिसार में बरतना चाहिये॥

लोध्रचन्दनयष्ट्याह्वदार्वीपाठासितोत्पलान् ॥८६॥
तण्डुलोदकसंपिष्टान् दीर्घवृन्तत्वगन्वितान्।
पूर्ववत् कुलितात्तस्माद्रसमादाय शीतलम् ॥८७॥
मध्वाक्तं पाययेच्चैतत् कफपित्तोदरामये।

लोध, चन्दन, मुलैहठी, दारुहल्दी, पाठा, शर्करा, कमल, अरलु की छाल इनको चावल के धोवन के साथ पीसकर पुटपाक विधि से अग्नि में स्विन्न करके निचोड़कर इसका रस निकाल ले। शीतल होने पर इसमें मधु मिलाकर कफ पित्तातिसार में पिलाये ॥८६,८७॥

एवं प्ररोहैः कुर्वीत वटादीनां विधानवत् ॥८८॥
पुटपाकान् यथायोगं जाङ्गलोपहितान् शुभान्।

इसी पुटपाक विधि से बरगद आदि के प्ररोहों (शाखों के अधोभाग से निकली जटायें) से बटेर, कपिंजल आदि जांगल मांस के साथ मिलाकर कल्पना बनाकर बरते ॥८८॥

बहुश्लेष्म सरक्तं च मन्दवातं चिरोत्थितम् ॥८९॥
कौटजं फाणितं वाऽपि हन्त्यतीसारमोजसा।
अम्बष्ठादिमधुयुतं पिप्पल्यादिसमन्वितम् ॥९०॥

अतिशय कफवाले रक्त के साथ, मन्दवायु पुरातन अतिसार को कुटज की फाणित (अवलेह), अम्बष्ठादि, पिप्पल्यादिगण के साथ, मधु मिलाकर देने पर अपनी शक्ति से नष्ट कर देती है।

वक्तव्य—कुटज की छाल लेकर सोलह गुने, आठ गुने या चार गुने जल में क्वाथ करके आधा शेष रहने पर छान ले। इसमें अम्बष्ठादि, पिप्पल्यादिगण का चूर्ण मिलाकर फिर पकाये। जब यह रसक्रिया बन जाये, तब उतारकर इसमें शीतल होने पर मधु मिलाये। दूसरे अम्बष्ठादिगण का चूर्ण रसक्रिया में पीछे मिलाना चाहते हैं, वह ठीक भी है। चूर्ण का अग्नि में पाक करने से हीनवीर्य होने की सम्भावना रहती है ॥८९,९०॥

पृश्निपर्णीबलाबिल्ववालकोत्पलधान्यकैः।
सनागरैः पिबेत् पेयां साधितामुदरामयी ॥९१॥

अतिसाररोगी पृश्निपर्णी, बला, बिल्व, नेत्रवाला, कमल, धनियाँ, सोंठ, इनसे सिद्ध पेया पीये ॥९१॥

अरलुत्वक् प्रियङ्गुं च मधुकं दाडिमाङ्कुरान्।
आवाप्य पिष्ट्वा दधनि यवागूं साधयेद् द्रवाम् ॥९२॥
एषा सर्वानतीसारान् हन्ति पक्वानसंशयम्।

अरलु की छाल, प्रियंगु, मुलैहठी, अनार के अंकुर (कोमल पत्ते) इनको पीसकर, दधि में घोलकर पतली यवागू बनाये। यह यवागू सब प्रकार के पक्व अतिसारों को अवश्य नष्ट करती है ॥९२॥

रसाञ्जनं सातिविषं त्वग्बीजं कौटजं तथा ॥९३॥
धातकी नागरं चैव पाययेत्तण्डुलाम्बुना।
सशूलं रक्तजं घ्नन्ति एते मधुसमायुताः ॥९४॥

रसौंत, अतीस, कुटज की छाल, इन्द्रजौ, हरड़, सोंठ—इनको चावल के धोवन के साथ, मधु मिलाकर पिलाये। ये सब उपर्युक्त योग, शूल एवं रक्तयुक्त अतिसार को नष्ट करते हैं ॥९३,९४॥

मधुकं बिल्वपेशी च शर्करामधुसंयुता।
अतीसारं निहन्त्युश्च शालिषष्टिकयोः कणाः ॥९५॥
तद्वल्लीढं मधुयुतं बदरीमूलमेव तु।

मुलैहठी, बिल्व की मज्जा, इनको शर्करा और मधु के साथ, शालिचावल एवं साठी की कणियाँ मधु के साथ, बेरी का मूल मधु के साथ चाटने से अतिसार को नष्ट करता है। (तीन योग हैं) ॥९५॥

बदर्यर्जुनजम्ब्वाम्रशल्लकीवेतसत्वचः ॥९६॥
शर्कराक्षौद्रसंयुक्ताः पीता घ्नन्त्युदरामयम्।

बेर, अर्जुन, जामुन, आम, शल्लकी, बेतस (अम्लवेतस) इनकी छाल शर्करा, मधु के साथ, पीने से अतिसार को नष्ट करती है ॥९६॥

एतैरेव यवागूंश्च षडान् यूषांश्च कारयेत् ॥९७॥
पानीयानि च तृष्णासु द्रव्येष्वेतेषु बुद्धिमान्।

बुद्धिमान् वैद्य इन्हीं योगों से यवागू, षड् (खड़) और यूषों को बनाये। प्यास लगने पर इन्हीं द्रव्यों से सिद्ध जल पीने को देवे ॥९७॥

कृतं शाल्मलिवृन्तेषु कषायं हिमसंज्ञितम् ॥९८॥
निशापर्युषितं पेयं सक्षौद्रं मधुकान्वितम्॥

सिम्बल के कोपलों से शीत कषाय बनाये। एक रात रखने के पीछे नितारकर इसमें मधु और मुलैहठी मिलाकर पीये।

वक्तव्य—कोपलों का चूर्ण लेकर चौबीस घण्टे पानी में भिगोया रहने दे। फिर मलकर छानकर इसमें से चार पल लेकर, इसमें मुलैहठी एक कर्ष और मधु मिलाकर पीये ॥९८॥

विबद्धवातविट् शूलपरीतः सप्रवाहिकः ॥९९॥
सरक्तपित्तश्च पयः पिबेत्तृष्णासमन्वितः।
यथाऽमृतं तथा क्षीरमतीसारेषु पूजितम् ॥१००॥
चिरोत्थितेषु तत् पेयमपां भागैस्त्रिभिः शृतम्।
दोषशेषं हरेत्तद्धि तस्मात्पथ्यतमं स्मृतम् ॥१०१॥
हितः स्नेहविरेको वा बस्तयः पिच्छिलाश्च ये।
पिच्छिलस्वरसे सिद्धं हितं च घृतमुच्यते ॥१०२॥

जिस रोगी को मल और वायु का अवरोध हो, शूल हो, प्रवाहिका हो, रक्तपित्त (रक्तस्राव) हो, प्यास हो, वह रोगी

दूध पीये। अतीसार में दूध अमृत के समान श्रेष्ठ है। पुरातन अतिसारों में दूध को तीन गुने जल से सिद्ध करके दूध मात्र शेष रह जाने पर पीये। क्योंकि इस प्रकार दूध बचे हुए दोष को नष्ट करता है, इसलिये यह उत्तम पथ्य है। स्नेह विरेचन, और पिच्छिल बस्तियाँ हितकारी हैं। सिम्बल आदि पिच्छिल द्रव्यों के स्वरस में सिद्ध घृत हितकारी कहा जाता है।

वि० मन्तव्य—श्लो० ९८ वें में जो शाल्मलिवृन्त का हिम बतलाया गया है, और जो पिच्छिल वस्तियों तथा पिच्छिल द्रव्यों के संयोग से सिद्ध घृत का विधान किया गया है, इनका प्रतिनिधि आज का "ईसबगोल" है। ईसबगोल की १–२ तो० की मात्रा-शर्करोदक अथवा दही के साथ दी जाती है। प्रवाहिका को "पेचिश" या मरोड़ा कहते हैं (देखिये श्लो० १३८)॥

शकृता यस्तु संसृष्टमतिसार्येत शोणितम।
प्राक् पश्चाद्वा पुरीषस्य सरुक् सपरिकर्तिकः ॥१०३॥
क्षीरिशुङ्गश्रृतं सर्पिः पिबेत् सक्षौद्रशर्करम्।

जिस रोगी को मल के साथ मिला हुआ रक्त मल त्याग के पहिले या पीछे आता है, जिसे दर्द एवं परिकर्त्तिका (वस्ति, गुदा, मेहन में काटने के समान दर्द) रहती हो, वह बरगद आदि क्षीरि वृक्षों के शृंगों (नूतन पत्रों के कोंपल) से सिद्ध घृत को मधु और शर्करा के साथ पीये।

वि० मन्तव्य—सपरिकर्त्तिकः—परिकर्त्तिका—इस विकृति में अन्त्रों के भीतरी भाग पर कर्त्तन अर्थात् खरोश हो जाता है, मल का दबाव पड़ने पर अथवा अन्त्र में एंठन होने पर इसी में रक्त निकलकर पुरीष के आगे या पीछे या साथ में आता है। पिच्छिल पदार्थों का लेस लगने से परिकर्त्तिका का रोपण हो जाता है, और पुरीष भी खिसककर सरलता से निकल जाता है। परिकर्त्तिका में कतीरा भी जल अथवा दूध अथवा दही में भिगोकर फूल जाने पर खाया जाता है, वह भी पिच्छिल होने से लाभ करता है। श्लो० १११ वाँ भी देखिये ॥१०३॥

दार्वीत्वक्पिप्पलीशुण्ठीलाक्षाशक्रयवैर्घृतम् ॥१०४॥
संयुक्तं भद्ररोहिण्या पक्वं पेयादिमिश्रितम्।

दारुहल्दी की छाल, पिप्पली, सोंठ, लाख, इन्द्रजौ, कुटकी इनसे सिद्ध किया घृत पेया आदि में मिलाकर पिलाये। यह घृत त्रिदोषजन्य भयानक अतिसार को भी नष्ट कर देता है॥

त्रिदोषमप्यतीसारं पीतं हन्ति सुदारुणम् ॥१०५॥
गौरवे वमनं पथ्यं यस्य स्यात् प्रबलः कफः।

शरीर में भारीपन, कफ की प्रबलता, ज्वर, दाह, वायु से मलबन्ध होने पर अधोगामि रक्त की भाँति रोगी को वमन करना उत्तम है।

वक्तव्य—द्रव कफ के नष्ट होने से विपरीत मार्ग चिकित्सा के प्रभाव से भला होता है, जिस प्रकार अधोगामि रक्त पित्त में वमन चिकित्सा लाभ करती है ॥१०५॥

ज्वरे दाहे सविडबन्धे मारुताद्रक्तपित्तवत् ॥१०६॥
संपक्वे बहुदोषे च विबन्धे मूत्रशोधनैः।
कार्यमास्थापनं क्षिप्रं तथा चैवानुवासनम् ॥१०७॥

अतिसार के पक जाने पर, शरीर में दोष की अधिकता होने पर, अधोवात आदि की अप्रवृत्ति में तृण पञ्चमूल, पाषाण भेद आदि मूत्र शोधन द्रव्यों से आस्थापन और अनुवासन तुरन्त देवें ॥१०६,१०७॥

प्रवाहणे गुदभ्रंशे मूत्राघाते कटिग्रहे।
मधुराम्लैः श्रृतं तैलं सर्पिर्वाऽप्यनुवासनम् ॥१०८॥

प्रवाहण में, गुदभ्रंश में, मूत्राघात में, कटिग्रह में, काकोल्यादि मधुर एवं बीजपूरक, कपित्थ आदि अम्लद्रव्यों से सिद्ध तैल या घृत का अनुवासन देवे ॥१०८॥

गुदपाकस्तु पित्तेन यस्य स्यादहिताशिनः।
तस्य पित्तहराः सेकास्तत्सिद्धाश्चानुवासनाः ॥१०९॥

अहित सेवन करनेवाले जिस रोगी की गुदा का पाक पित्त के कारण हो जाये, उसमें पित्तहर द्रव्यों (दूध, इक्षुरस, शर्करोदक, मधुरौषध कृत कषाय) से सेक एवं इनसे सिद्ध अनुवासन देवें ॥१०९॥

दधिमण्डसुराबिल्वसिद्धं तैलं समारुते।
भोजने च हितं क्षीरं कच्छुरामूलसाधितम् ॥११०॥

वातज अतिसार में दधि, मण्ड, सुरा और बिल्व से सिद्ध तैल अनुवासन में देवें। भोजन में कौंच या धमासा मूल से सिद्ध दूध देवे। (कच्छुरा-दुरालभा या शूकशिम्बी दधिमण्डल-दधिमस्तु) ॥११०॥

अल्पाल्पं बहुशो रक्तं सरुग्य उपवेश्यते।
यदा वायुर्विबद्धश्च पिच्छाबस्तिस्तदा हितः ॥१११॥

जो रोगी थोड़ा-थोड़ा रक्त एवं वेदना के साथ बार-बार मल त्याग करता हो, वायु का अवरोध हो, तब इसे पिच्छावस्ति (पिच्छिल द्रव्यों से बनाई चि० अ० ३८ में कही) देवे ॥१११॥

प्रायेण गुददौर्बल्यं दीर्घकालातिसारिणाम्।
भवेत्तस्माद्धितं तेषां गुदे तैलावचारणम् ॥११२॥

प्रायः करके चिरकालीन अतीसार रोगियों की गुदा निर्बल पड़ जाती है, इसलिये इनकी गुद में पिचु, सेक, अनुवासन रूप में तैल बरतना चाहिये। (दाह युक्त गुददौर्बल्य में घृत बरते)।

वि० मन्तव्य—गुददौर्बल्य-गुदवलियों की दुर्बलता, इसी कारण से गुदवलियाँ संवरण आदि कार्य उचित रूप से नहीं कर पातीं ॥११२॥

कपित्थशाल्मलीफञ्जीवटकार्पासदाडिमाः।
यूथिका कच्छुरा शेलुः शणश्चुच्चूश्च दाधिकाः।११३।

कैथ, सिम्बल, फंजी (पाठा भेद), बरगद, कपास के पत्ते, अनार, जूही, धमासा, लसूड़ा, सन और चुच्चू इनको दही से संस्कृत करके देवे ॥११३॥

शालपर्णी पृश्निपर्णी बृहती कण्टकारिका।
बलाश्वदंष्ट्राबिल्वानि पाठानागरधान्यकम् ॥११४॥
एष आहारसंयोगे हितः सर्वातिसारिणाम्।

शालपर्णी, पृश्निपर्णी, कटेरी छोटी, बड़ी कटेरी, बला, गोखरु, बिल्व, पाठा, सोंठ, धनियाँ इन द्रव्यों को अतिसार रोगियों के आहार के सिद्ध करने में बरते।

वक्तव्य—'भक्तं पञ्चगुणे तोये यवागूं षड्गुणे पचेत्। चतुर्दशगुणे पेयां विलेपीं च चतुर्गुणे ॥' शालपर्ण्यादि द्रव्य चार पल लेकर एक आढ़क जल में सिद्ध करके आधा शेष रहने पर इस क्वाथ से पेया आदि बनाये ॥११४॥

तिलकल्को हितश्चात्र मौद्गो मुद्गरसस्तथा ॥११५॥

तिलकल्क, मूंग का कल्क, मूंग का यूष (ओसावण) इसमें हितकारी है ॥११५॥

पित्तातिसारी यो मर्त्यः पित्तलान्यतिसेवते।
पित्तं प्रदुष्टं तस्याशु रक्तातीसारमावहेत् ॥११६॥
ज्वरं शूलं तृषां दाहं गुदपाकं च दारुणम्।

जो पित्तातिसार रोगी पित्तकारक वस्तुओं का अतिसेवन करता है, उसका प्रदूषित हुआ पित्त रक्तातिसार को उत्पन्न कर देता है। इसके साथ ज्वर, शूल, दाह, और भयानक गुदपाक होता है ॥११६॥

यो रक्तं शकृतः पूर्वं पश्चाद्वा प्रतिसार्यते ॥११७॥
स पल्लवैर्वटादीनां ससर्पिः साधितं पयः।
पिबेत् सशर्कराक्षौद्रमथवाऽप्यभिमथ्य तत् ॥११८॥
नवनीतमथो लिह्यात्तक्रं चानुपिबेत्ततः।

जिस रोगी को मल के पूर्व या पीछे रक्त आता हो, वह बरगद आदि क्षीर वृक्षों के कोमल पत्तों से साधित दूध को घी, शर्करा मधु के साथ पीये। अथवा बरगद आदि के पत्तों को दूध में मथकर इससे दही जमाये, फिर इसको मथकर मक्खन निकालकर मधु और शर्करा के साथ चाटे, पीछे यह तक्र पीये ॥११७,११८॥

प्रियालशाल्मलीप्लक्षशल्लकीतिनिशत्वचः ॥११९॥
क्षीरे विमृदिताः पीताः सक्षौद्रा रक्तनाशनाः।

पियाल, सिम्बल, पिलखन, शल्लकी, सांदन इनकी छाल को दूध में मसलकर मधु मिलाकर पीये, यह रक्तनाशक है।

मधुकं शर्करा लोध्रं पयस्यामथ सारिवाम् ॥१२०॥
पिबेच्छागेन पयसा सक्षौद्रं रक्तनाशनम्।

मुलैहठी, शर्करा, लोध, विदारी, सारिवा, इनको बकरी के दूध में मथकर मधु के साथ पीये, यह रक्तनाशक है ॥१२०॥

मञ्जिष्ठां सारिवां लोध्रं पद्मकं कुमुदोत्पलम् ॥१२१॥
पिबेत् पद्मां च दुग्धेन छागेनासृक्प्रशान्तये।

रक्त की शान्ति के लिये—मंजीठ, सारिवा, लोध, पद्माख, कुमुद, नीलोफर, और भार्गी इनको बकरी के दूध से पीये। (इनका कल्क करके दूध के साथ पीये) ॥१२१॥

शर्करोत्पललोध्राणि समङ्गा मधुकं तिलाः ॥१२२॥
तिलाः कृष्णाः सयष्ट्याह्वाः समङ्गा चोत्पलानि च।
तिला मोचरसो लोध्रं तथैव मधुकोत्पलम् ॥१२३॥
कच्छुरा तिलकल्कश्च योगाश्चत्वार एव च।
आजेन पयसा पेयाः सरक्ते मधुसंयुताः ॥१२४॥

चार योग—(१) शर्करा, कमल, लोध, मजीठ, मुलैहठी, तिल, (२) काले तिल, मुलैहठी, मजीठ और नीलोफर, (३) तिल, मोचरस, लोध, मुलैहठी, नीलोफर, (४) धमासा, तिल, कल्क ये चार योग मधु के साथ मिलाकर बकरी के दूध से रक्तातिसार में पीने चाहिये ॥१२२-१२४॥

द्रवे सरक्ते स्रवति बालबिल्वं सफाणितम्।
सक्षौद्रतैलं प्रागेव लिह्यादाशु हितं हि तत् ॥१२५॥

रक्त के साथ द्रव रूप (पतला-पानी जैसा) मल आने पर कच्चे बिल्व को राब मधु और तेल के साथ भोजन से पूर्व चाटे, यह शीघ्र ही लाभ करता है।

वि० मन्तव्य—इसका प्रतिनिधि बेल का मुरब्बा है ॥१२५॥

कोशकारं घृते भृष्टं लाजचूर्णं सिता मधु।
सशूलं रक्तपित्तोत्थं लीढं हन्त्युदरामयम् ॥१२६॥

कोशकार को टुकड़े करके घी में भूनकर पीसकर, लाजा, चूर्ण शर्करा मधु में मिलाकर चाटने से शूलयुक्त-पित्तजन्य अतिसार नष्ट होता है।

वक्तव्य—कोशकार-इक्षुभेद इति डल्हणः। कोशकारो नाम-कौशेयवस्त्रोपादानभूततन्तूत्पादकः कीटविशेषः इति। चरक में भी इसी रेशम के कीड़े के लिये कोशकार शब्द आया है। यथा—कोषकारो यथा ह्यंशूनुपादत्ते वधप्रदान्। उपादत्ते तथाऽर्थेभ्यः तृष्णामज्ञः सदाऽऽतुरः ॥

वि० मन्तव्य—आवरेशम—कोशकार रेशम के कृमि का नाम है। यह कृमि अपनी लाला (मुख के रस) से अपने ऊपर आवरण बना लेता है और उसी आवरण पर रेशम के तन्तु बन जाते हैं। इस आवरण के भीतर ही भीतर कृमि मर जाता है और इस आवरण को सुखा लिया जाता है यही "आवरेशम" कहलाता है। इस आवरण को घृत में भूनकर अथवा जल में उबालकर रस-क्वाथ रोगी को पिलाया जाता है। अरबी एवं फारसी भाषा में इसका नाम आवरेशम है। स्वाद-फीका, वर्ण पीताभ श्वेत, गुण-बलवर्द्धक, स्मरण शक्ति वर्द्धक, नेत्ररोग

नाशक, श्रमनाशक तथा वातव्याधिहर है। इसके अवलेह आदि योग बनाये जाते हैं ॥१२६॥

बिल्वमध्यं समधुकं शर्कराक्षौद्रसंयुतम् ।
तण्डुलाम्बुयुतो योगः पित्तरक्तोत्थितं जयेत् ॥१२७॥

बिल्व की मज्जा, मुलैहठी, शर्करा, मधु इनको चावल के धोवन के साथ लेने से पित्तरक्तजन्य अतिसार को नष्ट करता है ॥१२७॥

योगान् सांग्राहिकांश्चान्यान् पिबेत्सक्षौद्रशर्करान् ।
न्यग्रोधादिषु कुर्याच्च पुटपाकान् यथेरितान् ॥१२८॥

पित्तातिसारोक्त अन्य सांग्राहिक योगों को मधु और शर्करा के साथ पीये। कहे हुए अनुसार न्यग्रोधादि द्रव्यों से पुटपाक बनाये ॥१२८॥

गुदपाके च ये उक्तास्तेऽत्रापि विधयः स्मृताः ।

गुदपाक में जो सेकादि कहे हैं, वे पित्तरक्तजन्य अतिसार में भी हितकारी हैं।

रुजायां चाप्रशाम्यन्त्यां पिच्छाबस्तिर्हितो भवेत् ।१२९।

वेदना के शान्त न होने पर पिच्छावस्ति हितकारी है ॥

सक्तविड् दोषबहुलं दीप्ताग्निर्योऽतिसार्यते ।
विडङ्गत्रिफलाकृष्णाकषायैस्तं विरेचयेत् ॥१३०॥
अथवैरण्डसिद्धेन पयसा केवलेन वा ।
यवागूर्वितरेच्चास्य वातघ्नैर्दीपनैः कृताः ॥१३१॥

जो रोगी अग्नि के प्रदीप्त होने पर विबद्ध मल को, प्रचुर मात्रा में प्रवाहित करता हो, उसे विडंग, त्रिफला, पिप्पली के कषाय से विरेचन देवे। अथवा ऐरण्ड तैल से सिद्ध केवल दूध से विरेचन देवे। शालिपर्णी आदि वातघ्न एवं दीपनीय द्रव्यों से बनाई यवागू इसको देवे ॥१३०,१३१॥

दीप्ताग्निर्निष्पुरीषो यः सार्यते फेनिलं शकृत् ।
स पिबेत् फाणितं शुण्ठीदधितैलपयोघृतम् ॥१३२॥

दीप्ताग्नि पुरुष मल से रहित झागदार (मल में केवल झाग ही) प्रवाहित करता हो, वह राब, सोंठ, दधि, तैल, दूध और घी इनको मिलाकर पीये। (डल्हण के मत से यह निश्वारक का लक्षण है) ॥१३२॥

स्विन्नानि गुडतैलाभ्यां भक्षयेद् बदराणि च ।

उबाले हुए बेरों को गुड़ और तैल से खाये।

स्विन्नानि पिष्टवद्वाऽपि समं बिल्वशलाटुभिः ॥१३३॥

बेरों को और कच्चे बिल्व को पिष्ट स्वेदन विधि से स्विन्न करके शीतल होने पर गुड़ और तैल से खाये। (पिष्ट-स्वेद-गुजरात में जिस प्रकार ढोकरा बनाते हैं, छलनी में रखकर भाप से ही पकाये)।

वि० मन्तव्य—यह बेर तथा बिलगिरि के दोनों योग बेर का तथा बिल का मुरब्बा ही हैं अथवा उनके रूपान्तर हैं ॥

दध्नोपयुज्य कुल्माषान् श्वेतामनुपिबेत् सुराम् ।

कुल्माषों (आधे उबले जौ) को दही के साथ खाकर, पिठी से बनी सुरा को पीछे से पीये।

शशमांसं सरुधिरं समङ्गां सघृतं दधि ॥१३४॥
खादेद्विपच्य सेवेत मृद्वन्नं शकृतः क्षये ।

मल के क्षय में—खरगोश के मांस और रक्त के साथ, कोमल अन्न (उड़द आदि) और लाजवन्ती को पकाकर घी और दही के साथ खाये। (माष-मल करनेवाले हैं, माषो बहुमलो वृष्यः) ॥१३४॥

संस्कृतो यमके माषयवकोलरसः शुभः ॥१३५॥
भोजनार्थं प्रदातव्यो दधिदाडिमसाधितः ।

उड़द, जौ और बेर का क्वाथ घी और तैल में संस्कृत करके, दही और अनारदाने से बघारकर भोजन के लिये देना चाहिये ॥१३५॥

बिडं बिल्वशलाटूनि नागरं चाम्लपेषितम् ॥१३६॥
दध्नः सरश्च यमके भृष्टो वर्चःक्षये हितः ।

विड्नमक, कच्चे बिल्व,, सोंठ इनको कांजी से पीसकर-दही की मलाई मिलाकर घी और तैल में भूनकर वर्चःक्षय (मलक्षय मे) में उत्तम है ॥१३६॥

सशूलं क्षीणवर्चा यो दीप्ताग्निरतिसार्यते ।
स पिबेद्दीपनैर्युक्तं सर्पिः संग्राहकैः सह ॥१३७॥

जो क्षीणपुरीष मनुष्य अग्नि के दीप्त होने पर शूल के साथ मलत्याग करता हो वह चित्रकादि दीपन एवं धातकी, बिल्वशलाटु आदि संग्राहक औषधियों के साथ अपक्व घृत पीये।

वि० मन्तव्य—निष्पुरीष = निकल चुका पुरीष जिसका (श्लो० १३२) शकृतः क्षये = पुरीष का क्षय हो जाने पर (श्लो० १३४), वर्चःक्षये = वर्चस् अर्थात् पुरीष का क्षय हो जाने पर (श्लो० १३६) आदि वाक्य उस दशा के लिये प्रयुक्त हैं। जब पुरीष पूर्ण रूप से निकल जाता है और शरीर के द्रव धातु (अपां धातु श्लो० ६) ही निकल रहे होते हैं ॥

वायुः प्रवृद्धो निचितं बलासं
नुदत्यधस्तादहिताशनस्य ।
प्रवाहमाणस्य मुहुर्मलाक्तं
प्रवाहिकां तां प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥१३८॥

अहित भोजन करनेवाले पुरुष में बढ़ी हुई वायु संचित कफ को गुद मार्ग से प्रेरित करती है। प्रवाहण करते हुए बार-बार मल से मिला कफ बाहर आता है, इसको वैद्य लोग प्रवाहिका कहते हैं।

वि० मन्तव्य—प्रवाहिका—यह शब्द—बाधृ—विलोडने धातु (भ्वादि आ० सेट्) से बनाया जाय और "प्रवाहिका" पढ़ा जाय अथवा वाह प्रयत्ने धातु (भ्वा आ० से०) से बनाया जाय या बना समझा जाय तो सार्थक

है। क्योंकि इस रोग में विशेषता यही है कि–रोगी काँखता है, पुरीष निकालने के लिये शक्ति भर प्रयत्न करता है और उदर में भीषण विलोडन या ऐंठन–आवी–प्रसववेदना के समान भीषण पीड़ा होती है। इसे पेचिस या आँव पड़ना कहते हैं। रोग में अतिसार के समान द्रव पुरीष का अतिसरण नहीं होता, अपितु पुरीष की हरड़ जैसी गांठें बंध जाती हैं, कभी २ यह इतनी कड़ी होती हैं कि गुदवलियों में खरोश (परिकर्त्तिका) पड़ जाती है ॥१३८॥

प्रवाहिका वातकृता सशूला
पित्तात् सदाहा सकफा कफाच्च ।
सशोणिता शोणितसंभवा तु
ताः स्नेहरूक्षप्रभवा मतास्तु ॥१३९॥
तासामतीसारवदादिशेच्च
लिङ्गं क्रमं चामविपक्वतां च ।

वातजन्य प्रवाहिका में शूल होता है, पित्तजन्य में दाह, कफजन्य में कफ आता है, रक्तजन्य प्रवाहिका में रक्त आता है। ये प्रवाहिकायें स्नेह एवं रूक्ष कारणों से उत्पन्न होती हैं। इन प्रवाहिकाओं में वातादि के लक्षण, आम एवं पक्व प्रवाहिका के लक्षण, चिकित्सा अतीसार की भांति जानो ॥१३९॥

न शान्तिमायाति विलंघनैर्या
योगैरुदीर्णा यदि पाचनैर्वा ॥१४०॥
ता क्षीरमेवाशु शृतं निहन्ति
तैलं तिलाः पिच्छिलबस्तयश्च ।

उत्कट प्रवाहिका जो लंघन एवं पाचन योगों से भी शान्त नहीं होती, उसको गरम किया दूध शीघ्र शान्त कर देता है या तैल, पिच्छिल बस्तियाँ नष्ट कर देती हैं ॥१४०॥

आर्द्रैः कुशैः संपरिवेष्टितानि
वृन्तान्यथार्द्राणि हि शाल्मलीनाम् ॥१४१॥
पक्वानि सम्यक् पुटपाकयोगे-
नापोथ्य तेभ्यो रसमाददीत ।
क्षीरं शृतं तैलहविर्विमिश्रं
कल्केन यष्टीमधुकस्य वाऽपि ॥१४२॥
वस्तिं विदध्याद्भिषगप्रमत्तः
प्रवाहिकामूत्रपुरीषसङ्गे ।

प्रवाहिका में मूत्र और मल का अवरोध होने पर सिम्बल के गीले हरे-कोंपलों को गीली कुशाओं से लपेटकर ऊपर मिट्टी का लेप करके पुटपाक विधिसे भली प्रकार पकाये। फिर इनको कूटकर इनका रस निकाल ले। इसमें गरम किया दूध, तैल, घी और मुलैहठी का कल्क मिलाकर वैद्य बिना आलस्य हुए वस्ति देता रहे। (अप्रमत्तः सावधानः)।

वि० मन्तव्य—यदि वस्ति देने की व्यवस्था न हो तो इस योग को पिला दिया जाय ॥१४१,१४२॥

द्विपञ्चमूलीक्वथितेन शूले
प्रवाहमाणस्य समाक्षिकेण ॥१४३॥
क्षीरेण चास्थापनमग्र्यमुक्तं

प्रवाहण में शूल होने पर दशमूल के क्वाथ से सिद्ध किये दूध में मधु मिलाकर आस्थापन वस्ति देना उत्तम है ॥१४३॥

तैलेन युञ्ज्यादनुवासनं च ।

दशमूल से सिद्ध दूध से तैल से सिद्ध करके अनुवासन देवे। (अपक्व तैल से अनुवासन न देवे)।

वातघ्नवर्गे लवणेषु चैव
तैलं च सिद्धं हितमन्नपाने ॥१४४॥

विदारीगन्धादि वातघ्न द्रव्यों से तथा सैन्धवादि नमकों से सिद्ध तैल खान पान में बरतना उत्तम है।

वि० मन्तव्य—असिद्ध तैल भी पिलाया जाता है, तक्र में मिलाकर अथवा तैल में मालपूआ बनाकर भरपेट खिलाया जाता है ॥१४४॥

लोध्रं विडं बिल्वशलाटु चैव
लिह्याच्च तैलेन कटुत्रिकाढ्यम् ।

लोध्र, विड्नमक, कच्चे बिल्व, त्रिकटु (प्रचुर मात्रा में) मिलाकर तैल से चाटे।

दध्ना ससारेण समाक्षिकेण
भुञ्जीत निश्चा (सा) रकपीडितस्तु ॥१४५॥
सुतप्तकुप्यक्वथितेन वाऽपि
क्षीरेण शीतेन मधुप्लुतेन ।
शूलार्दितो व्योषविदारिगन्धा-
सिद्धेन दुग्धेन हिताय भोज्या ॥१४६॥
वातघ्नसांग्राहिकदीपनीयैः
कृतान् षडांश्चाप्युपभोजयेच्च ।
खादेच्च मत्स्यान् रसमाप्नुयाच्च
वातघ्नसिद्धं सघृतं सतैलम् ॥१४७॥
एणान्यजानां तु वटप्रवालैः
सिद्धानि सार्धं पिशितानि खादेत् ।
मेध्य (ष) स्य सिद्धं स्वथवाऽपि रक्तं
बस्तस्य दध्ना घृततैलयुक्तम् ॥१४८॥
खादेत् प्रदेहैः शिखिलावजैर्वा
भुञ्जीत यूषैर्दधिभिश्च मुख्यैः ।
माषान् सुसिद्धान् घृतमण्डयुक्तान्
खादेच्च दध्ना मरिचोपदंशम् ॥१४९॥

निश्चारक रोग से पीड़ित मनुष्य मलाई युक्त दही में मधु मिलाकर उसके साथ भोजन करे। अथवा सोने को (अघटित स्वर्ण) गरम करके, इससे गरम किये (उबाले) दूध के ठण्डा होने पर मधु मिलाकर उसके साथ भोजन करे। शूल से पीड़ित-त्रिकटु, विदारीगन्धादिगण से सिद्ध दूध से हितकारी भोजन

देवे। शालपर्ण्यादि वातघ्न चित्रक शुण्ठी आदि दीपनीय, बिल्व-पाठा-चांगेरी आदि सांग्राहिक औषधियों से बनाये खड खाने को देवे। मछलियों को खाये। शालपर्ण्यादि वातघ्न द्रव्यों से सिद्ध घी और तैल से मिश्रित बटेर आदि के मांसरस को पीये। बकरी, भेड़, हरिण इनके मांस बरगद के कोंपलों के साथ सिद्ध करके इनका मांस खाये। मेदुर (दुम्बा) के रक्त को या बकरे के रक्त को घी और तैल में संस्कृत करके दही में मिलाकर खाये। अथवा मोर और तीतर के घट्ट बनाये मांसरसों से मूंग-मसूर आदि के यूषों को दही के साथ खाये। भली प्रकार पकाये उड़दों को घी के मण्ड (ऊपर का भाग) में मिलाकर मरिच का चूर्ण छिड़ककर दही के साथ खाये।

वक्तव्य—मेध्य-मेधो यज्ञः, तदर्हो मेध्यः। प्रदेह-पाकेन घनीभूताः रसाः प्रदेहाः।

वि० मन्तव्य—निश्चारक-प्रवाहिका का ही नाम है, क्योंकि यह सब चिकित्सा प्रवाहिका में उपयोगी है और की भी जाती है। माषान्........उरद की दाल अथवा उसके बड़े दही में डाल भर पेट खाने पर तत्काल लाभ होता है। सत्य है कि इस रोग में आम-आँव तथा पुरीष को प्रवृत्त करने का प्रयत्न होना चाहिये। अगले सब योग विशेषतः धारोष्ण दूध पुरीष प्रवर्त्तक या विरेचक हैं। इनके सेवनसे आम तथा पुरीष निकल जाते हैं, मलाशय शुद्ध हो जाता है, फलतः रोग शान्त हो जाता है ॥१४५-१४६॥

महारुजे मूत्रकृच्छ्रे भिषग् बस्तिं प्रदापयेत्।
पयोमधुघृतोन्मिश्रं मधुकोत्पलसाधितम् ॥१५०॥
स बस्तिः शमयेत्तस्य रक्तं दाहमथो ज्वरम्।

अतिशय वेदना और मूत्रकृच्छ्र में वैद्य मुलैहठी, नीलोफर के क्वाथ में दूध, मधु और घृत मिलाकर वस्ति देवे। यह वस्ति प्रवाहिका के रक्त, दाह और ज्वर को नष्ट कर देती है ॥१५०॥

मधुरौषधसिद्धं च हितं तस्यानुवासनम्।
रात्रावहनि वा नित्यं रुजार्तो यो भवेन्नरः ॥१५१॥

जिस रोगी को सदा दर्द रहता हो, उसे, काकोल्यादि मधुर औषधियों से सिद्ध अनुवासन रात्रि या दिन में देना हितकारी है। (रात्रि में अनुवासन निषिद्ध होने पर भी सदा दाह, शूल होने पर विधेय है) ॥१५१॥

यथा यथा सतैलः स्याद्वातशान्तिस्तथा तथा ॥१५२॥
प्रशान्ते मारुते चापि शान्तिं याति प्रवाहिका।
तस्मात् प्रवाहिकारोगे मारुतं शमयेद् भिषक् ॥१५३॥

जैसे जैसे अनुवासन में तैल बरता जाता है, वैसे वैसे वायु शान्त होता है। वायु के शान्त होने पर प्रवाहिका भी शान्त हो जाती है। इसलिये प्रवाहिका रोग में वैद्य वायु को शान्त करे॥

पाठाजमोदाकुटजोत्पलं च
शुण्ठी समा मागधिकाश्च पिष्टाः।
सुखाम्बुपीताः शमयन्ति रोगं

पाठा, अजवायन, कूडा, कमल, सोंठ, पिप्पली, ये समभाग लेकर, पीसकर-गरमपानी के साथ पीने से प्रवाहिका को शान्त करते हैं।

मेध्याण्डसिद्धं सघृतं पयो वा ॥१५४॥

बकरे के अण्ड से सिद्ध दूध में घी मिलाकर पीये, यह भी प्रवाहिका को नष्ट करता है ॥१५४॥

शुण्ठीं घृतं सक्षवकं सतैलं
विपाच्य लीढ्वाऽऽमयमाशु हन्यात्।

सोंठ, नकछिकनी इनके कल्क में घी तैल मिलाकर अवलेह विधि से पकाकर चाटने से प्रवाहिका नष्ट होती है।

गजाशनाकुम्भिकदाडिमानां
रसैः कृता तैलघृते सदध्नि ॥१५५॥
बिल्वान्विता पथ्यतमा यवागू-

गजाशना (शल्लकी), जलकुम्भी, अनार इनके क्वाथ में बिल्व का गूदा मिलाकर, तैल घृत और दही से संस्कृत की हुई यवागू अतिशय पथ्य है ॥१५५॥

र्धारोष्णदुग्धस्य तथा च पानम्।

इसी प्रकार धारोष्ण दूध का पीना अतिशय पथ्य हैं।

लघूनि पथ्यान्यथ दीपनानि
स्निग्धानि भोज्यान्युदरामयेषु ॥१५६॥
हिताय नित्यं वितरेद्विभज्य
योगांश्च तांस्तान् भिषगप्रमत्तः ॥१५७॥

सावधानी से वैद्य अतिसार एवं प्रवाहिका रोग में दोष की अवस्था को देखकर, लघु, पथ्यकारी, दीपक, स्निग्ध भोजनों को तथा उन उन योगों को नित्यप्रति रोगी के लाभ के लिये देवे॥

तृष्णापनयनी लघ्वी दीपनी बस्तिशोधनी।
ज्वरे चैवातिसारे च यवागूः सर्वदा हिता ॥१५८॥

यवागू—तृष्णानाशक, लघु, अग्निदीपक बस्तिशोधक है, इसलिये ज्वर एवं अतिसार में सदा हितकारी है ॥१५८॥

रूक्षाज्जाते क्रिया स्निग्धा रूक्षा स्नेहनिमित्तजे।
भयजे सान्त्वनापूर्वा शोकजे शोकनाशिनी ॥१५९॥
विषार्शःकृमिसंभूते हिता चोभयशर्मदा।

रूक्षजन्य कारण से उत्पन्न अतिसार में स्नेहन क्रिया, एवं स्नेहजन्य अतिसार में रूक्षक्रिया, भयजन्य में प्रथम सान्त्वना देना, शोकजन्य में शोक का नाश करना, विष अर्श एवं कृमिजन्य अतिसार में हेतु एवं व्याधि दोनों के विपरीत चिकित्सा करना उत्तम है ॥१५९॥

छर्दिमूर्च्छातृडाद्यांश्च साधयेदविरोधतः ॥१६०॥

वमन, मूर्च्छा, प्यास आदि की चिकित्सा-मूलरोग (अतीसार) के अविरोधि रूप से करे ॥१६०॥

समवाये तु दोषाणां पूर्वं पित्तमुपाचरेत्।
ज्वरे चैवातिसारे च सर्वत्रान्यत्र मारुतम् ॥१६१॥

ज्वर और अतिसार में दोषों का संयोग या सन्निपात होने पर प्रथम पित्त की चिकित्सा करे। और अन्य सब रोगों में सबसे प्रथम वायु को शान्त करे।

वक्तव्य—ज्वर और अतिसार में पित्त की प्रधानता है, अन्य सब रोगों में वायु सब रोगों का नेता है। नेता के नष्ट होने पर दूसरे दोष शीघ्र शान्त हो जाते हैं॥

वातस्यानुजयेत् पित्तं पित्तस्यानुजयेत्कफम्।
त्रयाणां वा जयेत् पूर्वं यो भवेद् बलवत्तमः॥च०॥१६१॥

यस्योच्चारं विना मूत्रं सम्यग्वायुश्च गच्छति।
दीप्ताग्नेर्लघुकोष्ठस्य स्थितस्तस्योदरामयः॥१६२॥

जिस रोगी को मूत्र बिना मल त्याग के प्रवाहित हो जाता है, अपानवायु भली प्रकार प्रवृत्त होती है, अग्नि प्रदीप्त हो, उदर में हल्का पन हो, उसका अतिसार शान्त हुआ समझे॥

कर्मजा व्याधयः केचिद्दोषजाः सन्ति चापरे।
कर्मदोषोद्भवाश्चान्ये

व्याधियाँ तीन प्रकार की हैं, यथा—कर्मजन्य, दोषजन्य और उभयजन्य (कर्मदोष)।

वक्तव्य—शास्त्रोक्त सद्वृत्त, आहार विहार करने पर भी ऋतुजन्य रोग होते हैं, वे कर्मजन्य हैं। इसी से चरक में कहा है—"तत्कालयुक्तं यदि नास्ति दैवम् (२) न हि कर्म महत् किंचित्, फलं यस्य न भुज्यते। क्रियाघ्नाः कर्मजा रोगाः प्रशमं यान्ति तत्क्षयात्॥ निर्दिष्टं दैवशब्देन कर्म यत् पौर्वदेहिकम्। हेतुस्तदपि कालेन रोगाणामुपलभ्यते॥ कालस्य परिणामेन जरामृत्युनिमित्तजाः। रोगाः स्वाभाविका दृष्टाः स्वभावो निष्प्रतिक्रियः॥" चरक।

कर्मजास्तेष्वहेतुजाः॥१६३॥
नश्यन्ति त्वक्रियाभिस्ते क्रियाभिः कर्मसंक्षये।

इनमें बिना कारण के, तथा बिना चिकित्सा के जप-तप प्रायश्चित्त आदि चिकित्सा से कर्मों का क्षय होनेपर जो व्याधियां नष्ट होती हैं, वे कर्मजन्य हैं॥१६३॥

शाम्यन्ति दोषसंभूता दोषसंक्षयहेतुभिः॥१६४॥

जो दोष संक्षय हेतुओं से शान्त होते हैं, वे दोषजन्य रोग हैं॥१६४॥

तेषामल्पनिदाना ये प्रतिकृष्टा भवन्ति च।
मृदवो बहुदोषा वा कर्मदोषोद्भवास्तु ते॥१६५॥

जो रोग दोष थोड़े से ही कारण से अति कष्टदायक हो जाते हैं, अथवा बहुत दोषवाले मृदु रूप में रहते हैं, वे कर्म एवं दोष उभय जन्य होते हैं।

वि० मन्तव्य—कर्मजा...विधीयते-विधिभेद से व्याधियाँ तीन प्रकार की होती हैं, १—कर्मज-ये मिथ्या आहार विहार के विना ही और काल परिणाम के बिना ही अथवा अन्य भयशोक आदि हेतु के बिना ही उत्पन्न हो जाती हैं और चिकित्सा न करने पर भी अथवा केवल प्रायश्चित्त, जप, होम एवं बलि मङ्गल आदि उपचार करने पर, कर्म का फल भोग लेने पर शान्ति होती है। २—दोषज—ये दोषानुसार मिथ्या आहार-विहार, कालपरिणाम अथवा भयशोक आदि कारणों से उत्पन्न होती हैं, और दोषानुसार चिकित्सा करने पर अथवा दोष का क्षय हो जाने पर शान्त हो जाती हैं॥१६५॥

कर्मदोषक्षयकृता तेषां सिद्धिर्विधीयते।

इस प्रकार के (कर्मदोषोद्भव) रोगों की चिकित्सा यज्ञदान-तप आदि से कर्म का क्षय करके, तथा स्नेहन स्वेदन आदि से दोष का नाश करके की जाती है॥

दुष्यति ग्रहणी जन्तोरग्निसादनहेतुभिः॥१६६॥
अतिसारे निवृत्तेऽपि मन्दाग्नेरहिताशिनः।
भूयः संदूषितो वह्निर्ग्रहणीमभिदूषयेत्॥१६७॥
तस्मात्कार्यः परीहारस्त्वतीसारे विरिक्तवत्।
यावन्न प्रकृतिस्थः स्याद्दोषतः प्राणतस्तथा॥१६८॥

अग्नि को मन्द करनेवाले कारणों से ग्रहणी दूषित हो जाती है, और अतिसार के शान्त हो जाने पर भी-मन्दाग्नि पुरुष के अहित सेवन करने से अग्नि पुनः दूषित होकर ग्रहणी रोग को उत्पन्न करती है। इसलिये अतीसार में विरेचन दिये हुए की भाँति परहेजी पालनी चाहिये। जब तक मनुष्य (या अग्नि) दोष एवं प्राण (बल) से स्वाभाविक रूप में न आजाये, तब तक परहेजी पाले॥१६६-१६८॥

षष्ठी पित्तधरा नाम या कला परिकीर्तिता।
पक्वामाशयमध्यस्था ग्रहणी सा प्रकीर्तिता॥१६९॥

पित्तधरा नामक जो छटी कला कही है, वह पक्वाशय और आमाशय के मध्य में स्थित है, इस कला को ग्रहणी कहते हैं।

वक्तव्य—'ग्रहणात् ग्रहणी मता' ग्रहण करने से ग्रहणी कहलाती है, आमाशय से निकले अपक्व आहार को यह ग्रहण करती है। यहाँ पर यकृत् के पित्ताशय का पित्त, क्लोमका रस मिलते हैं। ये सब अग्निगुण होने से इस स्थान को अग्नि स्थान कहते हैं। इन रसों के मन्द होने से अग्नि भी कम हो जाती है, जिससे भली प्रकार पाक नहीं होता, इससे कहा है....

अग्न्यधिष्ठानमन्नस्य ग्रहणात् ग्रहणी मता।
नाभेरुपरि हि अग्निबलेनापष्टब्धोपबृंहितः॥
अपक्वं धारयत्यन्नं पक्वं सृजति पार्श्वतः।
दुर्बलाग्नि बला दुष्टा त्वाममेव विमुञ्चति॥च०॥ १६६॥

ग्रहण्या बलमग्निर्हि स चापि ग्रहणीं श्रितः।
तस्मात् संदूषिते वह्नौ ग्रहणी संप्रदुष्यति॥१७०॥

क्योंकि अग्नि के स्थान-ग्रहणी का बल अग्नि ही है, और यह अग्नि भी ग्रहणी के ही आश्रित है। इसलिये अग्नि के दूषित हो जाने पर ग्रहणी भी दूषित हो जाती है ॥१७०॥

एकशः सर्वशश्चैव दोषैरत्यर्थमुच्छ्रितैः।
सा दुष्टा बहुशो भुक्तमाममेव विमुञ्चति ॥१७१॥
पक्वं वा सरुजं पूति मुहुर्बद्धं मुहुर्द्रवम्।
ग्रहणीरोगमाहुस्तमायुर्वेदविदो जनाः ॥१७२॥

वातादि पृथक् दोषों से सन्निपात रूप में मिलित दोषों से दूषित हुई यह ग्रहणी बहुत बार अपक्व आहार को ही आगे गुजार देती है। यह अन्न कभी पका, कभी कच्चा वेदना के साथ, दुर्गन्धयुक्त, कभी वेधा हुआ, कभी द्रवरूप में प्रवाहित (मल रूप से) होता है। आयुर्वेद को जाननेवाले इस रोग को ग्रहणी रोग कहते हैं ॥१७१,१७२॥

तस्योत्पत्तौ विदाहोऽन्ने सदनालस्यतृट्क्लमाः।
बलक्षयोऽरुचिः कासः कर्णक्ष्वेडोऽन्त्रकूजनम् ॥१७३॥

पूर्वरूप—इस ग्रहणी रोग के उत्पन्न होने के पूर्व, अन्न में विदाह (भली प्रकार न पकना), शिथिलता, आलस्य, प्यास, थकान, बल का ह्रास, अरुचि, कास, कानों में शब्द, आंतों में गड़गड़ाहट होती है ॥१७३॥

अथ जाते भवेज्जन्तुः शूनपादकरः कृशः।
पर्वरुग्लौल्यतृट्छर्दिज्वरारोचकदाहवान् ॥१७४॥
उद्गिरेच्छुक्ततिक्ताम्ललोहधूमामगन्धिकम्।
प्रसेकमुखवैरस्यतमकारुचिपीडितः ॥१७५॥

लक्षण—ग्रहणीरोग हो जाने पर रोगी के हाथ-पैर सूज जाते हैं, रोगी कृश, पर्वों में दर्द, सब रसों में लोलुपता, प्यास, वमन, ज्वर, अरोचक, दाह रहता है। शुक्त (खट्टा), तिक्त (कडुआ), अम्लगन्धि, लोहगन्धि, धूमगन्धि, आमगन्धि (सडी गन्ध) उद्गार होता है और मुख से पानी गिरता है, लाला-स्राव, मुख में विरसता, मोह, अरुचि रहती है ॥१७३-१७५॥

वाताच्छूलाधिकैः पायुहृत्पार्श्वोदरमस्तकैः।
पित्तात् सदाहैर्गुरुभिः कफात्त्रिभ्यस्त्रिलक्षणः ॥१७६॥

वातजन्य ग्रहणी में—गुद, हृदय, पार्श्व, उदर और शिर में अधिक शूल रहता है। पित्त से दाह की अधिकता, कफ से भारीपन, सन्निपात से तीनों दोषों के लक्षण रहते हैं ॥१७६॥

दोषवर्णैर्नखैस्तद्वद्विण्मूत्रनयनाननैः।
हृत्पाण्डूदरगुल्मार्शःप्लीहाशङ्की च मानवः ॥१७७॥

वातादि दोषों के वर्णवाले नख, मल-मूत्र, आँख, और मुख को देखकर ग्रहणी रोग जानना चाहिये। रोगी को हृदय-रोग, पाण्डुरोग, उदररोग, गुल्मरोग, अर्शरोग, प्लीहारोग, का भ्रम बना रहता है।

वक्तव्य—वायु के कारण कृष्ण अरुणवर्ण, पित्त से हरा-पीला वर्ण, कफ से श्वेत वर्ण होता है ॥१७७॥

यथादोषोच्छ्रयं तस्य विशुद्धस्य यथाक्रमम्।
पेयादिं वितरेत् सम्यग्दीपनीयोपसंभृतम् ॥१७८॥
ततः पाचनसंग्राहिदीपनीयगणत्रयम्।
पिबेत् प्रातः सुरारिष्टस्नेहमूत्रसुखाम्बुभिः ॥१७९॥
तक्रेण वाऽथ तक्रं वा केवलं हितमुच्यते।
कृमिगुल्मोदरार्शोघ्नीः क्रियाश्चात्रावचारयेत् ॥१८०॥
चूर्णं हिङ्ग्वादिकं चात्र घृतं वा प्लीहनाशनम्।

दोष की अधिकता के अनुसार दोषों को अपने-अपने शुद्धि क्रम से शोधन करके (वात की अधिकता में निरूह, पित्त की अधिकता में विरेचन, कफ की अधिकता में वमन)- दीपनीय द्रव्यों (पंचकोल आदि अग्निदीपक) से मिश्रित पेया, विलेपी आदि देवे। फिर पाचन द्रव्य गण (हरिद्रादि), दीपनीयगण (पिप्पल्यादि), संग्राहीगण (अम्बष्ठादि) को प्रतिदिन प्रातःकाल सुरा, अरिष्ट, स्नेह (घृत), मूत्र या गरम पानी से पीये। अथवा इनको तक्र के साथ पीये, या अकेला तक्र ही पीना उत्तम है। कृमिरोग, गुल्मरोग, उदररोग, अर्शरोग नाशक चिकित्सा यहाँ करे। हिंग्वादि चूर्ण, एवं प्लीहा नाशक घृत (षट्पल घृत) ग्रहणी रोग में वरते।

वक्तव्य—स्वस्थाने मारुतोऽवश्यं वर्धते कफसंक्षये।
स वृद्धः सहसा हन्यात्तस्मात्तं त्वरया जयेत् ॥
वातस्यानुजयेत् पित्तं पित्तस्यानुजयेत् कफम्।
त्रयाणां वा जयेत् पूर्वं यो भवेद् बलवत्तमः ॥१७८-१८०॥

कल्केन मगधाद्यैश्च चाङ्गेरीस्वरसेन च ॥१८१॥
चतुर्गुणेन दध्ना च घृतं सिद्धं हितं भवेत्।

पिप्पल्यादि गण के कल्क से, चांगेरी के स्वरस में, घृत से चार गुणे दही के साथ सिद्ध किया घृत हितकारी है ॥१८१॥

सर्वथा दीपनं सर्वं ग्रहणीरोगिणां हितम्।

अग्निदीपक चिकित्सा ग्रहणी रोग में सब प्रकार से हितकारी है ॥

ज्वरादीनविरोधाच्च साधयेत् स्वैश्चिकित्सितैः ॥१८२॥

ज्वर आदि रोगों को उनकी अपनी-अपनी चिकित्सा से—ग्रहणी रोग के अविरोधि चिकित्सा से शान्त करे ॥१८२॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सा-तन्त्रेऽतिसारप्रतिषेधो नाम (द्वितीयोऽध्यायः, आदितः) चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

अथातः शोषप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे शोष प्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे, जैसा—भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

अनेकरोगानुगतो बहुरोगपुरोगमः ।
दुर्विज्ञेयो दुर्निवारः शोषो व्याधिर्महाबलः ॥३॥

बहुत से रोगों (उपद्रवों) का आश्रय, श्वास, कास आदि बहुत से रोगों के आगे चलनेवाला (पूर्व रूप में होनेवाला) त्रिदोष लक्षणों के कारण कठिनाई से जानने योग्य, परस्पर विरोधि चिकित्सा के कारण कष्टसाध्य, अतिबलवान् रोग-शोष है ॥३॥

संशोषणाद्रसादीनां शोष इत्यभिधीयते ।
क्रियाक्षयकरत्वाच्च क्षय इत्युच्यते पुनः ॥४॥
राज्ञश्चन्द्रमसो यस्मादभूदेष किलामयः ।
तस्मात्तं राजयक्ष्मेति केचिदाहुः पुनर्जनाः ॥५॥

रस आदि धातुओं का शोषण करने से शोष कहा जाता है। क्रियाओं का क्षय करने से क्षय कहा जाता है। राजा चन्द्रमा को यह रोग हुआ था, इसलिये कुछ लोग इसको राजयक्ष्मा कहते हैं।

वक्तव्य—यह आख्यायिका है कि प्रजापति ने अपनी अट्ठाईस कन्याओं का (अश्विनी आदि नक्षत्रों का) विवाह चन्द्रमा से कर दिया। चन्द्रमा ने अश्विनी आदि दूसरी कन्याओं की अपेक्षा रोहिणी पर अधिक आसक्ति दिखाई। इस बात की शिकायत उन्होंने अपने पिता प्रजापति से की। प्रजापति ने चन्द्रमा को सबके साथ समान बर्त्ताव करने के लिये कहा। परन्तु फिर भी प्रजापति के वचनों का तिरस्कार करके वह रोहिणी में ही आसक्त रहा। इससे प्रजापति के क्रोध से यक्ष्मा रूपी विष निकलकर चन्द्रमा में प्रविष्ट हुआ, जिससे चन्द्रमा प्रभा एवं उत्साह हीन हो गया। प्रजापति के दोष के कारण यह शाप हुआ है, यह जानकर चन्द्रमा प्रजापति की सेवा में गया। चन्द्रमा की शुद्ध बुद्धि जानकर अश्विनी द्वारा प्रजापति ने उनकी चिकित्सा करवा दी।

अट्ठाईस कन्यायें—अश्विनी आदि नक्षत्र हैं, चन्द्रमा का इनके साथ सम्बन्ध है। रोहिणी नक्षत्र पर चन्द्रमा अधिक देर रहता है। इस कथानक का अभिप्राय है कि अधिक आसक्ति पूर्वक स्त्री सेवन से यह रोग मुख्यतः होता है।

वि० मन्तव्य—इस रोग में रस रक्त आदि का धीरे-धीरे शोषण होने लगता है, अतः शोष कहलाता है। शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक क्रियाओं का क्षय हो जाता है, अतः क्षय कहलाता है। देखा जाता है कि रस रोग में स्वस्वस्थान-स्थित धातु सूख जाते हैं, शरीर कृश होते होते अत्यन्त कृश हो जाता है। रस धातु सौम्य है, यथा—स खलु द्रवानुसारी स्नेहन-जीवन-तर्पण-धारणाऽऽदिभिः विशेषैः सौम्य इत्यवगम्यते (सु० सू० अ० १४।३) और यह सौम्य-सोमात्मक रस धातु का रोग है ॥४,५॥

स व्यस्तैर्जायते दोषैरिति केचिद्वदन्ति हि ।

यह क्षयरोग वातादि दोषों से पृथगरूप में भी होता है, ऐसा कई कहते हैं (वास्तव में यह रोग त्रिदोषजन्य है) परन्तु—

एकादशानामेकस्मिन् सान्निध्यात्तन्त्रयुक्तितः ॥६॥
क्रियाणामविभागेन प्रागेकोत्पादनेन च ।
एक एव मतः शोषः सन्निपातात्मको ह्यतः ॥७॥

शोष रोग एक ही (सन्निपातात्मक ही) है, क्योंकि—राजयक्ष्मा रोगी में ग्यारह लक्षण विद्यमान रहते हैं, शास्त्र की युक्ति से चिकित्सा क्रम का विभाग पृथक्त्व न होने से, प्रथम प्रजापति के क्रोध से एकही रूप में उत्पन्न होने के कारण शोष एक ही प्रकार का सन्निपातजन्य माना है, भले ही—

उद्रेकात्तत्र लिङ्गानि दोषाणां निपतन्ति हि ।

इस शोष में दोषों की अधिकता से—दोषों के लक्षण प्रकट होते हैं, परन्तु शोष एक ही है ॥६,७॥

क्षयाद्वेगप्रतीघातादाघाताद्विषमाशनात् ॥८॥
जायते कुपितैर्दोषैर्व्याप्तदेहस्य देहिनः ।

कुपित हुए दोष जब रोगी के शरीर में व्याप्त हुए होते हैं, तब क्षय से, वेगों के अवरोध से, आघात से, (मानसिक-शोक आदि से) और विषमाशन से क्षय रोग उत्पन्न होता है ॥८॥

कफप्रधानैर्दोषैर्हि रुद्धेषु रसवर्त्मसु ॥९॥

उत्कट कफवाले दोष से रसवह मार्गों के बन्द हो जाने से क्षयरोग उत्पन्न होता है।

स्रोतसां संनिरोधाच्च रक्तादीनां च संक्षयाद् ।
धातूष्मणां चापचयाद् राजयक्ष्मा प्रवर्त्तते ॥ चरक ॥

अतिव्यवायिनो वाऽपि क्षीणे रेतस्यनन्तरम् ।
क्षीयन्ते धातवः सर्वे ततः शुष्यति मानवः ॥१०॥

अति मैथुन करनेवाले पुरुष में वीर्य के क्षीण होने के पीछे सब धातु क्षीण हो जाते हैं, तब मनुष्य सूख जाता है।

वक्तव्य—यह प्रतिलोमक्षय है, जिस प्रकार बड़े भारी जलाशय के क्षीण होते समय इसमें प्रविष्ट जल-जन्तु भी नष्ट हो जाते हैं, इसी प्रकार वीर्य के क्षीण होने पर दूसरे धातु भी क्षीण हो जाते हैं। वीर्य-बल शक्ति है, उसके घटने से रसादि भी घट जाते हैं।

वि० मन्तव्य—शोष रोग दो प्रकार से प्रवृत्त होता है। १—कफ प्रधान दोषों द्वारा रसवाही स्रोतसों के अवरोध होने पर। इसका नाम अनुलोम क्षय है, इसमें रसवाही स्रोतों के अवरोध के कारण अन्य धातुओं का उचित रूप से पोषण

नहीं होता, क्योंकि अन्नपान का रस ही सब धातुओं का प्रीणन करता है (सु० सू० अ० १४-११)। २—अतिमैथुन से, जब शुक्र धातु का क्षय हो जाता है तब मज्जा अस्थि आदि धातुओं का भी क्षय होने लगता है और धातुओं का क्षय होने से शरीर सूखने लगता है, फलतः शारीरिक मानसिक एवं वाचिक क्रियाओं का क्षय हो जाता है। इसे प्रतिलोम कहते हैं। अनुलोम को शोष और प्रतिलोम को क्षय कहा जाय जो स्यात् कोई अनौचित्य नहीं है। चरक के शब्दों में—रसवाही स्रोतों के रुक जाने से फलतः रक्त आदि धातुओं का क्षय होने से तथा धातुगत अग्नियों के मन्द हो जाने से राजयक्ष्मा की प्रवृत्ति (प्रारम्भ) होती है। इस समय (इन दिनों) में उदर में आगत जिस आहार को अग्नि पकाता है वह प्रायः पुरीष ही बन जाता है, उसका बहुत थोड़ा अंश ओजस् अर्थात् रस बनता है और वह रस भी रसवाही स्रोतों का अवरोध हो जाने से स्वस्थान अर्थात् हृदय (एवं फुफ्फुस) में ही विदग्ध (विकृत) हो जाता है और वही खाँसते समय कफ के रूप में निकलता रहता है (च० चि० अ० ७) अतएव उसे कफ क्षय भी कहते हैं। राजयक्ष्मा काय चिकित्सा का रोग है, अतः च० चि० अ० ७ तथा च० नि० अ० ६ में विस्तार से वर्णित है। पाठक वहीं देखें। आज कल ऐलोपेथी वाले जिसे टी० बी० या थायसिस कहते हैं वह वस्तुतः चरक संहिता में वर्णित शोष रोग है पाठक ध्यान से देखें ॥१०॥

भक्तद्वेषो ज्वरः श्वासः कासः शोणितदर्शनम्।
स्वरभेदश्च जायेत षड्रूपे राजयक्ष्मणि ॥११॥

भोजन में अरुचि, ज्वर, श्वास, कास, रक्त का आना और भेद, ये छै रूप राजयक्ष्मा में होते हैं ॥११॥

स्वरभेदोऽनिलाच्छूलं संकोचश्चांसपार्श्वयोः।
ज्वरो दाहोऽतिसारश्च पित्ताद्रक्तस्य चागमः ॥१२॥
शिरसः परिपूर्णत्वमभक्तच्छन्द एव च।
कासः कण्ठस्य चोद्ध्वंसो विज्ञेयः कफकोपतः ॥१३॥

ग्यारहरूप—वायु के कारण स्वरभेद, शूल, अंस और पार्श्वों में संकोच, पित्त के कारण ज्वर, दाह, अतिसार और रक्त का आना, कफ के कारण, शिर का कफ से भरना, भोजन में अरुचि, कास, कण्ठ भंग, होता है। वात से तीन, पित्त से चार, कफ से चार लक्षण इस प्रकार ग्यारह लक्षण राजयक्ष्मा में होते हैं ॥१२,१३॥

एकादशभिरेभिर्वा षड्भिर्वाऽपि समन्वितम्।
(कासातीसारपार्श्वार्तिस्वरभेदारुचिज्वरैः ॥१४॥
त्रिभिर्वा पीडितं लिङ्गैर्ज्वरकासासृगामयैः।)
जह्याच्छोषार्दितं जन्तुमिच्छन् सुविपुलं यशः ॥१५॥

इन ग्यारह लक्षणों से अथवा छै लक्षणों से युक्त (कास, अतिसार, पार्श्वशूल, स्वरभेद, अरुचि, एवं ज्वर इन छै अथवा ज्वर, कास, रक्तस्राव इन तीन लक्षणों से युक्त) शोष से पीड़ित रोगी को उत्तम यश चाहनेवाला वैद्य छोड़ देवे, उसकी चिकित्सा न करे।

वि० मन्तव्य—छ रूपवाले राजयक्ष्मा में शोणित दर्शन, (श्लो० ११) ११ रूपवाले में रक्तस्य आगमः—रक्त का आना (श्लो० १२), कास आदि छ रूपवाले में पार्श्वाऽऽर्त्ति—पार्श्व (फुफ्फुस) में वेदना तथा ज्वर आदि तीन लक्षणवाले में असृगामय-रक्त रोग या रक्तागम नामक लक्षण फुफ्फुस गत क्षण के सूचक हैं। रक्त का एक नाम "क्षतज" है, शब्दार्थ है जो क्षत से प्रादुर्भूत हो—दिखाई दे। यही क्षत "एक्स रे" द्वारा चित्रपट पर दिखाई पड़ता है। चरक के शब्दों में—"तस्य अतिमात्रेण कर्मणा उरःक्षण्यते, तस्य उरः क्षतं उपप्लवते वायुः........ततः क्षणनात् च एव उरसः....कासप्रसङ्गात् उरसि क्षते शोणितं ष्ठीवति, शोणितगमनात् च अस्य दौर्बल्यं उपजायते" च० नि० अ० ६।४४-५। और इसी का वर्णन अगले २४-२५ वें श्लोकों में किया गया है और वह उरःक्षत (श्लो० १६) से उत्पन्न शोष माना गया है। इसमें प्रथम रक्त आता है, फिर पाक होने पर पूय तथा तद्रूप कफ आता रहता है। इसमें भी अरुण वर्ण का रक्त मिला रहता है, परन्तु कभी कभी किसी २ रोगी को ॥१४,१५॥

व्यवायशोकस्थाविर्यव्यायामाध्वोपवासतः।
व्रणोरःक्षतपीडाभ्यां शोषानन्ये वदन्ति हि ॥१६॥

व्यवाय, शोक, स्थविरता (बुढ़ापा), व्यायाम, मुसाफरी, उपवास, व्रण, उरःक्षत की पीड़ा के कारण से शोष होता है, ऐसा अन्य आचार्य कहते हैं ॥१६॥

व्यवायशोषी शुक्रस्य क्षयलिंगैरुपद्रुतः।
पाण्डुदेहो यथापूर्वं क्षीयन्ते चास्य धातवः ॥१७॥

व्यवाय (मैथुन-वीर्यक्षय) के कारण उत्पन्न शोष में रोगी शुक्रक्षय के लक्षणों से (शुक्रक्षये मेषवृषणयोः वेदना, अशक्तिः मैथुने, चिराद्वा प्रसेकः, प्रसेके चाल्पदर्शनम् रक्तस्य शुक्रस्य वा), पीड़ित, रोगी का शरीर पाण्डुवर्ण होता है, क्रमशः पूर्व-धातु सूख जाते हैं, अर्थात् शुक्र से पूर्व मज्जा का क्षय, मज्जा से पूर्व अस्थि, अस्थि से पूर्व मेद का, मेद से पूर्व मांस का क्षय होता है ॥१७॥

प्रध्यानशीलः स्रस्तांगः शोकशोष्यपि तादृशः।
विना शुक्रक्षयकृतैर्विकारैरभिलक्षितः ॥१८॥

शोकशोषी मनुष्य निरन्तर ध्यान में (चिन्ता में) डूबा, शिथिल अंगों का, व्यवाय शोष के लक्षणों के समान परन्तु शुक्रक्षयजन्य लक्षणों से रहित होता है। (शुक्रक्षय के लक्षण नहीं होते) ॥१८॥

जराशोषी कृशो मन्दवीर्यबुद्धिबलेन्द्रियः ।
कम्पनोऽरुचिमान् भिन्नकांस्यपात्रहतस्वरः (नः)॥१९॥
ष्ठीवति श्लेष्मणाहीनं गौरवारुचिपीडितः ।
संप्रस्रुतास्यनासाक्षः सुप्तरूक्षमलच्छविः ॥२०॥

जराशोषी मनुष्य कृश, मन्दवीर्य, मन्दबुद्धि, मन्दबल एवं मन्द इन्द्रिय शुक्र एवं आँख आदि), कांपनेवाला, अरुचियुक्त, टूटे हुए काँसे के पात्र के समान झंकार (आवाजवाला), कफ के बिना थूकता है, गौरव-भारीपन, अरुचि से पीड़ित, मुख-नासा-आंख से पानी बहता है, कान्ति सुप्त (निर्जीव), रूक्ष एवं मलिन होती है ॥१९,२०॥

अध्वप्रशोषी स्रस्ताङ्गः संभृष्टपरुषच्छविः ।
प्रसुप्तगात्रावयवः शुष्कक्लोमगलाननः ॥२१॥

अध्व (मुसाफरी) शोषी-मनुष्य के अंग ढीले रहते हैं, कान्ति जली हुई एवं कठोर रहती है। शरीर के अवयव सोये हुए, क्लोम, गला और मुख शुष्क रहते हैं ॥२१॥

व्यायामशोषी भूयिष्ठमेभिरेव समन्वितः ।
उरःक्षतकृतैर्लिङ्गैः संयुक्तश्च क्षताद्विना ॥२२॥

व्यायामजन्य शोष से पीड़ित मनुष्य अध्वशोषी के मुख्य एवं बहुत से लक्षणों से युक्त होता है। इसमें उरःक्षतजन्य शोष के सब लक्षण मिलते हैं, परन्तु क्षत नहीं होता ॥२२॥

रक्तक्षयाद्वेदनाभिस्तथैवाहारयन्त्रणात् ।
व्रणितस्य भवेच्छोषः स चासाध्यतमः स्मृतः ॥२३॥

व्रणरोगी में रक्त के क्षय के कारण, वेदना के कारण तथा आहार की परहेजी से व्रण रोगी में जो शोष उत्पन्न हो जाता है, वह असाध्य माना है ॥२३॥

व्यायामभाराध्ययनैरभिघातातिमैथुनैः ।
कर्मणा चाप्युरस्येन वक्षो यस्य विदारितम् ।
तस्योरसि क्षते रक्तं पूयः श्लेष्मा च गच्छति ॥२४॥
कासमानश्छर्दयेच्च पीतरक्तासितारुणम् ।
संतप्तवक्षाः सोऽत्यर्थं दूयनात्परिताम्यति ॥२५॥
दुर्गन्धवदनोच्छ्वासो भिन्नवर्णस्वरो नरः ।

व्यायाम से, भार से, अध्ययन (पढ़ने एवं पढ़ाने) से चोट लगने से, अतिमैथुन से छाती पर जोर पड़नेवाले कार्यों से (जैसे धनुष को तानना, भागते हुए घोड़ों के साथ भागना या रोकना), जिस रोगी का उरःस्थल विदीर्ण हो जाता है, उसकी छाती में क्षत होने से रक्त, पूय और कफ जाता है। खांसते हुए या वमन करते हुए पीला, लाल, काला, अरुण स्राव होता है। वक्षस्थल अतिशय जलता है, वेदना की अधिकता से मूर्च्छा आती हैं, मुख एवं उच्छ्वास में दुर्गन्ध आती है, वर्ण और स्वर फटा हुआ होता है ॥२४,२५॥

केषांचिदेवं शोषो हि कारणैर्भेदमागतः ॥२६॥
न तत्र दोषलिंगानां समस्तानां निपातनम् ।

कई आचार्यों के मत में व्यायाम आदि अनेक कारणों से शोष में जो भेद आया है, उसे वे नहीं मानते, क्योंकि उनमें तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं। अर्थात् इनके मत में शोष एक ही है—व्यायाम आदि भेदजन्य नहीं हैं ॥२६॥

क्षया एव हि ते ज्ञेयाः प्रत्येकं धातुसंज्ञिताः ॥२७॥

व्यायामादिजन्य इन शोषों को क्षय ही जानना चाहिये, इनको धातुक्षय संज्ञक जाने।

वक्तव्य—क्योंकि शुक्र से आरम्भ करके विलोम रूप में व्यवाय आदि के कारण धातुओं का यथापूर्व क्षय होता है ॥

चिकित्सितं तु तेषां हि प्रागुक्तं धातुसंक्षये ॥२८॥

दोषधातु मल क्षय वृद्धि अध्याय में इन धातुक्षयों की चिकित्सा पहले कह दी है ॥२८॥

श्वासाङ्गसादकफसंस्रवतालुशोष-
च्छर्द्यग्निसादमदपीनसपाण्डुनिद्राः ।
शोषे भविष्यति भवन्ति स चापि जन्तुः
शुक्लेक्षणो भवति मांसपरो रिरंसुः ॥२९॥
स्वप्नेषु काकशुकशल्लकिनीलकण्ठ-
गृध्रास्तथैव कपयः कृकलासकाश्च ।
तं वाहयन्ति स नदीर्विजलाश्च पश्ये-
च्छुष्कांस्तरून् पवनधूमदवार्दितांश्च ॥३०॥

पूर्वरूप—श्वास, अंगों में शिथिलता, कफ का स्राव, तालु का सूखना, वमन, अग्निमान्द्य, मद (मूर्च्छा), पीनस, पाण्डुरोग, नींद की अधिकता, आंखों का सफेद होना, मांसाभिलाषा, मैथुन की इच्छा, ये होनेवाले शोष रोग में लक्षण होते हैं। स्वप्न में कौआ, तोता, चील, नीलकण्ठ, गीध, बन्दर, छिपकली इसको ले जाते प्रतीत होते हैं। रोगी सूखी नदियाँ को देखता है, वृक्षों को रूखे, वायु, धूम एवं दावानल से जले देखता है।

वक्तव्य—मद (सुपारी जन्य मत्तता) रिरंसु-मैथुन की इच्छा, यह रोग माहात्म्य से होता है। कृकलास गिरगिट ॥

महाशनं क्षीयमाणमतीसारनिपीडितम् ।
शूनमुष्कोदरं चैव यक्ष्मिणं परिवर्जयेत् ॥३१॥

बहुत खाने पर भी क्षीण होते हुए, अतिसार से पीड़ित, मुष्क, (अण्डकोष) और उदर पर सूजन होने पर यक्ष्मा रोगी की चिकित्सा न करे ॥३१॥

उपचरेदात्मवन्तं दीप्ताग्निमकृशं नवम् ।

जितेन्द्रिय, प्रदीप्ताग्नि, बलवान्, नये रोगी की चिकित्सा करे। (नवम्-एक साल से कम)।

स्थिरादिवर्गसिद्धेन घृतेनाजाविकेन च ॥३२॥
स्निग्धस्य मृदु कर्तव्यमूर्ध्वं चाधश्च शोधनम्।
आस्थापनं तथा कार्यं शिरसश्च विरेचम् ॥३३॥

विदारिगन्धादिगण से सिद्ध किये बकरी या भेड़ के घी से रोगी का स्नेहन करके ऊर्ध्व एवं अधः (वमनविरेचन) मृदु शोधन करे। मृदु आस्थापन (निरूह) देवे, शिरोविरेचन भी मृदु करे ॥३२,३३॥

यवगोधूमशालींश्च रसैर्भुञ्जीत शोधितः।

शोधन हो जाने पर जौ गेहूँ, शाली को जांगल मांस रस से खाये।

दृढेऽग्नौ बृंहयेच्चापि निवृत्तोपद्रवं नरम् ॥३४॥

अग्नि के बलवान् होने पर, उपद्रव शान्त हो जाने पर मनुष्य का बृंहण करे ॥३४॥

व्यवायशोषी को प्रायः वातजन्यरोग होते हैं। इसके लिये बृंहण, स्निग्ध, वातनाशक विधि बरते।

कहा भी है—

"ग्लानिःकम्पोऽवसादः तदनु च कृशता क्षीणता चेन्द्रियाणाम्, शोषो श्वासोपदंशज्वरगुदजगदाः क्षीणता सर्वधातोः। जायन्ते दुर्निवाराः पवनपरिभवाः क्लीबतालिंगभंगाः। वामावश्यातियोगात् भजत इह सदा वाजिकर्माच्युतस्य" ॥३४॥

व्यवायशोषिणं प्रायो भजन्ते वातजा गदाः।
बृंहणीयो विधिस्तस्मै हितः स्निग्धोऽनिलापहः ॥३५॥
काकानुलूकान्नकुलान् बिडालान्
गण्डूपदान् व्यालबिलेशयाखून्।
गृध्रांश्च दद्याद्विविधैः प्रवादैः
ससैन्धवान् सर्षपतैलभृष्टान् ॥३६॥
देयानि मांसानि च जाङ्गलानि
मुद्गाढकीसूपरसाश्च हृद्याः।
खरोष्ट्रनागाश्वतराश्वजानि
देयानि मांसानि सुकल्पितानि ॥३७॥
मांसोपदंशांश्च पिबेदरिष्टान्
मार्द्वीकयुक्तान् मदिराश्च सेव्याः।
अर्कामृताक्षारजलोषितेभ्यः
कृत्वा यवेभ्यो विविधांश्च भक्ष्यान् ॥३८॥
खादेत्, पिबेत् सर्पिरजाविकं वा
कृशो यवाग्वा सह भक्तकाले।
सर्पिर्मधुभ्यां त्रिकटु प्रलिह्या-
च्चव्याविडङ्गोपहितं क्षयार्तः ॥३९॥

कौआ, उल्लू, नेवला, बिल्ली, केंचुआ, व्याल (हिंसक पशु), बिलेशय, चूहा, गीध, इनको नानाप्रकार के झूठे वचन कहकर, सैन्धव के साथ सरसों के तैल में भूनकर देवे। जांगल मांस देवे। मूंग, अरहर के यूष देवे, मन के प्रिय मांसरस दे। गधा, ऊंट, हाथी, खच्चर, घोड़ा इनके मांसों को भली प्रकार बनाकर देवे। मांस के पकौड़ों को खाकर अरिष्टों (अभयारिष्ट आदि) को पीये। मार्द्वीक मद्य, या मदिरा को पीये। आक और गिलोय के क्वाथ के पानीयक्षार में रात भर रक्खे। जौ से नाना प्रकार के भक्ष्य बनाकर खाये। बकरी या भेड़ का घी पीये। कृश व्यक्ति भोजन के समय यवागू के साथ बकरी या भेड़ का घी खाये। क्षय रोगी, त्रिकटु, विडंग के साथ घी और मधु को चाटे।

वक्तव्य — बिल्ली छै प्रकार की है—ग्राम्यो वन्यस्तोयजातः पक्षिमार्जारविज्जकौ। सुगन्धवृषणश्चेति मार्जाराः षट् प्रकीर्त्तिताः॥ प्रवाद—मिथ्यावचन से, चरक में इसके लिये उपधा शब्द प्रयोग किया है, उसमें भी—काकांस्तित्तिरिशब्देन मत्स्यशब्देन चोरगान्। भृष्टमत्स्यांत्रशब्देन दद्याद् गण्डूपदानपि॥ इसका लाभ—जानन् जुगुप्सन्नैवाद्याद् भुक्तं वा पुनरुल्लिखेत्। तस्माच्छद्मोपसिद्धानि मांसान्येतानि दापयेत्॥ गधे आदि का मांस मांस को बढ़ाता है, यथा—"खरोष्ट्राश्वतरं नागं मांसं मांसाभिवृद्धये। दद्यान्माहिषशब्देन वेसवारीकृतं भिषक्॥" पानीयक्षार—"पानीयभोजनायाथ भस्मक्षाव्यं चतुर्गुणे। जलेऽर्धमवशिष्टं तु क्षाराम्भो ग्राह्यमिष्यते॥" चरक—गजखड्गतुरंगाणां वेशवारीकृतं भिषक्। दद्यान्महिषशब्देन मांसं मांसाभिवृद्धये॥ मांसेनोपचिताङ्गानां मांसं मांसकरं परम्। तीक्ष्णोष्णलाघवात् शस्तं विशेषान्मृगपक्षिणाम्॥ मांसानि यान्यनभ्यासात् अनिष्टानि प्रयोजयेत्। तेषूपधा, सुखं भोक्तुं तथा शक्यानि तानि हि। जानन् जुगुप्सन्नैवाद्याज्जग्धं वा पुनरुल्लिखेत्। तस्मात् छद्मोपसिद्धानि मांसान्येतानि दापयेत्॥

वि० मन्तव्य—विविधैः प्रवादैः—प्रवाद–छल उपधा। जिन देशों–जातियों, कुलों अथवा व्यक्तियों में कौआ, उल्लू आदि का मांस खाने का प्रचार अथवा अभ्यास नहीं है वहाँ अथवा उस व्यक्ति को छल से माँस खिलाना चाहिये। चरक के शब्दों में कौआ को तीतर कहकर, सर्प को मछली कहकर खिला देना चाहिये, अन्यथा घृणा होने के कारण छर्दि हो सकती है। चीन जापान आदि देशों में तो सर्प, मार्जार आदि का मांस चाव से खाया जाता है, वहाँ छल करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। और यूरोपीय देशों में गधा एवं खच्चर का मांस भी चाव से खाया जाता है, जैसे भारत में मछली तथा बकरा का मांस तथा कुछ जातियों में महिष का और कुछ व्यक्ति सर्प का मांस भी चाव से खाते हैं। तत्पर्य यह है, कि

शोष रोगी को मांस खिलाना चाहिये। क्योंकि शरीर का बृंहण कराने के लिये मांस से उत्तम अन्य कोई वस्तु नहीं है ॥

गांसादमांसेसु घृतं च सिद्धं
शोषापहं क्षौद्रकणासमेतम्।

मांस खानेवाले (गीध आदि) प्राणियों के मांसों में सिद्ध किया घृत मधु और पिप्पली के साथ खाने से शोष नाशक है।

द्राक्षासितामागधिकावलेहः
सक्षौद्रतैलः क्षयरोगघाती ॥४०॥
घृतेन चाजेन समाक्षिकेण
तुरङ्गगन्धातिलमाषचूर्णम्।

द्राक्षा, शर्करा, पिप्पली का अवलेह मधु और तैल के साथ खाने से क्षयरोग नाशक है। अश्वगन्धा, तिल, उड़द का चूर्ण, बकरी के घी और मधु के साथ अवलेह रूप में खाये ॥४०॥

सिताश्वगन्धामगधोद्भवानां
चूर्णं घृतक्षौद्रयुतं प्रलिह्यात् ॥४१॥

सिता, अश्वगन्धा, पिप्पली इनके चूर्ण को घी और मधु के साथ चाटे ॥४१॥

क्षीरं पिबेद्वाऽप्यथ वाजिगन्धा-
विपक्वमेवं लभतेऽङ्गपुष्टिम्।

अश्वगन्धा से पकाया दूध पीये, इससे अंगों की पुष्टि होती है।

तदुत्थितं क्षीरघृतं सिताढ्यं
प्रातः पिबेद्वाऽपि पयोनुपानम् ॥४२॥

अश्वगन्धा से सिद्ध दूध में से निकाला घृत प्रचुर सिता (मिश्री) के साथ प्रातःकाल दूध के अनुपान से पीये।

वि० मन्तव्य—निरामिष भोजियों के लिये अश्वगन्धा का चूर्ण आधा तो० से १ तो० की मात्रा में आधा सेर १ सेर दूध में पकाकर, रबड़ी का-सा गाढ़ा हो जानेपर, शीतल करके और खण्ड या मिश्री मिलाकर भूखे पेट पीने से बहुत लाभप्रद है। और निम्नलिखित वासाघृत आदि योग भी उत्तम हैं ॥४२॥

उत्सादने चापि तुरङ्गगन्धा
योज्या यवाश्चैव पुनर्नवे च।

उद्वर्त्तन (उबटन) में—अश्वगन्धा, जौ, श्वेत एवं लाल पुनर्नवा को बरते।

कृत्स्ने वृषे तत्कुसुमैश्च सिद्धं
सर्पिः पिबेत्क्षौद्रयुतं हिताशी ॥४३॥
यक्ष्माणमेतत् प्रबलं च कासं
श्वासं च हन्यादपि पाण्डुतां च।

अडूसा के मूल पत्र-शाखा-अंकुर के क्वाथ में पुष्पों के कल्क से सिद्ध किया घृत मधु के साथ-हितकारी भोजन करते हुए खाये। इससे यक्ष्मा, प्रबल कास, श्वास और पाण्डु भी नष्ट हो जाता है।

वक्तव्य—मूल-पत्र आदि के चतुर्गुण क्वाथ में पुष्पकल्क आठवां भाग मिलाये, यथा—

"शणस्य कोविदारस्य वृषस्य च पृथक् पृथक्।
कल्काढ्यत्वात् पुष्पकल्कं प्रस्थे पलचतुष्टयम्" ॥४३॥

शकृद्रसा गोऽश्वगजाव्यजानां
क्वाथा मिताश्चापि तथैव भागैः ॥४४॥
मूर्वाहरिद्राखदिरद्रुमाणां
क्षीरस्य भागस्त्वपरो घृतस्य।
भागान् दशैतान् विपचेद्विधिज्ञो
दत्त्वा त्रिवर्गं मधुरं च कृत्स्नम् ॥४५॥
कटुत्रिकं चैव समद्रदारु
घृतोत्तमं यक्ष्मनिवारणाय।

गाय-घोड़ा हाथी-बकरी-भेड़ इनके गोबर का रस, मूर्वा, हल्दी और खैर इनका क्वाथ, नवां दूध ये प्रत्येक समान भाग और दशवां घी, यह भी एक भाग के समान लेकर, त्रिफला सम्पूर्ण मधुर वर्ग (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि ये आठ अथवा काकोल्यादिगण), त्रिकटु, देवदारु, इनका कल्क मिलाकर घृत सिद्ध करे। यह घृत यक्ष्मा नाश के लिये श्रेष्ठ है ॥४४,४५॥

द्वे पञ्चमूल्यौ वरुणं करञ्जं
भल्लातकं बिल्वपुनर्नवे च ॥४६॥
यवान् कुलत्थान् बदराणि भार्गीं
पाठां हुताशं समहीकदम्बम्।
कृत्वा कषायं विपचेद्धि तस्य
षड्भिर्हि पात्रैर्घृतपात्रमेयम् ॥४७॥
व्योषं महावृक्षपयाऽभयां च
चव्यं सुराख्यं लवणोत्तमं च।
एतद्धि शोषं जठराणि चैव
हन्यात् प्रमेहांश्च सहानिलेन ॥४८॥

दशमूल, वरणा, करंज, भिलावा, बिल्व, पुनर्नवा, जौ, कुलत्थी, बेर, भार्गी, पाठा, चित्रक, महीकदम्ब, इनका कषाय चतुर्गुण जल में करे। यह कषाय छै आढ़क, घृत एक आढ़क, त्रिकटु, स्नुहीदूध, हरड़, चव्य, देवदारु, सैन्धव इनका कल्क मिलाकर घृत सिद्ध करे। यह घृत शोष, जठर (उदर), और सब प्रकार के वायु समेत प्रमेहों को भी नष्ट करता है। (वात-जन्य प्रमेह असाध्य हैं, यह स्तुतिपरक वचन है) ॥४६–४८॥

गोऽश्वाव्यजेभैणखरोष्ट्रजातैः
शकृद्रसक्षीररसक्षतोत्थैः।
द्राक्षाश्वगन्धामगधासिताभिः
सिद्धं घृतं यक्ष्मविकारहारि ॥४९॥

गाय, घोड़ा, भेड़, बकरी, हरिण, ऊंट, गधा, हाथी, इनके गोबर के रस, दूध, मांसरस, रक्त, इनमें द्राक्षा, अश्वगन्धा,

पिप्पली, शर्करा इनके कल्क से सिद्ध किया घृत यक्ष्मा रोग को नष्ट करता है ।।४९।।

एलाजमोदामलकाभयाक्ष-
गायत्र्यरिष्टासनशालसारान् ।
विडङ्गभल्लातकचित्रकोग्रा-
कटुत्रिकाम्भोदसुराष्ट्रजांश्च ।।५०।।
पक्त्वा जले तेन पचेद्धि सर्पि-
स्तस्मिन् सुसिद्धे त्ववतारिते च ।
त्रिंशत्पलान्यत्र सितोपलाया
दत्त्वा तुगाक्षीरिपलानि षट् च ।।५१।।
प्रस्थे घृतस्य द्विगुणं च दद्यात्
क्षौद्रं ततो मन्थहतं विदध्यात् ।
पलं पलं प्रातरतः प्रलिह्य
पश्चात् पिबेत् क्षीरमतन्द्रितश्च ।।५२।।
एतद्धि मेध्यं परमं पवित्रं
चक्षुष्यमायुष्यमथो यशस्यम् ।
यक्ष्माणमाशु व्यपहन्ति चैतत्
पाण्ड्वामयं चैव भगन्दरं च ।।५३।।
श्वासं च हन्ति स्वरभेदकास-
हृत्प्लीहगुल्मग्रहणीगदांश्च ।
न चात्र किंचित् परिवर्जनीयं
रसायनं चैतदुपास्यमानम् ।।५४।।

इलायची, अजवायन, आंवला, हरड़, बहेड़ा, खैर, नीम, विजयसार, शाल इनके सार भाग, विडङ्ग, भिलावा, चित्रक, वच, त्रिकटु, मोथा, सोरठी मिट्टी (गोपीचन्दन) इनके क्वाथ से घृत एक प्रस्थ लेकर घृत सिद्ध करे। सिद्ध किये इस एक प्रस्थ घृत में मिश्री तीस पल, वंशलोचन छै पल, मधु दो प्रस्थ मिलाकर मन्थन दण्ड से मथकर रख देवे। प्रतिदिन प्रातःकाल इसमें से एक पल चाटकर ऊपर से दूध पीये। इस प्रकार बिना आलस्य के करे। यह घृतयोग अतिशय मेधावर्धक, पवित्र, चक्षुष्य, आयुष्य, यशस्य है, यक्ष्मारोग को शीघ्र नष्ट करता है, पाण्डुरोग, भगन्दर, श्वास, स्वरभेद, कास, हृदय, प्लीहा गुल्म-ग्रहणी रोग को नष्ट करता है। इसके-सेवन करने में किसी प्रकार का परहेज नहीं रखना पड़ता। निरन्तर सेवन करने पर यह योग रसायन है ।।५०-५४।।

प्लीहोदरोक्तं विहितं च सर्पि-
स्त्रीण्येव चान्यानि हितानि चात्र ।

यक्ष्मा रोग में प्लीहोदरोक्त षट्पलघृत, तथा दूसरे तीन घृत (१—हरीतकीचूर्णं प्रस्थं, २—गव्ये पयसि महावृक्षक्षीरम्, ३—चव्य चित्रक दन्ती अतिविषा), हितकारी हैं।

उपद्रवांश्च स्वरवैकृतादीन्
जयेद्यथास्वं प्रसमीक्ष्य शास्त्रम् ।।५५।।

स्वरभंग आदि उपद्रवों को उनकी अपनी अपनी चिकित्सा से शास्त्र के अनुसार शान्त करे ।।५५।।

अजाशकृन्मूत्रपयोघृतासृङ्-
मांसालयानि प्रतिसेवमानः ।
स्नानादिना ना विधिना जहाति
मासादशेषं नियमेन शोषम् ।।५६।।

बकरी की मींगनी, मूत्र, दूध, घृत, रक्त, मांस, साथ में रहना (ये सब बकरी के ही) इनका स्नान आदि नाना विधि से नियम पूर्वक सेवन करने पर, एक मास में सम्पूर्ण शोषरोग से मुक्त हो जाता है।

कहा भी है—

वक्तव्य—'छागमांसं पयश्छागं छागं सर्पिश्च शर्करम्। छागोपसेवा शयनं छागमध्ये तु यक्ष्मनुत् ।।" बकरी और पारावत को तथा बन्दर को क्षय नहीं होता, ऐसी मान्यता प्राचीन आचार्यों की है। पारावत को इसी लिये घरों में पालते हैं, यथा—मेघदूत में—"तां कस्यांचिद् भवनवलभौ सुप्तपारावतायां, नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात् खिन्नविद्युत्कलत्रः" ।।५६।।

रसोनयोगं विधिवत् क्षयार्तः
क्षीरेण वा नागबलाप्रयोगम् ।
सेवेत वा मागधिकाविधानं
तथोपयोगं जतुनोऽश्मजस्य ।।५७।।

क्षयरोगी विधिपूर्वक लहसुन का उपयोग करे या दूध से नागबला को बरते। अथवा पिप्पलीवर्धमान का सेवन करे, इसी प्रकार शिलाजतु का उपयोग करे।

वि० मन्तव्य—श्लो० ५६ में बतलाए अजासेवन तथा इस श्लोक में बतलाए रसोन योग आदि योग बहुत उपयोगी हैं। जो निरामिष भोजी हैं, वे अजादुग्ध पीवें एवं अजाओं के साथ हिलमिल कर ही रहें तो भी लाभ होता है ।।५७।।

शोकं स्त्रियं क्रोधमसूयनं च

क्षयरोगी—शोक, क्रोध, मैथुन निन्दा करना छोड़ दे।

त्यजेदुदारान् विषयान् भजेत ।
वैद्यान् द्विजातींस्त्रिदशान् गुरूंश्च
वार्ताश्च पुण्याः शृणुयाद् द्विजेभ्यः ।५८।

धर्म के अविरोधि—मन के अनुकूल विषयों का सेवन करे। वैद्य ब्राह्मण, देवता, गुरुजनों की पूजा करे तथा ब्राह्मणों से पुण्यकारी उपदेश सुने ।।५८।।

'मांसमेवाश्नतः शोषो माध्वीकं पिबतोऽपि च ।
नियतानल्पचित्तस्य चिरं काये न तिष्ठति ।।
वारुणीमण्डनित्यस्य बहिर्मार्जनसेविनः ।
अविधारितवेगस्य यक्ष्मा न लभतेऽन्तरम् ।।
प्रसन्नां वारुणीं सीधुमरिष्टानासवान्मधु ।
यथार्हमनुपानार्थं पिबेन्मांसानि भक्षयन् ।।
मद्यं तैक्ष्ण्यौष्ण्यवैशद्यसूक्ष्मत्वात् स्रोतसां मुखम् ।
प्रमथ्य विवृणोत्याशु तन्मोक्षात् सप्त धातवः ।।

पुष्यन्ति धातुपोषाच्च शीघ्रं शोषः प्रशाम्यति ।
(२) बहिः स्पर्शनमाश्रित्य वक्ष्यतेऽतः परं विधिः ।
स्नेहक्षीराम्बुकोष्ठेषु स्वभ्यक्तमवगाहयेत् ।।
स्रोतोविबन्धमोक्षार्थं बलपुष्ट्यर्थमेव च ।
उत्तीर्णं मिश्रकैः स्नेहैः पुनराक्तैः सुखैः करैः ।।
मृद्नीयात् सुखमासीनं सुखे चोत्सादयेन्नरम् ।
(३) सत्येनाचारयोगेन मङ्गल्यैरप्यहिंसया ।
वैद्यविप्रार्चनाच्चैव रोगराजो निवर्त्तते ।।
यया प्रयुक्तया चेष्ट्या राजयक्ष्मा पुरा जितः ।
तां वेदविहितामिष्टिमारोग्यार्थी प्रयोजयेत्" ।।च०।।

इति श्रीसुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे शोषप्रतिषेधो नाम (तृतीयोऽध्यायः, आदितः) एकचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४१।।

द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

अथातो गुल्मप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।।१।।
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ।।२।।

अब इसके आगे गुल्मप्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे-जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ।।१,२।।

यथोक्तैः कोपनैर्दोषाः कुपिताः कोष्ठमागताः ।
जनयन्ति नृणां गुल्मं स पञ्चविध उच्यते ।।३।।

व्रण प्रश्न अध्याय में कहे बलवद् विग्रह, क्रोधादि, दिवास्वप्न आदि कोपक कारणों से प्रकुपित हुए दोष कोष्ठ में आकर गुल्म को उत्पन्न करते हैं । यह गुल्म पाँच प्रकार का है ।

वक्तव्य—कोष्ठ—"स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च । हृदुण्डकः फुफ्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते ।।" पांच प्रकार का गुल्म—पृथग् दोषों से तीन प्रकार का, सन्निपात से और रक्त से । द्वन्द्वज गुल्म भी चरक में कहे हैं, यथा—"व्यामिश्रलिंगानपरांस्तु गुल्मान् त्रीनादिशेद् औषधकल्पनार्थम् ।।" ये तीन भेद औषध विचार से हैं ।।३।।

हृद्बस्त्योरन्तरे ग्रन्थिः संचारी यदि वाऽचलः ।
चयापचयवान् वृत्तः स गुल्म इति कीर्तितः ।।४।।

गुल्म की परिभाषा—हृदय और वस्ति के बीच में (सम्पूर्ण उदर में), चलनेवाली, या स्थिर रहनेवाली, घटने एवं बढ़नेवाली, जो गाँठ होती है, उसको गुल्म कहते हैं ।

वक्तव्य—अर्बुद, सिस्ट आदि से भेद इसमें हो जाता है। वायु की प्रधानता रहने से गुल्म में घटाव बढ़ाव गति एवं स्थिरता तथा आकार रहता है । वायु के शान्त होने से गुल्म भी शान्त हो जाता है ।।४।।

पञ्च गुल्माश्रया नृणां पार्श्वे हृन्नाभिबस्तयः ।

मनुष्यों में गुल्म के आश्रय पाँच हैं, हृदय, नाभि, वस्ति, और दो पार्श्व (पड़खे) ।

कुपितानिलमूलत्वाद् गूढमूलोदयादपि ।।५।।
गुल्मवद्वा विशालत्वाद् गुल्म इत्यभिधीयते ।

गुल्म की निरुक्ति-आकुलीकृत वायुमूल से, गूढमूल के कारण उत्पन्न होने से, गुल्म की भाँति विशाल होने से इसको 'गुल्म' शब्द से कहा जाता है ।

वक्तव्य—वायु गुल्म का कारण है, जैसा कि चरक में कहा है—"सर्वेष्वपि तु खल्वेतेषु गुल्मेषु न कश्चिद् वातादृते संभवति गुल्मः ।। (२) मारुते ह्युपशान्ते स्वल्पेनापि प्रयत्नेन शक्योऽन्योऽपि दोषो नियन्तुं गुल्मेषु ।। गुल्मानामनिलशान्तिरुपायैः सर्वशो विधिवदाचरितव्या ।।" चरक नि० अ० ३ । वायु मुख्यतः गुल्म में कुपित व्याकुल रहती है, गुल्म की उत्पत्ति में कारण गुप्त रहता है, गुल्म (समूह) की भाँति विशाल होने से, यथा—वृक्षगुल्म, लतागुल्म, पशुगुल्म, सैन्यगुल्म, आदि समूह के लिये प्रवृत्त होता है । इसलिये विशाल होने से गुल्म कहते हैं ।।५।।

स यस्मादात्मनिचयं गच्छत्यप्स्विव बुद्बुदः ।।६।।
अन्तः सरति यस्माच्च न पाकमुपयात्यतः ।

गुल्म अपने ही (अपने अवयव में ही) निचय (बढ़ता) है, जिस प्रकार पानी का बुलबुला पानी से ही बढ़ता है । अन्दर में घूमता है, इसलिये यह गुल्म पकता नहीं ।

वक्तव्य - प्रायः करके वातिकगुल्म नहीं पकता, पित्तज एवं रक्तजगुल्म पकते हैं, इसी से चरक में कहा है—"रक्तपित्तातिवृद्धत्वात् क्रियामनुपलभ्य च । यदि गुल्मो विदह्येत, शस्त्रं तत्र भिषग्जितम् ।।" पित्तजगुल्म रक्तजगुल्म (मकल्ल विद्रधि) प्रायः पक भी जाते हैं । अन्तः विद्रधि शीघ्र पकती है, और गुल्म मन्दपाकी रहता है, यह इनमें भेद हैं ।।६।।

स व्यस्तैर्जायते दोषैः समस्तैरपि चोच्छ्रितैः ।।७।।
पुरुषाणां तथा स्त्रीणां ज्ञेयो रक्तेन चापरः ।

यह पाँच प्रकार का गुल्म कुपित हुए वातादि पृथक् दोषों से तीन प्रकार का, एवं सन्निपात रूप में कुपित दोषों से एक प्रकार का पुरुष और स्त्रियों में होते हैं । स्त्रियों में रक्तजन्य (आर्त्तवजन्य) गुल्म एक अधिक होता है ।।७।।

सदनं मन्दता वह्नेराटोपोऽन्त्रविकूजनम् ।।८।।
विण्मूत्रानिलसङ्गश्च सौहित्यासहता तथा ।
द्वेषोऽन्ने वायुरूर्ध्वं च पूर्वरूपेषु गुल्मिनाम् ।।९।।

पूर्वरूप—शिथिलता, अग्नि की मन्दता, आध्मान, आंतों में गड़गड़ाहट, मल मूत्र-वायु का अवरोध, तृप्ति की असहिष्णुता, अन्न में द्वेष, वायु का ऊर्ध्वगामि होना, गुल्म के पूर्वरूप हैं ।

वक्तव्य—भोजन जरा अधिक खाने पर या पेट भर के खा लेने से हृदय पर भार, श्वास काठिन्य, पड़खों का फटना आदि अनुभव होते हैं, जिसे बम्बई की तरफ गैस चढ़ना या गैस होना कहते हैं ॥८,९॥

हृत्कुक्षिशूलं मुखकण्ठशोषो
वायोर्निरोधो विषमाग्निता च ।
ते ते विकाराः पवनात्मकाश्च
भवन्ति गुल्मेऽनिलसंभवे तु ॥१०॥

वातजन्यगुल्म में-हृदय और कुक्षि (उदरपड़खों) में शूल; मुख और गले का शोष, वायु का अवरोध, अग्नि की विषमता (कभी भूख लगना, कभी नहीं लगना), स्तम्भन-कम्पन आदि वातजन्य रोग होते हैं ॥१०॥

स्वेदज्वराहारविदाहदाहा-
स्तृष्णाऽङ्गरागः कटुवक्त्रता ।
पित्तस्य लिङ्गान्यखिलानि यानि
पित्तात्मके तानि भवन्ति गुल्मे ॥११॥

पित्तजन्य में-स्वेद, ज्वर आहार में विदाह (खटास होना), दाह, प्यास, अंगों में सुर्खी, मुख में कटुता, पित्त के दूसरे सम्पूर्ण लक्षण (भ्रम, मद, मूर्च्छा) होते हैं ॥

वक्तव्य—अम्लीभवत्यन्नमथो ज्वरश्च दाहः पिपासा कटुवक्त्रता च । पित्तस्य लिंगानि च कीर्त्तितानि भवन्ति पित्तप्रभवे च गुल्मे ॥११॥

स्तैमित्यमन्नेऽरुचिरङ्गसाद-
श्छर्दिः प्रसेको मधुरास्यता च ।
कफस्य लिङ्गानि च यानि तानि
भवन्ति गुल्मे कफसंभवे तु ॥१२॥

कफजन्य गुल्म में-स्तिमितता (अंगों का गीले भारीवस्त्र से ढंपा सा होना), अन्न में अरुचि, अङ्गों में शिथिलता, वमन, मुख से थूक बहना, मुख में मधुरता, भारीपन, शीतलता आदि कफजन्य दूसरे लक्षण होते हैं ॥१२॥

सर्वात्मकः सर्वविकारयुक्तः
सोऽसाध्य उक्तः;

सन्निपातजन्यगुल्म में सब दोषों के लक्षण रहते हैं, यह असाध्य कहा है ।

वक्तव्य—दूसरे इसका लक्षण-"सिराजालपरिच्छन्नो दाहरागज्वरान्वितः । कूर्मवद् रक्तपर्यन्तः त्रिदोषः स न सिध्यति ॥" गुल्म की एक दूसरी अवस्था को उपस्तम्भ कहते हैं, यथा-पयो ह्यम्लसमायुक्तं दधिभावं व्रजेद्यथा । यत्नहीनस्य गुल्मोऽपि तथोपस्तम्भतां व्रजेत् ॥ अम्भोवहेस्तम्भयित्वा स्रोतसी कोष्ठसंश्रितः । उदरे प्रतिसन्तिष्ठेद् उपस्तम्भं तु तं विदुः ।

क्षतजं प्रवक्ष्ये ।
नवप्रसूताऽहितभोजना या
या चामगर्भं विसृजेदृतौ वा ॥१३॥

वायुर्हि तस्याः परिगृह्य रक्तं
करोति गुल्मं सरुजं सदाहम् ।
पैत्तस्य लिङ्गेन समानलिङ्गं
विशेषणं चाप्यपरं निबोध ॥१४॥
न स्पन्दते नोदरमेति वृद्धिं
भवन्ति लिङ्गानि च गर्भिणीनाम्
तं गर्भकालातिगमे चिकित्स्य-
मसम्भवं गुल्ममुशन्ति तज्ज्ञाः ॥१५॥

रक्तजन्यगुल्म को कहते हैं-तुरन्त प्रसव की हुई जो स्त्री अहित भोजन करती है, अथवा जिस स्त्री को छै मास तक कच्चे गर्भ का स्राव हुआ है, उसके अपथ्य सेवन से या ऋतुकाल में अपथ्य आहार करने पर—वायु स्त्री के आर्त्तव को रोककर गुल्म को उत्पन्न करती है, इससे उसे पीड़ा और दाह रहता है । इस रक्त गुल्म में पित्त के समान लक्षण होते हैं, दूसरे विशेष लक्षणों को सुनो । यह रक्तगुल्म गर्भ के 'समान चेष्टा नहीं करता, उदर भी नहीं बढ़ता, गर्भवती के दूसरे लक्षण (थकान आदि) होते हैं । इस रक्तजगुल्म की चिकित्सा गर्भकाल के व्यतीत होने पर करनी चाहिये ।

वक्तव्य—प्रसूता शब्द से प्रसव मास तक की संज्ञा है, यथा—"अनेन विधिनाऽध्यर्धमासमुपसंस्कृता विमुक्ताहाराचारा विगतसूतिकाभिधाना स्यात् । पुनरार्त्तवदर्शनादित्येके ॥" सुश्रुत । चरक में—"यः स्पन्दते, पिण्डित एव नोङ्गैः चिरात् सशूलः समगर्भलिंगः। स एव च स्त्री भव एष गुल्मो मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः ॥" इसमें गर्भ के समान लक्षण-जीमचलाना, प्रातः वमन, आर्त्तवरोध आदि लक्षण रहते हैं । इसकी चिकित्सा गर्भ का समय व्यतीत होने पर करनी चाहिये-इसी से कहा है-"ज्वरे तुल्यर्त्तुदोषत्वं प्रमेहे तुल्यदूष्यता । रक्तगुल्मे पुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम्" ॥१३-१५॥

वातगुल्मार्दितं स्निग्धं युक्तं स्नेहविरेचनैः ।
उपाचरेद्यथाकालं निरूहैः सानुवासनैः ॥१६॥

वातजगुल्म रोगी को स्निग्ध करके, योग्य स्नेहविरेचन (ऐरण्ड तैल आदि) देकर, समय का अतिक्रमण किये बिना निरूह और अनुवासनों से चिकित्सा करे । (यथाकालं पश्चाद् विरेको वान्तस्य, आदि नियम से) ॥१६॥

पित्तगुल्मार्दितं स्निग्धं काकोल्यादिघृतेन तु ।
विरिक्तं मधुरैर्योगैर्निरूहैः समुपाचरेत् ॥१७॥

पित्तगुल्म से पीड़ित रोगी को काकोल्यादि घृत से स्निग्ध करके-आरग्वधादि, इक्षुरस शर्करा आदि मधु योगों से विरेचन देकर मधुर निरूहों से भली प्रकार चिकित्सा करे ॥१७॥

श्लेष्मगुल्मार्दितं स्निग्धं पिप्पल्यादिघृतेन तु ।
तीक्ष्णैर्विरिक्तं तद्रूपैर्निरूहैः समुपाचरेत् ॥१८॥

कफगुल्म से पीडित रोगी को पिपल्यादि घृत से स्निग्ध करके-दन्ती-द्रवन्ती आदि तीक्ष्ण द्रव्यों से विरेचन देवे। फिर तीक्ष्ण निरूहों से (आरग्वधादिभिः क्वाथ इत्यादि) चिकित्सा करे ॥१८॥

सन्निपातोत्थिते गुल्मे त्रिदोषघ्नो विधिर्हितः।

सन्निपातजन्य गुल्म में त्रिदोष नाशक चिकित्सा करे।

वक्तव्य—सब गुल्मों में प्रथम वायु को शांत करे। वायु के शान्त होने से थोड़े भी प्रयत्न से शेष दोष शान्त किये जा सकते हैं, यथा-गुल्मिनामनिलशान्तिरुपायैः, सर्वशो विधिरा चरितव्यः। मारुतेप्यवजितेऽन्यमुदीर्णदोषमल्पमपि कर्म निह न्यात् ॥चरक॥

पित्तवद्रक्तगुल्मिन्या नार्याः कार्यः क्रियाविधिः ॥१९॥
विशेषमपरं चास्याः शृणु रक्तविभेदनम्।
पलाशक्षारतोयेन सिद्धं सर्पिः प्रयोजयेत् ॥२०॥
दद्यादुत्तरवस्तिं च पिप्पल्यादिघृतेन तु
उष्णैर्वा भेदयेद्भिन्ने विधिरासृग्दरो हितः ॥२१॥

रक्तगुल्मवाली स्त्री की चिकित्सा पित्तगुल्म की भांति करनी चाहिये। दूसरी विशेष चिकित्सा रक्तभेदन के लिये सुनो-पलाश भस्म से नितारे जल से सिद्ध किया घृत पीने को देवे। पिप्पल्यादिगण के क्वाथ एवं कल्क से सिद्ध घृत से उत्तर वस्ति देवे। पिप्पल्यादि उष्ण द्रव्यों से इसको विदीर्ण करे। विदीर्ण होने पर असृग्दर की चिकित्सा करे।

प्रभिद्येत् न यद्येवं दद्याद्योनिविशोधनम्।
क्षारेण युक्तं पललं सुधा क्षीरेण वा पुनः ॥
आभ्यां वा भावितान् दद्यात् योनौ कटुकमत्स्यकान्।
वराहमत्स्यपित्ताभ्यां लक्तकान् वा सुभावितान् ॥
अधोहरैश्चोर्ध्वहरैः भावितान् वा समाक्षिकैः।
किण्वं वा सगुडक्षारं दद्यात् योनिविशोधनम् ॥च०॥

आनूपौदकमज्जानो वसा तैलं घृतं दधि।
विपक्वमेकतः शस्तं वातगुल्मेऽनुवासनम् ॥२२॥

हाथी, गैंडा, भैंसा, आदि आनूप देशीय, मछली आदि औदक प्राणियों की मज्जा, वसा, तैल, घी, और दही इन सबको मिलाकर वातहर द्रव्यों से इनको सिद्ध करके इनसे वातगुल्म में अनुवासन देवे ॥२२॥

जांगलैकशफानां तु वसा सर्पिश्च पैत्तिके।

पित्तजगुल्म में—जांगल (जांगल एवं विष्किर) प्राणि एवं घोड़े आदि एक शफवाले प्राणियों की वसा और घी को पित्तहर द्रव्यों से सिद्ध करके पित्तगुल्म में अनुवासन देवे।

तैलं जाङ्गलमज्जानं एवं गुल्मे कफोत्थिते ॥२३॥

कफजन्य गुल्म में—तैल, जांगल पशु-पक्षियों की मज्जा को कफहर द्रव्यों से सिद्ध करके अनुवासन देवे।

धात्रीफलानां स्वरसे षडङ्गं विपचेद्धृतम्।
शर्करासैन्धवोपेतं तद्धितं वातगुल्मिने ॥२४॥

आंवले के स्वरस में षडंग (पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, सौंठ और यवक्षार) कल्क से घृत सिद्ध करे। इस घृत को शर्करा और सैन्धव के साथ वातगुल्मरोगी के लिये देना उत्तम है ॥

चित्रकव्योषसिन्धूत्थपृथ्वीकाचव्यदाडिमैः।
दीप्यकग्रन्थिकाजाजीहपुषाधान्यकैः समैः ॥२५॥
दध्यारनालबदरमूलकस्वरसैर्घृतम्।
तत्पिबेद्वातगुल्माग्निदौर्बल्याटोपशूलनुत् ॥२६॥

चित्रकादिघृत—चित्रक, त्रिकटु, सैन्धव, कालाजीरा, चव्य, अनारदाना, अजवायन, पिप्पलीमूल, जीरा, हाऊबेर, धनिया प्रत्येक समान भाग इनके कल्क से, दही, कांजी बेर और मूली का स्वरस, (प्रत्येक घी से चार गुणा) लेकर इनमें घृत सिद्ध करे। यह घृत वातगुल्म, अग्निदौर्बल्य आध्मान और शूल को नष्ट करता है ॥२५,२६॥

हिङ्गुसौवर्चलाजाजीविडदाडिमदीप्यकैः।
पुष्करव्योषधान्याम्लवेतसक्षारचित्रकैः ॥२७॥
शटीवचाजगन्धैलासुरसैश्च विपाचितम्।
शूलानाहहरं सर्पिर्दध्ना चानिलगुल्मिनाम् ॥२८॥

हिंग्वाद्यघृत—हींग, सौचल, जीरा, विडनमक, अनारदाना, अजवायन, पुष्करमूल, त्रिकटु, धनिया, अम्लवेतस, यवक्षार, चित्रक, कचूर, वच, अजगन्धा, इलायची, तुलसी इनके कल्क से दही में सिद्ध किया घृत वातगुल्म रोगियों के शूल आनाह को नष्ट करता है ॥२७,२८॥

विडदाडिमसिन्धूत्थहुतभुग्व्योषजीरकैः।
हिङ्गुसौवर्चलक्षाररुग्वृक्षाम्लाम्लवेतसैः ॥२९॥
बीजपूररसोपेतं सर्पिर्दधिचतुर्गुणम्।
साधितं दाधिकं नाम गुल्महृत् प्लीहशूलजित् ॥३०॥

दाधिक घृत—विड, अनारदाना, सैन्धव, चित्रक, त्रिकटु, जीरक, हींग, सौवर्चल, यवक्षार, कुठ, वृक्षाम्ल, (तिन्तिडीक या कोकम), अम्लवेतस, इनके कल्क से बिजौरा के रस और दही (घी से चार गुणे) से सिद्ध किया घृत-दाधिक घृत गुल्मनाशक, प्लीहा शूलनाशक है ॥२९,३०॥

रसोनस्वरसे सर्पिः पञ्चमूलरसान्वितम्।
सुरारनालदध्यम्लमूलकस्वरसैः सह ॥३१॥
व्योषदाडिमवृक्षाम्लयवानीचव्यसैन्धवैः।
हिङ्ग्वम्लवेतसाजाजीदीप्यकैश्च समांशिकैः ॥३२॥
सिद्धं गुल्मग्रहण्यर्शःश्वासोन्मादक्षयज्वरान्।
कासापस्मारमन्दाग्निप्लीहशूलानिलाञ्जयेत् ॥३३॥

रसोनादिघृत—लहसुन का स्वरस, बृहत्पंचमूल का क्वाथ, सुरा, कांजी, दही का खट्टा पानी, मूली का स्वरस, इनमें, त्रिकटु, अनारदाना, कोकम, अजवायन, चव्य, सैन्धव, हींग, अम्लवेतस, जीरा, अजमोद समानभाग लेकर इनके कल्क से

घृत सिद्ध करे। यह घृत गुल्म, ग्रहणी, अर्श, श्वास, उन्माद, क्षय, ज्वर, कास, अपस्मार, मन्दाग्नि, प्लीहा, शूल और वायु को शान्त करता है ॥३१-३३॥

दधि सौवीरकं सर्पिः क्वाथौ मुद्गकुलत्थजौ।
पञ्चाढकानि विपचेदावाप्य द्विपलान्यथ ॥३४॥
सौवर्चलं सर्जिकां च देवदार्वथ सैन्धवम्।
वातगुल्मापहं सर्पिरेतद्दीपनमेव च ॥३५॥

दही, निस्तुषकांजी, घी, मूंग का क्वाथ, कुलत्थी का क्वाथ, प्रत्येक एक आढक, सौवर्चल, सर्जक्षार, देवदारु और सैन्धव, प्रत्येक दो पल इनसे घत सिद्ध करे। यह घृत वातगुल्म नाशक और अग्निदीपक है ॥३४,३५॥

तृणमूलकषाये तु जीवनीयैः पचेद् घृतम्।
न्यग्रोधादिगणे वाऽपि गणे वाऽप्युत्पलादिके ॥३६॥
रक्तपित्तोत्थितं घ्नन्ति घृतान्येतान्यसंशयम्।

पंचतृणमूल के क्वाथ में जीवनीयगण (काकोल्यादि) के कल्क से घृत सिद्ध करे। न्यग्रोधादिगण के क्वाथ में या उत्पलादिगणके क्वाथ में जीवनीय गणके कल्कसे घृत सिद्ध करे। ये घृत रक्त पित्तजन्य गुल्म को बिना सन्देह के नष्ट कर देते हैं॥

आरग्वधादौ विपचेद्दीपनीययुतं घृतम् ॥३७॥
क्षारवर्गे पचेच्चान्यत् पचेन्मूत्रगणेऽपरम्।
घ्नन्ति गुल्मं कफोद्भूतं घृतान्येतान्यसंशयम् ॥३८॥

आरग्वधादि गण के क्वाथ में पिप्पल्यादि दीपनीय गण का कल्क मिलाकर घत सिद्ध करे। क्षार वर्ग के क्वाथ में (मुष्क से लेकर चतस्रः कोशातकी पर्यन्त) पिप्पल्यादिगण के कल्क से या गोमूत्र आदि आठों मूत्रों में पिप्पल्यादिगण का कल्क मिलाकर घृत सिद्ध करे। ये घृत कफजन्य गुल्म को निःसन्देह नष्ट करते हैं ॥३७,३८॥

यथादोषोच्छ्रयं चापि चिकित्सेत्सान्निपातिकम्।

सन्निपातज गुल्म में दोष की अधिकता के अनुसार चिकित्सा करे।

चूर्णं हिङ्ग्वादिकं वाऽपि घृतं वा प्लीहनाशनम् ।३९।
पिबेद् गुल्मापहं काले सर्पिस्तैल्वकमेव वा।

वातव्याधि में कहा हिंग्वादि चूर्ण या प्लीहानाशक षट्पलघृत पीये। अथवा वातव्याधि में कहा तैल्वकघृत काल में (उत्पन्न होने पर ही, या विरेचन के लिये) पीये ॥३९॥

तिलेक्षुरकपालाशसार्षपं यावनालजम् ॥४०॥
भस्म मूलकजं चापि गोजाविखरहस्तिनाम्।
मूत्रेण महिषीणां च पालिकैश्चावचूर्णितैः ॥४१॥
कुष्ठसैन्धवयष्ट्याह्वनागरकृमिघातिभिः।
साजमोदैश्च दशभिः सामुद्राच्च पलैर्युतम् ॥४२॥
अयःपात्रेऽग्निनाऽल्पेन पक्त्वा लेह्य (ह) मथोद्धरेत्।
तस्य मात्रां पिबेद्दध्ना सुरया सर्पिषाऽपि वा ॥४३॥
धान्याम्लेनोष्णतोयेन कौलत्थेन रसेन वा।
गुल्मान् वातविकारांश्च क्षारोऽयं हन्त्यसंशयम् ॥४४॥

पानीयक्षार–तील, तालमखाना, ढाक, सरसों, जौ की नाल, मूली, इन सबको जलाकर इस भस्म को गाय, बकरी, मेड़, गधा, हाथी इनके मूत्र में तथा भैंस के मूत्र में घोलकर (चार गुणों में) क्षार विधि से नितार ले। इस नितरे जल में कूट, सैन्धव, मुलैहठी, सोंठ, विडंग, अजवायन प्रत्येक एक पल, समुद्र नमक दस पल, मिलाकर लोहपात्र में मृदु अग्नि से पाक करे। लेह तैयार होने पर उतार ले। इसकी योग्य मात्रा को दही, सुरा, घी, कांजी, गरमपानी, कुलत्थी के रस में घोलकर पीने को देवे। यह क्षार गुल्म एवं वात रोगों को अवश्य नष्ट करता है।

वक्तव्य—दूसरे कई आचार्य तिलादि की भस्म एक सौ पल लेकर गाय आदि के चार गुणें मूत्र में क्वाथ करके चतुर्थांश शेष रखकर कुष्ठ आदि का चूर्ण मिलाकर लेह सिद्ध करने को कहते हैं ॥४०-४४॥

स्वर्जिकाकुष्ठसहितः क्षारः केतकिजोऽपि वा।
तैलेन शमयेत् पीतो गुल्मं पवनसंभवम् ॥४५॥

स्वर्जक्षार, कुष्ठ, यवक्षार यह अथवा केतकी (केवड़ा) का क्षार तैल के साथ पीने से वातगुल्म को शान्त करता है। (कोई इसको एक योग मानते हैं) ॥४५॥

पीतं सुखाम्बुना वाऽपि स्वर्जिकाकुष्ठसैन्धवम्।

सर्जक्षार, कुष्ठ, सैंधव के चूर्ण को गुन-गुनाते पानी से पीये।

वृश्चीव (र) मुरुबूकं च वर्षाभूर्बृहतीद्वयम् ॥४६॥
चित्रकं च जलद्रोणे पक्त्वा पादावशेषितम्।
मागधीचित्रकक्षौद्रलिप्ते कुम्भे निधापयेत् ॥४७॥
मधुनः प्रस्थमावाप्य पथ्याचूर्णार्धसंयुतम्।
बुसोषितं दशाहं तु जीर्णभक्तः पिबेन्नरः ॥४८॥
अरिष्टोऽयं जयेद् गुल्ममविपाकमरोचकम्।

वृश्चीवादि अरिष्ट—श्वेतपुनर्नवा, एरण्ड, लालपुनर्नवा, कटेरी, बड़ी कटेरी, चित्रक इनको एक आढक लेकर एक द्रोण जल में पकाये। चतुर्थांश रहने पर उतार ले। पिप्पली, चित्रक, मधु से लिप्त घड़े में इस क्वाथ को भर दे। इस क्वाथ में मधु एक प्रस्थ, हरड़ का चूर्ण आधा प्रस्थ मिलाकर, दस दिन तक इस घड़े को भूसे में रख देवे। दश दिन के पीछे भोजन के जीर्ण होने पर इसको मनुष्य पीये। यह अरिष्ट गुल्म, अविपाक, अरोचक को नष्ट करता है। (जीर्णभक्तः—परिणताहारः लघुकोष्ठः प्रातः पिबेत् ॥४६-४८॥

पाठानिकुम्भरजनीत्रिकटुत्रिफलाग्निकम् ॥४९॥
लवणं वृक्षबीजं च तुल्यं स्यादनवं गुडम्।

पथ्याभिर्वा युतं चूर्णं गवां मूत्रयुतं पचेत् ॥५०॥
गुटिकास्तद्घनीभूतं कृत्वा खादेदभुक्तवान्।
गुल्मप्लीहाग्निसादांस्ता नाशयेयुरशेषतः ॥५१॥
हृद्रोगं ग्रहणीदोषं पाण्डुरोगं च दारुणम्।

पाठा, दन्ती, हल्दी, त्रिकटु, त्रिफला, चित्रक, सैन्धव, इन्द्रयव, प्रत्येक समानभाग, और सबके बराबर एक साल पुराना गुड़ मिलाकर खाये। अथवा सम्पूर्ण चूर्ण से आधे परिमाण में हरड़ का चूर्ण मिलाकर इसको (चार गुणे) गोमूत्र में पकाकर घट्ट होने पर गोलियाँ बनाकर खाली पेट-बिना भोजन किये खाये। ये गोलियाँ गुल्म, प्लीहा, अग्निसाद को निःसंदेह नष्ट करती हैं। हृद्रोग, ग्रहणीरोग, भयानक पाण्डुरोग को नष्ट करती हैं ॥५०,५१॥

सशूले सोन्नतेऽस्पन्दे दाहपाकरुगन्विते ॥५२॥
गुल्मे रक्तं जलौकोभिः सिरामोक्षेण वा हरेत्।

शूलयुक्त, उन्नत हुए, स्पन्दन रहित (अचल), दाह, पाक, वेदना युक्त गुल्म में रक्त को जौंक या सिरामोक्षण से बाहर करे। (कफ जन्य गुल्म में अलाबु पान न करे) ॥५२॥

सुखोष्णा जाङ्गलरसाः सुस्निग्धा व्यक्तसैन्धवाः ॥५३॥
कटुत्रिकसमायुक्ता हिताः पाने तु गुल्मिनाम्।

गुल्म रोगियों को पीने के लिये जांगलमांस रस को घी आदि से भली प्रकार स्निग्ध करके, प्रचुर सैन्धव नमक, त्रिकटु मिलाकर, सुहाते गरम-गरम पिलाये। (जांगलमांसरस, जंघाल-विष्किर मांसरस) ॥५३॥

पेया वातहरैः सिद्धाः कौलत्थाः संस्कृता रसाः ॥५४॥
खलाः सपञ्चमूलाश्च गुल्मिनां भोजने हिताः।

भद्रदार्व्यादि वातहर द्रव्यों से सिद्ध कुलत्थी के रसों को घी आदि से संस्कृत करके देवे। बृहत्पंचमूल के साथ बनाये खल (कपित्थ दाडिम तक्र शाकादि से संस्कृत) गुल्म रोगियों के भोजन के लिये हितकारी हैं ॥५४॥

बद्धवर्चोऽनिलानां तु सार्द्रकं क्षीरमिष्यते ॥५५॥

जिनको मल और वायु का अवरोध रहता हो, वे अदरख के साथ दूध भोजन में लें ॥५५॥

कुम्भीपिण्डेष्टकास्वेदान् कारयेत् कुशलो भिषक्।

चतुर वैद्य स्वेद अध्याय में कहे कुम्भीस्वेद, पिण्डस्वेद, इष्टकास्वेद करें।

गुल्मिनः सर्व एवोक्ता दुर्विरेच्यतमा भृशम् ॥५६॥
अतश्चैतांस्तु सुस्विन्नान् स्रंसनेनोपपादयेत्।

प्रायः करके सभी गुल्मरोगियों को कठिनाई से विरेचन होता है। इसलिये इनका भलीप्रकार स्वेदन देकर, स्रंसन विरेचन (अमलवेतस आदि) देवें ॥५६॥

विम्लापनाभ्यञ्जनानि तथैव दहनानि च ॥५७॥
उपनाहाश्च कर्तव्याः सुखोष्णाः साल्वणादयः।
उदरोक्तानि सर्पींषि मूत्रवर्तिक्रियास्तथा ॥५८॥
लवणानि च योज्यानि यान्युक्तान्यनिलामये।

विम्लापन, अभ्यंग, दाहकर्म तथा साल्वण आदि सुहाते गरम उपनाह बांधने चाहिये, उदररोग में कहे घृत, मूत्र, वर्ति-क्रिया बरते। वातव्याधि में कहे लवण (पत्रलवण, स्नेहलवण, कल्याण लवण) देवे ॥५७,५८॥

वातवर्चोनिरोधे तु सामुद्रार्द्रकसर्षपैः ॥५९॥
कृत्वा पायौ विधातव्या वर्तयो मरिचोत्तराः।

वायु मल का अवरोध होने पर-समुद्र नमक सोंठ, सरसों, तथा मरिच की प्रचुर मात्रा मिलाकर वर्ति बनाकर गुदा में रखनी चाहिये ॥५९॥

दन्तीचित्रकमूलेषु तथा वातहरेषु च ॥६०॥
कुर्यादरिष्टान् सर्वांश्च श्लोकस्थाने यथेरितान्।

सूत्रस्थान में कही विधि (विरेचन कल्प में) से दन्ती, चित्रकमूल एवं विदारीगन्धादि वातनाशक द्रव्यों से अरिष्टों को बनाये। (अथवा गुल्म अध्याय में कहे वृश्चिवाद्यरिष्ट विधि से अरिष्ट बनाये) ॥६०॥

खादेद्वाऽप्यङ्कुरान् भृष्टान् पूतीकनृपवृक्षयोः ॥६१॥

नाटाकरंज, अमलतास, इनके अंकुरों को (कोमल पत्तों को) घी में भूनकर खाये ॥६१॥

ऊर्ध्ववातं मनुष्यं च गुल्मिनं न निरूहयेत्।

ऊर्ध्ववातयुक्त गुल्मरोगी को निरूह बस्ति न देवे।

पिबेत्त्रिवृन्नागरं वा सगुडां वा हरीतकीम् ॥६२॥
गुग्गुलुं त्रिवृतां दन्तीं द्रवन्तीं सैन्धवं वचाम्।
मूत्रमद्यपयोद्राक्षारसैर्वीक्ष्य बलाबलम् ॥६३॥

निशोथ एवं सोंठ को या हरड़ को गुड़ के साथ खाये। गुग्गुल, निशोथ, दन्ती, द्रवन्ती (मोगलाई एरण्ड), सैन्धव, वच इनको मूत्र, मद्य, दूध, द्राक्षास्वरस, इनके साथ रोगी का बल-अबल देखकर देवे ॥६२,६३॥

एवं पीलूनि भृष्टानि पिबेत् सलवणानि तु।

घी आदि स्नेह में भूने पीलु को लवण मिलाकर मत्र-मद्य आदि के साथ खिलाये।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकसैन्धवैः ॥६४॥
युक्ता हन्ति सुरा गुल्मं शीघ्रं काले प्रयोजिता।

आध्मान आदि अवस्था में—पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, सैन्धव से मिलाकर दी हुई सुरा गुल्म को तुरन्त नष्ट कर देती है ॥६४॥

बद्धविण्मारुतो गुल्मी भुञ्जीत पयसा यवान् ॥६५॥
कुल्माषान् वा बहुस्नेहान् भक्षयेल्लवणोत्तरान्।

जिस गुल्मरोगी को मल-वायु का अवरोध रहता हो, वह

दूध के साथ जौ को खाये। अथवा प्रचुर सैन्धवयुक्त, अतिघृत या तैल मिले कुल्माषों को (अर्धस्विन्न जौ-गेहूँ को) खाये ॥

अथास्योपद्रवः शूलः कथंचिदुपजायते ॥६६॥
शूलं निखानितमिवासुखं येन तु वेत्त्यसौ।

इस गुल्मरोगी को उपद्रव के कारण किसी कारण से शूल उत्पन्न हो जाता है। यह शूल कील की भाँति इस रोगी को दुःख देता है। (जिस प्रकार गड़ा हुआ कील दुःख देता है, इसी प्रकार यह शूल होता है) ॥६६॥

तत्र विण्मूत्रसंरोधः कृच्छ्रोच्छ्वासः स्थिराङ्गता ।६७।
तृष्णा दाहो भ्रमोऽन्नस्य विदग्धपरिवृद्धिता।
रोमहर्षोऽरुचिश्छर्दिर्भुक्तवृद्धिर्जडाङ्गता ॥६८॥

उस उपद्रव रूप शूल में—मल मूत्र का अवरोध, श्वास काठिन्य, अंगों में कठिनता, तृष्णा, दाह, भ्रम, अन्न के विदाहकाल में शूल का बढ़ना, रोमहर्ष, अरुचि, वमन, भोजन करते ही शूल का बढ़ना, दोषों के मिश्रित लक्षण होते हैं।

वक्तव्य—मल मूत्र अवरोध आदि लक्षण वायु के, तृष्णा, दाह आदि पित्त के, रोमहर्ष आदि कफ के लक्षण हैं, द्विदोषजन्य शूल में दोनों दोषों के, सन्निपात में सब दोषों के लक्षण रहते हैं ॥६७,६८॥

वाय्वादिभिर्यथासङ्ख्यं मिश्रैर्वा वीक्ष्य योजयेत्।
पथ्यात्रिलवणं क्षारं हिङ्गुतुम्बुरुपौष्करम् ॥६९॥
यवानीं च हरिद्रां च विडङ्गान्यम्लवेतसम्।
विदारीत्रिफलाऽभीरुशृङ्गाटीगुडशर्कराः ॥७०॥
काश्मरीफलयष्ट्याह्वपरूषकहिमानि च।
षड्ग्रन्थातिविषादारुपथ्यामरिचवृक्षजान् ॥७१॥
कृष्णामूलकचव्यं च नागरक्षारचित्रकान्।
उष्णाम्लकाञ्जिकक्षीरतोयैः श्लोकसमापनान् ॥७२॥
यथाक्रमं विमिश्रांश्च द्वन्द्वे सर्वांश्च सर्वजे।

वातादि भेद का विचार करके निम्न योगों को बरते। वातिक शूल में-हरड़, सैन्धव-सौवर्चल-विड, यवक्षार, हींग, तुम्बरु, पुष्करमूल, अजवायन, हल्दी, विडंग, अम्लवेतस इनको गरम एवं अम्लकांजी से देवे। पित्तज शूल में-विदारी, त्रिफला, शतावरी, सिंघाड़ा, गुड़, शर्करा, गम्भारीफल, मुलैहटी, फालसा, चन्दन इनको गरम दूध से देवे। कफजशूल में—वच, अतीस, देवदारु, हरड़, मरिच, इन्द्रजों, पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, सोंठ, यवक्षार, चित्रक इनको गरम पानी से देवे। द्वन्द्वजशूल में क्रमानुसार पथ्या-विदार्यादि—वात पैत्तिक में पथ्या षड्ग्रन्थादि, वातश्लैष्मिक में विदारीषड्ग्रन्थादि, पित्तकफ में देवे। सबको सन्निपातज शूल में देवे ॥६९–७२॥

तथैव सेकावगाहप्रदेहाभ्यंगभोजनम् ॥७३॥
शिशिरोदकपूर्णानां भाजनानां च धारणम्।
वमनोन्मर्दनस्वेदलंघनक्षपणक्रियाः ॥७४॥
स्नेहादिश्च क्रमः सर्वो विशेषेणोपदिश्यते।

इसी प्रकार वातज शूल में-सेक, अवगाहन, प्रदेह, अभ्यंग वातहर भोजन देवे। पित्तज शूल में-शीतल जल से पूर्ण पात्रों का धारण करना, कफज शूल में वमन, मलना, स्वेद, लंघन, कफको घटाने की चिकित्सा करे। स्नेहन आदि विधान दोष एवं अवस्था के अनुसार सब में विधेय है ॥७३,७४॥

वल्लूरं मूलकं मत्स्यान् शुष्कशाकानि वैदलम् ॥७५॥
न खादेदालुकं गुल्मी मधुराणि फलानि च।

गुल्मरोगी—शुष्कमांस, मूली, मछली, सूखे शाक, विदल (दाल आदि), आलु तथा मधुर फल (चोच-केला आदि)न खाये।

वक्तव्य—"लध्वन्नं दीपनं स्निग्धमुष्णं वातानुलोमनम्। बृंहणं च भवेद्यच्च तद्धितं सर्वगुल्मिनाम् ॥७५॥

विना गुल्मेन यच्छूलं गुल्मस्थानेषु जायते ॥७६॥
निदानं तस्य वक्ष्यामि रूपं च सचिकित्सितम्।

गुल्म के बिना भी गुल्म स्थानोंमें जो शूल उत्पन्न हो जाता है, उस शूल के कारण, लक्षण और चिकित्सा को कहूंगा ॥

वातमूत्रपुरीषाणां निग्रहादतिभोजनात् ॥७७॥
अजीर्णाध्यशनायासविरुद्धान्नोपसेवनात्।
पानीयपानात् क्षुत्काले विरूढानां च सेवनात् ॥७८॥
पिष्टान्नशुष्कमांसानामुपयोगात्तथैव च।
एवंविधानां द्रव्याणामन्येषां चोपसेवनात् ॥७९॥
वायुः प्रकुपितः कोष्ठे शूलं संजनयेद् भृशम्।
निरुच्छ्वासी भवेत्तेन वेदनापीडितो नरः ॥८०॥

कारण—वायु, मूत्र और मल के रोकने से, अति-भोजन से, अजीर्ण से, अध्यशन से, परिश्रम से, विरुद्ध-भोजन के सेवन से, भूख लगी होने पर जल या द्रव वस्तु के पीने से, अंकुरित या जिन धानों की अंकुरित शक्ति जाती रही, उनके सेवन से, पिठ्ठी के बने अन्न से, शुष्क मांस के सेवन से, तथा इसी प्रकार के दूसरे दोषप्रकोपक द्रव्यों के सेवन करने से कुपित वायु कोष्ठ में तीव्रशूल उत्पन्न करता है, इस शूल के कारण रोगी का श्वास रुकता है, रोगी को अतिशय वेदना होती है।

वि० मन्तव्य—आजकल स्वास्थ्याधिकारी—विद्यालयों में विद्यार्थियों के लिये जलपान की व्यवस्था में विरूढ अर्थात् अंकुरित चना आदि का प्रयोग करवाते हैं। वे भगवान् धन्वन्तरि के "विरूढानां च सेवनात्" वाक्य पर ध्यान देने की कृपा करें। "पानीयपानात् क्षुत्काले" भूखे पेट पानी पीने से शूल होता है उसे पञ्जाब में "पानी की गाँठ" कहते हैं ॥

शंकुस्फोटनवत्तस्य यस्मात्तीव्राश्च वेदनाः।
शूलासक्तस्य लक्ष्यन्ते तस्माच्छूलमिहोच्यते ॥८१॥

शूल की निरुक्ति—शूल से पीड़ित मनुष्य को कीले को गाड़ने के समान गहरी चुभती तीव्र वेदना होती है, इसलिये इसको शूल कहते हैं ॥८१॥

निराहारस्य यस्यैव तीव्रं शूलमुदीर्यते ।
प्रस्तब्धगात्रो भवति कृच्छ्रेणोच्छ्वसितीव च ॥८२॥
वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण कुरुते नरः ।
एतैर्लिङ्गैर्विजानीयाच्छूलं वातसमुद्भवम् ॥८३॥

वातजशूल—बिना भोजन के जिसको तीव्रशूल उत्पन्न होता है, शरीर कठोर-(स्तब्ध) हो जाता है, कठिनाई से श्वास आता है, वायु मल मूत्र कठिनाई से जिसे प्रवृत्त होते हैं, इन लक्षणों से वातजन्य शूल समझे ॥८३॥

तृष्णा दाहो मदो मूर्च्छा तीव्रं शूलं तथैव च ।
शीताभिकामो भवति शीतेनैव प्रशाम्यति ॥८४॥
एतैर्लिङ्गैर्विजानीयाच्छूलं पित्तसमुद्भवम् ।

प्यास, दाह, मद, मूर्च्छा, तीव्रशूल, शीत की चाहना और शीतल उपचार से शूल का शान्त होना इन लक्षणों से पित्तजन्य शूल समझे ॥८४॥

शूलेनोत्पीड्यमानस्य हृल्लास उपजायते ॥८५॥
अतीव पूर्णकोष्ठत्वं तथैव गुरुगात्रता ।
एतच्छ्लेष्मसमुत्थस्य शूलस्योक्तं निदर्शनम् ॥८६॥

शूल से पीड़ित मनुष्य को जी मचलाना (वमन प्रवृत्ति) होता है, कोष्ठ का अतिशय भरा होना, अंगों में भारीपन, ये कफजन्यशूल के लक्षण हैं ॥८५,८६॥

सर्वाणि दृष्ट्वा रूपाणि निर्दिशेत्सान्निपातिकम् ।
सन्निपातसमुत्थानमसाध्यं तं विनिर्दिशेत् ॥८७॥
शूलानां लक्षणं प्रोक्तं

सब लक्षणों को देखकर सान्निपातिक शूल को समझे। सन्निपातजन्य शूल असाध्य कहा है। शूलों के लक्षण कह दिये हैं।

वक्तव्य निर्देश—"वातात्मकं बस्तिगतं वदन्ति पित्तात्मकं चापि वदन्ति नाभ्याम् । हृत्पार्श्वकुक्षौ कफसन्निविष्टं, सर्वेषु देशेषु च सन्निपातात्" ॥८७॥

चिकित्सां तु निबोध मे ।
आशुकारी हि पवनस्तस्मात्तं त्वरया जयेत् ॥८८॥
तस्य शूलाभिपन्नस्य स्वेद एव सुखावहः ।

मुझ से चिकित्सा को सुनो-वायु शीघ्रकारी है, इसलिये सबसे प्रथम वायु को ही शान्त करे। इसलिये शूल से पीड़ित व्यक्ति को स्वेद ही सुखदायक होता है ॥८८॥

पायसैः कृशरापिण्डैः स्निग्धैर्वा पिशितैर्हितः ॥८९॥

दूध में पकाये चावलों से, तिल-तण्डुल-उड़द से बनाई कृशरा से, स्निग्ध द्रव्यों से सेक करना उत्तम है ॥८९॥

त्रिवृच्छाकेन वा स्निग्धमुष्णं भुञ्जीत भोजनम् ।
चिरबिल्वाङ्कुराद् वापि तैलभृष्टांस्तु भक्षयेत् ॥९०॥
वैहंगांश्च रसान् स्निग्धान् जांगलान् शूलपीडितः ।
यथालाभं निषेवेत मांसानि बिलशायिनाम् ॥९१॥

स्निग्ध एवं उष्ण भोजन को निशोथ के शाक से खाये। नाटाकरंज के कोमल पत्तों को तैल में भूनकर खाये। जांगल पक्षियों (बटेर-तीतर आदि) के स्निग्ध मांस रसों को शूल पीड़ित खाये। बिल में रहनेवाले-सेह, शल्लक आदि में जो मिल सके, उनके मांस को खाये ॥९०,९१॥

सुरा सौवीरकं चुक्रं मस्तूदश्वित्तथा दधि ।
सकाललवणं पेयं शूले वातसमुद्भवे ॥९२॥

वातजन्य शूल में—सुरा, कांजी, चुक्र (शुक्त), मस्तु, उदश्वित् (आधे जल का तक्र), दही, काला लवण (काला नमक) मिलाकर पीना चाहिये ।

वि० मन्तव्य—सुरा आदि में से जो भी उपलब्ध हो उसमें काला लवण मिलाकर प्रयोग करे। आज के सोडा वाटर तथा सोडा वाटर युक्त सुरा पीने का यही सूत्र है ॥९२॥

कुलत्थयूषो युक्ताम्लो लावकीयूषसंस्कृतः ।
ससैन्धवः समरिचो वातशूलविनाशनः ॥९३॥

बटेर के यूष से संस्कृत, अनारदाना से परिमाण में खट्टा किया, सैन्धव और मरिच युक्त कुलत्थी का यूष वातशूल को नष्ट करता है ॥९३॥

विडंगशिग्रुकम्पिल्लपथ्याश्यामाम्लवेतसान् ।
सुरसामश्वमूत्रीं च सौवर्चलयुतान् पिबेत् ॥९४॥
मद्येन वातजं शूलं क्षिप्रमेव प्रशाम्यति ।

विडंग, सुहांजना, कमीला, हरड़, निशोथ, अम्लवेतस, तुलसी, अश्वमूत्री (शल्लकी), सौवर्चल इनको मद्य के साथ पीये, इससे वातजशूल शीघ्र शान्त होता है। (अश्वमूत्री के स्थान पर अश्वकर्ण भी पाठ है) ॥९४॥

पृथ्वीकाजाजिचविकायवानीव्योषचित्रकाः ॥९५॥
पिप्पल्यः पिप्पलीमूलं सैन्धवं चेति चूर्णयेत् ।
तानि चूर्णानि पयसा पिबेत् काम्बलकेन वा ॥९६॥
मध्वासवेन चुक्रेण सुरासौवीरकेण वा ।
अथवै (चैव) तानि चूर्णानि मातुलुंगरसेन वा ॥९७॥
तथा बदरयूषेण भावितानि पुनः पुनः ।
तानि हिङ्गुप्रगाढानि सह शर्करया पिबेत् ॥९८॥
सह दाडिमसारेण वर्तिः कार्या भिषग्जिता ।
सा वर्तिर्वातिकं शूलं क्षिप्रमेव व्यपोहति ॥९९॥
गुडतैलेन वा लीढा पीता मद्येन वा पुनः ।

पृथ्वीका (हिंगुपत्री), जीरा, चविका, अजवायन, त्रिकटु, चित्रक, पिप्पली, पिप्पलीमूल, सैन्धव इनका चूर्ण करे। इस चूर्ण को पानी से या काम्बलिक यूष (दधि-मस्तु अम्ल सिद्ध) से, मध्वासव से, चुक्र (शुक्त) से, सुरा से अथवा कांजी से पीये। अथवा पृथ्वीका आदि के चूर्णों को बिजौरे के स्वरस से, बेर के यूष से बार बार भावित करके, प्रचुर मात्रा में हींग मिला-

कर—बिजौरे के स्वरस में शर्करा मिलाकर पीये । अथवा पृथ्वीका आदि के चूर्ण में अनारदाना मिलाकर वर्त्ति (वटी—गोली) वैद्य बनाये। यह वर्त्ति गुड़, तेल के साथ मिलाकर चाटने या मद्य के साथ पीने पर वातिक शूल को शीघ्र नष्ट करती है ॥९५-९९॥

बुभुक्षाप्रभवे शूले लघु संतर्पणं हितम् ॥१००॥
उष्णैः क्षीरैर्यवागूभिः स्निग्धैर्मांसरसैस्तथा ।

भूखजनित शूल में—लघु-हितकारी सन्तर्पण भोजन उत्तम है। गरम दूध, गरम यवागू, स्निग्ध मांसरसों से भोजन देवे ॥

वातशूले समुत्पन्ने रूक्षं स्निग्धेन भोजयेत् ॥१०१॥
सुसंस्कृताः प्रदेयाः स्युर्घृतपूरा विशेषतः ।
वारुणीं च पिबेज्जन्तुस्तथा संपद्यते सुखी ॥१०२॥
एतद्वातसमुत्थस्य शूलस्योक्तं चिकित्सितम् ।

वातशूल उत्पन्न होने पर रूक्ष व्यक्ति को स्निग्ध वस्तुओं का भोजन देवे। सोंठ, मरिच आदि से सुसंस्कृत घृत के पूर (घेवर) विशेष रूप में देवे। रोगी वारुणी को पीये, इससे वह सुखी होता है। वातजनित शूल की यह चिकित्सा कह दी है ॥

अथ पित्तसमुत्थस्य क्रियां वक्ष्याम्यतः परम् ॥१०३॥
स सुखं छर्दयित्वा तु पीत्वा शीतोदकं नरः ।
शीतलानि च सेवेत सर्वाण्युष्णानि वर्जयेत् ॥१०४॥

इसके आगे पित्तजनित शूल की चिकित्सा कहूँगा—पित्त-शूली व्यक्ति शीतल जल पीकर सुख पूर्वक वमन करके शीतल वस्तुओं का सेवन करे, और उष्ण वस्तुओं को छोड़ देवे ॥

मणिराजतताम्राणि भाजनानि च सर्वशः ।
वारिपूर्णानि तान्यस्य शूलस्योपरि निक्षिपेत् ॥१०५॥

मणि, चांदी, ताम्र के सम्पूर्ण रूप में बने पात्रों को शीतल जल से भरकर शूल के ऊपर रक्खे ॥१०५॥

गुडः शालिर्यवाः क्षीरं सर्पिःपानं विरेचनम् ।
जांगलानि च मांसानि भेषजं पित्तशूलिनाम् ॥१०६॥
रसान् सेवेत पित्तघ्नान् पित्तलानि विवर्जयेत् ।
पालाशं धान्वनं वाऽपि पिबेद्यूपं सशर्करम् ॥१०७॥

पित्तशूली रोगियों के लिये गुड़, शालि धान्य, जौ, दूध, घृतपान, विरेचन, जांगलमांस औषध हैं। पित्तनाशक मांसों के रसों को खाये, पित्तकारक वस्तुओं का परित्याग करे। मांस खानेवाले प्राणियों के मांस का रस, या जांगल प्राणियों का मांसरस, शर्करा के साथ पीये ॥१०६,१०७॥

परूषकाणि मृद्वीकाखर्जूरोदकजान्यपि ।
तत् पिबेच्छर्करायुक्तं पित्तशूलनिवारणम् ॥१०८॥

फालसा, मृद्वीका, खजूर, कमल आदि पानी के कन्द—इनको शर्करा के साथ पीये, यह पित्त शूल नाशक है ॥१०८॥

अशने भुक्तमात्रे तु प्रकोपः श्लैष्मिकस्य च ।
वमनं कारयेत्तत्र पिप्पलीवारिणा भिषक् ॥१०९॥

भोजन के खाने के पीछे तुरन्त ही कफजन्य शूल का प्रकोप होता है, इसमें वैद्य पिप्पली के पानी से वमन कराये। (पिप्पली मिश्रित पानी, पिप्पली का क्वाथ या मैनफल की पिप्पली से वमन कराये) ॥१०९॥

रूक्षः स्वेदः प्रयोज्यः स्यादन्याश्चोष्णा क्रिया हिताः ।
पिप्पली शृङ्गवेरं च श्लेष्मशूले भिषग्जितम् ॥११०॥

कफजन्य शूल में रूक्ष स्वेद बरते, उष्ण उपचार करे। पिप्पली और सोंठ का प्रयोग क्वाथ कल्क, चूर्ण विधि से कफजनित शूल में चिकित्सा है ॥११०॥

पाठां वचां त्रिकटुकं तथा कटुकरोहिणीम् ।
चित्रकस्य च निर्यूहे पिबेद्यूषं सहार्जकम् ॥१११॥

पाठा, वच, त्रिकटु, कुटकी, चित्रक, इनके क्वाथ में अथवा कुठेरक के साथ बनाया शिम्बी धान्य का यूष पीये ॥१११॥

एरण्डफलमूलानि मूलं गोक्षुरकस्य च ।
शालपर्णीं पृश्नपर्णीं बृहतीं कण्टकारिकाम् ॥११२॥
दद्याच्छृगालविन्नां च सहदेवां तथैव च ।
महासहां क्षुद्रसहां मूलमिक्षुरकस्य च ॥११३॥
एतत् संभृत्य संभारं जलद्रोणे विपाचयेत् ।
चतुर्भागावशेषं तु यवक्षारयुतं पिबेत् ॥११४॥
वातिकं पैत्तिकं वाऽपि श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ।
प्रसह्य नाशयेच्छूलं छिन्नाभ्रमिव मारुतः ॥११५॥

एरण्ड फल, एरण्डमूल, गोखरु का मूल, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, कटेरी, बड़ीकटेरी, शृगालविन्ना (पृश्निपर्णी), सहदेवा-मुद्गपर्णी, माषपर्णी, तालमखाने का मूल, इन सबको एकत्रित करके एक द्रोण जल में पकाये। चतुर्थांश रहने पर इसमें यव-क्षार मिलाकर पीये। यह नित्य प्रति सेवन करने पर वातिक, पैत्तिक, कफज एवं सान्निपातिक शूल को बलात् नष्ट करता है।

पिप्पली स्वर्जिकाक्षारो यवाश्चित्रक एव च ।
सेव्यं चैतत् समानीय भस्म कुर्याद्विचक्षणः ॥११६॥
तदुष्णवारिणा पीतं श्लेष्मशूलं भिषग्जितम् ।

पिप्पली, सर्जक्षार, जौ, चित्रक, खस, इन सबको एकत्रित करके बुद्धिमान् भस्म बनाये। इस भस्म को गरम पानी से पीये, कफजनित शूल की चिकित्सा है ॥११६॥

रुणद्धि मारुतं श्लेष्मा कुक्षिपार्श्वव्यवस्थितः ॥११७॥
स संरुद्धः करोत्याशु साध्मानं गुडगुडायनम् ।
सूचीभिरिव निस्तोदं कृच्छ्रोच्छ्वासी तदा नरः ।११८।
नान्नं वाञ्छति नो निद्रामुपैत्यतिनिपीडितः ।
पार्श्वशूलः स विज्ञेयः कफानिलसमुद्भवः ॥११९॥

पार्श्वशूल—कुक्षि पार्श्व में स्थित कफ वायु को रोक देता है। यह रुका वायु शीघ्र ही आध्मान एवं गड़गड़ाहट

को करता है। सूई के चुभने के समान दर्द होता है, कठिनाई से श्वास लेता है। पीड़ा से दुःखी मनुष्य अन्न की चाह नहीं करता, नींद भी नहीं आती। इसे पार्श्वशूल कहते हैं, यह कफ-वायु से उत्पन्न होता है।

वि० मन्तव्य—यदि कुक्षि में रुकता है, तो आध्मान एवं गुडगुडापन को उत्पन्न करता है, और यदि पार्श्व में रुकता है, तो पार्श्व में तोद आदि लक्षण होते हैं। कुक्षि—आमाशय का और पार्श्व फुफ्फुस का नाम है, पार्श्व शूल "पसली की पीड़ा" बालकों में "पसली चलना" आदि नामों से प्रसिद्ध है, यह पार्श्वशूल कभी एक में और कभी दोनों पार्श्वों में होता है ॥११७–११६॥

तत्र पुष्करमूलानि हिङ्गु सौवर्चलं विडम्।
सैन्धवं तुम्बुरुं पथ्यां चूर्णं कृत्वा तु पाययेत् ॥१२०॥
पार्श्वहृद्बस्तिशूलेषु यवक्वाथेन संयुतम्।
सर्पिः प्लीहोदरोक्तं वा घृतं वा हिङ्गुसंयुतम् ॥१२१॥
बीजपूरकसारं वा पयसा सह साधितम्।
एरण्डतैलमथवा मद्यमस्तुपयोरसैः ॥१२२॥
भोजयेच्चापि पयसा जाङ्गलेन रसेन वा।

इसमें पुष्करमूल, हींग, संचल नमक, विड़नमक, सैन्धव, तुम्बुरु, हरड़ इनके चूर्ण को जौ के क्वाथ में मिलाकर पार्श्वशूल, हृदयशूल बस्तिशूल में पिलाये। प्लीहोदर में कहा षट्पलघृत पिलाये। हींग से मिला घी (असंस्कृत) खाये। दूध के साथ बिजौरे के फल को (या रस को) सिद्ध करके पिलाये। एरण्डतैल को मद्य, मस्तु, दूध मांसरस के साथ दोष एवं सात्म्य के अनुसार प्रातः पीये। जीर्ण होने पर दूध या जांगल मांस रस से भोजन देवे ॥१२०-१२२॥

प्रकुप्यति यदा कुक्षौ वह्निमाक्रम्य मारुतः ॥१२३॥
तदाऽस्य भोजनं भुक्तं सोपस्तम्भं न पच्यते।
उच्छ्वसित्यामशक्तता शूलेनाहन्यते मुहुः ॥१२४॥
नैवासने न शयने तिष्ठन् वा लभते सुखम्।
कुक्षिशूल इति ख्यातो वातादामसमुद्भवः ॥१२५॥

कुक्षिशूल—अग्नि को मन्द करके जब वायु कुक्षि में कुपित होता है, तब इस पुरुष का खाया हुआ भोजन स्तब्ध बनकर जीर्ण नहीं होता। रोगी कठिनाई से श्वास लेता है, अपक्वमल, बार बार शूल का आक्रमण होना, न तो लेटने पर, न बैठने में न खड़े होने पर किसी भी प्रकार सुख-शान्ति का अनुभव नहीं करता, इसको कुक्षिशूल कहते हैं, यह शूल वायु और आम से उत्पन्न होता है।

वि० मन्तव्य—कुक्षिशूल-यह शूल आमाशय एवं अन्त्र में होता है। अन्त्र ही अग्नि का कार्यालय है, अन्त्र में स्तब्धता उत्पन्न हो जाती है, फलतः भुक्त आहार सरकता नहीं है और पचता भी नहीं है, अन्त्र का नाम "नाभि" (देखिये शा० अ० ६।२५) है। वहीं से प्राण वायु की प्रवृत्ति होती है (नाभिस्थः प्राणपवनः शा० ध०) अन्त्र की स्तब्धता के कारण प्राण वायु का उचित सञ्चार नहीं होता, फलतः श्वास प्रश्वास में भी कष्ट हो जाता है ॥१२३ १२५॥

वमनं कारयेत्तत्र लङ्घयेद्वा यथाबलम्।
संसर्गपाचनं कुर्यादम्लैर्दीपनसंयुतैः ॥१२६॥

इसमें रोगी को वमन कराये अथवा बल के अनुसार लंघन कराये। अनारदाना, आँवला आदि अम्ल से तथा पंचकोल आदि से युक्त पेया विलेपी आदि पाचन देवे ॥१२६॥

नागरं दीप्यकं चव्यं हिङ्गु सौवर्चलं विडम्।
मातुलुङ्गस्य बीजानि तथा श्यामोरुबूकयोः ॥१२७॥
बृहत्याः कण्टकार्याश्च क्वाथं शूलहरं पिबेत्।

सोंठ, अजवायन, चव्य, हींग, सौवर्चल, विड़, बिजौरे के बीज, निशोथ, एरण्ड, बड़ी कटेरी, कटेरी–इनका क्वाथ पीये, यह शूलनाशक है ॥१२७॥

वचा सौवर्चलं हिङ्गु कुष्ठं सातिविषाऽभया ॥१२८॥
कुटजस्य च बीजानि सद्यःशूलहराणि तु।
विरेचनं प्रयुञ्जीत ज्ञात्वा दोषबलाबलम् ॥१२९॥

वच, सौवचल, हींग, कूठ, अतीस, हरड़, इन्द्रजौ—ये तुरन्त शूलहर हैं। इनको दोष के बल अबल को देखकर विरेचन में बरते।

वि० मन्तव्य—वचा आदि से वमन हो जाता है अर्थात् उसमें उचित गति होने लगती है। इसके अनन्तर यदि शूल शान्त न हो तो दोष के बलाऽबल का विचार करके किसी विरेचन का प्रयोग करना चाहिये ॥१२८,१२९॥

स्नेहबस्तीन्निरूहांश्च कुर्याद्दोषनिवर्हणान्।

स्नेहबस्ति, और निरूहों से दोषों को बाहर निकाले।

उपनाहाः स्नेहसेका धान्याम्लपरिषेचनम् ॥१३०॥
अवगाहाश्च शस्यन्ते यच्चान्यदपि तद्धितम्।

उपनाह, स्नेह, सेक, कांजी से परिषेचन, वातहर द्रवपूर्ण टब में बैठना, तथा कुक्षिशूल नाशक जो दूसरे उपचार हितकारी हों वह भी श्रेष्ठ हैं ॥१३०॥

कफपित्तावरुद्धस्तु मारुतो रसमूर्च्छितः ॥१३१॥
हृदिस्थः कुरुते शूलमुच्छ्वासारोधकं परम्।
स हृच्छूल इति ख्यातो रसमारुतसंभवः ॥१३२॥

हृदय शूल—कफ-पित्त से अवरुद्ध-रस से मिश्रित वायु हृदय में स्थित होकर शूल उत्पन्न करता है, इससे उच्छ्वास काठिन्य विशेष रूप में होता है। इसको हृदय शूल कहते हैं—यह रस एवं वायु से उत्पन्न होता है।

वि० मन्तव्य—यह हृदय का शूल है इसमें कफ, पित्त, रस = रक्तमिश्रित रस तथा वायु चारों कुपित-विकृत होते हैं। इसका प्रभाव फुफ्फुसों पर भी पड़ता है, अतः श्वास में अवरोध होने लगता है ॥१३१,१३२॥

तत्रापि कर्माभिहितं यदुक्तं हृद्विकारिणाम् ।

इसमें हृद्रोग में कही चिकित्सा बरतनी चाहिये।

संरोधात् कुपितो वायुर्बस्तिमावृत्य तिष्ठति ॥१३३॥
बस्तिवङ्क्षणनाभीषु ततः शूलोऽस्य जायते ।
विण्मूत्रवातसंरोधी बस्तिशूलः स मारुतात् ॥१३४॥

मूत्र-मल के रोकने से कुपित वायु वस्ति को घेरकर रुक जाती है, इससे वस्ति, वंक्षण और नाभि में रोगी को शूल होता है। इसमें मल वायु मूत्र रुक जाती है, इसको वस्ति शूल कहते हैं, यह वायुजन्य है।

वि० मन्तव्य—वस्ति शूल-इसका प्रभाव समस्त मूत्र-संस्थान पर पड़ता है। इसी का विवरण निम्नलिखित श्लोक १३५ में किया है। मूत्र शूल मूत्र का नहीं अपितु मूत्र संस्थान का शूल है ॥१३३,१३४॥

नाभ्यां वङ्क्षणपार्श्वेषु कुक्षौ मेढ्रान्त्रमर्दकः ।
मूत्रमावृत्य गृह्णाति मूत्रशूलः स मारुतात् ॥१३५॥

जब मेहन और आँतों को पीड़ित करता हुआ वायु मूत्र को रोक देता है, तब नाभि वंक्षण, पार्श्व और कुक्षि में शूल होता है। इसे मूत्रशूल कहते हैं, यह शूल वायु से होती है॥

वायुः प्रकुपितो यस्य रूक्षाहारस्य देहिनः ।
मलं रुणद्धि कोष्ठस्थं मन्दीकृत्य तु पावकम् ॥१३६॥
शूलं संजनयंस्तीव्रं स्रोतांस्यावृत्य तस्य हि ।
दक्षिणं यदि वा वामं कुक्षिमादाय जायते ॥१३७॥
सर्वत्र वर्धते क्षिप्रं भ्रमन्नथ सघोषवान् ।
पिपासा वर्धते तीव्रा भ्रमो मूर्च्छा च जायते ॥१३८॥
उच्चारितो मूत्रितश्च न शान्तिमधिगच्छति ।
विट्शूलमेतज्जानीयाद् भिषक् परमदारुणम् ॥१३९॥

पुरीषशूल—रूक्ष भोजन करनेवाले जिस पुरुष में प्रकुपित वायु मल को रोककर, कोष्ठस्थ अग्नि को मन्द करके, तथा स्रोतों को घेरकर तीव्रशूल दक्षिणपार्श्व में या वामपार्श्व में उत्पन्न करती है (मल को रोककर), उस पुरुष में वायु शब्द के साथ घूमती हुई सम्पूर्ण उदर में शीघ्र फैल जाती है। रोगी में तीव्र प्यास बढ़ जाती है, भ्रम एवं मूर्च्छा होती है। मल त्याग या मूत्र त्याग करने पर भी शान्ति नहीं होती। इसको विट्शूल जाने, यह अतिकष्टदायक है।

वि० मन्तव्य—मलाशय का शूल है, मलाशय अर्थात् बृहद् अन्त्र समस्त उदर में घूमा हुआ रहता है, अतः उदर में दाहिनी एवं बाँई ओर शूल होता है। पुरीष एवं मूत्र तो जड़ हैं और शूल होता है सजीव अवयव में। अतः पुरीष एवं मूत्र का त्याग हो जाने पर भी शूल बना रहता है। विट्शूल विट् = पुरीष का शूल नहीं, अपितु विट् के आशय का शूल है॥

क्षिप्रं दोषहरं कार्यं भिषजा साधु जानता ।
स्वेदनं शमनं चैव निरूहाः स्नेहबस्तयः ॥१४०॥
पूर्वोद्दिष्टान् पाययेत योगान् कोष्ठविशोधकान् ।
उदावर्तहराश्चास्य क्रियाः सर्वाः सुखावहाः ॥१४१॥

जाननेवाला वैद्य इसमें तुरन्त दोषहर (शोधन) चिकित्सा करे। स्वेदन, शमनचिकित्सा, निरुह, एवं स्नेहवस्तियाँ देवे। पहले कहे कोष्ठ शोधक योगों को पिलाये। इस रोगी में उदावर्त्त नाशक, एवं सुखदायक सब उपचार करे ॥१४०,१४१॥

अतिमात्रं यदा भुक्तं पावके मृदुतां गते ।
स्थिरीभूतं तु तत्कोष्ठे वायुरावृत्य तिष्ठति ॥१४२॥
अविपाकगतं ह्यन्नं शूलं तीव्रं करोत्यति ।
मूर्च्छाऽऽध्मानं विदाहश्च हृदुत्क्लेशो विलम्बिका ।
विरिच्यते छर्दयति कम्पतेऽथ विमुह्यति ।
अविपाकाद्भवेच्छूलस्त्वन्नदोषसमुद्भवः ॥१४४॥

अतिमात्रा में खाया भोजन अग्नि के मन्द हो जाने पर, कोष्ठ में जब स्थिर होकर वायु द्वारा घिसकर रुक जाता है, तब न पका हुआ अन्न अत्यन्त तीव्र शूल को अधिक मात्रा में उत्पन्न करता है। इससे रोगी को मूर्च्छा, आध्मान, विदाह, हृदय में बेचैनी, बिलम्बिका होती है। वमन, विरेचन होता है, रोगी काँपता है, मूर्च्छित होता है। यह शूल अविपाक से उत्पन्न होता है, जो कि अन्नदोष के कारण से होता है।

वि० मन्तव्य—यह अजीर्ण जनित शूल है। इसमें या तो विलम्बिका होती है, जिसमें न छर्दि ही होती है और न अतिसार ही। देखिये उ० अ० ५६ श्लोक ६। और या फिर वमन एवं विरेचन दोनों प्रारम्भ हो जाते हैं अर्थात् विसूची हो जाती है (दे० अ० ५६ श्लोक ६) ॥१४२-१४४॥

वमनं लङ्घनं स्वेदः पाचनं फलवर्तयः ।
क्षाराश्चूर्णानि गुटिकाः शस्यन्ते शूलनाशनाः ॥१४५॥

इसमें-वमन, लंघन, स्वेद, पाचन, फलवर्त्तियाँ, क्षार, चूर्ण, शूलनाशक गुटिकायें इसमें प्रशस्त हैं ॥१४५॥

गुल्मावस्थाः क्रियाः कार्या यथावत् सर्वशूलिनाम् ।

अवस्थानुसार सब शूल रोगियों में गुल्म की अवस्था के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये।

वक्तव्य—कफो वाते जितप्राये पित्तं शोणितमेव वा ।
यदि कुप्यति वा तस्य क्रियमाणे चिकित्सिते ॥
यथोल्बणस्य दोषस्य तत्र कार्यं भिषग्जितम् ।
आदावन्ते च मध्ये च मारुतं परिरक्षता ॥
वातगुल्मे कफो वृद्धो हत्वाऽग्निमरुचिं यदि ।

हृल्लासं गौरवं तन्द्रां जनयेदुल्लिखेत्तु तम् ॥
शूलानाहं विबन्धेषु गुल्मे वातकफोल्बणे ।
वर्त्त्यो गुटिकाश्चूर्णं कफवातहरं हितम् ॥
पित्तं वा यदि संवृद्धं संतापं वातगुल्मिनः ।
कुर्याद् विरेच्यः स भवेत् सस्नेहैरानुलोमिकैः ॥
चरक चि० अ० ५।२७।३१॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे गुल्मप्रतिषेधो नाम (चतुर्थोऽध्यायः, आदितः) द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

अथातो हृद्रोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे हृद्रोग प्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे—जैसा भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

वेगाघातोष्णरूक्षान्नैरतिमात्रोपसेवितैः ।
विरुद्धाध्यशनाजीर्णैरसात्म्यैश्चापि (ति) भोजनैः ॥३॥
दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः ।
कुर्वन्ति हृदये बाधां हृद्रोगं तं प्रचक्षते ॥४॥

मल-मूत्रादि वेगों को रोकने से, (मानसिक आघात आदि शोकादि से, लाठी की चोट आदि से) उष्णभोजन, रूक्षभोजन का अति मात्रा में सेवन करने से, विरुद्ध भोजनसे, अध्यशनसे, अजीर्ण असात्म्य भोजनों से कुपित हुए दोष हृदय में पीड़ा उत्पन्न करते हैं, इसको हृदयरोग कहते हैं ॥३ ४॥

चतुर्विधः स दोषैः स्यात् कृमिभिश्च पृथक् पृथक् ।
लक्षणं तस्य वक्ष्यामि चिकित्सितमनन्तरम् ॥५॥

हृदयरोग वातादि दोषों से तीन प्रकार का और सन्निपात से चार प्रकार का है। कृमिजन्य हृद्रोग इनसे अलग है। हृदय रोग के लक्षण कहकर उसकी चिकित्सा कहूँगा।

वक्तव्य—चरक में पांच प्रकार के हृद्रोग माने हैं। सन्निपातजन्य हृद्रोग में ही मिथ्या अपचार से कृमिजन्य हृद्रोग होता है। इसलिये सुश्रुत के अनुसार चार ही हृद्रोग हैं ॥५॥

आयम्यते मारुतजे हृदयं तुद्यते तथा ।
निर्मथ्यते दीर्यते च स्फोटयते पाट्यतेऽपि च ॥६॥

वातजन्य हृद्रोग में—हृदय खींचता प्रतीत होता है, चुभने का सा दर्द होता है, मथने के समान, काटने के समान, चटकने के समान, फाड़ने के समान वेदना होती है।

वि० मन्तव्य—रोगी के शब्दों में भले ही ऐसा होता है, परन्तु सचाई यह है कि जब वायु हृदय के कोष्ठों में प्रविष्ट होकर विकृति उत्पन्न करता है तब हृदय के भीतरी स्तरों में-वायुजनित रूक्षता एवं तनने के कारण हृदय के कोष्ठों में विदारण-खरोंश पड़ जाते हैं अथवा हृदय फूट जाता है या फट जाता है, फलतः तत्काल मृत्यु हो जाती है ॥

तृष्णोषादाहचोषाः स्युः पैत्तिके हृदयक्लमः ।
धूमायनं च मूर्च्छा च स्वेदः शोषो मुखस्य च ॥७॥

पैत्तिक हृद्रोग में—प्यास, ऊषा (प्रादेशिक दाह), चोष, हृदय में क्लम (थकान), धूमोद्गमन की प्रतीति, मूर्च्छा और मुख की शुष्कता होती है ॥७॥

गौरवं कफसंस्रावोऽरुचिः स्तम्भोऽग्निमार्दवम् ।
माधुर्यमपि चाऽऽस्यस्य बलासावतते हृदि ॥८॥

कफजन्य हृद्रोग में—भारीपन, कफ का स्राव, अरुचि, जड़ता, अग्निमान्द्य, मुख में मधुरता, कफ के हृदय में आवृत होने पर होते हैं ॥८॥

उत्क्लेशः ष्ठीवनं तोदः शूलो हृल्लासकस्तमः ।
अरुचिः श्यावनेत्रत्वं शोषश्च कृमिजे भवेत् ॥९॥

त्रिदोषजन्य हृद्रोग में—उत्क्लेश, थूक का आना, चुभने की दर्द, शूल, जी मचलाना, अन्धकार, अरुचि, आंखों में कालापन तथा शोष होते हैं।

वक्तव्य—चरक में कहा है—"त्रिदोषजे तु हृद्रोगे यो दुरात्मा निषेवते। तिलक्षीरगुडादीनि ग्रन्थिस्तस्योपजायते। मर्मैकदेशे संक्लेदं रसश्चाप्युपगच्छति। संक्लेदात् कृमयश्चास्य भवन्ति उपहतात्मनः ॥" चरक सूत्र। सन्निपातजन्य हृदय रोग में ही मिथ्याचार से कृमि होते हैं ॥९॥

भ्रमक्लमौ सादशोषौ ज्ञेयास्तेषामुपद्रवाः ।

इन हृद्रोगों में—भ्रम, क्लम, अंगों में शिथिलता, शोष (मुख और धातुओं का) ये उपद्रव।

कृमिजन्य हृद्रोग में कफज कृमियों के समान लक्षण होते हैं।

वि० मन्तव्य—कृमिज हृद्रोग में जो कृमि उत्पन्न होते हैं उनका नाम-च० वि० अ० ७ में "हृदयचर" है। अर्थात् हृदय में घूमनेवाले तथा उसे खानेवाले और च० सू० अ० १९ में "हृदयाद" है अर्थात् हृदय को खा जानेवाले। विधिभेद से ये "कफज" कृमि हैं। इसका विवरण देखिये च० सू० अ० १७ के श्लो० ३६-४० में। सारांश यह है कि-हृद्रोग रहने पर भी यदि तिल, दूध एवं गुड़ आदि कफ पित्त कारक पदार्थों का सेवन हो जाता है तो हृदय के किसी भाग में ग्रन्थि उत्पन्न हो जाती है और रस (रस मिश्रित रक्त) सड़ने लगता है और इसमें कृमि उत्पन्न हो जाते हैं और वे इधर उधर घूमते हैं तथा हृदय को खाने लगते हैं। इस दशा में

रोगी को प्रतीत होता है कि हृदय में सूइयाँ चुभ रही हैं अथवा हृदय चाकू से काटा जा रहा है और वह हृदय में खुजली तथा भीषण वेदना का अनुभव करता है। भगवान् पुनर्वसु कहते हैं कि इन लक्षणों से समझ लेना चाहिये कि यह रोग "कृमिज हृद्रोग" है और इसकी चिकित्सा बहुत शीघ्रकारी है अर्थात् थोड़ा विलम्ब होने पर कृमि हृदय को खा जाते हैं और फलतः मृत्यु हो जाती है॥

कृमिजे कृमिजातीनां श्लैष्मिकाणां च ये मताः ॥१०॥
वातोपसृष्टे हृदये वामयेत् स्निग्धमातुरम्।
द्विपञ्चमूलक्वाथेन सस्नेहलवणेन तु ॥११॥
पिप्पल्येलावचाहिङ्गुयवभस्मानि सैन्धवम्।
सौवर्चलमथो शुण्ठीमजमोदां च चूर्णितम् ॥१२॥
फलधान्याम्लकौलत्थदधिमद्यासवादिभिः।
पाययेत विशुद्धं च स्नेहेनान्यतमेन वा ॥१३॥

वातज हृद्रोग में—रोगी को स्नेहन देकर दशमूल के क्वाथ में स्नेह (घी) और नमक मिलाकर वमन करावे। फिर शोधन होने पर पिप्पली, इलायची, वच, हींग, यवक्षार, सैन्धव, सौवर्चल, सोंठ, अजवायन इनके चूर्ण को विजौरे आदि फलों के रस, कांजी, कुलत्थी का यूष, दही, मद्य, आसव, इनके साथ अथवा घी तैल-मज्जा वसा इनमें से किसी एक स्नेह के साथ पिलाये। (तैल हृद्रोग में उत्तम नहीं-ओज को कम करने के कारण) ॥१०-१३॥

भोजयेज्जीर्णशाल्यन्नं जाङ्गलैः सघृतै रसैः।
वातघ्नसिद्धं तैलं च दद्याद्बस्तिं प्रमाणतः ॥१४॥

भोजन में पुरातन शालीचावलों को घृत मिश्रित जांगल मांसरसों से देवे। भद्रदार्व्यादि वातघ्न द्रव्यों से सिद्ध तैल की वस्ति प्रमाण के अनुसार देवे ॥१४॥

श्रीपर्णीमधुकक्षौद्रसितोत्पलजलैर्वमेत्।
पित्तोपसृष्टे हृदये सेवेत मधुरैः शृतम् ॥१५॥

पित्त से उत्पन्न हृद्रोग में—गम्भारी, मुलैहठी, मधु, शर्करा, कमल इनके पानी से रोगी को वमन कराये। काकोल्यादि मधुर द्रव्यों से पकाया घृत पिलाये। पित्तज्वरनाशक कहे कषायों को (चन्दनोशीर श्रीपर्णी आदि) को पिलाये॥

घृतं कषायांश्चोद्दिष्टान् पित्तज्वरविनाशनान्।
तृप्तस्य च रसैर्मुख्यैर्मधुरैः सघृतैर्भिषक् ॥१६॥

हरिण आदि के मुख्य मांसरसों को मधुर द्रव्यों से तथा घी से संस्कृत करके पर्याप्त मात्रा में तृप्ति पर्यन्त वैद्य पिलाये। मुलैहठी क्वाथ से सिद्ध तैल और मधु मिलाकर बस्ति देवे॥

सक्षौद्रं वितरेद्बस्तौ तैलं मधुकसाधितम्।
वचानिम्बकषायाभ्यां वान्तं हृदि कफात्मके ॥१७॥
चूर्णं तु पाययेतोक्तं वातजे भोजयेच्च तम्।
फलादिमथ मुस्तादिं त्रिफलां वा पिबेन्नरः ॥१८॥
श्यामात्रिवृत्कल्कयुतं घृतं वाऽपि विरेचनम्।
बलातैलैर्विदध्याच्च बस्तिं बस्तिविशारदः ॥१९॥

कफजन्य हृद्रोग में—वच, नीम के कषाय से वमन कराये। वातजहृद्रोग में कहा चूर्ण (पिप्पली आदि का चूर्ण) पिलाये। वातज हृद्रोग में कहा चूर्ण भोजन के साथ देवे। संशोधन में शमनीयोक्त मदनफलादि, द्रव्यसंग्रहणीयोक्त मुस्तादि, या त्रिफला को मनुष्य पीये। कालीनिशोथ निशोथकल्कमिश्रित घृत को विरेचन के लिये देवे। वस्ति को जाननेवाला बलातैल से बस्ति देवे ॥१७-१९॥

कृमिहृद्रोगिणं स्निग्धं भोजयेत् पिशितौदनम्।
दध्ना च पललोपेतं त्र्यहं पश्चाद्विरेचयेत् ॥२०॥
सुगन्धिभिः सलवणैर्योगैः साजाजिशर्करैः।
विडङ्गगाढं धान्याम्लं पाययेताप्यनन्तरम् ॥२१॥
हृदयस्थाः पतन्त्येवमधस्तात् कृमयो नृणाम्।
यवान्नं वितरेच्चास्य सविडङ्गमतः परम् ॥२२॥

कृमिजन्य हृद्रोगी को घृत से स्निग्ध पिशितोदन (मांस भोजन) को दही एवं तिल कल्क के साथ तीन दिन खिलाये। इसके पीछे सुगन्धित, लवणयुक्त, जीरा एवं शर्करा युक्त विरेचनों से विरेचन देवे। विरेचन के पीछे कांजी से विरेचन देवे। विरेचन के पीछे कांजी में प्रचुर विडंगचूर्ण मिलाकर इसको पिलाये। इस प्रकार करने से मनुष्यों के हृदयस्थ कृमि नीचे गिरते हैं। इसके बाद विडंग मिश्रित जौ का अन्न उसे खाने को देवे।

वक्तव्य—सुगन्धियोगैः—विरेचनकल्पोक्त "शर्कराक्षौद्र संयुक्तं इत्यादि, सलवणयोगैः समा त्रिवृन्नागरकाभयाः" इत्यादि, अजाजी शर्करा मिश्रित लवणों से विरेचन देवे। चरक में—"भुक्तेऽधिकं जीर्यति शूलमल्पं जीर्णे स्थितं चेत् सुरदारु कुष्ठम्। सतिल्वकं द्वे लवणे विडंगमुष्णाम्बुना सातिविषं पिबेत्सः॥ जीर्णेऽधिके स्नेहविरेचनं स्यात् फलैर्विरेच्यो यदि जीर्यति स्यात्। त्रिष्वेव कालेष्वधिके तु शूले तीक्ष्णं हितं मूलविरेचनं स्यात्॥ प्रायोऽनिलो रुद्धगतिः प्रकुप्यत्यामाशये शोधनमेव तस्मात्। कार्यं तथा लंघनपाचनं च सर्वं कृमिघ्नं कृमिहृद्गदे च"॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे हृद्रोगप्रतिषेधो नाम (पञ्चमोऽध्यायः, आदितः) त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

अथातः पाण्डुरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे पाण्डुरोग प्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे— जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

व्यवायमम्लं लवणानि मद्यं
मृदं दिवास्वप्नमतीव तीक्ष्णम्।
निषेवमाणस्य विदूष्य रक्तं
कुर्वन्ति दोषास्त्वचि पाण्डुभावम् ॥३॥

व्यवाय (मैथुन), अम्लरस, लवण, मद्य का अतिसेवन करने से, मिट्टी को खाने से, दिन में सोने से, पित्तकोपक तीक्ष्ण वस्तुओं का सेवन करनेवाले पुरुष के दूषित हुए दोष रक्त को दूषित करके त्वचा में पाण्डुपन उत्पन्न कर देते हैं।

वक्तव्य—मिट्टी से पाण्डुरोग—"कषाया मारुतं पित्तमूषरा मधुरा कफम्। कोपयेन्मृद्रसांदीश्च रौक्ष्याद् भुक्तं विरूक्षयेत् ॥" मिट्टी, मद्य, मछली, मांस, तीक्ष्ण, पिष्ट, पय, दिवास्वप्न, तिल, माष आदि के सेवन करने से भी पाण्डुरोग होता है।

वि० मन्तव्य—पाण्डु भाव—इस रोग में रक्त की लाली घट जाती है, फलतः शरीर पाण्डुवर्ण का हो जाता है। कामला में—वर्ण हल्दी का-सा गहरा पीला होता है, और हलीमक में हरापन लिये पीला होता है, क्योंकि पित्त पीला भी है और नीला भी-पीत एवं नील वर्ण का मिश्रण ही हरा वर्ण होता है। इन तीनों में क्रमशः पित्त का मिश्रण अधिक होता है॥३॥

पाण्ड्वामयोऽष्टार्धविधः प्रदिष्टः
पृथक्समस्तैर्युगपच्च दोषैः।

पाण्डुरोग चार प्रकार का है, यथा—वातादि पृथक् दोषों से तीन प्रकार का और एक साथ कुपित हुए तीनों दोषों से एक प्रकार का।

वक्तव्य—मट्टीभक्षण जन्य पाँण्डुरोग एक अन्य गिना है, परन्तु यहाँ पर उसका मिट्टी के अनुसार वातादिजन्य पाण्डुरोग में अन्तर्भाव है, कामला, हलीमक का भी एक ही सम्प्राप्ति होने से पाण्डुरोग में ही अन्तर्भाव किया गया है। कई इनको अलग मानकर आठ प्रकार का मानते हैं, यथा—"वातेन पित्तेन कफेन चापि त्रिदोषमृद्भक्षणसंभवः स्यात्। द्वे कामले चैकहलीमकश्च सचाष्टधैवं त्विह पाण्डुरोगः ॥"

सर्वेषु चैतेष्विह पाण्डुभावो
यतोऽधिकोऽतः खलु पाण्डुरोगः ॥४॥

इन सब वातादि भेदों में पाण्डुभाव चूंकि सब से अधिक रहता है, इसलिये इस रोग को पाण्डुरोग कहते हैं ॥४॥

त्वक्स्फोटनं ष्ठीवनगात्रसादौ
मृद्भक्षणं प्रेक्षणकूटशोथाः।
विण्मूत्रपीतत्वमथाविपाको
भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ॥५॥

पूर्वरूप—त्वचा का फटना, थूक आना, अंगों में शिथिलता, मिट्टी खाने की इच्छा, अक्षिकूट में शोथ, मल-मूत्र का पीलापन, अविपाक, ये पाण्डुरोग के पूर्वरूप हैं।

वक्तव्य—गर्भवती स्त्री को मिट्टी या दूसरी वस्तुओं की इच्छा होना—पाण्डुरोग के पूर्वरूप का उत्तम उदाहरण है। इन स्त्रियों में एनीमिया आंखों पर सूजन मिलती है। जो स्त्रियाँ गर्भावस्था में मिट्टी खाती हैं, उनमें पाण्डुरोग प्रायः मिलता है।

वि० मन्तव्य—चरकोक्त पूर्वरूप भी स्मरणीय है, यथा—हृदयस्पन्दनं रौक्ष्यं स्वेदाभावः श्रमस्तथा (च० चि० अ०१६)। इसमें भी हृदयस्पन्दन विशेषतः स्मरणीय है, यह पाण्डुरोग व्यक्त होने पर भी रहता है ॥५॥

स कामलापानकिपाण्डुरोगः
कुम्भाह्वयो लाघर(व)कोऽलसाख्यः।
विभाष्यते लक्षणमस्य कृत्स्नं
निबोध वक्ष्याम्यनुपूर्वशस्तत् ॥६॥

इस पाण्डुरोग को कामला, अपानकि, पाण्डुरोग, कुम्भाह्वय, लाघरक, अलसक नाम से कहते हैं। इसके सम्पूर्ण लक्षण क्रमशः कहता हूँ—उसे सुनो ॥६॥

कृष्णेक्षणं कृष्णसिरावनद्धं
तद्वर्णविण्मूत्रनखाननं च।
वातेन पाण्डुं मनुजं व्यवस्ये-
द्युक्तं तथाऽन्यैस्तदुपद्रवैश्च ॥७॥

वातजन्य पाण्डु में रोगी की आँखें काली, काली सिराओं से व्याप्त, मल-मूत्र नख और मुख काला, वातजनित उपद्रवों से पीड़ित रहता है ॥७॥

पीतेक्षणं पीतसिरावनद्धं
तद्वर्णविण्मूत्रनखाननं च।
पित्तेन पाण्डुं मनुजं व्यवस्ये-
द्युक्तं तथाऽन्यैस्तदुपद्रवश्च ॥८॥

पित्तजन्य पाण्डु में रोगी की आंखें पीली, पीली सिराओं से व्याप्त, मल-मूत्र नख और मुख पीला तथा पित्तजन्य अन्य उपद्रवों से वह पीड़ित रहता है ॥८॥

शुक्लेक्षणं शुक्लसिरावनद्धं
तद्वर्णविण्मूत्रनखाननं च।
कफेन पाण्डुं मनुजं व्यवस्ये-
द्युक्तं तथाऽन्यैस्तदुपद्रवैश्च ॥९॥

कफजन्य पाण्डु में रोगी की आँखें श्वेत, श्वेतवर्ण की सिराओं से व्याप्त, मल-मूत्र नख और मुख श्वेत, तथा कफजन्य अन्य उपद्रवों से वह पीड़ित रहता है ॥९॥

सर्वात्मके सर्वमिदं व्यवस्येद्

सन्निपातजन्य पाण्डु में सब दोषों के लक्षण रहते हैं।

वक्तव्य—कामला-कामशब्दोऽयं साधारणः शब्दः, विशेषात्स्वल्पे भक्ताद्यभिलाषे प्रवर्त्तते, तं लातीति कामला। दुष्टत्वेन कुत्सितोऽपानोऽपानकः सोऽस्यास्तीति अपानकी, कामलाख्याऽपानकी पाण्डुरोगः कामलापानकी पाण्डुरोगः । कुम्भकामलाख्याऽपानकी पाण्डुरोगस्त्वत्र कुम्भाह्वय उच्यते, भीमो भीमसेन इतिवत् । रोगस्यास्य कुम्भकामलेति संज्ञा तंत्रान्तरे व्यपदिश्यते (जिस कामला में पेट घड़े के समान हो जाये–कोष्ठाश्रित कामला)। स एव पुनः ज्वरादिलाघवं करोति, सत्यपि सामर्थ्ये कर्मस्वनुत्साहं च जनयति, इति अलसाख्योऽपानकिपाण्डुरोगस्तु लाघवक उच्यते, इति हाराणचन्द्रः ।

वक्ष्यामि लिङ्गान्यथ कामलायाः ।
यो ह्यामयान्ते सहसाऽन्नमम्ल-
मद्यादपथ्यानि च तस्य पित्तम् ॥१०॥
करोति पाण्डुं वदनं विशेषात्
पूर्वेरितौ तन्द्रिबलक्षयौ च ।

इसके आगे कामला के लक्षण कहता हूँ—पाण्डुरोग में या अन्य किसी दूसरे रोग के पीछे जो रोगी सहसा खट्टा भोजन या अपथ्य सेवन करता है, उस रोगी का पित्त विशेष रूप में शरीर को पाण्डुवर्ण कर देता है, तथा प्रथम कहे तन्द्रा एवं बलक्षय के लक्षणों को उत्पन्न करता है ।

वक्तव्य—तन्द्रा का लक्षण गर्भव्याकरणाध्याय में बल क्षय का लक्षण—दोषादिक्षय वृद्धि अध्याय (सूत्र स्थान) में कहे हैं ॥१०॥

भेदस्तु तस्याः खलु कुम्भसाह्वः
शोफो महांस्तत्र च पर्वभेदः ॥११॥

इसी कामला का कुम्भ कामला नामक भेद है, इसमें महान् शोथ, तथा सन्धि पीड़ा होती है ।

वि० मन्तव्य—कामला-शाखाश्रया-शाखा रक्त आदि धातु तथा त्वचा में आश्रित होता है (शाखा रक्तादयो धातवः त्वक् च । च० सू० अ० ११) और कुम्भकामला—कुम्भ अर्थात् कोष्ठ में आश्रित होता है इसका प्रभाव कोष्ठ पर अधिक होता है। कोष्ठ शब्द से—स्थानानि आम अग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च। हृद् उण्डुकं फुफ्फुसश्च कोष्ठ इति अभिधीयते ॥ के अनुसार मध्यकाय गत समस्त अवयवों का बोध-ग्रहण होता है। फलतः कुम्भकामला में उक्त सभी अवयव विकृत हो जाते हैं। हमारे विचार में "कालाजार" कहा जानेवाला यही कुम्भकामला है ॥११॥

ज्वराङ्गमर्दभ्रमसादतन्द्रा-
क्षयान्वितो लाघर(व) कोऽलसाख्यः ।

इसी कुम्भकामला में जब रोगी को ज्वर, अंगों का टूटना, भ्रम, शिथिलता, तन्द्रा, क्षय (धातुओं का क्षय), होता है तब इसको लाघरक अलस कहते हैं ।

वक्तव्य—कुम्भकामला की अवस्था भेद को पानकी कहते हैं, यथा—"सन्तापो भिन्नवर्चस्त्वं बहिरन्तश्च पीतता । पाण्डुता नेत्ररोगश्च पानकीलक्षणं वदेत् ॥"

तं वातपित्ताद्धरिपीतनीलं
हलीमकं नाम वदन्ति तज्ज्ञाः ॥१२॥

पाण्डुरोग में (कुम्भकामला में) वायु और पित्त के कारण हरा पीला नीला रंग हो तो, कायचिकित्सा को जाननेवाले इसको हलीमक नाम से कहते हैं ।

वक्तव्य—पाण्डुरोग एक रोग है, कामला, कुम्भकामला, हलीमक ये उसकी अवस्था भेद हैं। कामला कोष्ठाश्रित और शाखाश्रित दो प्रकार का है। यथा चरक में—"पाण्डुरोगी तु योऽत्यर्थं पित्तलानि निषेवते । तस्य पित्तमसृङ्मांसं दग्ध्वा रोगाय कल्पते ॥ हारिद्रनेत्रः स भृशं हरिद्रत्वङ्नखाननः। रक्तपीतशकृन्मूत्रो भेकवर्णो हतेन्द्रियः ॥ दाहाविपाकदौर्बल्यसदनारुचिकर्षितः । कामला बहुपित्तैषा कोष्ठशाखाश्रया मता ॥ कालान्तरात्खरीभूता कृच्छ्रा स्यात्कुम्भकामला । यदा तु पाण्डोर्वर्णः स्यात् हरितश्यावपीतकः ॥ बलोत्साहक्षयस्तन्द्रा मन्दाग्नित्वं मृदुज्वरः । स्त्रीष्वहर्षोऽङ्गमर्दश्च श्वासस्तृष्णाऽरुचिर्भ्रमः ॥ हलीमकं तदा तस्य विद्यादनिलपित्ततः ।" च० चि० अ० १६,३४-३६-१३२-१३३॥१२॥

उपद्रवास्तेष्वरुचिः पिपासा
छर्दिर्ज्वरो मूर्धरुजाऽग्निसादः ।
शोषस्तथा कण्ठगतोऽबलत्वं
मूर्च्छा क्लमो हृदयपीडनं च ॥१३॥

उपद्रव—अरुचि, प्यास, वमन, ज्वर, शिर में दर्द, अग्निमान्द्य, सूजन, गले में निर्बलता (आवाज में धीमापन), मूर्च्छा, क्लम और हृदय प्रदेश में पीड़ा होती है।

वक्तव्य—उपद्रवों के अनुसार पाण्डुरोगी साध्य, कष्टसाध्य एवं असाध्य हो जाता है ॥१३॥

साध्यं तु पाण्डवामयिनं समीक्ष्य
स्निग्धं घृतेनोर्ध्वमधश्च शुद्धम् ।
संपादयेत् क्षौद्रघृतप्रगाढै-
र्हरीतकीचूर्णयुतैः प्रयोगैः ॥१४॥
पिबेद्घृतं वा रजनीविपक्वं
यत्त्रैफलं तैल्वकमेव वाऽपि ।
विरेचनद्रव्यकृतं पिबेद्वा
योगांश्च वैरेचनिकान् घृतेन ॥१५॥

साध्य पाण्डु रोगी को देखकर संस्कृत घृतों से स्निग्ध करके फिर (कल्याणक या तिक्त, महातिक्त, पंचगव्य आदि)

वमन एवं विरेचन द्वारा शोधन करके हरड़ का चूर्ण प्रचुर मधु और घृत से खाने के लिये देवें। अथवा हल्दी के कल्क से सिद्ध घृत, त्रिफलाघृत, तिल्वकघृत में से कोई एक पीये। त्रिवृतादि विरेचन द्रव्यों से बनाये घृत या वैरेचनिक योगों को घृत के साथ पीये।

वक्तव्य—असंस्कृत घृत पित्त में निषिद्ध है, यथा—"न सर्पिः केवले पित्ते पेयं सामे विशेषतः। सर्वं ह्यनुरजेद्देहं हत्वा संज्ञां च मारयेत् ॥" चरक। इसलिये घृत को औषधियों से, वह भी शोधक विरेचक औषधियों से संस्कृत करके देने का विधान है। घृत वायु पित्त दोनों का शमन करता है। पित्त के लिये विरेचन वह भी घृत युक्त होना सबसे श्रेष्ठ आयुर्वेद में माना है। इसी से घृत को शोधनीय द्रव्यों से सिद्ध करके या उनके साथ देने का विधान है। असंस्कृत घृत पित्त को शान्त नहीं करेगा। पाण्डुरोग में वमन निषिद्ध है, तथापि सिद्धघृत से ऋतु देश प्रकृति की अपेक्षा से मृदु वमन देना चाहिये। यथा—"कालं च देशं प्रकृतिं, शरीरं समीक्ष्य दद्याद् वमनं विधिज्ञः। वान्तस्य तीक्ष्णानि अनुलोमनानि कल्पोपदिष्टानि भिषग् विदध्यात्" ॥१४,१५॥

मूत्रे निकुम्भार्धपलं विपाच्य
पिबेदभीक्ष्णं कुडवार्धमात्रम्।
खादेद् गुडं वाऽप्यभयाविपक्व-
मारग्वधादिक्वथितं पिबेद्वा ॥१६॥

गोमूत्र में दन्ती आधा पल पकाकर चतुर्थांश शेष रखकर दो पल मात्रा विरेचन के लिये पीये। हरड़ के क्वाथ में पकाये गुड़ को खाये। अथवा आरग्वधादिगण का क्वाथ पीये।

वक्तव्य—डल्हण ने भैंस का मूत्र लेना कहा है, सोलह गुणे मूत्र में क्वाथ करे, हरड़ और गुड़ दोनों को खाये ॥१६॥

अयोरजोव्योषविडङ्गचूर्णं
लिह्याद्धरिद्रां त्रिफलान्वितां वा।
सर्पिर्मधुभ्यां विदधीत वाऽपि
शास्त्रप्रदेशाभिहितांश्च योगान् ॥१७॥

लोहभस्म, त्रिकटु और विडंग, अथवा हल्दी और घृत के साथ चाटे। शास्त्र में अन्य स्थान पर कहे (नवायस आदि) योगों को भी बरते, (हरिद्रा से कई दारुहरिद्रा लेते हैं) ॥१७॥

हरेच्च दोषान् बहुशोऽल्पमात्रान्
श्वयेद्धि दोषेष्वतिनिर्हृतेषु।

दोषों को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में बहुत बार बाहर निकाले, क्योंकि दोषों के बाहर न निकालने से शोथ हो जाती है।

धात्रीफलानां रसमिक्षुजं च
मन्थं पिबेत् क्षौद्रयुतं हिताशी ॥१८॥

आंवला के स्वरस को मधु के साथ, गन्ने के रस में मधु मिलाकर इनसे मन्थ (जौ के सत्तू को घोलकर) बनाकर पीये।

मन्थ—"शक्तवः सर्पिषाभ्यक्ताः शीतवारिपरिप्लुताः।" तंत्रान्तर में "धात्रीफलरसे शक्तूनिचूर्णां च रसे तथा। पांडुर्मधुसमायुक्तं पिबेन्मन्थं सुशीतलम् ॥" "पिबेत् सुशीतलान् मन्थान् घृताक्तान् मधुसंयुतान्। सक्षौद्रं वा रसं धात्र्या इक्षोर्वाऽपि हिताशनः" ॥१८॥

उभे बृहत्यौ रजनीं शुकाख्यां
काकादनीं चापि सकाकमाचीम्।
आदारिबिम्बीं सकदम्बपुष्पीं
विपाच्य सर्पिर्विपचेत् कषाये ॥१९॥
तत् पाण्डुतां हन्त्युपयुज्यमानं
क्षीरेण वा मागधिका यथाग्नि।

कटेरी, बड़ीकटेरी, हल्दी शुकाख्या (शुकनासा शिरीष या शूकशिम्बी), काकादनी (काकतिन्दुक कौआटूंठी), मकोय, आदारी बिम्बी (आलारि, या आदारी कदम्बपुष्पी, बिम्बी-कान्दूरी) भूमि-कदम्ब, इनके क्वाथ में घृत के उपयोग करने पर पाण्डुरोग नष्ट होता है। अथवा अग्नि के अनुसार दूध से पिप्पली को खाये ॥१९॥

हितं च यष्टीमधुजं कषायं
चूर्णं समं वा मधुनाऽवलिह्यात् ॥२०॥

मुलैहठी का कषाय मधु के साथ, अथवा मुलैहठी चूर्ण मधु के साथ खाये ॥२०॥

गोमूत्रयुक्तं त्रिफलादलानां
दद्याद्वाऽऽयसं चूर्णमनल्पकालम्।
प्रवालमुक्ताञ्जनशङ्खचूर्णं
लिह्यात्तथा काञ्चनगैरिकोत्थम् ॥२१॥

त्रिफला की बकलीका चूर्ण, लोहभस्म इनको गोमूत्र के साथ बहुत समय तक खाये। मूंगा, मोती, अंजन (सुरमा या रसांजन), शंख चूर्ण गोमूत्र के साथ बहुत समय तक चाटे। स्वर्णगेरु के चूर्ण को गोमूत्र के साथ बहुत समय तक खाये। (अंजन से सुरमा लेना ठीक है–प्रवाल आदि द्रव्यों को देखकर शीत होने से) ॥२१॥

आजं शकृत्स्यात् कुडवप्रमाणं
विडं हरिद्रा लवणोत्तमं च।
पृथक् पलांशानि समग्रमेत-
च्चूर्णं हिताशी मधुनाऽवलिह्यात् ॥२२॥

बकरी की मींगनी चार पल, विड्नमक, हल्दी, सैन्धव, प्रत्येक एक पल, इन सबका चूर्ण मधु के साथ चाटे और पथ्य भोजन करे ॥२२॥

मण्डूरलोहाग्निविडङ्गपथ्या-
व्योषांशकः सर्वसमानताप्यः।
मूत्रासुतोऽयं मधुनोऽवलेहः
पाण्ड्वामयं हन्त्यचिरेण घोरम् ॥२३॥

मण्डूरभस्म, लोहभस्म, चित्रक, विडंग, हरड़, त्रिकटु प्रत्येक एक भाग, इन सबके बराबर स्वर्णमाक्षिक, इनको गोमूत्र में सन्धान करके रख देवे, इसको मधु के साथ चाटने पर घोर पाण्डुरोग भी शीघ्र ही नष्ट होता है ॥२३।

बिभीतकायोमलनागराणां
चूर्णं तिलानां च गुडश्च मुख्यः।
तक्रानुपानो वटकः प्रयुक्तः
क्षिणोति घोरानपि पाण्डुरोगान् ॥२४॥

बहेड़ा, किट्टमल, सोंठ, तिल, इनका चूर्ण, गुड़ से मिलाकर बटक बनाये। इनको तक्र के अनुपान से खाने पर भयानक पाण्डुरोग भी नष्ट हो जाता है। (गुड़ सम्पूर्ण चूर्ण के बराबर देना चाहिये) ॥२४॥

सौवर्चलं हिङ्गु किराततिक्तं
कलायमात्राणि सुखाम्बुना वा।
मूर्वाहरिद्रामलकं च लिह्यात्
स्थितं गवां सप्तदिनानि मूत्रे ॥२५॥
मूलं बलाचित्रकयोः पिबेद्वा
पाण्ड्वामयार्तोऽक्षसमं हिताशी।
सुखाम्बुना वा लवणेन तुल्यं
शिग्रोः फलं क्षीरभुजोपयोज्यम् ॥२६॥

सौवर्चल, हींग, चिरायता, प्रत्येक एक अक्षमात्रा लेकर गरम पानी के साथ पीये। मूर्वा हल्दी और आंवला इनको सात दिन गोमूत्र में रखकर चाटे (मधु से या गरम पानी से पीये)। चित्रक और बला, इनका मूल प्रत्येक एक कर्ष लेकर गरम पानी से पीये, हितकारी भोजन करे। सैन्धव नमक और सहजन का फल समान भाग लेकर पानी से पीये, भोजन में दूध का ही भोजन करे।

वक्तव्य—"निशामलकमूर्वाभिर्भावितं सप्तवासरान्। गोमूत्रं पिबतः पाण्डुः कामला च प्रणश्यति" ॥२५,२६॥

न्यग्रोधवर्गस्य पिबेत् कषायं
शीतं सिताक्षौद्रयुतं हिताशी।
शालादिकं चाप्यथ सारचूर्णं
धात्रीफलं वा मधुनाऽवलिह्यात् ॥२७॥

न्यग्रोधादिगण के शीत कषाय को शर्करा-मधु के साथ पीये, हितकारी भोजन करे। शालसारादिगण के सार भाग का चूर्ण मधु से चाटे, या आंवले का चूर्ण मधु से चाटे ॥२७॥

विडङ्गमुस्तत्रिफलाजमोद-
परूषकव्योषविनिर्दहन्यः।
चूर्णानि कृत्वा गुडशर्करे च
तथैव सर्पिर्मधुनी शुभे च ॥२८॥
संभारमेतद्विपचेन्निधाय
सारोदके सारवतो गणस्य।
जातं च लेह्यं मतिमान् विदित्वा
निधापयेत्सोक्षकजे समुद्गे ॥२९॥
हन्त्येष लेहः खलु पाण्डुरोगं
सशोथमुग्रामपि कामलां च।

विडंग, मुस्ता, त्रिफला, अजवायन, फालसा, त्रिकटु, चित्रक इनका चूर्ण करे, शालसारादिगण के सार भाग के क्वाथ में इन सब चूर्णों को गुड़, शर्करा, घी, और मधु को मिलाकर लेह तैयार करे। लेह तैयार हो जाने पर बुद्धिमान् वैद्य इस लेह को मुष्कक के बने सम्पुट में रख देवे। यह लेह शोथयुक्त पाण्डुरोग को तथा उग्रकामला को भी नष्ट कर देता है। (मधु का पाक निषिद्ध नहीं, मधु को गरम खाना मना है, सक्षौद्रां शर्करां पक्त्वा)।

वक्तव्य—पाण्डुरोगप्रशान्त्यर्थमिदमुक्तं चिकित्सितम्। विकल्प्यैवं च भिषजा यथादोषबलं प्रति ॥ स्नेहप्रायं पवनजे तिक्तशीतं तु पैत्तिके। श्लैष्मिकं कटुरूक्षोष्णं मिश्रं स्यात् सान्निपातिके ॥२८-२९॥

सशर्करा कामलिनां त्रिभण्डी
हिता गवाक्षी सगुड़ा च शुण्ठी ॥३०॥

कामला रोगियों के लिये शर्करा मिश्रित निशोथ उत्तम है। इन्द्रायण या सोंठ गुड़ के साथ हितकारी है ॥३०॥

कालेयके चापि घृतं विपक्वं
हितं च तत् स्याद्रजनीविमिश्रम्।

कालेयक (दारुहरिद्रा) के कल्क से सित घृत में हल्दी का प्रक्षेप मिलाकर खाना भी कामला में उत्तम है।

धातुं नदीजं जतु शैलजं वा
कुम्भाह्वये मूत्रयुतं पिबेद्वा ॥३१॥

स्वर्णमाक्षिक या शिलाजतु को गोमूत्र के साथ कुम्भकामला में पीये ॥३१॥

मूत्रे स्थितं सैन्धवसंप्रयुक्तं
मासं पिबेद्वाऽपि हि लोहकिट्टम्।

लोहकिट्ट को एकमास तक गोमूत्र में रखकर गोमूत्र के साथ भस्म करके सैन्धव मिलाकर कुम्भकामला में पीये।

दग्ध्वाऽक्षकाष्ठैर्मलमायसं वा
गोमूत्रनिर्वापितमष्टवारान् ॥३२॥
विचूर्ण्य लीढं मधुनाऽचिरेण
कुम्भाह्वयं पाण्डुगतं निहन्यात्।
सिन्धूद्भवं वाऽग्निसमं च कृत्वा
क्षिप्त्वा च मूत्रे सकृदेव तप्तम् ॥३३॥
लौहं च किट्टं बहुशश्च तप्त्वा
निर्वाप्य मूत्रे बहुशस्तथैव।
एकीकृतं गोजलपिष्टमेत-
दैकध्यमावाप्य पचेदुखायाम् ॥३४॥

यथा न दह्येत तथा विशुष्कं
चूर्णीकृतं पेयमुदश्विता तत् ।
तक्रोदनाशी विजयेत रोगं
पाण्डुं तथा दीपयतेऽनलं च ॥३५॥

लोह किट्ट को बहेड़े की लकड़ियों में गरम लाल करके गोमूत्र में बुझाये। इस प्रकार आठ बार करे। फिर इसका चूर्ण करके मधु के साथ चाटे। यह कुम्भ कामला पाण्डुरोग को नष्ट करता है। सैन्धव चूर्ण को बहेड़े की लकड़ियों में लाल अग्निवर्ण करके एक साथ ही गोमूत्र में एकदम बुझावे। लोह-किट्ट को अग्नि में बहुत बार गरम करके बार बार गोमूत्र में कई बार बुझाये। फिर इन दोनों को मिलाकर गोमूत्र के साथ पीसकर पात्र (पतीली) में रखकर पकाये। पकाते समय जलने न पाये इस बात का ध्यान रक्खे, सूख जाने पर चूर्ण करके इसको उदश्वित् (छाछ) के साथ पीये। भोजन में छाछ और चावल लेवे। इस प्रकार करने से पाण्डुरोग नष्ट होता है, और अग्नि प्रदीप्त होती है।

वक्तव्य—डल्हण ने पकाते समय पात्र का मुख ढांपने को कहा है, इसको बिभीतक लवण कहते हैं।

वि० मन्तव्य—पाण्डुरोग एवं कामला आदि में उक्त सब योग प्रायः विरेचन हैं, लोह मण्डूर एवं स्वर्ण माक्षिक के योग रक्त में लालिमा उत्पन्न करते हैं, लवण एवं मूत्र के संयोग से वृक्कों को शक्ति मिलती है, जिससे रक्त में मिला पित्त मूत्र के साथ निकल जाता है, प्रवालमुक्ता आदि पित्तशामक है। श्लो० २४ का योग बहुत ही उत्तम है, परन्तु मात्रा १ तो० होनी चाहिये, तक्र भर पेट पीना चाहिये। तक्र-अर्द्धविलोडित दही का हो, उसमें से माखन न निकाला जाय। और दारुहल्दी एवं हल्दी का योग (श्लो० ३१) भी बहुत उत्तम है, यकृत् की क्रिया को सुधारता है, परन्तु हल्दी की मात्रा आधा तोला हो। मण्डूर का प्रयोग (श्लो० ३२)-आमला अथवा त्रिफला के चूर्ण के साथ होना चाहिये। पाण्डुरोग में भोजन चना गेहूँ की रोटी प्रचुर घृत के साथ दी जाती है। एक बात स्मरणीय है—एक कामला ऐसा जाता है, जिसमें सब चिकित्सा विफल जाती है, केवल सफल होती है मन्त्र चिकित्सा। रोगी को खटिया पर लेटा दिया जाता है, और नीचे परात में जल डाल कर धर दिया जाता है, और पास बैठकर मन्त्रवेत्ता मन्त्र का पाठ करता है, परात का जल पीला हो जाता है, और ३-७ दिन में कामला शान्त हो जाता है, इस प्रकार के अन्य प्रयोग भी किये हैं, जो बहुत ही सफल हैं ॥३२-३५॥

द्राक्षागुडूच्यामलकीरसैश्च
सिद्धं घृतं लाघर (व) के हितं च।

द्राक्षा, गिलोय, आंवले के स्वरस से सिद्ध घृत लाघरक रोग में हितकारी है।

गौडानरिष्टान् मधुशर्कराश्च
मूत्रासवान् क्षारकृतांस्तथैव ॥३६॥
स्निग्धान् रसानामलकैरुपेतान्
कोलान्वितान् वाऽपि हि जाङ्गलानाम् ।
सेवेत शोफाभिहितांश्च योगान्
पाण्ड्वामयी शालियवांश्च नित्यम् ॥३७॥

पाण्डुरोगी गुड़ से बने अभयारिष्ट आदि अरिष्टों को, मध्वासव को, शर्करासव को कुष्ठ चिकित्सा में कहे मूत्रासवों को, श्लीपद में कहे क्षारकृतासवों को, स्नेह से भूने आंवला एवं बेर से युक्त जांगलमांसरसों को, तथा शोफ में कहे देवदारु शुण्ठी आदि योगों को, लाल चावल और जौ का नित्य सेवन करे ॥३६,३७॥

श्वासातिसारारुचिकासमूर्च्छा-
तृट्छर्दिशूलज्वरशोफदाहान् ।
तथाऽविपाकस्वरभेदसादान्
जयेद्यथास्वं प्रसमीक्ष्य शास्त्रम् ॥३८॥

श्वास, अतीसार, अरुचि, कास, मूर्च्छा, प्यास, वमन, शूल, ज्वर, शोफ, दाह, अविपाक, स्वरभेद, साद (शिथिलता) इन उपद्रवों को इनकी अपनी-अपनी चिकित्सा शास्त्र के अनुसार करे ॥३८॥

अन्तेषु शूनं परिहीनमध्यं
म्लानं तथाऽन्तेषु च मध्यशूनम् ।
गुदे च शेफस्यथ मुष्कशूनं
प्रताम्यमानं च विसंज्ञकल्पम् ॥३९॥
विवर्जयेत् पाण्डुकिनं यशोऽर्थी
तथाऽतिसारज्वरपीडितं च ॥४०॥

रोगी के हाथ पैर-मुख सूजे हों, परन्तु मध्यकाय कृश हो, तथा हाथ पैर-मुख कृश हों परन्तु मध्यशरीर सूजा हो तो, गुदा, मेहन, वृषणों पर सूजन हो, मूर्च्छा से पीड़ित, बेमान होनेवाले, पाण्डुरोगी को तथा अतिसार ज्वर पीड़ित पाण्डुरोगी को यश चाहनेवाला वैद्य छोड़ देवे—उसकी चिकित्सा न करे।

निपातयेच्छरीरात्तु मृत्तिका भक्षितां भिषक् ।
युक्तिज्ञः शोधनैस्तीक्ष्णैः प्रसमीक्ष्य बलाबलम् ॥
शुद्धकायस्य सर्पींषि बलाधानानि योजयेत् ।
मृद्भक्षणादातुरस्य लौल्यादविनिवर्त्तिनः ॥
द्वेष्यार्थं भावितां कामं दद्यात्तद्दोषनाशनैः ।
विडंगैलातिविषया निम्बपत्रेण पाठया ॥
वार्ताकैः कटुरोहिण्या कौटजैर्मूर्वयाऽपि वा ।
चरक चि० अ०-११७-२२ ॥३९,४०॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सा-
तन्त्रे पाण्डुरोगप्रतिषेधो नाम (षष्ठोऽध्यायः,
आदितः) चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४४॥

पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

अथातो रक्तपित्तप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे रक्तपित्तप्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था।

वि० मन्तव्य—रक्त का एक नाम लोहित है—रस श्वेत होता है लाल हो जाने पर रक्त कहलाता है, इसी प्रकार रक्त में लोह का प्रादुर्भाव होने से वह 'लोहित' कहलाता है और वह विदग्ध होकर रक्त को विदग्ध करता है तब रक्त सिराओं केशिकाओं में से चू कर मुख आदि से निकलने लगता है। रक्त का एक नाम 'क्षतज' है अर्थात् क्षत होने पर रक्त का प्रादुर्भाव होता है। क्षत हुए बिना-रक्त का दर्शन नहीं होता, परन्तु रक्त पित्त में क्षत के बिना ही केवल चू चू कर रक्त बाहर आने लगता है ॥१,२॥

क्रोधशोकभयायासविरुद्धान्नातपानलान्।
कट्वम्ललवणक्षारतीक्ष्णोष्णातिविदाहिनः ॥३॥
नित्यमभ्यसतो दुष्टो रसः पित्तं प्रकोपयेत्।
विदग्धं स्वगुणैः पित्तं विदहत्याशु शोणितम् ॥४॥
ततः प्रवर्तते रक्तमूर्ध्वं चाधो द्विधाऽपि वा।

क्रोध, शोक, भय, परिश्रम, विरुद्ध भोजन, धूप, अग्नि, कटु, अम्ल, लवण, क्षार, तीक्ष्ण, उष्ण, अतिविदाहि द्रव्यों को नित्यप्रति सेवन करने से दूषित हुआ रक्त पित्त को प्रकुपित करता है। फिर विदग्ध हुआ पित्त अपने तीक्ष्ण उष्ण आदि गुणों से रक्त को शीघ्र ही विदग्ध बना देता है। इससे रक्त ऊपर (मुख-नासा आदि) तथा नीचे के मार्ग (गुद मूत्रमार्ग आदि से) से अथवा दोनों मार्गों से प्रवृत्त होता है।

वक्तव्य—साधारणतः निकला रक्त एक से तीन मिनट में जमता है। रक्त में जमने का गुण है। परन्तु जब यह पित्त के कारण विदग्ध हो जाता है, तब जल्दी नहीं जमता, इसलिये बहता रहता है, इसीसे कहा है—"पित्तं तीक्ष्णं द्रवं पूति नीलं पीतं तथैव च। उष्णं कटुरसं चैव विदग्धं चाम्लमेव च॥" (२)"अनुष्णशीतं मधुरं स्निग्धं रक्तं च वर्णतः। शोणितं गुरु विस्रं स्याद् विदाहश्चास्य पित्तवत्॥" रक्त का विदाह पित्त की भांति है, इसलिये रक्त में द्रवत्व अधिक हो जाता है। इसीलिये "संयोगाद् दूषणात् तच्च सामान्यात् गन्धवर्णयोः। रक्तस्य पित्तमाख्यातं रक्तपित्तं मनीषिभिः॥" यह विदग्धता के रक्त के स्थान यकृत् प्लीहा से प्रारम्भ होती है, यथा—

"प्लीहानं च यकृच्चैव तदधिष्ठाय वर्त्तते।
स्रोतांसि रक्तवाहीनि तन्मूलानि हि देहिनाम्" ॥३,४॥

आमाशयाद् व्रजेदूर्ध्वमधः पक्वाशयाद् व्रजेत् ॥५॥
विदग्धयोर्द्वयोश्चापि द्विधा मार्गं प्रवर्तते।
केचित् सयकृतः प्लीह्नः प्रवहन्त्यसृजो गतिम् ॥६॥

विदग्ध हुआ रक्त आमाशय से मुख-नासा आदि ऊर्ध्व भाग से प्रवृत्त होता है। विदग्ध हुआ रक्त पक्वाशय से गुद-मूत्रमार्ग-योनि आदि अधो भाग से प्रवृत्त होता है। आमाशय पक्वाशय दोनों विदग्ध होने पर रक्त ऊपर और नीचे दोनों मार्गों से प्रवृत्त होता है। कई आचार्य रक्त की गति यकृत् और प्लीहा के साथ मानते हैं। (अर्थात् रक्तपित्त में यकृत और प्लीहा—रक्त स्थान भी विदग्ध होते हैं जैसा चरक कहता है)।

वि० मन्तव्य - दोनों ही कथन सत्य हैं—जो रक्त ऊर्ध्व मार्गों से निकलता है वह आमाशय से आहार मार्ग द्वारा और फुफ्फुसों से श्वास मार्ग द्वारा बाहर आता है और इन मार्गों की भीतरी दीवारों तथा मुखनासा आदि की दीवारों से चू-चू कर बाहर आता है। इसी प्रकार से जो अधोमार्गों से निकलता है वह मलाशय से गुद द्वारा, मूत्राशय से मूत्रमार्ग द्वारा, गर्भाशय से भग द्वारा तथा उक्त मार्गों की भीतरी दिवारों से चू चू कर बाहर आता है। दूसरा कथन भी सत्य है, क्योंकि यकृत् एवं प्लीहा में ही रंजक पित्त-रस को रंगते समय रक्त में मिल जाता है—रस भी क्रोध आदि कारणों से दूषित हुआ रहता है और वह पित्त को भी दूषित कर देता है, और दूषित पित्त रक्त को दूषित कर देता है (दे० श्लो० ३-४) इसलिये यह कथन भी सत्य है कि यकृत् एवं प्लीहा से ही रक्तपित्त की गति प्रवृत्ति होती है ॥५,६॥

ऊर्ध्वं साध्यमधो याप्यमसाध्यं युगपद्गतम्।

ऊर्ध्वगामि रक्तपित्त साध्य है, अधोगामि रक्तपित्त याप्य है, दोनों मार्गों से प्रवृत्त होनेवाला रक्तपित्त असाध्य है।

"एकदोषानुगं साध्यं द्विदोषं याप्यमुच्यते।
यत् त्रिदोषमसाध्यं तन्मन्दाग्नेरतिवेगवित्॥
व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्यानश्नतश्च यत्।
गतिरूर्ध्वमधश्चैव रक्तपित्तस्य दर्शिता॥
ऊर्ध्वा सप्तविधद्वारा द्विद्वारा त्वधरा गतिः।
सप्तच्छिद्राणि शिरसि द्वे चाधः साध्यमूर्ध्वगम्॥
याप्यं त्वधोगमं मार्गौ द्वावसाध्यं प्रपद्यते।
यदा तु सर्वच्छिद्रेभ्यो रोमकूपेभ्य एव च॥
वर्त्तते तामसंख्येयां गतिं तस्याहुरान्तिकीम्॥"

च० चि० अ० ४॥

सदनं शीतकामित्वं कण्ठधूमायनं वमिः ॥७॥
लोहगन्धिश्च निःश्वासो भवत्यस्मिन् भविष्यति ।

पूर्वरूप—अंगों में शिथिलता, शीत की चाह, कण्ठ में धूमोद्वमन की भाँति वेदना, वमन, निःश्वास में रक्त की गन्ध (या लोह धातु की भांति गन्ध आना) होता है ।

"तस्येमानि पूर्वरूपाणि भवन्ति । तद्यथा—अनन्नाभिलाषः, भुक्तस्य विदाहः, शुक्ताम्लगन्धरस उद्गारः, छर्देरभीक्ष्णागमनं, छर्दितस्य बीभत्सता, स्वरभेदो, गात्राणां सदनं, परिदाहः, मुखाद्धूमागम इव, लोहलोहितमत्स्यामगन्धित्वमिव, चास्यस्य, रक्तहरितहारिद्रत्वमंगावयवशकृन्मूत्रस्वेदलालासिंघाणकस्य कर्णमलपिडकानाम् अंगवेदना, लोहितनीलपीतश्यामानामर्चिष्मतां च रूपाणां स्वप्ने दर्शनमभीक्ष्णमिति ॥" चरक ।

वि० मन्तव्य—लोहगन्धिश्च निःश्वासो—बाहर को निकलनेवाला श्वास लोह—तपाकर जल में बुझाए लोह की-सी गन्धवाला होता है । कारण?—रक्त में लोह होता है और पित्त उस लोह-धातु को तपाता=जलाता है और तपता—जलता हुआ लोह रक्तगत द्रव में बुझता है । फलतः उसकी गन्ध का अनुभव रोगी रक्त पित्त की पूर्वरूपावस्था में ही करने लगता है । लोह को तपाकर जल में बुझाते समय जैसी गन्ध आती है वैसी ही गन्ध निःवास में आती है । निःश्वास-भीतर से निकलनेवाला श्वास है ॥७॥

वाह्यासृग्लक्षणैस्तस्य सङ्ख्यादोषोच्छ्रितीर्विदुः ॥८॥

शोणितवर्णनीय अध्याय में कहे लक्षणों (फेनिलअरुण आदि) से रक्त पित्त सात प्रकार का है। इसमें दोष की अधिकता से इनको जानना चाहिये । यथा—

सान्द्रं सपाण्डु सस्नेहं पिच्छिलं च कफान्वितम् ।
श्यावारुणं सफेनं च तनु रूक्षं च वातिकम् ॥
रक्तपित्तं कषायाभं कृष्णं गोमूत्रसन्निभम् ।
मेचकागारधूमाभमञ्जनाभं च पैत्तिकम् ॥
संसृष्टलिंगं संसर्गात् त्रिलिङ्गं सान्निपातिकम् ।
चरक चि० अ० ४-११-१२॥

दौर्बल्यश्वासकासज्वरवमथु-
मदास्तन्द्रितादाहमूर्च्छा ।
भुक्ते चान्ने विदाहस्त्वधृतिरपि
सदा हृद्यतुल्या च पीडा ।
तृष्णा कण्ठस्य भेदः शिरसि च
दहनं पूतिनिष्ठीवनं च ।
द्वेषो भक्तेऽविपाको
विरतिरपि रते रक्तपित्तोपसर्गाः ॥९॥

मांसप्रक्षालनाभं क्वथितमिव च यत् कर्दमाम्भोनिभं वा
मेदः पूयास्रकल्पं यकृदिव यदि वा पक्वजम्बूफलाभम् ।
यत् कृष्णं यच्च नीलं भृशमतिकुणपं यत्र चोक्ता विकारा-
स्तद्वर्ज्यं रक्तपित्तं सुरपतिधनुषा यच्च तुल्यं विभाति ।१०।

उपद्रव—दुर्बलता, श्वास, कास, ज्वर, वमन, मद, तन्द्रा दाह, मूर्च्छा, खाये हुए अन्न में विदाह सदा अधैर्य हृदय में असाधारण पीड़ा, प्यास, गले का क्षणन, शिर में सन्ताप, दुर्गन्धयुक्त थूक, भोजन में द्वेष, अविपाक सुख का नाश, ये रक्त पित्त के उपद्रव हैं । उपद्रवास्तु खलु दौर्बल्यारोचकाविपाकश्वासकासज्वरातीसारशोफशोषपाण्डुरोगाः स्वरभेदश्च ॥ चरक ॥

असाध्य—जिस रक्तपित्त में रक्त मांस के धोवन के समान या मांस उबाले पानी के समान हो, कीचड़ घुले पानी के समान जिसका रंग हो, मेद पूयरक्त के समान, यकृत् के रंग के समान, पकी हुई जामुन के समान, जो रक्त अतिकाला, अतिनीला, अतिशय मुर्दे की गन्ध का, जिसमें दुर्बलता आदि उपद्रव हो, अथवा जो रक्तपित्त इन्द्रधनुष के समान रंगोंवाला दीखता है, वह असाध्य है ।

"संसृष्टं कफवाताभ्यां कण्ठे सज्जति चापि यत् । यच्चाप्युपद्रवैः सर्वैः यथोक्तैः समभिद्रुतम् ॥ हारिद्रनीलहरितताम्रैः वर्णैः उपद्रुतम् । क्षीणस्य कासमानस्य यच्च तच्च न सिध्यति ॥ यद् द्विदोषानुगं यद्वा शान्तं शान्तं प्रकुप्यति । मार्गान्मार्गं चरेद् यद्वा याप्यं पित्तमसृक् च तत् ॥" चरक चि० अ० ४ ॥

नादौ संग्राह्यमुद्रिक्तं यदसृग्बलिनोऽश्नतः ।
तत् पाण्डुग्रहणीकुष्ठप्लीहगुल्मज्वरावहम् ॥११॥

बलवान् एवं भोजन करनेवाले रोगी में बढ़े हुए रक्तपित्त में प्रथम संग्राहक (स्तम्भक) औषध नहीं देनी चाहिये । इससे पाण्डु-ग्रहणी-कुष्ठ प्लीहा, गुल्म-ज्वर होते हैं । चरक में—

"अक्षीणबलमांसस्य रक्तपित्तं यदश्नतः । तद्दोषदुष्टमुत्क्लिष्टं नादौ स्तम्भनमर्हति ॥ गलग्रहं पूतिनस्यं मूर्च्छायमरुचिज्वरम् । गुल्मं प्लीहानमानाहं किलासं कृच्छ्रमूत्रताम् ॥ तस्मादुपेक्ष्यं बलिनो बलदोषविचारिणा । रक्तपित्तं प्रथमतः प्रवृद्धं सिद्धिमिच्छता ॥"

वि० मन्तव्य—जब तक रक्तपित्त अर्थात् दूषित रक्त बह रहा हो तब तक उसे रोकना उचित नहीं है । वह रक्तद्रव-रक्तपित्त है अथवा शुद्ध शोणित अर्थात् जीव शोणित ? इस जिज्ञासा में-इन्द्रगोप (वीरबहूटी नामक कृमि) के समान उज्ज्वल लाल रक्त शुद्ध शोणित होता है उसे कुत्ता खा लेता है और दूषित रक्त का वर्ण इससे विपरीत होता है तथा उसे कुत्ता नहीं खाता है । शुद्धशोणित का श्वेत वस्त्र पर दाग पड़ जाता है जो धोने पर भी नहीं छूटता और दूषित रक्त का दाग धोने पर छूट जाता है । देखिये चि० अ० ३५ का सू० १४ ॥११॥

अधःप्रवृत्तं वमनैरूर्ध्वगं च विरेचनैः ।
जयेदन्यतरद्वाऽपि क्षीणस्य शमनैरसृक् ॥१२॥

अधोगामि रक्तपित्त की वमनों से, ऊर्ध्वगामि रक्तपित्त की विरेचनों से चिकित्सा करे। क्षीण-निर्बल पुरुष के ऊर्ध्वगामि या अधोगामि किसी एक रक्तपित्त को शमन चिकित्सा से शान्त करे[१] ॥१२।

अतिप्रवृद्धदोषस्य पूर्वं लोहितपित्तिनः ।
अक्षीणबलमांसाग्नेः कर्तव्यमपतर्पणम् ॥१३॥

रक्तपित्त रोगी के यदि दोष बहुत अधिक बढ़े हुए हों, बल मांस और अग्नि क्षीण न हो तो उसे लंघन कराये। "प्रायेण हि समुत्क्लिष्टमामदोषाच्छरीरिणाम्। वृद्धिं प्रयाति पित्तासृग् तस्मात् तत् लंघ्यमादितः" ॥१३॥

लङ्घितस्य ततः पेयां विदध्यात् स्वल्पतण्डुलाम् ।
रसयूषौ प्रदातव्यौ सुरभिस्नेहसंस्कृतौ ॥
तर्पणं पाचनं लेहात् सर्पींषि विविधानि च ॥१४॥

लंघन करने के उपरान्त थोड़े चावलों से बनाई पेया देवे। सुगन्धित और स्नेह से संस्कृत मांसरस और यूष देवे। तर्पण, पाचन, लेह, नानाप्रकार के घृत देवे।

वक्तव्य—मृद्वीकामधुकादिसाधितजलेन सशर्करेणालोडिताः सघृतक्षौद्राः लाजशक्तवः तर्पणम्। पाचनं ह्रीवेरचन्दनोशीरपर्पटमुस्तसाधितजलमानम् ॥ चरक में—मार्गौ दोषानुबन्धं च निदानं प्रसमीक्ष्य च। लंघनं रक्तपित्तादौ तर्पणं वा प्रयोजयेत् ॥ ऊर्ध्वगे तर्पणं पूर्वं पेया पूर्वमधोगतेः। कालसात्म्यानुबन्धज्ञो दद्यात् प्रकृतिकल्पवित् ॥१४॥

द्राक्षामधुककाश्मर्यसितायुक्तं विरेचनम् ।
यष्टीमधुकयुक्तं च सक्षौद्रं वमनं हितम् ॥१५॥

द्राक्षा, मुलैठी, गम्भारी, सितामिश्रित विरेचन द्रव्यकल्पोक्त मृदु विरेचन देवे। मुलैठी मधुमिश्रित वमन विकल्पोक्त मृदु वमन देवे ॥१५॥

पयांसि शीतानि रसाश्च जाङ्गलाः
सतीनयूषाश्च ससालिषष्टिकाः ।
पटोलशेलूसुनिषण्णयूथिका-
वटातिमुक्ताङ्कुरसिन्दुवारजम् ॥१६॥
हितं च शाकं घृतसंस्कृतं सदा
तथैव धात्रीफलदाडिमान्वितम् ।

रसाश्च पारावतशङ्खकूर्मजा-
स्तथा यवाग्वो विहिता घृतोत्तराः ॥१७॥
सन्तानिकाश्चोत्पलवर्गसाधिते
क्षीरे प्रशस्ता मधुशर्करोत्तराः ।
हिमाः प्रदेहा मधुरा गणाश्च ये
घृतानि पथ्यानि च रक्तपित्तिनाम् ॥१८॥

उत्पलादि द्रव्य क्वथित शीतल बनाये दूध (पित्त प्रधान रक्त पित्त में), जांगलमांसरस (वायु में), मटर का यूष (कफ में) इनको शाली एवं सांठी चावलों के साथ देवे। परवल, लसूड़ा, चौलाई, जूही, बरगद, अतिमुक्ता (माधवी लता) इनके अंकुर (कोमल पत्ते), सम्भालु के कोमल पत्ते, इनका शाक घी से संस्कृत करके आँवले और अनारदाने के साथ मिलाकर देना सदा पथ्य है। पारावत, शंख का कीड़ा, कछुआ इनके मांसरसों को तथा यवागुओं को प्रचुरघृत में सिद्ध करके देवे। उत्पलवर्ग से सिद्ध किये दूध में से उतारी मलाई को मधुर मधु और शर्करा के साथ देवे। शीतल प्रदेह, मधुरगण (काकोल्यादिगण) पीने में, मधुरगण से सिद्ध किये घृत पथ्य हैं। 'मूलानि पुष्पाणि च वारिजानां प्रलेपनं पुष्करिणीमृदश्च। उदुम्बराश्वत्थमधूकलोध्राः कषायवृक्षाः शिशिराश्च सर्वे ॥ प्रियंगुकाचन्दनरूषितानां स्पर्शाः प्रियाणांच वरांगनानाम्। दाहे प्रशस्ताः सजलाः सुशीताः पद्मोत्पलानां च कलापवाताः ॥ सरिद्ध्रदानां हिमवद्दरीणां चन्द्रोदयानां कमलाकराणाम्। मनोऽनुकूलाः शिशिराश्च सर्वाः कथाः सरक्तं शमयन्ति पित्तम् ॥' चरक—चि० अ० ४ ॥१६-१८॥

मधूकशोभाञ्जनकोविदारजैः
प्रियङ्गुकायाः कुसुमैश्च चूर्णितैः ।
भिषग्विदध्याच्चतुरः समाक्षिकान्
हिताय लेहानसृजः प्रशान्तये ॥१९॥
लिह्याच्च दूर्वावटजांश्च पल्लवान्
मधुद्वितीयान् सितकर्णिकस्य च ।
हितं च खर्जूरफलं समाक्षिकं
फलानि चान्यान्यपि तद्गुणान्यथ ॥२०॥

महुआ, सहजन, कोविदार (कचनार), प्रियंगु इनके फूलों में मिलाकर वैद्य रक्तपित्त की शान्ति के लिये चार लेहों को बनाये। दूर्वा, बरगद, तथा श्वेतकर्णिकार इनके पत्तों को (अलग अलग) मधु के साथ खर्जूर को मधु के साथ खर्जूर के समान गुणवाले दूसरे फलों को भी मधु के साथ खाये।

"खदिरस्य प्रियंगूनां कोविदारस्य शाल्मलेः ।
पुष्पचूर्णानि मधुना लिह्यान्ना रक्तपित्तिकः ॥
शृंगाटकानां लाजानां मुस्तखर्जूरयोरपि ।
लिह्याच्चूर्णानि मधुना पद्मानां केशरस्य च ॥

---

१ बलमांसपरिक्षीणं शोकभाराध्वकर्शितम्। ज्वलनादित्यसंप्तमन्यैर्वा क्षीणमामयैः ॥ गर्भिणीं स्थविरं बालं रूक्षाल्पप्रमिताशिनम्। अवाम्यमविरेच्यं वा यं पश्येद् रक्तपित्तिनम् ॥ शोषेण सानुबंधं वा तस्य संशमनी क्रिया ॥ चरक चि० अ० ४,६२-६४ ॥

धन्वजानामसृग् लिह्यात् मधुना मृगपक्षिणाम् ।
सक्षौद्रं ग्रथिते रक्ते लिह्यात् पारावतं शकृत्" ॥च०॥
रक्तातिसार में कहे हुए योगों को यहां पर भी बरते ।

शुद्धेक्षुकाण्डमापोथ्य नवे कुम्भे हिमाम्भसा ॥२१॥
योजयित्वा क्षिपेद्रात्रावाकाशे सोत्पलं तु तत् ।
प्रातः स्रुतं क्षौद्रयुतं पिबेच्छोणितपित्तवान् ॥२२॥

इक्षुकाण्ड (गन्ने के टुकड़े) को छीलकर इसको कुचलकर एक नये घड़े में डालकर शीतल जल भर देवे। इस घड़े को रातभर निर्मल आकाश में खुला रख देवे। प्रातःकाल इसको छानकर इसमें नीलोफर का चूर्ण और मधु मिलाकर पीये, इससे रक्तपित्त नष्ट होता है ॥२१,२२॥

पिबेच्छीतकषायं वा जम्ब्वाम्रार्जुनसंभवम् ।
उदुम्बरफलं पिष्ट्वा पिबेत्तद्रसमेव वा ॥२३॥

जामुन, आम और अर्जुन का शीत कषाय पीये अथवा गूलर के फल को पीसकर उसका रस पीये ॥२३॥

त्रपुषीमूलकल्कं वा सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना ।
पिबेदक्षसमं कल्कं यष्टीमधुकमेव वा ॥२४॥
चन्दनं मधुकं रोध्रमेवमेव समं पिबेत् ।
करञ्जबीजमेवं वा सिताक्षौद्रयुतं पिबेत् ॥२५॥
मज्जानमिङ्गुदस्यैवं पिबेन्मधुकसंयुतम् ।
सुखोष्णं लवणं बीजं कारञ्जं दधिमस्तुना ॥२६॥
पिबेद्वाऽपि त्र्यहं मर्त्यो रक्तपित्ताभिपीडितः ।
रक्तपित्तहराः शस्ताः षडेते योगसत्तमाः ॥२७॥

छै योग—(१) ककड़ी के मूल का कल्क मधु मिलाकर चावल के पानी के साथ पीये। (२) मुलैहठी का चूर्ण एक कर्ष-मधु चावल के पानी के साथ पीये। (३) चन्दन, मुलैहठी, लोध्र को समान मात्रा में मधु और तण्डुलोदक से पीये। (४) करंजबीज का चूर्ण मधु और शर्करा के साथ पीये। (५) इंगुदी की मज्जा को मुलैहठी के साथ मिलाकर मधु और शर्करा के साथ पीये। (६) करंज का बीज, लवण इनको थोड़ा गरम करके दही के मस्तु (पानी) के साथ रक्तपित्त से पीड़ित रोगी तीन दिन पीये। छै उत्तमयोग रक्तपित्त नाशक हैं ॥२४-२७॥

पथ्याश्चैवावपीडेषु घ्राणतः प्रस्रुतेऽसृजि ।

नाक से रक्त बहने पर ये छैः योग अवपीड़न रूप में (नस्य रूप से) बरतने हितकारी हैं[1] ।

अतिनिस्रुतरक्तो वा क्षौद्रयुक्तं पिबेदसृक् ।
यकृद्वा भक्षयेदाजमामं पित्तसमायुतम् ॥२८॥

जिस मनुष्य का बहुत सा रक्त निकल गया हो, वह रक्त (तुरन्त-तात्कालिक) को मधु के साथ मिलाकर पीये। अथवा बकरी के कच्चे ही यकृत् को पित्त के साथ खाये। (रक्त हरिण शश-मुर्गे-बकरी आदि का ले)।

गोऽव्यजामहिषीक्षीरैः जीवनीययुतैस्तथा । शशैणदक्ष-मार्जारमहिषाव्याजशोणितैः । सघस्कैः मृदितैः वस्तिः जीवादाने प्रशस्यते ॥च०सि०अ० १०॥२८॥

पलाशवृक्षस्वरसे विपक्वं
सर्पिः पिबेत् क्षौद्रयुतं सुशीतम् ।
वनस्पतीनां स्वरसैः कृतं वा
सशर्करं क्षीरघृतं पिबेद्वा ॥२९॥
द्राक्षामुशीराण्यथ पद्मकं सितां
पृथक्पलांशान्युदके समावपेत् ।
स्थितं निशां तद्रुधिरामयं जयेत्
पीतं पयो वाऽम्बुसमं हिताशिनः ॥३०॥
तुरङ्गवर्चःस्वरसं समाक्षिकं
पिबेत् सिताक्षौद्रयुतं वृषस्य वा ।
लिहेत्तथा वास्तुकबीजचूर्णं
क्षौद्रान्वितं तण्डुलसाह्वयं वा ॥३१॥
लिह्याच्च लाजाञ्जनचूर्णमेक-
मेवं सिताक्षौद्रयुतां तुगाख्याम् ।
द्राक्षां सितां तिक्तकरोहिणीं च
हिमाम्बुना वा मधुकेन युक्ताम् ॥३२॥
पथ्यामहिंस्रां रजनीं घृतं च
लिह्यात्तथा शोणितपित्तरोगी ।

ढाक के स्वरस में पकाये घृत को ठण्डा करके मधु के साथ पीये। बरगद-पीपल आदि वनस्पतियों के स्वरस में दूध से निकले घृत को सिद्ध करके शर्करा के साथ पीये। द्राक्षा, खस, पद्माख, सिता (शर्करा), प्रत्येक एक पल लेकर पानी में भिगो देवे। रातभर पड़ा रहने दे। सबेरे छानकर पीने से रक्त-पित्त शान्त होता है। अथवा दूध में समान पानी मिलाकर हितकारी भोजन करते हुए पीये। घोड़े की लीद के स्वरस में मधु मिलाकर पीये। वासे का स्वरस शर्करा और मधु के साथ पीये। बथुवे के बीज का चूर्ण या चौलाई के बीज के चूर्ण को मधु के साथ चाटे। लाजा, अंजन (सुरमा) इनका चूर्ण या वंशलोचन को शर्करा और मधु के साथ चाटे। द्राक्षा, शर्करा, कुटकी को मुलैहठी के साथ मिलाकर शीतजल से पीये। हरड़, अहिंस्रा (जटामांसी), हल्दी, घी, इनको रक्त-पित्त रोगी चाटे। (यह योग कण्ठगामि रक्तपित्त में उत्तम हैं)। "पलाशवृन्तस्वरसेन सिद्धं तस्यैव कल्केन मधुद्रवेण। लिह्याद् घृतम्"—चरक ॥२९-३२॥

वासाकषायोत्पलमृत्प्रियङ्गु-
रोध्राञ्जनाम्भोरुहकेशराणि ॥३३॥
पीत्वा सिताक्षौद्रयुतानि जह्यात्
पित्तासृजो वेगमुदीर्णमाशु ।

१-कषाययोगाय इहोपदिष्टास्ते चावपीडे भिषजा प्रयोज्याः । घ्राणात् प्रवृत्ते रुधिरे सपित्ते यदा भवेत् निःसृतदुष्टदोषम् ॥चरक॥

अडूसा का कषाय, नीले कमल की मिट्टी, प्रियंगु, लोध, सुरमा, कमल का केशर, इनको शर्करा और मधु के साथ पीने पर तीव्र रक्तपित्त का वेग शीघ्र शांत हो जाता है। "मूलानि पुष्पाणि च वारिजानां प्रलेपनं पुष्करिणी मृदश्च।" चरक ॥३३॥

गायत्रिजम्ब्वर्जुनकोविदार-
शिरीषरोध्रासनशाल्मलीनाम् ॥३४॥
पुष्पाणि शिग्रोश्च विचूर्ण्य लेह्यो मध्वन्वितः शोणितपित्तरोगे।

गायत्री (खैर), जामुन, अर्जुन, कचनार, शिरीष, लोध, विजयसार, सिम्बल और सुहांजना, इनके फूलों का चूर्ण करके मधु के साथ रक्तपित्त रोग में चाटे ॥३४॥

सक्षौद्रमिन्दीवरभस्मवारि करञ्जबीजं मधुसर्पिषी च ॥३५॥
जम्ब्वर्जुनाम्रक्वथितं च तोयं
घ्नन्ति त्रयः पित्तमसृक् च योगाः।

कमल की भस्म को पानी में घोलकर मधु के साथ पीये। करंज बीज के चूर्ण को मधु और घृत के साथ चाटे। जामुन-अर्जुन और आम का क्वाथ मधु के साथ पीये। ये तीनों योग रक्तपित्त को नष्ट करते हैं।

वक्तव्य—ये योग कण्ठगत रक्तपित्त में उत्तम हैं, यथा—कफानुबन्धे रुधिरे सपित्ते, कण्ठागते स्याद् ग्रथिते प्रयोगः। युक्तस्य युक्त्या मधुसर्पिषोश्च, क्षारस्य चैवोत्पलनालजस्य॥ चरक ॥३५॥

मूलानि पुष्पाणि च मातुलुङ्गयाः
पिष्ट्वा पिबेत्तण्डुलधावनेन ॥३६॥
घ्राणप्रवृत्ते जलमाशु देयं
सशर्करं नासिकया पयो वा।

बिजौरे के मूल और फूलों को पीसकर चावलों के पानी के साथ पीये। नाक से रक्त बहने पर शर्करा मिश्रित जल नासिका में चढ़ावे या दूध को नासिका से पीये ॥३६॥

द्राक्षारसं क्षीरघृतं पिबेद्वा
सशर्करं चेक्षुरसं हिमं वा ॥३७॥

द्राक्षा का रस, दूध से निकाली घी, शर्करा के साथ या ईख का शीतल रस नासिका से से पीये।

वक्तव्य—दूषित रक्त निकलने पर ही रक्त को बन्द करना चाहिये, अन्यथा—"रक्ते प्रदुष्टे ह्यवपीडबन्धे, दुष्टप्रतिश्याय-शिरोविकाराः। रक्तं सपूयं कुणपश्चगन्धः स्याद् घ्राणनाशः कृमयश्च दुष्टाः॥"

चरक चि० अ० ५-१६॥

शीतोपचारं मधुरं च कुर्या-
द्विशेषतः शोणितपित्तरोगे।

रक्तपित्तरोग में विशेषतः शीतल एवं मधुर चिकित्सा करे। "वैडूर्यमुक्तामणिगैरिकाणां मृच्छंखहेमामलकोदकानाम्। मधूदकस्येक्षुरसस्य चैव, पानाच्छमं गच्छति रक्तपित्तम्॥ धारागृहं भूमिगृहं सुशीतं वनं च रम्यं जलवातशीतम्। वैडूर्यमुक्तामणिभाजनानां स्पर्शाश्च दाहे शिशिराम्बु शीताः॥" चरक॥

द्राक्षाघृतक्षौद्रसितायुतेन
विदारिगन्धादिविपाचितेन ॥३८॥
क्षीरेण चास्थापनमग्र्यमुक्तं
हितं घृतं चाप्यनुवासनार्थम्।

द्राक्षा, घृत, मधु और सिता (शर्करा) मिश्रित विदारीगन्धादि से सिद्ध किये दूध से रक्त पित में आस्थापन वस्ति देना उत्तम है। तथा इन्हीं से सिद्ध किया घृत अनुवासन में उत्तम है ॥३८॥

प्रियङ्गुरोध्राञ्जनगैरिकोत्पलैः
सुवर्णकालीयकरक्तचन्दनैः ॥३९॥
सिताश्वगन्धाम्बुदयष्टिकाह्वयै-
र्मृणालसौगन्धिकतुल्यपेषितैः।
निरूह्य चैनं पयसा समाक्षिकै-
र्घृतप्लुतैः शीतजलावसेचितम् ॥४०॥
क्षीरौदनं मुक्तमथानुवासयेद्
घृतेन यष्टीमधुसाधितेन च।
अधोवहं शोणितमेष नाशये-
त्तथाऽतिसारं रुधिरस्य दुस्तरम् ॥४१॥
विरेकयोगे त्वति चैव शस्यते

प्रियंगु, लोध, सुरमा, गेरु, नीलोत्पल, सुवर्णगेरु, कालीयक, रक्तचन्दन, शर्करा, अश्वगन्धा, मोथा, मुलैहठी, कमलनाल, सौगन्धिक (कमलभेद) इनको समान भाग लेकर पीसकर घी, मधु और दूध में मिलाकर रोगी को निरूह वस्ति देवे। निरूह के पीछे शीतल जल से स्नान कराके, दूध और चावल खिलाये। फिर मुलैहठी से सिद्ध किये घृत से अनुवासन दे। यह उपचार अधोगामि रक्तपित्त को, एवं भयानक रक्तातिसार को नष्ट करता है। विरेचन के अतियोग में भी यह उत्तम है ॥३९-४१॥

वाम्यश्च रक्ते विजिते बलान्वितः ॥४२॥

निरूह एवं अनुवासन से रक्त को शान्त कर लेने पर बलवान् पुरुष को वमन कराना चाहिये।

वक्तव्य—अधोगामि रक्तपित्त में वमन कराने से फिर रक्त का भय नहीं रहता ॥४२॥

एवंविधा उत्तरवस्तयश्च
मूत्राशयस्थे रुधिरे विधेयाः।

वस्तिस्थ या मूत्रस्रोत से प्रवृत्त रक्त में-आस्थापन, अनुवासन की भांति उत्तर वस्तियां देनी चाहिये।

प्रवृत्तरक्तेषु च पायुजेषु
कुर्याद्विधानं खलु रक्तपैत्तम् ॥४३॥

अर्शों में रक्त का अतिस्राव होने पर रक्तपित्त की चिकित्सा करे ॥४३॥

विधिश्चासृग्दरेऽप्येष स्त्रीणां कार्यो विजानता।
शस्त्रकर्मणि रक्तं च यस्यातीव प्रवर्तते ॥४४॥

जाननेवाला वैद्य स्त्रियों के असृग्दर में भी यही विधि बरते। शस्त्रकर्म में जिस मनुष्य का रक्त अधिक बहे, उसमें भी रक्तपित्त की यही चिकित्सा बरते ॥४४॥

त्रयाणामपि दोषाणां शोणितेऽपि च सर्वशः।
लिङ्गान्यालोक्य कर्तव्यं चिकित्सितमनन्तरम् ॥४५॥

रक्त में वातादि तीनों दोषों के लक्षणों को सम्पूर्ण रूप में शोणित वर्णनीय अध्याय की दृष्टि से विचारकर-पीछे से रक्तपित्त में—(असृग्दर में या शस्त्र कर्म में) चिकित्सा करनी चाहिये।

वक्तव्य—तस्मात् स्रुते दुष्टरक्ते रक्तसंग्रहणं हितम्।
हेतुलक्षणकालज्ञो बलशोणितवर्णवित् ॥
कालं तावदुपेक्षेत यावन्नात्ययमाप्नुयात्।
अग्निसन्दीपनार्थं च रक्तसंग्रहणाय च ॥
दोषाणां पाचनार्थं च परं तिक्तैरुपाचरेत्।
यत्तु प्रक्षीणदोषस्य रक्तं वातोल्बणस्य च ॥
वर्त्तते स्नेहसाध्यं तत् पानाभ्यंगानुवासनैः ॥
यत्तु पित्तोल्बणं रक्तं घर्मकाले प्रवर्त्तते ॥
स्तम्भनीयं तदेकान्तान्न चेद् वातकफानुगम् ॥
चरक चि० अ० १४-१८०-१८४ ॥४५॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे
रक्तपित्तप्रतिषेधो नाम (सप्तमोऽध्यायः आदितः)
पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४५॥

षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

अथातो मूर्च्छाप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे मूर्च्छाप्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था।

वि० मन्तव्य—मूर्च्छा–सर्वथा संज्ञाहीनता (बेहोशी) मोह–कुछ कुछ संज्ञा रहती है (बदहोशी), मद–नशा जैसा शराब एवं भाँग आदि का नशा ॥१,२॥

क्षीणस्य बहुदोषस्य विरुद्धाहारसेविनः।
वेगाघातादभीघाताद्धीनसत्त्वस्य वा पुनः ॥३॥
करणायतनेषूग्रा बाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च।
निविशन्ते यदा दोषास्तदा मूर्च्छन्ति मानवाः ॥४॥
हृत्पीडाजृम्भणं ग्लानिः संज्ञानाशो बलस्य च।
सर्वासां पूर्वरूपाणि; यथास्वं ता विभावयेत् ॥५॥

क्षीण हुए, बहुत दोषवाले, विरोधी भोजन करनेवाले पुरुष में मलमूत्रादि के वेगों को रोकने से या चोट लगने से तथा निर्बल मनवाले पुरुष के बुद्धि-इन्द्रियं-मन कर्मेन्द्रिय-अहंकार आदि स्थानों में तथा कर्मेन्द्रिय आदि बाह्य स्थानों में, ज्ञानेन्द्रिय बुद्धि आदि अन्तः स्थानों में–प्रवृद्ध दोष जब प्रविष्ट हो जाते हैं। सब प्रकार की मूर्च्छाओं के पूर्वरूप—हृदय में पीड़ा, जम्भाई, ग्लानि, संज्ञा एवं बल का नाश होता है। इस मूर्च्छा को इन दोषों के अपने अपने लक्षणों से पहचाने।

वक्तव्य—यदा तु रक्तवाहीनि रससंज्ञावहानि च। पृथक्-पृथक्समस्ता वा स्रोतांसि कुपिता मलाः ॥ मलिनाहारशीलस्य रजोमोहावृतात्मनः। प्रतिहत्यावतिष्ठन्ते जायन्ते व्याधयस्तदा ॥ मदमूर्च्छायसंन्यासास्तेषां विद्यात् विचक्षणः। यथोत्तरं बलाधिक्यं हेतुलिंगोपशान्तिषु ॥ दुर्बलं चेतसः स्थानं यदा वायुः प्रपद्यते। मनो विक्षोभयञ्जन्तोः संज्ञां संमोहयेत्तदा ॥ पित्तमेवं कफश्चैव मनो विक्षोभयन्नृणाम्। संज्ञां नयत्याकुलतां विशेषश्चात्र वक्ष्यते ॥ वातादि जनित मूर्च्छा के लक्षण—चरक सू० अ० २४-२५ से २९ तक में दिये हैं ॥३-५॥

संज्ञावहासु नाडीषु पिहितास्वनिलादिभिः।
तमोऽभ्युपैति सहसा सुखदुःखव्यपोहकृत् ॥६॥
सुखदुःखव्यपोहाच्च नरः पतति काष्ठवत्।
मोहो मूर्च्छेति तां प्राहुः-

वातादिदोषों से संज्ञावहा नाड़ियों के रुक जाने पर सहसा तम सामने आ जाता है, जिससे सुख एवं दुःख दोनों का नाश हो जाता है। सुख और दुःख का नाश होने से मनुष्य लकड़ी के समान गिर जाता है, इस अवस्था को मोह मूर्च्छा कहते हैं ॥६॥

षड्विधा सा प्रकीर्तिता ॥७॥
वातादिभिः शोणितेन मद्येन च विषेण च।
षट्स्वप्येतासु पित्तं हि प्रभुत्वेनावतिष्ठते ॥८॥
(नीलं वा यदि वा कृष्णमाकाशमथ वारुणम्।
पश्यंस्तमः प्रविशति शीघ्रं च प्रतिबुध्यते ॥
वेपथुश्चाङ्गमर्दश्च प्रपीडा हृदयस्य च।
कार्श्यं श्यावारुणाच्छायामूर्च्छाये वातसंभवे ॥
रक्तं हरितवर्णं वा वियत् पीतमथापि वा।
पश्यंस्तमः प्रविशति सस्वेदश्च प्रबुध्यते ॥
सपिपासः ससन्तापी रक्तपीतारुणेक्षणः।
संभिन्नवर्चाः पीताभो मूर्च्छाये पित्तसंभवे ॥
मेघसंकाशमाकाशमावृतं वा तमोघनैः।
पश्यंस्तमः प्रविशति चिराच्च प्रतिबुध्यते ॥
गुरुभिः प्रावृतैरङ्गैर्यथैवार्द्रेण चर्मणा।
सप्रसेकः सहृल्लासो मूर्च्छाये कफसम्भवे ॥)

यह मूर्च्छा छै प्रकार की है, यथा–वातादि तीन दोषों से तीन प्रकार की, रक्त से, मद्य से और विष से इन छै मूर्च्छाओं में पित्त ही प्रधानता से रहता है। कहा भी है—

मूर्च्छा पित्ततमःप्राया रजःपित्तानिलाद् भ्रमः ।
तमो वातकफात् तन्द्रा, निद्राश्लेष्मतमोभवा ॥
यश्च मद्यकृतः प्रोक्तो विषजो रौधिरश्च यः ।
सर्व एते मदा नर्त्ते वातपित्तकफत्रयात् ॥७,८॥

अपस्मारोक्तलिङ्गानि तासामुक्तानि तत्त्वतः ।

इन मूर्च्छाओं के लक्षण मुख्यतः अपस्मार के लक्षणों के समान होते हैं ॥ चरक में—

सर्वाकृतिसन्निपातादपस्मार इवागतः ।
स जन्तुं पातयत्याशु विना बीभत्सचेष्टितैः ॥

इनमें झाग आना, दांतों से काटना, आँखें चढ़ना आदि बीभत्स लक्षण छोड़कर शेष लक्षण अपस्मार के समान हैं ।

पृथिव्यम्भस्तमोरूपं रक्तगन्धश्च तन्मयः ॥९॥
तस्माद्रक्तस्य गन्धेन मूर्च्छन्ति भुवि मानवाः ।

पृथ्वी और जलतमोमय है, इसलिये रक्त की गन्ध भी पृथ्वी जलमय है । इसलिये रक्त की गन्ध के कारण मनुष्य पृथ्वी पर मूर्च्छित होते हैं ।

वक्तव्य—तमोबहुला पृथ्वी, सत्त्वतमोबहुला आपः । रक्त की गन्ध पांचभौतिक होने पर भी इसमें पृथ्वी जल की प्रधानता है । रक्त की विस्र गन्ध ही इस मूर्च्छा का कारण है, शोणितं गुरु विस्रं च ॥ सु० ॥९॥

द्रव्यस्वभाव इत्येके दृष्ट्वा यदभिमुह्यति ॥१०॥

दूसरे आचार्य मानते हैं कि यह द्रव्य का स्वभाव ही ऐसा है, जिसको देखकर मनुष्य को मूर्च्छा आती है ।

वक्तव्य—रक्त की गन्ध से अथवा रक्त को देखने से हीन-सत्त्व-निर्बल मनवालों को मूर्च्छा आती है, सब को नहीं । इसीसे चरक में-सत्त्वतः परीक्षेत्, यह कहा है—सत्वमुच्यते मनः तच्छरीरस्य तन्त्रकमात्मसंयोगात् । त्रिविधबलभेदेन-प्रवरं मध्य-मवरं चेति । महाशरीरा ह्यपि ते स्वल्पानामपि वेदनानामसहा दृश्यन्ते, सन्निहितभयशोकलोभमोहमाना रौद्रभैरवद्विष्टबीभत्स-विकृतसंकथास्वपि च पशुपुरुषमांसशोणितानि चावेक्ष्य विषादवै-वर्ण्यमूर्च्छोन्मादभ्रमप्रपतनानामन्यतममाप्नुवन्ति अथवा मरण-मिति । चरक वि० अ० ८-१२१ ॥१०॥

गुणास्तीव्रतरत्वेन स्थितास्तु विषमद्ययोः ।
त एव तस्माज्जायेत मोहस्ताभ्यां यथेरितः ॥११॥

विष और मद्य में रूक्षादिगुण तीव्र एवं तीव्रतर भेद से ही रहते हैं । विष और मद्य से मूर्च्छा उत्पन्न होती है ।

वक्तव्य—चरक में जायते शाम्यति क्षिप्रं मदो मद्यमदा-कृतिः ॥ (२) मद्य में रूक्षादि गुण तीव्ररूप में रहते हैं और विष में तीव्रतर रूप से रहते हैं । इसी से कहा है चरक चि० अ० २४-६८—

"विषस्य ये गुणा दृष्टाः सन्निपातप्रकोपणाः ।
त एव मद्ये दृश्यन्ते विषे तु बलवत्तराः ।
त एव तस्मात्ताभ्यां तु मोहौ स्यातां यथेरितौ ॥"

वि० मन्तव्य—विष एवं मद्य के दस गुण—देखिये कल्प-स्थान अ० २ श्लो० १९-२० तथा उन गुणों के प्रभाव देखिये वहीं श्लो० २१-२२-२३ में ॥११॥

स्तब्धाङ्गदृष्टिस्त्वसृजा गूढोच्छ्वासश्च मूर्च्छितः ।

रक्तजन्य मूर्च्छा में—रोगी का अंग एवं दृष्टि स्तब्ध (जड़) बन जाती है, श्वास अस्पष्ट रहता है ।

मद्येन विलपंश्छेते नष्टविभ्रान्तमानसः ।
गात्राणि विक्षिपन् भूमौ जरां यावन्न याति तत् ॥१२॥

मद्यजनित मूर्च्छा में—रोगी प्रलाप करता है, लेट जाता है । मन (स्मृति) नष्ट हो जाती है, मन विक्षिप्त रहता है, जब तक मद्य का पाक नहीं होता, तब तक भूमि पर पड़ा हुआ अंगों को फेंकता रहता है ॥१२॥

वेपथुस्वप्नतृष्णाः स्युः स्तम्भश्च विषमूर्च्छिते ।
वेदितव्यं तीव्रतरं यथास्वं विषलक्षणैः ॥१३॥

विषजनित मूर्च्छा में—कम्पन, प्यास, नींद आना, जड़ता होती है । विष के अपने लक्षणों से विष के अपने स्वरूप को तीव्र-तीव्रतर जानना चाहिये । विष की तीव्रता विषके अपने लक्षणों से पहिचाने ॥१३॥

सेकावगाहौ मणयः सहाराः
शीताः प्रदेहा व्यजनानिलाश्च ।
शीतानि पानानि च गन्धवन्ति
सर्वासु मूर्च्छास्वनिवारितानि ॥१४॥

शीतल परिषेक, शीतल पानी में अवगाहन, हार में पिरोई मणियों को धारण करना, शीतल प्रदेह, पंखे की ठण्डी हवा, शीतल एवं सुगन्धित पेय, सब प्रकार की मूर्च्छाओं में प्रशस्त हैं ॥

सिताप्रियालेक्षुरसप्लुतानि
द्राक्षामधूकस्वरसान्वितानि ।
खर्जूरकाश्मर्यरसैः श्रृतानि
पानानि सर्पींषि च जीवनानि ॥१५॥

शर्करा, पियाल, ईख के रस में बनाये द्राक्षा, महुए के स्वरस से मिश्रित खजूर और गम्भारी के रसों से सिद्ध किये पेय द्रव तथा काकोल्यादि जीवनीय गण से बनाये घृत सब प्रकार की मूर्च्छाओं में प्रशस्त हैं ॥१५॥

सिद्धानि वर्गे मधुरे पयांसि
सदाडिमा जाङ्गलजा रसाश्च ।
तथा यवा लोहितशालयश्च
मूर्च्छासु पथ्याश्च सदा सतीनाः ॥१६॥

काकोल्यादि मधुरवर्ग में सिद्ध किये दूध, अनारदाने से

मिश्रित जांगल मांसरस, जौ और चावल, मटर ये सदा मूर्च्छा में हितकारी हैं ॥१६॥

भुजङ्गपुष्पं मरिचान्युशीरं
कोलस्य मध्यं च पिबेत् समानि ।
शीतेन तोयेन बिसं मृणालं
क्षौद्रेण कृष्णां सितया च पथ्याम् ॥१७॥

नागकेसर, मरिच, खस, बेर की मज्जा, इनको समान भाग लेकर शीतलजल से पीये । बिस, कमलनाल इनको शीतल जल से पीये । पिप्पली को मधु के साथ चाटे, हरड़ को शर्करा के साथ खाये ॥१७॥

कुर्याच्च नासावदनावरोधं
क्षीरं पिबेद्वाऽप्यथ मानुषीणाम् ।
मूर्च्छा प्रसक्तां तु शिरोविरेकै-
र्जयेदभीक्ष्णं वमनैश्च तीक्ष्णैः ॥१८॥

मूर्च्छा के समय नाक और मुख को बन्द करके श्वास को रोके । धावन (स्त्री का दूध) को पीये, (नाक से या मुख से) । मूर्च्छा के निरन्तर बना रहने पर शिरोविरेचन देवे, या तीक्ष्ण वमन देकर शान्त करे । (स्त्रीस्तन्य बहुत शीतल है) ॥१८॥

हरीतकीक्वाथशृतं घृतं वा
धात्रीफलानां स्वरसैः कृतं वा ।
द्राक्षासितादाडिमलाजवन्ति
शीतानि नीलोत्पलपद्मवन्ति ॥१९॥
पिबेत् कषायाणि च गन्धवन्ति
पित्तज्वरं यानि शमं नयन्ति ।

हरड़ के क्वाथ में सिद्ध किया या आंवलों के स्वरस में सिद्ध किया घृत पीये । पित्तज्वर को जो कषाय शान्त करते हैं (श्रीपर्णी आदि कृत), उन कषायों में द्राक्षा, सिता, अनारदाना तथा लाजवन्ति प्रचुर मात्रा में मिलाकर शीतल करके पीये या नीलोफर और कमल मिलाकर, अथवा सुगन्धित करके इन कषायों को पीये ॥१९॥

प्रभूतदोषस्तमसोऽतिरेकात् संमूर्छितो नैव विबुध्यते यः ॥
संन्यस्तसंज्ञो भृशदुश्चिकित्स्यो ज्ञेयस्तदा बुद्धिमता मनुष्यः

दोष की अधिकता से मूर्च्छित हुआ मनुष्य तम के अतिरेक के कारण जब जागृत नहीं होता, तब उसे संन्यस्त (संन्यास) संज्ञावाला जानना, यह कष्टसाध्य है, ऐसा बुद्धिमान् मनुष्य जाने । चरक—

वाग्देहमनसां चेष्टामाक्षिप्यातिबला मलाः ।
संन्यस्यन्त्यबलं जन्तुं प्राणायतनमाश्रिताः ॥
स ना संन्याससंन्यस्तः काष्ठीभूतो मृतोपमः ।
प्राणैः विमुच्यते शीघ्रं मुक्त्वा सद्यः फलां क्रियाम् ॥२०॥

यथाऽऽमलोष्टं सलिले निषिक्तं
समुद्धरेदाश्वविलीनमेव ॥२१॥
तद्वच्चिकित्सेत्त्वरया भिषक्त-
मस्वेदनं मृत्युवशं प्रयातम् ।

जिस प्रकार पानी में डूबते हुए मिट्टी के कच्चे ढेले को पानी से घुलने से पूर्व ही बचाना होता है, उसी प्रकार प्रस्वेद रहित, मृत्यु के वश में जाते हुए संन्यास रोगी की वैद्य शीघ्रता से चिकित्सा करे । चरक—

दुर्गेऽम्भसि यथा मज्जद्भाजनं त्वरया बुधः ।
गृह्णीयात्तलमप्राप्तं तथा सन्यासपीडितम् ॥२१॥

तीक्ष्णाञ्जनाभ्यञ्जनधूमयोगै-
स्तथा नखाभ्यन्तरतोत्रपातैः ॥२२॥
वादित्रगीतानुनयैरपूर्वै-
र्विघट्टनैर्गुप्तफलावघर्षैः ।

इसके लिये तीक्ष्ण अंजन, तीक्ष्ण अभ्यंजन, तीक्ष्णधूम देवे, नखों के बीच में सूई चुभोये । गाना, बजाना, सान्त्वना आदि से, हिलाने-जुलाने से, कौंच को शरीर पर रगड़कर चेतना में लाये ।

अंजनान्यवपीडाश्च धूमः प्रधमनानि च ।
सूचीभिस्तोदनं शस्त्रैः दाहः पीडा नखान्तरे ॥
लुञ्चनं केशलोम्नां च दन्तैर्दशनमेव च ।
आत्मगुप्तावघर्षाश्च हितास्तस्यावबोधने ॥ चरक ॥२२॥

आभिः क्रियाभिश्च नलब्धसंज्ञः
सानाहलालाश्वसनश्च वर्ज्यः ॥२३॥

यदि उपर्युक्त क्रियाओं के करने से भी चेतना न आये, तो रोगी को आनाह, लालस्राव, श्वास हो तो उसकी चिकित्सा न करे ॥२३॥

प्रबुद्धसंज्ञं वमनानुलोम्यैस्तीक्ष्णैर्विशुद्धं लघुपथ्यमुक्तम् ।
फलत्रिकैश्चित्रकनागराढ्यैस्तथाऽश्मजाताज्जतुनः प्रयोगैः ॥
सशर्करैर्मासमुपक्रमेत
विशेषतो जीर्णघृतं स पाय्यः ॥२४॥

तीक्ष्ण अंजन आदि से संज्ञा आ जाने पर तीक्ष्ण वमन, विरेचन से शोधन करके पेयादि क्रम से लघु पथ्य भोजन देकर, त्रिफला, चित्रक, सोंठ, शर्कराबहुल, एवं शिलाजतु के प्रयोगों से एक मास तक चिकित्सा करे । विशेषतः दस साल पुराना घृत पिलाना चाहिये ।

संमूर्च्छितानि तीक्ष्णानि मद्यानि विविधानि च ।
प्रभूतकटुयुक्तानि तस्यास्ये गालयेन्मुहुः ॥
मातुलुंगरसं तद्वन्महौषधसमायुतम् ।
तद्वत्सौवीरकं दद्यात् युक्तं मद्याम्लकांजिकैः ॥
हिंगूषणसमायुक्तं यावत्संज्ञाप्रबोधनम् ।
प्रवृद्धसंज्ञमन्नैश्च लघुभिस्तमुपाचरेत् ॥
विस्मापनैः स्मारणैश्च प्रियश्रुतिभिरेव च ।

पटुभिर्गीतवादित्रशब्दैः चित्रैश्च दर्शनैः ॥
स्रंसनोल्लेखनैः धूमैः अंजनैः कवलग्रहैः ।
शोणितस्यावसेकैश्च व्यायामोद्घर्षणैस्तथा ॥
प्रवृद्धसंज्ञं मतिमाननुबन्धमुपाक्रमेत् ।
तस्य संरक्षितव्यं हि मनः प्रलयहेतुतः ॥
स्नेहस्वेदोपपन्नानां यथादोषं यथाबलम् ।
पंचकर्माणि तथा मूर्च्छायेषु मदेषु च ॥
त्रिफलायाः प्रयोगो वा सघृतक्षौद्रशर्करः ।
शिलाजतुप्रयोगो वा प्रयोगः पयसोऽपि वा ॥
पिप्पलीनां प्रयोगो वा प्रयोगश्चित्रकस्य वा ।
रसायनानां कौम्भस्य सर्पिषो वा प्रशस्यते ॥ च० ॥२४॥

यथास्वं च ज्वरघ्नानि कषायाण्युपयोजयेत् ।
सर्वमूर्च्छापरीतानां विषजायां विषापहम् ॥२५॥

दोषों के उनके अपने अपने अनुसार ज्वरनाशक कषाय सब प्रकार की मूर्च्छा में बरते । विषजनित मूर्च्छा में विषनाशक चिकित्सा (नस्य, अंजन आदि) करे ॥२५॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे शोषप्रतिषेधो नाम (अष्टमोऽध्यायः, आदितः) षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

अथातः पानात्ययप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे पानात्ययप्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

मद्यमुष्णं तथा तीक्ष्णं सूक्ष्मं विशदमेव च ।
रूक्षमाशुकरं चैव व्यवायि च विकाशि च ॥३॥

मद्य उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, विशद, रूक्ष, आशुकारी, व्यवायी और विकाशी है ।

वक्तव्य—आशुकारी शीघ्र कार्य करनेवाला । व्यवायी-सारे शरीर में फैलकर फिर पाक होता है । विकाशी-सन्धिबन्धों को ढीला करता है । चरक में—लघु और अम्ल ये दो गुण अधिक पढ़े हैं, दस गुण मद्य के हैं, दस गुण ये ही विष में हैं । इनसे विपरीत दस गुण ओज में हैं, यथा—गुरुशीतं मृदुश्लक्ष्णं बहलं मधुरं स्थिरम् । प्रसन्नं पिच्छिलं स्निग्धमोजो दशगुणं स्मृतम् ॥ ओज के दस गुण गाय के दूध में हैं । इसलिये गाय का दूध ओज को बढ़ाता है, मद्य ओज को कम करता है ॥३॥

औष्ण्याच्छीतोपचारं तत्तैक्ष्ण्याद्धन्ति मनोगतिम् ।
विशत्यवयवान् सौक्ष्म्याद्वैशद्यात्कफशुक्रनुत् ॥४॥
मारुतं कोपयेद्रौक्ष्यादाशुत्वाच्चाशुमर्मकृत् ।
हर्षदं च व्यवायित्वाद्विकाशित्वाद्विसर्पति ॥५॥

मद्य के उष्ण होने से (पित्त प्रकोपक होने से) शीतल उपचार किया जाता है । तीक्ष्ण होने से मन की गति को नष्ट करता है । सूक्ष्म होने से अवयवों में घुसता है, विशद होने से कफ और शुक्र को नष्ट करता है । रूक्ष होने से वायु को कुपित करता है, आशु होने से शीघ्र कार्य करता है । व्यवायी होने से हर्ष देता है, विकाशी होने से सारे शरीर में फैलता है ।

मद्यं हृदयमाविश्य स्वगुणैरोजसो गुणान् ।
दशभिर्दश संक्षोभ्य चेतो नयति विक्रियाम् ॥ चरक ॥४,५॥

तदम्लं रसतः प्रोक्तं लघु रोचनदीपनम्
केचिल्लवणवर्ज्यांस्तु रसानत्रादिशन्ति हि ॥६॥

मद्य में अम्लरस प्रधानता से रहता है, अम्लरस लघु, रोचक और अग्निदीपक है । कई आचार्य लवण रस को छोड़कर शेष पांचों रस मद्य में मानते हैं । (मद्यस्य षड्रसत्वेपि व्यक्तोऽम्लरस उच्यते) ॥६॥

स्निग्धैस्तदन्नैर्मांसैश्च भक्ष्यैश्च सह सेवितम् ।
भवेदायुः प्रकर्षाय बलायोपचयाय च ॥७॥

स्निग्ध अन्न, स्निग्ध मांस और स्निग्ध भक्ष्यों के साथ सेवन किया यह मद्य आयु को बढ़ाने के लिये, बल की वृद्धि के लिये होता है ।

हर्षमूर्जो मदं पुष्टिमारोग्यं पौरुषं परम् ।
युक्त्या पीतं करोत्याशु मद्यं मदसुखावहम् ॥
रोचनं दीपनं हृद्यं स्वरवर्णप्रसादनम् ।
प्रीणनं बृंहणं बल्यं भयशोकश्रमापहम् ॥ च० ॥७॥

काम्यता मनसस्तुष्टिर्धैर्यं तेजोऽतिविक्रमः ।
विधिवत् सेव्यमाने तु मद्ये सन्निहिता गुणाः ॥८॥

मद्य का विधिपूर्वक सेवन करने से कमनीयता, मन की प्रसन्नता, धैर्य, तेज, अति विक्रम (पराक्रम) ये सम्यक् प्रकार से प्राप्त होते हैं । (तेज-प्रभा) ॥८॥

तदेवानन्नमज्ञेन सेव्यमानममात्रया ।
कायाग्निना ह्यग्निसमं समेत्य कुरुते मदम् ॥९॥

यही अग्नि के समान मद्य अन्न के बिना, मूर्ख व्यक्ति के सेवन करने से, या अतिमात्रा में सेवन करने पर जठराग्नि के साथ मिलकर मद को करता है ।

अहितस्यातिमात्रस्य पीतस्य विधिवर्जितम् ।
किन्तु मद्यं स्वभावेन यथैवान्नं तथा स्मृतम् ॥
अयुक्तियुक्तं रोगाय युक्तियुक्तं यथाऽमृतम् ।
चरक ॥९॥

मदेन करणानां तु भावान्यत्वे कृते सति ।
निगूढमपि भावं स्वं प्रकाशीकुरुतेऽवशः ॥१०॥

मद्य के कारण मन बुद्धि और इन्द्रियों के स्वरूपों के बदल जाने पर मनुष्य अपने छिपे हुए अभिप्राय को भी मद के अधीन होकर स्वयं प्रकाशित कर देता है ॥१०॥

व्यवस्थश्च मदो ज्ञेयः पूर्वो मध्योऽथ पश्चिमः।
पूर्वे वीर्यरतिप्रीतिहर्षभाष्यादिवर्धनम् ॥११॥
प्रलापो मध्यमे मोहो युक्तायुक्तक्रियास्तथा।
विसंज्ञः पश्चिमे शेते नष्टकर्मक्रियागुणः॥१२॥

मद्य की तीन अवस्थायें हैं, पूर्वावस्था, मध्यमावस्था और पश्चिमावस्था।

मद्य की पूर्वावस्था में—वीर्य (उत्साह), रति, हर्ष, प्रीति, हर्ष-तुष्टि, भाष्य-वक्तृत्व आदि बढ़ते हैं।

मद्य की द्वितीयावस्था में—मोह, कभी ठीक क्रियायें और कभी अयुक्त-अशुद्ध क्रियायें होती हैं।

मद्य की पश्चिमावस्था में कर्म, क्रिया, गुण नष्ट होकर रोगी जमीन पर सो जाता है।

वक्तव्य—"बुद्धिस्मृतिप्रीतिकरः सुखश्च पानान्ननिद्रारुचिवृद्धिहेतुः। संपाठगीतस्वरवर्धनश्च प्रोक्तोऽतिरम्यः प्रथमो मदो हि॥ अव्यक्तबुद्धिस्मृतिवाग्विचेष्टः सोन्मत्तलीलाकृतिरप्रशान्तः। आलस्यनिद्राभिहतो मृदुश्च मध्येन मत्तः पुरुषो मदेन। गच्छेदगम्याश्च गुरून्न मन्येत् खादेदभक्ष्याणि च नष्टसंज्ञः। ब्रूयाच्च गुह्यानि हृदि स्थितानि मत्तो मदेन प्रवरेण मर्त्यः" ॥११,१२॥

श्लैष्मिकानल्पपित्तांश्च स्निग्धान्मात्रोपसेविनः।
पानं न बाधतेऽत्यर्थं विपरीतांस्तु बाधते ॥१३॥

कफप्रकृति, अल्प पित्तवाले, स्निग्ध शरीर, मात्रा में सेवन करनेवालों को मद्यपान अधिक कष्ट नहीं देता। इन से विपरीत पित्ताधिक, रूक्ष, अमात्रा में सेवन करनेवालों को पीड़ा पहुँचाता है ॥१३॥

निर्भक्तमेकान्तत एव मद्यं
निषेव्यमाणं मनुजेन नित्यम्।
उत्पादयेत् कष्टतमान् विकारा-
नापादयेच्चापि शरीरभेदम् ॥१४॥

भोजन के बिना अकेला ही सेवन किया नित्य प्रति मद्य मनुष्य में भयानक रोगों को तथा मृत्यु को उत्पन्न करता है॥

क्रुद्धेन भीतेन पिपासितेन
शोकाभितप्तेन बुभुक्षितेन।
व्यायामभाराध्वपरिक्षतेन
वेगावरोधाभिहतेन चापि ॥१५॥
अत्यम्लभक्ष्यावततोदरेण
साजीर्णभुक्तेन तथाऽबलेन।
उष्णाभितप्तेन च सेव्यमानं
करोति मद्यं विविधान् विकारान् ॥१६॥

क्रुद्ध, डरे हुए, प्यासे, शोक से पीड़ित, भूखे, व्यायाम-भार और मुसाफरी से थके, मूत्रादि के वेग को रोकने से पीड़ित मनुष्य द्वारा सेवन किया हुआ मद्य भिन्न-भिन्न रोगों को उत्पन्न करता है। अतिशय अम्ल के खाने से आवृत उदरवाले मनुष्य के, अजीर्ण में भोजन करके सेवन किया हुआ मद्य, निर्बल व्यक्ति से पीया मद्य, गरमी से अभितप्त अवस्था में सेवन किया मद्य नानाप्रकार के रोगों को उत्पन्न करता है ॥१५,१६॥

पानात्ययं परमदं पानाजीर्णमथापि वा।
पानविभ्रममुग्रं च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥१७॥

पानात्यय, परमद, पानाजीर्ण, भयानक पानविभ्रम ये भिन्न-भिन्न रोग होते हैं, इनके लक्षण कहता हूँ।

वि० मन्तव्य—पानात्यय-यह रोग मादक द्रव्य के अधिक सेवन से होता है। परमद—यह रोग मद (नशा) के अधिक हो जाने से होता है। पानाऽजीर्ण—यह रोग मद्य-मादक द्रव्य के अपच से होता है और पानविभ्रम—मद्य के मिथ्यायोग से होता है ॥१७॥

स्तम्भाङ्गमर्दहृदयग्रहतोदकम्पाः
पानात्ययेऽनिलकृते शिरसो रुजश्च।
स्वेदप्रलापमुखशोषणदाहमूर्च्छाः
पित्तात्मके वदनलोचनपीतता च ॥१८॥
श्लेष्मात्मके वमथुशीतकफप्रसेकाः
सर्वात्मके भवति सर्वविकारसंपत्।

वातजनित पानात्यय में स्तब्धता, अंगों का टूटना, हृदय का पकड़ा जाना, चुभने की सी दर्द, कम्प, शिर में दर्द होता है। पित्तजनित पानात्यय में स्वेद, प्रलाप, मुखशोष, दाह, मूर्च्छा आँख और मुख में पीलापन होता है। कफजनित पानात्यय में-वमन, शीत, कफ का प्रसेक होता है। सन्निपातजन्य-पानात्यय में—सब प्रकार के विकार (लक्षण) होते हैं ॥१८॥

ऊष्माणमङ्गगुरुतां विरसाननत्वं
श्लेष्माधिकत्वमरुचिं मलमूत्रसङ्गम् ॥१९॥
लिङ्गं परस्य तु मदस्य वदन्ति तज्ज्ञा-
स्तृष्णां रुजां शिरसि सन्धिषु चापि भेदम्।

परमद में—उष्णिमा, अंगों में भारीपन, मुख में विरसता, कफ की अधिकता, अरुचि, मल-मूत्र का अवरोध, तृष्णा, शिर में दर्द, सन्धियों में भेद होते हैं, परमद के ये लक्षण होते हैं॥

आध्मानमुद्गिरणमम्लरसो विदाहो-
ऽजीर्णस्य पानजनितस्य वदन्ति लिङ्गम् ॥२०॥
ज्ञेयानि तत्र भिषजा सुविनिश्चितानि
पित्तप्रकोपजनितानि च कारणानि।

पानाजीर्ण में—आध्मान, वमन, अम्लरस, विदाह ये पानाजीर्ण के लक्षण होते हैं। इसमें पित्तप्रकोपजनित लक्षणों को वैद्य निश्चितरूप में जाने ॥२०॥

हृद्गात्रतोदवमथुज्वरकण्ठधूम-
मूर्च्छाकफस्रवणमूर्धरुजो विदाहः ॥२१॥
द्वेषः सुरान्नविकृतेषु च तेषु तेषु
तं पानविभ्रममुशन्त्यखिलेन धीराः।

पानविभ्रम—हृदय और शरीर में चुभने का-सा दर्द,

वमन, ज्वर, कण्ठ में धूमप्रतीति, मूर्च्छा, कफ का स्राव, शिर में दर्द, विदाह, सुरा एवं अन्न की बनावटों से द्वेष, इसको विद्वान् लोग पानविभ्रम सम्पूर्ण रूप में कहते हैं ॥२१॥

हीनोत्तरौष्ठमतिशीतममन्ददाहं
तैलप्रभास्यमति (पि) पानहतं विजह्यात् ॥२२॥
जिह्वौष्ठदन्तमसितं त्वथवाऽपि नीलं
पीते च यस्य नयने रुधिरप्रभे च ।

अधरोष्ठ अन्दर को दबा हुआ हो, रोगी बहुत ठण्डा हो या तीव्र दाह हो, मुख पर तैल की चमक हो तो मद्यपान से पीड़ित रोगी की चिकित्सा न करे। जिह्वा-ओठ दाँत काले अथवा नीले हो गये हों, आँखें लाल या पीली हो गई हों, वैसे मद्यपान रोगी को भी असाध्य समझे ॥२२॥

हिक्काज्वरौ वमथुवेपथुपार्श्वशूलाः
कासभ्रमावपि च पानहतं भजन्ते ॥२३॥

उपद्रव–हिक्का, ज्वर, वमन, कम्पन, पार्श्वशूल, कास, भ्रम ये पान से पीड़ित रोगी को होते हैं ॥२३॥

तेषां निवारणमिदं हि मयोच्यमानं
व्यक्ताभिधानमखिलेन विधिं निबोध ।

मुझसे कही हुई इसकी चिकित्सा स्पष्ट लक्षणों के साथ सम्पूर्ण रूप में सुनो।

भिन्नं तु चुक्रमरिचार्द्रकदीप्यकुष्ठ-
सौवर्चलायुतमलं पवनस्य शान्त्यै ॥२४॥
पृथ्वीकदीप्यकमहौषधहिङ्गुभिर्वा
सौवर्चलेन च युतं वितरेत् सुखाय ।

वातजनित पानात्यय की शान्ति के लिये–चुक्र, मरिच, आर्द्रक, अजवायन, कूठ, ईषत्सौवर्चल युक्त मद्य देवे। पृथ्वीका (बड़ी इलायची), अजवायन, सोंठ, हींग सौवर्चल युक्त मद्य देवे ॥२४॥

आम्रातकाम्रफलदाडिममातुलुङ्गैः
कुर्याच्छुभान्यपि च षाडवपानकानि ॥२५॥
सेवेत वा फलरसोपहितान् रसादी-
नानूपवर्गपिशितान्यपि गन्धवन्ति ।

आम्रातक (आमड़ा), आम, अनार, बिजौरा इनसे बनाये उत्तम षाडव पानक देवे। बिजौरे के रस से मिश्रित मांसरस, यूष आदि का, प्रभूत हींग-जीरकवाले आनूपवर्ग (कूलचरादि वर्ग) के मांसों का सेवन करे।

षाडव-पानक—"युतमिक्षुविकारेण क्वथितं चूतजं फलम्। घृतशुण्ठीतिलयुतं विज्ञेयो घनषाडवः" ॥२५॥

पित्तात्मके मधुरवर्गकषायमिश्रं
मद्यं हितं समधुशर्करमिष्टगन्धम् ॥२६॥

पित्तजन्य मदात्यय में काकोल्यादि मधुरवर्ग (गिलोय को छोड़कर) से मिश्रित, मधु, शर्करा एवं मनपसन्द युक्त गन्धवाला मद्य हितकारी है ॥२६॥

पीत्वा च मद्यमपि चेक्षुरसप्रगाढं
निःशेषतः क्षणमवस्थितमुल्लिखेच्च ।
लावैणतित्तिरिरसांश्च पिबेदनम्लान्
मौद्गान् सुभाय सघृतान् ससितांश्च यूषान् ॥

मद्य में ईख का रस (अभाव में गुड़) प्रचुर मात्रा में मिलाकर पीये, फिर कुछ देर रुककर इसको सम्पूर्ण रूप में वमन कर देवे। अम्लरस रहित-बटेर, हरिण तीतर के मांस को, घृतयुक्त मूंग के यूषों को सुख के लिये पीये ॥२७॥

पानात्यये कफकृते कफमुल्लिखेच्च
मद्येन बिम्बिविदुलोचकसंयुतेन ।
सेवेत तिक्तकटुकांश्च रसानुदारान्
यूषांश्च तिक्तकटुकोपहितान् हिताय ॥२८॥

कफजनित पानात्यय में कन्दूरी, विदुल के क्वाथ से मिश्रित मद्य द्वारा कफ का वमन करे। जांगल मेदयुक्त मांस रसों को तिक्त कटु के साथ सेवन करे। दुरालभादि तिक्त, पिप्पल्यादि कटुद्रव्यों से मिश्रित यूषों का सेवन करे ॥२८॥

पथ्यं यवान्नविकृतानि च जाङ्गलानि
श्लेष्मघ्नमन्यदपि यच्च निरत्ययं स्यात् ।

जौ के बने नाना प्रकार के भक्ष्य, जांगलमांस, कफनाशक एवं निर्दोष जो अन्य वस्तुयें हों, वे भी उत्तम हैं।

कुर्याच्च सर्वमथ सर्वभवे विधानं
द्वन्द्वोद्भवे द्वयमवेक्ष्य यथाप्रधानम् ॥२९॥

सन्निपातज मद्य विकार में सब दोषों को मिलित, द्वन्द्वज में दो दोषों को देखकर योगप्रधान (जो दोष प्रधान) हो, उसकी प्रथम चिकित्सा करे ॥२९॥

सामान्यमन्यदपि यच्च समग्रमग्र्यं
वक्ष्यामि यच्च मनसो मदकृत् सुखं च ।

दूसरी भी जो सामान्य मन को प्रसन्न करनेवाली है, सम्पूर्ण रूप में सब अवस्थाओं में सुखदायक हैं, उस चिकित्सा को कहता हूँ।

त्वङ्नागपुष्पमगधैलमधूकधान्यैः
श्लक्ष्णैरजाजिमरिचैश्च कृतं समांशैः ॥३०॥
पानं कपित्थरसवारिपरूषकाढ्यं
पानात्ययेषु विधिवत्स्रुतमम्बरान्ते ।
ह्रीवेरपद्मपरिपेलवसंप्रयुक्तैः
पुष्पैर्विलिप्य करवीरजलोद्भवैश्च ॥३१॥
पिष्टैः सपद्मकयुतैरपि सारिवाद्यैः
सेकं जलैश्च वितरेदमलैः सुशीतैः ।
त्वक्पत्रचोचमरिचैलभुजङ्गपुष्प-
श्लेष्मातकप्रसववल्कगुडैरुपेतम् ॥३२॥
द्राक्षायुतं हृतमलं मदिरामयार्तै-
स्तत्पानकं शुचि सुगन्धि नरैर्निषेव्यम् ।

पिष्ट्वा पिबेच्च मधुकं कटुरोहिणीं च
द्राक्षां च मूलमसकृत् त्रपुषीभवं यत् ॥३३॥
कार्पासिनीमथ च नागबलां च तुल्यां
पीत्वा सुखी भवति साधु सुवर्चलां च ।

दालचीनी, नागकेसर, पिप्पली, इलायची, महुआ, धनिया, जीरा, मरिच, इनको समान मात्रा में लेकर बारीक चूर्ण करले । इस चूर्ण को कैथ के स्वरस, जल, फालसा इनमें घोलकर वस्त्र में से छानकर पानात्ययों में पीये । ह्रीवेर, कमल, केवड़ी मोथा के साथ, करवीर एवं कमल आदि जलज पुष्पों के साथ लेप करे । सारिवादिगण, पद्माख इनको पीसकर इनको अतिशीतल, निर्मल पानी में घोलकर इस जल से परिषेक करे । दालचीनी, तेजपत्र, तज, मरिच, इलायची, नागकेसर, लसूड़े के कोमल पत्ते, छाल, गुड़ एवं द्राक्षा मिश्रित, कपड़े से छाने, पवित्र, सुगन्धित पानक, मदिरा से पीड़ित मनुष्यों को सेवन करना चाहिये । मुलैहठी, कुटकी, द्राक्षा, खीरे की जड़ (अभाव में बीज) इनको पीसकर कई बार पीये (अच्छी प्रकार पीसकर पीये) । वनकार्पासी, नागबला और हुलहुल इनको अच्छी प्रकार पीसकर पीये, इससे आरोग्य होता है ॥३०-३३॥

काश्मर्यदारुविडदाडिमपिप्पलीषु
द्राक्षान्वितासु कृतमम्बुनि पानकं यत् ॥३४॥
तद्बीजपूरकरसायुतमाशु पीतं
शान्तिं परां परमदे त्वचिरात् करोति ।

गम्भारी, दारुहल्दी विड्नमक, अनारदाना, पिप्पली, द्राक्षा इनसे पानी में तैयार किये पानक में बिजौरे का रस मिलाकर पीने से परमद में शीघ्र ही परम शान्ति मिलती है ॥

द्राक्षासितामधुकजीरकधान्यकृष्णा-
स्वेवं कृतं त्रिवृतया च पिबेत्तथैव ॥३५॥
सौवर्चलायुतमुदाररसं फलाम्लं
भार्गीश्रृतेन च जलेन हितोऽवसेकः ॥३६॥

द्राक्षा, शर्करा, मुलैहठी, जीरा, धनिया, पिप्पली, निशोथ इनसे तैयार किये पानक में बिजौरे का रस मिलाकर पीये । जांगल मांस रस में संचलनमक, अनार आदि खट्टे फलों का रस मिलाकर पीये । भार्गी से पकाये जल (भार्गी के क्वाथ) से अवसेक (परिषेक) करना उत्तम है ॥३५,३६॥

इक्ष्वाकुधामार्गववृक्षकाणि
काकाह्वयोदुम्बरिकाश्च दुग्धे ।
विपाच्य तस्याञ्जलिना वमेद्धि
मद्यं पिबेच्चाह्नि गते त्वजीर्णे ॥३७॥

कड़ुई तुम्बी, धामार्गव (कड़ुई तुरई), इन्द्रजौ, कठगूलर इनको दूध में पकाकर इस दूध की एक कुड़व मात्रा पान जनित अजीर्ण में पीकर वमन करे, फिर दिन के छिप जाने पर अग्नि बढ़ाने के लिये मद्य पीये ॥३७॥

त्वक्पिप्पली भुजगपुष्पविडैरुपेतं
सेवेत हिङ्गुमरिचैलयुतं फलाम्लम् ॥
उष्णाम्बुसैन्धवयुतास्त्वथवा विडत्वक्
चव्यैलहिङ्गुमगधाफलमूलशुण्ठीः ॥३८॥
हृद्यैः खडैरपि च भोजनमत्र शस्तं

दालचीनी, पिप्पली, नागकेसर, बिड्नमक से मिश्रित मद्य पीये । हींग, मरिच, इलायची, अनारदाना या बिजौरे के रस से मिला मद्य पीये । सैन्धव नमक, विडनमक, दालचीनी, गरमपानी से मिला मद्य पीये । चव्य, इलायची, हींग, पिप्पली, पिप्पलीमूल, सोंठ से मिश्रित मद्य पीये । मन पसन्द खड़ (यूष विशेष) से भोजन करना पानाजीर्ण में उत्तम है ॥३८॥

द्राक्षाकपित्थफलदाडिमपानकं यत् ।
तत् पानविभ्रमहरं मधुशर्कराढ्य-
माम्रातकोलरसपानकमेव चापि ॥३९॥
खर्जूरवेत्रककरीरपरूषकेषु
द्राक्षात्रिवृत्सु च कृतं ससितं हिमं वा ।
श्रीपर्णियुक्तमथवा तु पिबेदिमानि
यष्ट्याह्वयोत्पलहिमाम्बुविमिश्रितानि ॥४०॥
क्षीरिप्रवालबिसजीरकनागपुष्प-
पत्रैलवालुसितसारिवपद्मकानि ।
आम्रातभव्यकरमर्दकपित्थकोल-
वृक्षाम्लवेत्रफलजीरकदाडिमानि ॥४१॥

द्राक्षा, कैथ, बिजौरे का फल, अनार से बने (शर्बत) में प्रचुर मधु और शर्करा मिलाकर पीने से पान विभ्रम नष्ट होता है । आम्रातक, बेर इनका पानक भी प्रशस्त है । खजूर, वेत, करीर, फालसा, द्राक्षा, निशोथ इनसे बनाये, शर्करा मिश्रित, शीतल एवं संस्कृत, गम्भारीफल मिले पानक उत्तम हैं । अथवा मुलैहठी, कमल, शीतल जल में बरगद आदि क्षीरि बृक्षों के कोमल पत्ते, बिस, जीरक, नागकेसर, या तेजपत्र, ऐलवालुक, श्वेत सारिवा, पद्माख, या अम्बाड़ा, कमरख, करौंदा, कैथ, बेर, अथवा वृक्षाम्ल, वेंत का फल, जीरा, अनार मिलाकर पीये ॥३९-४१॥

सेवेत वा मरिचजीरकनागपुष्प-
त्वक्पत्रविश्वचविकैलयुतान् रसांश्च ।
सूक्ष्माम्बरस्रुतहिमांश्च सुगन्धिगन्धान् ।
पानोद्भवान्नुदति सप्तगदानशेषान् ॥४२॥

मरिच, जीरक, नागकेसर, दालचीनी, तेजपत्र, सोंठ, चविका, इलायची मिश्रित मांसरसों का सेवन करे । अतिशय गन्ध युक्त सुगन्धियों से मिले शीतल, पतले वस्त्र में छाने हुए मांसरसों के सेवन से पान-मद्यपानजनित सात रोग शीघ्र सम्पूर्णरूप में नष्ट होते हैं । (सातरोग—मदात्यय चार, वातिक,

पैत्तिक, कफज, सन्निपातज, परमद, पानाजीर्ण, पानविभ्रम–ये सात रोग) ॥४२॥

पञ्चेन्द्रियार्थविषया मृदुपानयोगा
हृद्याः सुखाश्च मनसः सततं निषेव्याः ।
पानात्ययेषु विकटोरुनितम्बवत्यः
पीनोन्नतस्तनभरानतमध्यदेशाः ॥४३॥
प्रौढाः स्त्रियोऽभिनवयौवनपीनगात्र्यः
सेव्याश्च पञ्चविषयातिशयस्वभावाः ॥४४॥

कान-नेत्र आदि पाँच इन्द्रियों के शब्द रूप आदि पाँच विषयों का, मृदुपानयोग (पैष्टिक, गौड़ी, माध्वीक आदि हल्के मद्य), हृदय के लिये प्रिय, सुखकर, मानसिक विषयों का निरन्तर सेवन करना चाहिये। पानात्ययों में—विशाल ऊरु एवं नितम्बवाली, पुष्ट एवं उन्नत स्तनों के भार से मध्य प्रदेश में झुकी (क्षीण उदरवाली), उठते हुए यौवन से भारी शरीरवाली, शब्द-रूप-रसादि पंच विषयों के आनन्द लेनेवाली प्रौढ स्त्रियों का सेवन करे ॥४३,४४॥

पिबेद्रसं पुष्पफलोद्भवं वा
सितामधूकत्रिसुगन्धियुक्तम् ।
संचूर्ण्य संयोज्य च नागपुष्पै-
रजाजिकृष्णामरिचैश्च तुल्यैः ॥४५॥

कूष्माण्ड के स्वरस में—शर्करा, महुआ, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेसर, जीरा, पिप्पली, मरिच, इनका चूर्ण भली प्रकार करके परस्पर समान मात्रा में मिलाकर पीये ॥

वर्षाभूयष्ट्याह्वमधूकलाक्षा-
त्वक्कर्बुदाराङ्कुरजीरकाणि ।
द्राक्षां च कृष्णामथ केशरं च
क्षीरे समालोड्य पिबेत् सुखेप्सुः ॥४६॥

पुनर्नवा, मुलैहठी, महुआ, लाख, दालचीनी, कचनार के कोमल पत्ते, जीरा, द्राक्षा, पिप्पली, नागकेसर इनको दूध में घोलकर सुख चाहनेवाला मनुष्य पीये ॥४६॥

भवेच्च मद्येन तु येन पातितः
प्रकामपीतेन सुरासवादिना ।
तदेव तस्मै विधिवत् प्रदापये-
द्विपर्यये भ्रंशमवश्यमृच्छति ॥४७॥

जिस सुरा आसव आदि मद्य को बहुत अधिक मात्रा में इच्छानुसार पीने से मनुष्य मूर्छित हुआ होता है, उसी सुरा आसव आदि मद्य को, उस पुरुष के लिये सौवर्चल आदि के साथ विधि पूर्वक देवे। क्योंकि परिवर्त्तन करने से, इस मनुष्य को भ्रम, क्लेश होता है, इसलिये वही मद्य देवे ॥४७॥

यथा नरेन्द्रोपहतस्य कस्यचिद्-
भवेत् प्रसादस्तत एव नान्यतः ।
ध्रुवं तथा मद्यहतस्य देहिनो
भवेत् प्रसादस्तत एव नान्यतः ॥४८॥

जिस प्रकार राजा से दण्डित व्यक्ति की प्रसन्नता राजा के बिना किसी दूसरे से नहीं हो सकती, उसी प्रकार मद्य से पीड़ित मनुष्य की प्रसन्नता मद्य से ही होती हैं, और किसी दूसरी वस्तु से नहीं होती ।

'मद्योत्थानां च रोगाणां मद्यमेव प्रबाधकम्' । च० ॥४८॥

विच्छिन्नमद्यः सहसा योऽतिमद्यं निषेवते ।
तस्य पानात्ययोद्दिष्टा विकाराः संभवन्ति हि ॥४९॥

मद्यपान को छोड़कर जो मनुष्य फिर सहसा मद्य का अतिपान करता है, उस मनुष्य को पानात्यय में कहे (ध्वंसक आदि) रोग होते हैं। चरक—

"विच्छिन्नमद्यः सहसा योऽतिमद्यं निषेवते ।
ध्वंसो विक्षेपकश्चैव रोगस्तस्योपजायते ॥
श्लेष्मप्रसेकः कण्ठस्य शोषः शब्दासहिष्णुता ।
तन्द्रानिद्राभियोगश्च ज्ञेयं ध्वंसकलक्षणम् ॥
हृत्कण्ठरोगः समोहश्छर्दिरङ्गरुजाज्वरः ।
तृष्णा कासः शिरःशूलमेतद् विक्षेपलक्षणम्" ॥

मद्यस्याग्नेयवायव्यौ गुणावम्बु (म्भो) वहानि तु ।
स्रोतांसि शोषयेयातां तेन तृष्णोपजायते ॥५०॥

मद्य के आग्नेय और वायव्य गुण अम्बुवह स्रोतों को सुखा देते हैं, इससे तृष्णा उत्पन्न होती है ।

औष्ण्यादामात् भयात्पानादतिशुष्कान्नसेवनात् ।
अम्बुवाहीनि दुष्यन्ति तृष्णायाश्चातिपीड़नात् ॥
पिपासां चातिप्रवृद्धां दृष्ट्वा भिषगुदकवहान्यस्य ।
स्रोतांसि प्रदुष्टानीति विद्यात् ॥ च० वि० अ० ५-१०-१६॥

पाटलोत्पलकन्देषु मुद्गपर्ण्या च साधितम् ।
पिबेन्मागधिकोन्मिश्रं तत्राम्भो हिमशीतलम् ॥५१॥

पाटला, कमलकन्द (जल के कन्द) और मुद्गपर्णी से सिद्ध किये हिम के समान शीतल जल में पिप्पली का चूर्ण मिलाकर पीये ॥५१॥

सर्पिस्तैलवसामज्जदधिभृङ्गरसैर्युतम् ।
क्वाथेन बिल्वयवयोः सर्वगन्धैश्च पेषितैः ॥५२॥
पक्वमभ्यञ्जने श्रेष्ठं

घी, तैल, वसा, मज्जा, दही, भाँगरे का स्वरस, बिल्व और जौ का क्वाथ इनमें एलादि गण का कल्क मिलाकर चतुःस्नेह का पाक करे। यह अभ्यंग में श्रेष्ठ है। विधि—दही, भांगरे का स्वरस, बिल्व, जौ का क्वाथ-सर्वगन्ध द्रव्यों का कल्क चतुर्थांश, सर्पि, तैल, वसा मज्जा—ये मिलित कल्क से चार गुणे लेकर सिद्ध करे। क्वाथ स्नेह से चार गुणा लेना चाहिये ॥५२॥

सेके क्वाथश्च शीतलः ।

परिषेक में शीतल क्वाथ बरते।
परिषेकावगाहेषु व्यञ्जनानां च सेवने।
शस्यते शिशिरं तोयं दाहतृष्णाप्रशान्तये ॥चरक॥

रसवन्ति च भोज्यानि यथास्वमवचारयेत् ॥५३॥
पानकानि सुशीतानि हृद्यानि सुरभीणि च।

दोष के अनुसार उसके विपरीत प्रचुर मधुर रसयुक्त भोजनों को, शीतल, मन के प्रिय, सुगन्धित पानकों (पेयों) को देवे ॥५३॥

त्वचं प्राप्तस्तु पानोष्मा पित्तरक्ताभिमूर्च्छितः।
दाहं प्रकुरुते घोरं पित्तवत्तत्र भेषजम् ॥५४॥

मद्यपान जनित उष्मा पित्त-रक्त से मिश्रित होकर त्वचा में आकर भयानक दाह उत्पन्न करती है, इसमें पित्त के समान चिकित्सा करें॥ चरक—

बदरीपल्लवोत्थश्च तथैवारिष्टकोद्भवः।
फेनिलायाश्च यः फेनस्तैर्दाहे लेपनं शुभम् ॥
सुरासमण्डादध्यम्लं मातुलुंगरसो मधु।
सेके प्रदेहे शस्यन्ते दाहघ्नाः साम्लकाञ्जिकाः ॥५४॥

शीतं विधानमत ऊर्ध्वमहं प्रवक्ष्ये
दाहप्रशान्तिकरमृद्धिमतां नराणाम्।
तत्रादितो मलयजेन हितः प्रदेह-
श्चन्द्रांशुहारतुहिनोदकशीतलेन ॥५५॥
शीताम्बुशीतलतरैश्च शयानमेनं
हारैर्मृणालवलयैरबलाः स्पृशेयुः।
भिन्नोत्पलोज्ज्वलहिमे शयने शयीत
पत्रेषु वा सजलबिन्दुषु पद्मिनीनाम् ॥५६॥

ऐश्वर्यशाली पुरुषों के दाह को शान्त करने के लिये शीत उपचार अब कहेंगे–सबसे प्रथम चन्दन का पतला लेप शरीर पर करना उत्तम है। चन्द्रमा की किरणों का, मुक्ताहार का, बर्फ के समान शीतल जल का सेवन करे। शीतल पानी से अतिशीतल बनी, मुक्ताहार पहने कमलनाल के कंकणों को धारण करके स्त्रियाँ लेटे हुए इस पुरुष का आलिंगन करें। खिले कमलवाले निर्मल एवं शीतल बिस्तर पर रोगी लेटे। अथवा जलबिन्दुवाले कमलिनी पत्तों पर लेटे।

"पौष्करेषु सशीतेषु पद्मोत्पलदलेषु च।
कह्लाराणां च पत्रेषु क्षौमेषु विमलेषु च ॥
चन्दनोदकशीतेषु सुप्याद् दाहार्दितः सुखम् ॥"
चरक० चि० अ० ३।२६०।

(शीतलतरैश्च के स्थान पर शीतलकरैश्च पाठ सुन्दर है) ॥

आसादयन् पवनमाहृतमङ्गनाभिः
कह्लारपद्मदलशैवलसंचयेषु।
कान्तैर्वनान्तपवनैः परिमृश्यमानः
शक्तश्चरेद् भवनकाननदीर्घिकासु ॥५७॥

कमल, लालकमल के पत्ते, शैवाल (सरवाल) के समूह में पंखों के द्वारा स्त्रियों से लाई हुई वायु का सेवन करते हुए तथा कमनीय मद शीतल, सुगन्धित वायु का स्पर्श करते हुए–समर्थ बनकर घर की बगीची एवं सीढ़ियोंवाली बावड़ी में घूमें ॥

दाहाभिभूतमथवा परिषेचयेत्तु
लामज्जकाम्बुरुहचन्दनतोयतोयैः।
विस्त्रावितां हृतमलां नववारिपूर्णां
पद्मोत्पलाकुलजलामधिवासिताम्बुम् ॥५८॥
वापीं भजेत हरिचन्दनभूषिताङ्गः
कान्ताकरस्पृशनकर्कशरोमकूपः।

खस, कमल, चन्दन, नेत्रवाला इनके क्वाथ से, दाह से पीड़ित मनुष्य का परिषेक करे। बावड़ी में से पुराना सब पानी भरकर, इस पानी को कमल, लालकमल, इनसे भरकर-सुगन्धित बनाकर इस जल में, शरीरपर श्वेतचन्दन का लेप करके, स्त्रियों के हाथ के स्पर्श से रोमांचित (खड़े रोमोंवाला) बनकर स्नान करे ॥५८॥

तत्रैनमम्बुरुहपत्रसमैः स्पृशन्त्यः
शीतैः करोरुवदनैः कठिनैः स्तनैश्च ॥५९॥
तोयावगाहकुशला मधुरस्वभावाः
संहर्षयेयुरबलाः सुकलैः प्रलापैः।

वहाँ इस वापी में कमल पत्र के समान कोमल एवं शीतल हाथ, ऊरु एवं मुख से तथा कठिन स्तनों से स्पर्श करती हुई, जल क्रीड़ा में कुशल, मधुर स्वभाववाली प्रौढ़ स्त्रियाँ अपने उत्तम कलापूर्ण वचनों से इस दाहपीड़ित मनुष्य को प्रसन्न करें।

संकथाहास्यगीतानां विशदाश्चैव योजनाः।
प्रियाश्चानुगता नार्यो नाशयन्ति मदात्ययम् ॥
नाक्षोभ्य हि मनो मद्यं शरीरमवहत्य च।
कुर्यान्मदात्ययं तस्माद्देष्टव्या हर्षणी क्रिया ॥
चरक चि० अ० २४ ॥५९॥

धारागृहे प्रगलितोदकदुर्दिनाभे
क्लान्तः शयीत सलिलानिलशीतकुक्षौ ॥६०॥
गन्धोदकैः सकुसुमैरुपसिक्तभूमौ
पत्राम्बुचन्दनरसैरुपलिप्तकुड्ये।
जात्युत्पलप्रियककेशरपुण्डरीक-
पुन्नागनागकरवीरकृतोपचारे ॥६१॥
तस्मिन् गृहे कमलरेणवरुणे शयीत
यन्त्राहृतानिलविकम्पितपुष्पदाम्नि।

जिस धारागृह में निरन्तर बरसात की भाँति पानी की फुवारें पड़ रही हों, जहाँ जल मिश्रित वायु शीतल बने कमरे में थका हुआ सोये। सुगन्धित (इत्तर से वासित) फूलों से युक्त पानी से भूमिपर छिड़काव करके, तेजपत्र, मोथा, चन्दन

के रस से दिवारों पर लेप करके, चमेली, कमल, विजयसार, केसर, कमल, पुन्नाग, नागकेसर, करवीर इनसे छिड़के हुए घर में कमल धूली से लाल बने आंगनवाले धारागृह में—यत्न-पूर्वक लाई हुई वायु से कम्पित पुष्पों की माला पहने हुए सोये ॥

हेमन्तविन्ध्यहिमवन्मलयाचलानां
शीताम्भसां सकदलीहरितद्रुमाणाम् ॥६२॥
उद्भिन्ननीलनलिनाम्बुरुहाकराणां
चन्द्रोदयस्य च कथाः शृणुयान्मनोज्ञः ।
म्लानं प्रतान्तमनसं मनसोऽनुकूलाः
पीतस्तनोरुजघना हरिचन्दनाङ्ग्यः ॥६३॥
ता एनमार्द्रवसनाः सह संविशेयुः
श्लिष्टाऽबलाः शिथिलमेखलहारयष्ट्यः ।६४।

हेमन्तऋतु की, विन्ध्याचल, हिमालय, मलयाचल पर्वतों की, शीतल जलों की, केले एवं हरे भरे वृक्षों की, खिलते हुए नीलोफर एवं कमलों की, चन्द्रमा की चाँदनी की मनके अनुकूल कथाओं को सुने । ग्लानि एवं दीनता से युक्त मनवाले मनुष्य को, मनके अनुकूल, पुष्टस्तन ऊरु जघनवाली, शरीर पर चन्दन का लेप किये हुए, गीला महीन वस्त्रधारण करके, ढीलीमेखला, एवं मुक्ताहारवाली स्त्रियाँ आलिंगन करके, इसके साथ सोयें ।

"वनानि रमणीयानि सपद्माः सलिलाशयाः ।
विशदान्यन्नपानानि सहायाश्च प्रहर्षणाः ॥
माल्यानि गन्धयोगाश्च वासांसि विमलानि च ।
गान्धर्वशब्दाः कान्ताश्च गोष्ठयश्च हृदयप्रियाः ॥
संकथाहास्यगीतानां विशदाश्चैव योजनाः ।
प्रियाश्चानुगता नार्यो नाशयन्ति मदात्ययम् ॥
जलयंत्राभिवर्षीणि वातयंत्रवहाणि च ।
कल्पनीयानि भिषजा दाहे धारागृहाणि च" ॥६२,६४॥

हर्षयेयुर्नरं नार्यः स्वगुणै रहसि स्थिताः ।
ताः शैत्याच्छमयेयुश्च पित्तपानात्ययान्तरम् ॥६५॥

एकान्त में स्थित स्त्रियाँ अपने मृदुभाषण-नृत्य आदि गुणों से इसको प्रसन्न करें । ये स्त्रियाँ अपनी शीतलता से पित्तपानात्ययको शांत करें ॥६५॥

तृड्दाहरक्तपित्तेषु कार्योऽयं भेषजक्रमः ।
सामान्यतो

प्यास, दाह, रक्तपित्त में यह कही औषधविधि सामान्य रूप में करे ।

विशेषं तु शृणु दाहेष्वशेषतः ॥६६॥

दाह के लिये विशेष चिकित्सा सम्पूर्ण रूप में सुनो ॥६६॥

कृत्स्नदेहानुगं रक्तमुद्रिक्तं दहति ह्यति ।
संचूष्यते दह्यते च ताम्राभस्ताम्रलोचनः ॥६७॥
लोहगन्धाङ्गवदनो वह्निनेवावकीर्यते ।
तं विलङ्घ्य विधानेन संसृष्टाहारमाचरेत् ॥६८॥
अप्रशाम्यति दाहे च रसैस्तृप्तस्य जाङ्गलैः ।
शाखाश्रया यथान्यायं रोहिणीर्व्यधयेत् सिराः ॥६९॥

सम्पूर्ण शरीर में फैला हुआ बढ़ा हुआ रक्त बहुत जलन उत्पन्न करता है, इससे रोगी को खिंचाव, और दाह होता है, रोगी का चेहरा ताम्रवर्ण हो जाता है, आँखें ताम्रवर्ण हो जाती हैं, अंग और मुख से लोह (रक्त) की गन्ध आती है, जलते हुए अंगारों से व्याप्त अपने को मानता है । इस रोगी को लंघन कराके, क्रम से पेया आदि आहार देवे । इस उपचार से भी यदि दाह शान्त न हो, तब जांगलमांस रसों से तृप्त करके सिरा वेध विधि के अनुसार शाखाश्रित (हाथ पैर को) रोहिणी सिरा (लोहित सिरा) का वेधन करे ॥६७–६९॥

पित्तज्वरसमः पित्तात् स चाप्यस्य विधिर्हितः ।

पित्त के कारण दाह पित्तज्वर के समान होता है, इसलिये पित्तज्वर के समान चिकित्सा करे ।

तृष्णानिरोधादब्धातौ क्षीणे तेजः समुद्धतम् ॥७०॥
सबाह्याभ्यन्तरं देहं दहेद्वै मन्दचेतसः ।
संशुष्कगलताल्वोष्ठो जिह्वां निष्कृष्य चेष्टते ॥७१॥

प्यास के रोकने से पानीयधातु के क्षीण होने पर अतिशय बढ़ा पित्त—मन्दचित्तवाले रोगी के शरीर को अन्दर और बाहर से जलाता है, रोगी की चेतना मन्द हो जाती है । रोगी का गला तालु और ओष्ठ सूख जाता है, जीभ बाहर निकल आती है ॥७०,७१॥

तत्रोपशमयेत्तेजस्त्वब्धातुं च विवर्धयेत् ।
पाययेत् काममम्भश्च शर्कराढ्यं पयोऽपि वा ॥७२॥
शीतमिक्षुरसं मन्थं वितरेच्चेरितं विधिम् ।

इस अवस्था में तेज को शान्त करे, और पानीयधातु को बढ़ाये । शर्करा बहुल पानी या दूध यथेच्छ पिलाये । शीतल इक्षुरस देवे, मन्थ देवे, पित्तनाशक उपचार करे ।

मन्थ—शक्तवः सर्पिषाऽभ्यक्ताः शीतवारिपरिप्लुताः ॥७२॥
असृजा पूर्णकोष्ठस्य दाहो भवति दुःसहः ॥७३॥
विधिः सद्योव्रणीयोक्तस्तस्य लक्षणमेव च ।

रक्त से कोष्ठ के भर जाने पर अति दुःखदायी दाह होता है, इसके लक्षण और चिकित्सा सद्योव्रण में कही विधि के अनुसार जाने ॥७३॥

धातुक्षयोक्तो यो दाहस्तेन मूर्च्छातृषान्वितः ॥७४॥
क्षामस्वरः क्रियाहीनो भृशं सीदति पीडितः ।
रक्तपित्तविधिस्तस्य हितः स्निग्धोऽनिलापहः ॥७५॥

रक्तक्षय के कारण जो दाह होता है, इससे मूर्च्छा, प्यास, क्षीणस्वर, चेष्टा हानि, होकर मनुष्य अतिशय शिथिल तथा दाह से दुःखी होता है । इसमें रक्तपित्त

नाशक, स्निग्ध एवं वातनाशक चिकित्सा हितकारी है ॥७५॥

क्षतजेनाश्नतश्चान्यः शोचतो वाऽप्यनेकधा ।
तेनान्तर्दह्यतेऽत्यर्थं तृष्णामूर्च्छाप्रलापवान् ॥७६॥
तमिष्टविषयोपेतं सुहृद्भिरभिसंवृतम् ।
क्षीरमांसरसाहारं विधिनोक्तेन साधयेत् ॥७७॥

रक्त के साथ भोजन करते हुए या अनेक प्रकार से शोक करते हुए भोजन करने से मनुष्य में दाह होता है। इससे मनुष्य में बहुत अधिक अन्तर्दाह होता है, रोगी को प्यास मूर्च्छा, प्रलाप होता है। इस में रोगी को अभिलषित विषयों से युक्त करे, मित्र उसे घेर कर रहें, दूध, मांसरस का भोजन देकर, दाहशान्तिकर विधि से शान्ति पहुँचाये ॥७६,७७॥

मर्माभिघातजोऽप्यस्ति स चासाध्यतमः स्मृतः ।

सद्यःप्राणहर या कालान्तर में प्राणहर मर्मों के आघात से भी दाह होता है, यह असाध्य कहा है।

सर्व एव च वर्ज्याः स्युः शीतगात्रेषु देहिषु ॥७८॥

शरीर के ठण्डा हो जाने पर सब दाह असाध्य हैं। मदिरा रोग से पीड़ित व्यक्ति ठण्डा होने पर असाध्य होता है ॥७८॥

एवंविधो भवेद्यस्तु मदिरामयपीडितः
प्रशान्तोपद्रवे चापि शोधनं प्राप्तमाचरेत् ॥७९॥

तृष्णा, दाह आदि उपद्रव शान्त हो जाने पर दोष के अनुसार विरोधि विरेचन रोगी को देवे ॥७९॥

सजीरकाण्यार्द्रकशृङ्गवेर-
सौवर्चलान्यर्धजलप्लुतानि ।
मद्यानि हृद्यान्यथ गन्धवन्ति
पीतानि सद्यः शमयन्ति तृष्णाम् ॥८०॥

जीरा, आर्द्रक, सोंठ, सौवर्चल, आधा पानी मिलाये, मन के प्रिय, सुगन्धित मद्य पीने पर तृष्णा को तुरन्त शान्त करते हैं॥

जलप्लुतश्चन्दनभूषिताङ्गः
स्रग्वी सभक्तां पिशितोपदंशाम् ।
पिबन् सुरां नैव लभेत रोगान्
मनोनुविघ्नं च मदं न याति ॥८१॥

जल से अंगों को गीला करके (स्नान करके) शरीर पर चन्दन का लेप लगाके, माला धारण करके, भोजन के साथ मांस को खाकर, सुरा का पान करने से पानजन्य रोग नहीं होते, एवं मन को हानि पहुँचानेवाला मेद भी नहीं होता।

आभिः क्रियाभिः सिद्धाभिः शमं याति मदात्ययः ।
न चेन्मद्यविधिं हित्वा क्षीरमस्य प्रयोजयेत् ॥
लंघनैः पाचनैर्दोषशोधनै शमनैरपि ।
विमद्यस्य कफे क्षीणे जाते दौर्बल्यलाघवे ॥
तस्य मद्यविदग्धस्य वातपित्ताधिकस्य वा ।
ग्रीष्मोपतप्तस्य तरोर्यथा वर्षं तथा पयः ॥
पयसाऽभिहते रोगे बले जाते निवर्तयेत् ।
क्षीरप्रयोगं मद्यं च क्रमेणाल्पाल्पमाचरेत् ॥
विधिना मात्रया काले हितैरन्नैः यथाबलम् ।
प्रहृष्टो यः पिबेन्मद्यं तस्य स्यादमृतं यथा ॥
चरक चि० अ० २४-१९५-९८ ॥८१॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे पानात्ययप्रतिषेधो नाम (नवमोऽध्यायः आदितः) सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४७॥

अष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

अथातस्तृष्णाप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे तृष्णा प्रतिषेध अध्याय का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

सततं यः पिबेद्वारि न तृप्तिमधिगच्छति ।
पुनः काङ्क्षति तोयं च तं तृष्णार्दितमादिशेत् ॥३॥

तृष्णा का स्वरूप—जो मनुष्य निरन्तर-लगातार पानी पीने पर भी तृप्ति अनुभव नहीं करता, फिर भी पानी की चाह करता है, उसे तृष्णा से पीड़ित जाने ॥३॥

संक्षोभशोकश्रममद्यपाना-
द्रूक्षाम्लशुष्कोष्णकटूपयोगात् ।
धातुक्षयाल्लङ्घनसूर्यतापात्
पित्तं च वातश्च भृशं प्रवृद्धौ ॥४॥
स्रोतांसि संदूषयतः समेतौ
यान्यम्बुवाहीनि शरीरिणां हि ।
स्रोतःस्वपां वाहिषु दूषितेषु
जायेत तृष्णाऽतिबला ततस्तु ॥५॥

अतिशय विक्षोभ, शोक, श्रम, मद्यपान, रूक्ष,अम्ल, शुष्क, उष्ण-कटुरस के सेवन से, धातुओं के क्षय से, लंघन से, सूर्य की गरमी से, पित्त और वायु अतिशय बढ़कर एक साथ मिलकर मनुष्यों के जलवाही स्रोतों को दूषित करते हैं। जलवाही स्रोतों के दूषित होने से अतिबलवान् तृष्णा उत्पन्न होती है।

पित्तानिलौ प्रवृद्धौ सौम्यान् धातूंश्च शोषयतः ।
रसवाहिनीश्च धमनीर्जिह्वामूलगलतालुकक्लोम्नः ॥
नाग्नि विना हि तर्षः पवनाद्वा तौ हि शोषणे हेतू ।
अब्धातोरतिवृद्धावपां क्षये तृष्यते नरो हि ॥
गुर्वन्नपयःस्नेहैः संमूर्च्छद्भिः विदाहकाले च ।
यस्तृष्येद् हृतमार्गे तत्राप्यनिलानलौ हेतू ॥ च० ॥४,५॥

तिस्रः स्मृतास्ताः क्षतजा चतुर्थी
क्षयात्तथाऽन्याऽऽमसमुद्भवा च ।
स्यात् सप्तमी भक्तनिमित्तजा तु
निबोध लिङ्गान्यनुपूर्वशस्तु ॥६॥

तृष्णा सात प्रकार की हैं, यथा--वात, पित्त, कफजन्य तीन व्रणनिमित्तजन्य, रसक्षयजन्य, आमसमुद्भवा (अजीर्णजा), और सातवीं स्निग्धादि भोजन निमित्तजा है। इनके लक्षणों को क्रमशः सुनो।

वक्तव्य—कफ के स्तिमित एवं जलीय धातु होने से तृष्णा होना सम्भव नहीं, तथापि बढ़ा हुआ कफ जब पित्त के साथ वायु को रोक लेता है, तब वायु पित्त से सुखाता हुआ कफ तृष्णा को उत्पन्न करता है ॥६॥

तात्वोष्ठकण्ठास्यविशोषदाहाः
संतापमोहभ्रमविप्रलापाः।
पूर्वाणि रूपाणि भवन्ति तासा-
मुत्पत्तिकालेषु विशेषतस्तु ॥७॥

पूर्वरूप—तालु ओठ-कण्ठ-मुख का सूखना, दाह, संताप, मोह, भ्रम, व्यर्थ की बकवाद, ये तृष्णाओं के पूर्वरूप हैं, तृष्णाओं के उत्पत्तिकाल में ये पूर्वरूप विशेषरूप में होते हैं।

प्रागरूपं मुखशोषः स्वलक्षणं सर्वदाऽम्बुकामित्वम्।
तृष्णानां सर्वासां लिङ्गानां लाघवमपायः।
मुखशोषस्वरभेदभ्रमसंतापप्रलापसंस्तम्भान् ॥
ताल्वोष्ठकण्ठजिह्वाकर्कशताचित्तनाशं च ॥
जिह्वानिर्गममरुचिं बाधिर्यं मर्मदूयनं सादम्।
तृष्णोद्भूता कुरुते पंचविधा लिंगतः शृणु ताः ॥७॥

शुष्कास्यता मारुतसंभवायां
तोदस्तथा शङ्खशिरःसु चापि।
स्रोतोनिरोधो विरसं च वक्त्रं
शीताभिरद्भिश्च विवृद्धिमेति ॥८॥

वातजन्यतृष्णा में मुख में शुष्कता, शिर और शंख प्रदेश में चुभने का सा दर्द, स्रोतों का अवरोध, मुख में विरसता, और शीतल जल से प्यास और भी बढ़ती है ॥८॥

मूर्च्छाप्रलापारुचिवक्त्रशोषाः
पीतेक्षणत्वं प्रततश्च दाहः।
शीताभिकाङ्क्षा मुखतिक्तता च
पित्तात्मिकायां परिधूपनं च ॥९॥

पित्तजन्यतृष्णा में मूर्च्छा, प्रलाप, अरुचि, मुखशोष, आंखों में पीलापन, निरन्तर दाह, शीत की चाह, मुख में तिक्तता, तथा धूमोद्गमन की भांति मुख से काली बाष्प बाहर आती हैं ॥

कफावृताभ्यामनिलानलाभ्यां
कफोऽपि शुष्कः प्रकरोति तृष्णाम्।
निद्रा गुरुत्वं मधुरास्यता च
तयाऽर्दितः शुष्यति चातिमात्रम् ॥१०॥

कफजन्य तृष्णा में कफ से पित्त और वायु का अवरोध हो जाने से शुष्क हुआ कफ भी तृष्णा को उत्पन्न करता है। इससे निद्रा, उदर में भारीपन, मुख में मधुरता होती है, प्यास से पीड़ित मनुष्य अतिमात्रा में सूख जाता है ॥१०॥

कण्ठोपलेपो मुखपिच्छिलत्वं
शीतज्वरश्छर्दिररोचकश्च।
कफात्मिकायां गुरुगात्रता च
शाखासु शोफस्त्वविपाक एव।
एतानि रूपाणि भवन्ति तस्यां
तयाऽर्दितः काङ्क्षति नाति चाम्भः ॥११॥

कण्ठ में मलवृद्धि, मुख में पिच्छिलता, शीतपूर्वकज्वर, वमन, अरोचक, हाथ-पैर-शिर में भारीपन, हाथ पैरों में सूजन, अविपाक, ये लक्षण इस कफजन्य तृष्णा से पीड़ित मनुष्य के होते हैं, वह जल की अधिक चाह नहीं करता ॥११॥

क्षतस्य रुक्शोणितनिर्गमाभ्यां
तृष्णा चतुर्थी क्षतजा मता तु।
तयाऽभिभूतस्य निशादिनानि
गच्छन्ति दुःखं पिबतोऽपि तोयम् ॥१२॥

व्रणवाले रोगी में वेदना के कारण तथा रक्त के निकल जाने से चौथी क्षतजन्य तृष्णा उत्पन्न होती है। इस तृष्णा से पीड़ित होने पर रोगी दिन रात में लगातार पानी पीता हुआ दुःख से समय काटता है ॥१२॥

रसक्षयाद्या क्षयजा मता सा
तयाऽर्दितः शुष्यति दह्यते च।
अत्यर्थमाकाङ्क्षति चापि तोयं
तां सन्निपातादिति केचिदाहुः ॥१३॥
रसक्षयोक्तानि च लक्षणानि
यस्यामशेषेण भिषग्व्यवस्येत्।

रस के क्षय से जो तृष्णा उत्पन्न होती है, उसे क्षयज तृष्णा कहते हैं। इस तृष्णा से पीड़ित मनुष्य सूखता जाता है, उसे जलन होती है, पानी की बहुत चाह करता है, इस तृष्णा में रसक्षय के सम्पूर्ण लक्षण (दोष धातु अध्याय सूत्र स्थान में कहे) वैद्य जाने ॥

देहो रसजोऽम्बुभवो रसश्च तस्य क्षयाच्च तृष्येत्तु। दीनस्वरः प्रताम्यन्संशुष्कहृदयगलतालुः। चरक ॥१३॥

त्रिदोषलिङ्गाऽऽमसमुद्भवा च
हृच्छूलनिष्ठीवनसादयुक्ता ॥१४॥

आमजनित तृष्णा में तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं, साथ में हृदय में दर्द, थूक का आना शिथिलता भी होती है। तृष्णा याऽऽमयमवा साऽप्याग्नेयाऽऽमपित्तजनितत्वात् लिंगं तस्याश्चा-रुचिराध्मानकफप्रसेकौ च ॥१४॥

स्निग्धं तथाऽम्लं लवणं च भुक्तं
गुर्वन्नमेवातितृषां करोति।

स्निग्ध, अम्ल और लवण भोजन और भारी भोजन अतिशय प्यास को उत्पन्न करता है।

वक्तव्य—चरक में—पांच प्रकार की तृष्णा मानी है, उनमें उपद्रवजनित एक तृष्णा मानी है, यथा—भवति खलु योपसर्गा तृष्णा सा शोषिणी कष्टा। ज्वरमेहक्षयशोषश्वासाद्युपसृष्टदेहानाम्॥

क्षीणं विचित्तं बधिरं तृषार्तं
विवर्जयेन्निर्गतजिह्वमाशु॥१५॥

क्षीण, नष्टमनवाले, बहरे, तृष्णा से जिसकी जिह्वा बाहर निकल आई हो, इस प्रकार के रोगी की चिकित्सा न करे। "सर्वास्त्वतिप्रसक्ता रोगकृशानां वमिप्रसक्तानाम्। घोरोपद्रवयुक्तास्तृष्णा मरणाय विज्ञेयाः॥ चरक॥१५॥

तृष्णाभिवृद्धावुदरे च पूर्णे
तं वामयेन्मागधिकोदकेन।
विलोभनं चात्र हितं विधेयं
स्याद्दाडिमाम्रातकमातुलुङ्गैः॥१६॥
तिस्रः प्रयोगैरिह सन्निवार्याः
शीतैश्च सम्यग्रसवीर्यजातैः।

तृष्णा के बढ़ा होने से, उदर के भरा होने पर पिप्पली मिश्रित जल से रोगी को वमन कराये। अनार, आम्रातक, बिजौरा इनको दूसरे व्यक्ति इसके सामने खायें, जिससे इसमें लालच उत्पन्न हो। सम्पूर्ण रस वीर्यवाले शीतल उपचारों से वात-पित्त-कफजन्य तीनों तृष्णायें निवारण करे।

"फलान्यम्लानि खादेयुस्तस्य चान्येऽग्रतो नराः।
निःसृतां तु तिलद्राक्षाकल्कलिप्तां प्रवेशयेत्[1]॥"

वि० मन्तव्य—विलोभनं-अनार आदि अम्लद्रव्यों में लोभ-लालसा होने से मुख में लालास्राव होने लगता है फलतः मुखशोष तथा तृषा का शमन हो जाता है॥१६॥

गण्डूषमम्लैर्विरसे च वक्त्रे
कुर्याच्छुभैरामलकस्य चूर्णैः॥१७॥

मुख की विरसता में मद्य, कांजी, बिजौर, आदि के अम्ल द्रव्यों से गण्डूष कराये। आंवले के चूर्ण से भी गण्डूष करायेआंवले का चूर्ण मले॥१७॥

सुवर्णरूप्यादिभिरग्नितप्तै-
र्लोष्टैः कृतं वा सिकतादिभिर्वा।
जलं सुखोष्णं शमयेत्तु तृष्णां
सशर्करं क्षौद्रयुतं हिमं वा॥१८॥

सुवर्ण, चाँदी, लोष्ट (मिट्टी का ढेला), सिकता (रेती) आदि को अग्नि में लाल गरम करके पानी में बुझाये। जब पानी गुनगुना हो जाये, तब तृष्णा रोगी पीये। अथवा शीतल जल में शर्करा या मधु मिलाकर पीये॥१८॥

पञ्चाङ्गिकाः पञ्चगणा य उक्ता-
स्तेष्वम्बु सिद्धं प्रथमे गणे वा।
पिबेत् सुखोष्णं मनुजोऽचिरेण
तृषो विमुच्येत हि वातजायाः॥१९॥

पांचद्रव्यवाले जो पञ्चमूल कहे हैं, उनमें या विदारिगन्धादि प्रथमगण में सिद्ध किया गुनगुना पानी पीये। इस प्रकार करने से वातजन्य तृष्णा शीघ्र नष्ट होती है॥१९॥

पित्तघ्नवर्गैस्तु कृतः कषायः
सशर्करः क्षौद्रयुतः सुशीतः।
पीतस्तृषां पित्तकृतां निहन्ति
क्षीरं शृतं वाऽप्यथ जीवनीयैः॥२०॥

उत्पलादि सारिवादि, काकोल्यादि पित्तनाशक गणों से बनाया कषाय शीतल करके मधु और शर्करा मिलाकर पीये। अथवा जीवनीयगण की औषधियोंसे सिद्ध किया दूध पित्तजन्य तृषा को शीघ्र नष्ट करता है॥२०॥

बिल्वाढकीकन्यकपञ्चमूली-
दर्भेषु सिद्धं कफजां निहन्ति।
हितं भवेच्छर्दनमेव चात्र
तप्तेन निम्बप्रसवोदकेन॥२१॥

बिल्व, अरहर, लघुपंचमूल और दाभ से सिद्ध पानी कफजन्य तृषा को नष्ट करता है। नीम पत्तों के उष्ण पानी से कफज तृषा में वमन कराना उत्तम है॥२१॥

सर्वासु तृष्णास्वथवाऽपि पैत्तं
कुर्याद्विधिं तेन हि ता न सन्ति।

सब प्रकार की तृष्णाओं में पित्तनाशक विधि (मधुर शीतादिभिः पान, लेपन) बरते, इस पैत्तिक विधि से ये तृष्णायें नष्ट हो जाती हैं।

पर्याणतोदुम्बरजो रसस्तु
सशर्करस्तत्क्वथितोदकं वा॥२२॥
वर्गस्य सिद्धस्य च सारिवादेः
पातव्यमम्भः शिशिरं तृषार्तैः।

पकी गूलर का स्वरस या पकी गूलर का क्वाथ इनमें शर्करा मिलाकर पीये। सारिवादि वर्ग के क्वाथ को शीतल करके प्यास की पीड़ा में पीना चाहिये॥२२॥

कशेरुशृङ्गाटकपद्ममोच-
बिसेक्षुसिद्धं क्षतजां निहन्ति॥२३॥

कसेरु, सिंघाड़ा, पद्म (कमल), केला, पद्ममूल, ईख से सिद्ध किया जल (इनका क्वाथ) क्षतज तृष्णा को नष्ट करता है।२३।

लाजोत्पलोशीरकुचन्दनानि
दत्त्वा प्रवाते निशि वासयेत्तु।
तदुत्तमं तोयमुदारगन्धि
सितायुतं क्षौद्रयुतं वदन्ति॥२४॥

---

[1] तंत्रान्तर में—"उल्लेखनं तु तृष्णासु क्षयादन्यत्र प्रयुज्यते॥" इसमें क्षीण धातु होने से वमन अनुचित है।

द्राक्षाप्रगाढं च हिताय वैद्य-

लाजा, कमल, खस, चन्दन, इनको पानीमें घोलकर खुली वायु में रात भर रक्खा रहने देवे। इसको प्रातः नितारकर इसमें उदार-गन्धा सुगन्धिपुष्पों से सुवासित करके, सिता (शर्करा) और मधु के साथ मिलाकर प्रचुर द्राक्षा घोलकर वैद्य तृष्णा से पीड़ित रोगी को देवे ॥२४॥

स्तृष्णार्दितेभ्यो वितरेन्नरेभ्यः।
ससारिवादौ तृणपञ्चमूले
तथोत्पलादौ प्रथमे गणे च ॥२५॥

पंचतृणमूल को सारिवादि गण के साथ, उत्पलादि गण को–विदारीगन्धादि गण के साथ पूर्वोक्त विधि से पानी में भिगोकर खुली वायु में रातभर रखकर प्रातः छानकर मधु-शर्करा मिलाकर प्रचुर द्राक्षा मिलाकर देवे ॥२५॥

कुर्यात् कषायं च यथेरितेन
मधूकपुष्पादिषु चापरेषु।
राजादनक्षीरकपीतनेषु
षट् पानकान्यत्र हितानि च स्युः॥२६॥

मधूकपुष्प आदि (महुआ, शोभांजन, कचनार, प्रियंगु के पुष्प), राजादन खिरनी), एवं क्षीरि-कपीतन (पारस पीपल) इन छैः द्रव्यों से पूर्वोक्त विधि के अनुसार रात में भिगोकर प्रातः नितारकर मधु शर्करा मिलाकर देना हितकारी है ॥२६॥

सतुण्डिकेराण्यथवा पिबेत्त
पिष्टानि कार्पाससमुद्भवानि।

तुण्डिकेरी (वन कपास) एवं ग्राम्यकपास के फलों को पीसकर पानी में घोलकर पीये।

क्षतोद्भवां रुग्विनिवारणेन
जयेद्रसानामसृजश्च पानैः ॥२७॥

क्षतजन्य तृष्णा को क्षतोद्भव वेदना को शांत करने से, मांस रसों के पान से, हरिण आदि के रक्त के पान से शान्त करे ॥

क्षयोत्थितां क्षीरघृतं निहन्यान-
मांसोदकं वा मधुकोदकं वा।

क्षयजन्य तृष्णा को दूध से निकाला घृत या दूध मिला घृत, मांस का सोरवा, मुलैहठी का पानी शान्त करता है।

आमोद्भवां बिल्ववचायुतैस्तु
जयेत् कषायैरथ दीपनीयैः ॥२८॥
आम्रातभल्लातवलायुतानि
पिबेत् कषायाण्यथ दीपनानि।

आमजन्य तृष्णा में पिप्पल्यादि द्रव्यों के साथ बिल्व और वचा मिलाकर क्वाथ करके पिलाये। अम्बाड़ा, भिलावा, बला-मिश्रित दीपनीय द्रव्यों का कषाय आमजन्यतृष्णा में पिलाये ॥

गुर्वन्नजातां वमनैर्जयेच्च
क्षयादृते सर्वकृतां च तृष्णाम् ॥२९॥

भारी अन्न के खाने से उत्पन्न तृष्णा को वमन से शान्त करे। आमजन्य तृष्णा में भी वमन कराये, क्षयजन्य तृष्णा में वमन न कराये। (क्षयादृते सर्वकृताश्च तृष्णाः—यह पाठ रुचिकर है) ॥२९॥

श्रमोद्भवां मांसरसो निहन्ति
गुडोदकं वाऽप्यथवाऽपि मन्थः।

थकान से उत्पन्न तृष्णा को मांस रस, या गुड़ का शर्बत अथवा घृतमिश्रित पानी में घुला सत्तू (मन्थ) नष्ट करता है (सक्तवः सर्पिषाऽभ्यक्ताः शीतवारिपरिप्लुताः)।

भक्तोपरोधात्तृषितो यवागू-
मुष्णां पिबेन्मन्थमथो हिमं च ॥३०॥

आहार निरोधजनित तृष्णा में उष्ण यवागू को पीये। अथवा पित्त प्रबल तृष्णा में शीतल मन्थ पीये ॥३०॥

या स्नेहपीतस्य भवेच्च तृष्णा
तत्रोष्णमम्भः प्रपिबेन्मनुष्यः।

स्नेहपान जनित तृष्णा में मनुष्य उष्ण पानी पीये।

"उदीर्णपित्ता ग्रहणी यस्य चाग्निबलं महत्।
भस्मीभवति तस्याशु स्नेहः पीतोऽग्नितेजसा॥
स जग्ध्वा स्नेहमात्रां तामोजः प्रक्षारयन् बली।
स्नेहाऽग्निरुत्तमां तृष्णां सोपसर्गामुदीरयेत्॥
नालं स्नेहसमृद्धस्य शमायान्नं सुगुर्वपि।
स चेत्सुशीतं सलिलं नासादयति दह्यते॥"

चरक सू० अ० १३-७०-७३॥

यहाँ पर शीतल जल के पान का विधान है। इसलिए गरम पानी को ठण्डा करके पीना उत्तम है। अथवा शुद्ध स्नेहपान में शीतल जल एवं भोजन के साथ अधिक स्नेहपान होने पर प्यास लगने से गरम पानी पीये।

मद्योद्भवामर्धजलं निहन्ति
मद्यं तृषां याऽपि च मद्यपस्य ॥३१॥

मद्यपी मनुष्य को मद्यजनित तृष्णाको आधा जल मिला मद्य नष्ट कर देता है ॥३१॥

उष्णोद्भवां हन्ति जलं सुशीतं
सशर्करं सेक्षुरसं तथाऽम्भः।

शर्करा मिश्रित शीतल जल, गन्ने का शीतल रस ये तृष्णा से उत्पन्न तृष्णा को (हृद्रोगसे कृश पुरुष में उपद्रवजनित तृष्णा को नष्ट करते हैं। तृष्णोद्भवां के स्थान पर उष्णोद्भवां पाठ भी ठीक है)।

स्वैः स्वैः कषायैर्वमनानि तासां
तथा ज्वरोक्तानि च पाचनानि ॥३२॥

वातादिजनित तृषाओं की शांति के लिये जो जो उनके अपने अपने कषाय कहे हैं, उन कषायों से उन दोषों में वमन कराये। ज्वर में कहे पाचन देवे ॥३२॥

लेपावगाहौ परिषेचनानि
कुर्यात्तथा शीतगृहाणि चापि।
संशोधनं क्षीररसौ घृतानि
सर्वासु लेहान्मधुरान् हिमांश्च ॥३३॥

लेप, अवगाहन, परिषेचन, शीतलघरों का सेवन, विरेचन, दूध, मांसरस, घृत, मधुर एवं शीतल लेह सब प्रकार की तृष्णाओं में बरते ॥३३॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे तृष्णाप्रतिषेधो नाम (दशमोऽध्यायः, आदितः) अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अथातश्छर्दिप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे छर्दिप्रतिषेध अध्याय का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

अतिद्रवैरतिस्निग्धैरहृद्यैर्लवणैरति।
अकाले चातिमात्रैश्च तथाऽसात्म्यैश्च भोजनैः ॥३॥
श्रमात् क्षयात्तथोद्वेगादजीर्णात् कृमिदोषतः।
नार्याश्चापन्नसत्त्वायास्तथाऽतिद्रुतमश्नतः ॥४॥
(अत्यन्तामपरीतस्य छर्देर्वै संभवो ध्रुवम्।)

अतिद्रव, अतिस्निग्ध, मन के अप्रिय, अतिनमकवाले भोजनों से, असमय में, मात्रा में बहुत अधिक एवं असात्म्य भोजनों से, श्रम से, क्षय से, बेचैनी से, अजीर्ण से, कृमिदोष से, गर्भवती स्त्री में, अतिशीघ्र खाने के कारण, अत्यर्थ आम से युक्त होने पर, निश्चित रूप में वमन उत्पन्न होती है ॥३-४॥

बीभत्सैर्हेतुभिश्चान्यैर्द्रुतमुत्क्लेशितो बलात् ॥५॥
छादयन्माननं वेगैरर्दयन्नङ्गभञ्जनैः।
निरुच्यते छर्दिरिति दोषो वक्त्राद्विनिस्सरन् ॥६॥

दूसरे बीभत्सोत्पादक कारणों से जल्दी, बलपूर्वक उत्क्लेशित होने से वमन आरम्भ होते हैं। मुख से निकलता हुआ दोष अंगों के टूटने के साथ वेगपूर्वक मुख में भरने से, छर्दि (वमन) कहा जाता है ॥५,६॥

दोषानुदीरयन् वृद्धानुदानो व्यानसङ्गतः।
ऊर्ध्वमागच्छति भृशं विरुद्धाहारसेवनात् ॥७॥

व्यान से मिली उदानवायु विरुद्ध अहार के सेवन करने से बढ़े हुए दोषों को बाहर की ओर प्रेरित करती हुई अतिशय वेग से ऊपर को आती है ॥७॥

प्रसेको हृदयोत्क्लेशो भक्तस्यानभिनन्दनम्।
पूर्वरूपं मतं छर्द्याः

वमन के पूर्वरूप—मुख से लालास्राव, हृदयप्रदेश (आमाशय) में बेचैनी, भोजन की अरुचि होती है।

यथास्वं च विभावयेत् ॥८॥

अपने अपने दोषों के अनुसार प्रव्यक्त पूर्वरूप को स्वरूपावस्था में पहचानना चाहिये ॥८॥

प्रच्छर्दयेत् फेनिलमल्पमल्पं
शूलार्दितोऽभ्यर्दितपार्श्वपृष्ठः।
श्रान्तः सघोषं बहुशः कषायं
जीर्णेऽधिकं साऽनिलजा वमिस्तु ॥९॥

पार्श्व एवं पीठ में पीड़ा अनुभव करता हुआ, शूल से पीड़ित मनुष्य झागदार, थोड़ा, शब्द के साथ बहुत बार वमन करता है। वमन करने से रोगी थक जाता है, वमन का रस कषाय तथा भोजन के जीर्ण होने पर वमन अधिक होती है, यह वमन वातजन्य है। (प्रायः प्रैक्रियेटिक व्रण में ऐसा होता है—वमन भोजन के जीर्ण होने पर होती है) ॥९॥

योऽम्लं भृशं वा कटुतिक्तवक्त्रः
पीतं सरक्तं हरितं वमेद्वा।
सदाहचोषज्वरवक्त्रशोषो
मूर्च्छान्वितः पित्तनिमित्तजा सा ॥१०॥

रोगी का मुख अति अम्ल, कटु या तिक्त हो, वमन पीला, रक्त मिश्रित या हरे रंग का हो, रोगी को दाह, चोष, ज्वर, मुख की शुष्कता रहती हो, मूर्छा आये, यह वमन पित्तजन्य होती है ॥१०॥

यो हृष्टरोमा मधुरं प्रभूतं
शुक्लं हिमं सान्द्रकफानुविद्धम्।
अभक्तरुग्गौरवसादयुक्तो
वमेद्वमी सा कफकोपजा स्यात् ॥११॥

जो रोगी रोमांच होकर मधुर, मात्रा में प्रचुर, श्वेत, शीतल, सान्द्र कफ से मिश्रित वमन करे, रोगी को भोजन में अरुचि, भारीपन शिथिलता हो, वह वमन कफकोपजन्य होती है ॥११॥

सर्वाणि रूपाणि भवन्ति यस्यां
सा सर्वदोषप्रभवा मता तु।

जिस वमन में सब दोषों के लक्षण होते हैं, वह वमन सन्निपातजन्य होती है।

बीभत्सजा दौर्हृदजाऽऽमजा च
सात्म्यप्रकोपात कृमिजा च या हि।
सा पञ्चमी तां च विभावयेत्तु
दोषोच्छ्रयेणैव यथोक्तमादौ ॥१२॥

बीभत्सजन्य, दौर्हृदजन्य (गर्भावस्थाजन्य), आमजन्य, सात्म्यप्रकोपजन्य और कृमिजन्य जो छर्दियां हैं, उनको पांचवीं

वमन जाने, इसको दोष की अधिकता से ही पहचानना चाहिये।

"द्विष्टप्रतीपा, शुचिपूत्यमेध्यबीभत्सगन्धाशनदर्शनैश्च। यश्छर्दयेत्तप्तमना मनोघ्नः द्विष्टार्थसंयोगभवा मता सा॥" चरक ॥१२॥

शूलहल्लासबहुला कृमिजा च विशेषतः।
कृमिहृद्रोगतुल्येन लक्षणेन च लक्षिता॥१३॥

कृमिजन्य छर्दि में शूल, जी मचलाना विशेषरूप में होता है, कृमिजन्य हृद्रोग के समान लक्षणों से युक्त होती है॥१३॥

क्षीणस्योपद्रवैर्युक्तां सासृक्पूयां सचन्द्रिकाम्।
छर्दिं प्रसक्तां कुशलो नारभेत चिकित्सितुम्॥१४॥

क्षीण व्यक्ति की, उपद्रवों से युक्त, रक्त एवं पूय मिश्रित, चन्द्रिका (मोरपंख की चांदनी) के समान रंगोंवाली, निरन्तर चालू रहनेवाली वमन की वैद्य चिकित्सा न करे।

क्षीणस्य या छर्दिरतिप्रसक्ता सोपद्रवा शोणितपूययुक्ता। सचन्द्रिकां तां प्रवदन्त्यसाध्यां साध्यां चिकित्सेदनुपद्रवां च॥ (चरक)। चरक में द्विष्टार्थजन्य छर्दि को पांचवीं माना है।१४।

आमाशयोत्क्लेशभवा हि सर्वा-
स्तस्माद्धितं लङ्घनमेव तासु॥१५॥

सब प्रकार की छर्दियां आमाशय के उत्क्लेश से उत्पन्न होती हैं, इसलिये इन सब में लंघन करना हितकारी है॥१५॥

वमीषु बहुदोषासु छर्दनं हितमुच्यते।
विरेचनं वा कुर्वीत यथादोषोच्छ्रयं भिषक्॥१६॥

बहुत दोषवाले वमनों में वमन कराना उत्तम है। अथवा दोष की अधिकता को देखकर वैद्य विरेचन देवे। (बहुत कफ में वमन, बहुत पित्त में विरेचन देवें)॥१६॥

संसर्गांश्चानुपूर्व्येण यथास्वं भेषजायुतान्।

वातादि दोषों से विरोधि औषधियों से युक्त पेयादि संसर्जन क्रम को वमन, विरेचन के पीछे बरते।

लघूनि परिशुष्काणि सात्म्यान्यन्नानि चाचरेत्॥१७॥

लघु, अतिशुष्क, सात्म्यभोजन खाने को देवे॥१७॥

यथास्वं च कषायाणि ज्वरघ्नानि प्रयोजयेत्।

दोषों के उनके अपने अनुसार ज्वरघ्न कषायों को बरते।

हन्यात् क्षीरघृतं पीतं छर्दिं पवनसंभवाम्॥१८॥
ससैन्धवं पिबेत् सर्पिर्वातच्छर्दिनिवारणम्।
मुद्गामलकयूषो वा ससर्पिष्कः ससैन्धवः।
यवागूं मधुमिश्रां वा पञ्चमूलीकृतां पिबेत्॥१९॥
पिबेद्वा व्यक्तसिन्धूत्थं फलाम्लं वैष्किरं रसम्।
सुखोष्णलवणं चात्र हितं स्नेहविरेचनम्॥२०॥

दूध को मथकर बनाया घृत या दूध के साथ दिया घृत वातजन्य छर्दि को नष्ट कर देता है। सैन्धव के साथ घी को पीये, इससे बात छर्दि नष्ट होती है। मूंग और आंवले का यूष घी और सैन्धव के साथ देवे। बृहत्पंचमूल से बनाई यवागू में मधु मिलाकर पीये। लाव आदि विष्किर प्राणियों के मांसरस में प्रचुर, नमक, अनारदाना मिलाकर पीये। उष्ण एवं लवण मिश्रित एरण्ड तैल आदि का स्नेह विरेचन वात छर्दि में प्रशस्त है। ('कोष्णं सलवणं चात्र हितं स्नेहविरेचनम्' अष्टांगहृदय)।

पित्तोपशमनीयानि पाक्यानि शिशिराणि च।
कषायाण्युपयुक्तानि घ्नन्ति पित्तकृतां वमीम्॥२१॥
शोधनं मधुरैश्चात्र द्राक्षारससमायुतैः।
बलवत्यां प्रशंसन्ति सर्पिस्तैल्वकमेव च॥२२॥

पित्तज्वरशामक कषाय, शीतकषाय सेवन करने पर पित्तजन्य वमन को शान्त कर देते हैं। मधुर शोधन द्रव्यों को द्राक्षारस में मिलाकर वमन विरेचन या केवल विरेचन रूपी शोधन देवे। बलवती छर्दि में तैल्वकघृतपान उत्तम है। (तैल्वकघृत वातव्याधि में कहा है)॥२१,२२॥

आरग्वधादिनिर्यूहं दशाङ्गयोगमेव वा।
पाययेताथ सक्षौद्रं कफजायां चिकित्सकः॥२३॥

कफजन्य छर्दि में आरग्वधादि गण का क्वाथ या दशांग योग को मधु के साथ पिलाये।

वक्तव्य—दशांग शब्द से कोई दशमूल लेते हैं। कोई कटुका चित्रण इत्यादि कफज्वरोक्त लेते हैं। दूसरे—"नागरं धान्यकं भार्गीमभयां सुरदारु च। वचां पर्पटकं मुस्तं भूतीकमथ कट्फलम्। विनिष्क्वाथ्य पिबेत्॥" इसका ग्रहण करते हैं॥

कृतं गुडूच्या विधिवत् कषायं हिमसंज्ञितम्।
तिसृष्वपि भवेत् पथ्यं माक्षिकेण समन्वितम्॥२४॥

गिलोय का शीतकषाय विधि से बनाया कषाय मधु के साथ वातादि तीनों प्रकार की वमन में प्रशस्त है।

विधि—"द्रव्यादापोथितात्तोये प्रतप्ते निशि संस्थितात्। कषायो योऽभिनिर्याति स शीतः समुदाहृतः॥ षड्भिः पलैः चतुर्भिर्वा सलिलाच्छीतफाण्टयोः। आप्लुतं भेषजपलं रसाख्यस्य पलद्वयम्" ॥२४॥

बीभत्सजां हृद्यतमैर्दौहृदीं काङ्क्षितैः फलैः।
लङ्घनैर्वमनैश्चामां सात्म्यैः सात्म्यप्रकोपजाम्॥२५॥
कृमिहृद्रोगवच्चापि कृमिजां साधयेद्वमीम्।

बीभत्सजन्य छर्दि को हृदय के लिये अति प्रिय फल देकर, दौहृदजन्य (गर्भावस्थाजन्य) वमन को इच्छित फलों को देकर, आमजन्य छर्दि को लंघन एवं वमन से, सात्म्य प्रकोपजन्य वमन को सात्म्य वस्तुओं से, कृमिजन्य छर्दि को कृमिजन्य हृद्रोग की भांति चिकित्सा करे॥२५॥

त्रितरेच्च यथादोषं शस्तं विधिमनन्तरम् ॥२६॥

वमन (तात्कालिक रूप में) बन्द हो जाने पर दोष के अनुसार चिकित्सा करना उत्तम है, (जिससे फिर वमन न हो)॥

दधित्थरससंसक्तां पिप्पलीं माक्षिकान्विताम् ।
मुहुर्मुहुर्नरो लीढ्वा छर्दिभ्यः प्रवि (ति) मुच्यते ॥२७॥
समाक्षिका मधुरसा पीता वा तण्डुलाम्बुना ।
तर्पणं वा मधुयुतं तिसृणामपि भेषजम् ॥२८॥
स्वयंगुप्तां सयष्टयाह्वां, तण्डुलाम्बुमधुद्रवाम् ।
पिबेद्यवागूमथवा सिद्धां पत्रैः करञ्जजैः ॥२९॥
युक्ताम्ललवणाः पिष्टाः कुस्तुम्बुर्योऽथवा हिताः ।
तण्डुलाम्बुयुतं खादेत् कपित्थं त्र्यूषणेन वा ॥३०॥
सितचन्दनमध्वाक्तं लिह्याद्वा मक्षिकाशकृत् ।
पिबेत् पयोऽग्नितप्तं च निर्वाप्य गृहगोधिकाम् ॥३१॥
सर्पिःक्षौद्रयुतान् वाऽपि लाजशक्तून् पिबेत्तया ।
सर्पिः क्षौद्रसितोपेतां मागधीं वा लिहेत्तथा ॥३२॥
धात्रीरसे चन्दनं वा घृष्टं मुद्गदलाम्बुना ।
कोलामलकमज्जानं लिह्याद्वा त्रिसुगन्धिकम् ॥३३॥
सक्षौद्रां शालिलाजानां यवागूं वा पिबेन्नरः ।
घ्रेयाण्युपहरेच्चापि मनोघ्राणसुखानि च ॥३४॥
जाङ्गलानि च मांसानि शुभानि पानकानि च ।
भोजनानि विचित्राणि कुर्यात्सर्वास्वतन्द्रितः ॥३५॥

कैथ के रस में पिप्पली मिलाकर मधु के साथ बार-बार चाटने से रोगी वमन से मुक्त हो जाता है। मूर्वा को मधु के साथ चावलों के पानी से पीने पर वमन शान्त होता है। लाजा सत्तू का तर्पण मधु के साथ देना वातादि तीनों छर्दियों में उत्तम है। कौंच, मुलैहठी, इनको चावल के धोवन में घोलकर मधु मिलाकर पीये। करंज के पत्तों से सिद्ध की हुई यवागू को पीये। उचित परिमाण में अनारदाना इमली अमचूर आदि अम्ल, लवण के साथ पीसा धनिया (धनिये की चटनी, पोदीना भी) उत्तम है। कैथ को चावलों के पानी से या त्रिकटु के साथ खाये। मक्खी की बिष्ठा को शर्करा, चन्दन और मधु के साथ चाटे। गृहगोधिका को आग में गरम करके पानी में डालकर, इस पानी को पीये। इसी प्रकार लाजा सत्तुओं को घी और मधु के साथ खाये। पिप्पली को घी, मधु, शर्करा के साथ चाटे। आंवले के रस में चन्दन को घिसकर मूँग की दाल के पानी से पीये (मूँग के ओसावण से पीये) बेर, आँवले की मज्जा को या त्वग् (दालचीनी, इलायची, तेजपात) इनको मधु के साथ चाटे। शालिधान्यों से बनाई लाजा की यवागू को पीये। मन और नासिका को सुख देनेवाली सुगन्धियों को सूँघे। जांगल, मांस, उत्तम पेय, विचित्र नाना प्रकार के भोजन सब प्रकार की छर्दियों में बिना आलस्य के बरते।

वक्तव्य—सन्निपातजन्य छर्दि में तीनों दोषों की कही चिकित्सा करे, यथा—"येषां पृथक्त्वेन मया क्रियोक्ता तां सन्निपातेषु च तीक्ष्णबुद्ध्या । रोगेषु दोषाग्निबलाद्यपेक्षया, कुर्याद् भिषक् शास्त्रविधौ विचक्षणः ॥ गृहगोधिकावरमठीकृतं मृन्मयं गृहमुच्यते ।" इससे बरौंठे कीड़े का मिट्टी का घर लेकर उसे आग में गरम करके पानी में बुझाकर पानी पीये। यथा चरक में—"मृद्भृद्दलोष्टप्रभवं वा" ॥२७-३५॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे छर्दिप्रतिषेधो नाम (एकादशोऽध्यायः, आदितः) एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अथातो हिक्काप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे हिक्का प्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

विदाहिगुरुविष्टम्भिरूक्षाभिष्यन्दिभोजनैः ।
शीतपानासनस्थानरजोधूमानिलानलैः ॥३॥
व्यायामकर्मभाराध्ववेगाघातापतर्पणैः ।
आमदोषाभिघातस्त्रीक्षयदोषप्रपीडनैः ॥४॥
विषमाशनाध्यशनैस्तथा समशनैरपि ।
हिक्का श्वासश्च कासश्च नृणां समुपजायते ॥५॥

विदाही, गुरु, विष्टम्भि, रूक्ष, अभिष्यन्दि भोजनों से शीतपेय, शीतआसन, शीतलस्थान, धूल, धूम, वायु और अग्नि से, व्यायाम, कार्य (परिश्रम कर्म), भार उठाना, मुसाफरी, मलमूत्रादि के वेगों को रोकने से, अपतर्पण से, आमदोष से, अभिघात से, स्त्री सेवन से, दोषों से पीड़ित होने से, विषमाशन से, अध्यशन से, और समशन से मनुष्यों में हिक्का, श्वास, कास उत्पन्न होते हैं।

वक्तव्य—आम-उष्मणोऽल्पबलत्वेन धातुमाद्यमपाचितम् । दुष्टमामाशयगतं रसमामं प्रचक्षते ॥ हिताहितोपसंयुक्तमन्नं समशनं स्मृतम् । बहुशस्तोकमकाले वा तज्ज्ञेयं विषमाशनम् । अजीर्णे भुज्यते त्रयमेतन्निहन्त्याशु यत्तु तदध्यशनमुच्यते । बहून्व्याधीन्करोति वा ॥
सु० सू०अ० ४६-५०८ ॥३-५॥

मुहुर्मुहुर्वायुरुदेति सस्वनो
यकृत्प्लिहान्त्राणि मुखादिवाक्षिपन् ।
स घोषवानाशु हिनस्त्यसून् यत-
स्ततस्तु हिक्केति भिषग्भिरुच्यते ॥६॥

शब्द के साथ उदानवायु बार-बार, यकृत्, प्लीहा, आँतों को मुख में लाकर बाहर फेंकती प्रतीत होती है, यह शब्दयुक्त

वायु क्योंकि प्राणों को नष्ट करती है, इसलिये वैद्य इसको हिक्का (हिक् इति कृत्वा कायति शब्दायते) कहते हैं।

वि० मन्तव्य—हिक्का–हिक्क अव्यक्ते शब्दे (भ्वादिगण-परस्मैपदी सेट्) धातु भी है, जिससे हिक्का शब्द निष्पन्न होता है और यहाँ पर हिक् हिंसायां (चु० आ० सेट्) से हिक्का शब्द बनाया गया है। हमारा विचार है कि हिक्क अव्यक्ते शब्दे—धातु से ही हिक्का शब्द की निष्पत्ति मानना उचित है, क्योंकि सभी हिक्का प्राणों का हिंसन नहीं करती हैं। हिक्का को हिचकी या हुचकी कहते हैं। इसमें "हिक्" ध्वनि निकलती है, अतः यह हिक्का कही जाती है ॥६॥

अन्नजां यमलां क्षुद्रां गम्भीरां महतीं तथा।
वायुः कफेनानुगतः पञ्च हिक्काः करोति हि ॥७॥

वायु कफ से मिलकर अन्नजा, यमला, क्षुद्रा, गम्भीरा और महती नाम की पाँच हिक्काओं को उत्पन्न करती है ॥७॥

मुखं कषायमरतिर्गौरवं कण्ठवक्षसोः।
पूर्वरूपाणि हिक्कानामाटोपो जठरस्य च ॥८॥

पूर्वरूप—मुख में कसैलापन, बेचैनी, गले और छाती में भारीपन, उदर में आध्मान ये हिक्का के पूर्वरूप हैं ॥८॥

त्वरमाणस्य चाहारं भुञ्जानस्याथवा घनम्।
वायुरन्नैरवस्तीर्णः कटुकैरर्दितो भृशम् ॥९॥
हिक्कयत्यूर्ध्वगो भूत्वा तां विद्यादन्नजां भिषक्।

आहार को जल्दी जल्दी खाते हुए अथवा भारी या सान्द्र अन्न को खाते हुए एवं कटु वस्तुओं से अतिशय पीड़ित हुई वायु अन्न से आवृत होकर ऊपर की ओर गति करके हिक्का उत्पन्न करती है, इस हिक्का को वैद्य 'अन्नजा' हिक्का जाने। (वायु समान एवं उदान) ॥९॥

चिरेण यमलैर्वेगैर्या हिक्का संप्रवर्तते ॥१०॥
कम्पयन्ती शिरोग्रीवं यमलां तां विनिर्दिशेत्।

जो हिक्का देर में यमल (एक साथ दो-युग्म रूप में) वेगों से प्रवृत्त होती है, उसे यमला हिक्का कहते हैं, इसमें शिर और ग्रीवा दोनों हिलते हैं। चरक—

व्यपेता जायते हिक्का याऽन्नपाने चतुर्विधे।
आहारपरिणामान्ते भूयश्च लभते बलम् ॥
प्रलापवम्यतीसारतृष्णार्त्तस्य विचेतसः।
जृम्भिणो विप्लुताक्षस्य शुष्कास्यस्य विनामिनः ॥
पर्य्याध्मातस्य हिक्का या जत्रुमूलादसन्तता।
सा व्यपेतेति विज्ञेया हिक्का प्राणोपरोधिनी ॥१०॥

विकृष्टकालैर्या वेगैर्मन्द्रैः समभिवर्तते ॥११॥
क्षुद्रिका नाम सा हिक्का जत्रुमूलात् प्रधाविता।

परिश्रम या मेहनत करने के समय मन्दवेग से जो हिक्का जत्रुमूल से उत्पन्न होती है, उसे क्षुद्रिका हिक्का कहते हैं।

क्षुद्रवातो यदा कोष्ठात् व्यायामपरिघट्टितः।
कण्ठे प्रपद्यते हिक्कां तदा क्षुद्रां करोति सः ॥
अतिदुःखा न सा नोरःशिरोमर्मप्रबाधिनी।
नचोच्छ्वासान्नपानानां मार्गमावृत्य तिष्ठति ॥
वृद्धिमायस्यतो याति भुक्तमात्रे च मार्दवम्।
यतः प्रवर्तते पूर्वं तत एव निवर्त्तते ॥
हृदयं क्लोम कण्ठं च तालुकं च समाश्रिता।
मृद्वी सा क्षुद्रहिक्केति नृणां साध्या प्रकीर्तिता ॥११॥

नाभिप्रवृत्ता या हिक्का घोरा गम्भीरनादिनी ॥१२॥
शुष्कौष्ठकण्ठजिह्वास्यश्वासपार्श्वरुजाकरी।
अनेकोपद्रवयुता गम्भीरा नाम सा स्मृता ॥१३॥

जो हिक्का नाभि से आरम्भ होने के कारण गम्भीर शब्द-वाली होती है वह कष्टसाध्य है। इस हिक्का में ओठ–कण्ठ–जिह्वा–मुख सूख जाते हैं, श्वास एवं पार्श्व शूल होता है। ज्वर, श्वास, तृष्णा आदि अनेक उपद्रव इसमें होते हैं, इसको गम्भीरा कहते हैं ॥१२,१३॥

मर्माण्यापीडयन्तीव सततं या प्रवर्तते।
देहमायम्य वेगेन घोषयत्यतितृष्यतः ॥
महाहिक्केति सा ज्ञेया सर्वगात्रप्रकम्पिनी ॥१४॥

बस्ति, हृदय, शिर मर्मों को या (नाभि हृदय और स्तन-मूल मर्मों को) पीड़ित करती हुई जो हिक्का निरन्तर प्रवृत्त होती है, शरीर को खींचकर वेग के साथ शब्द करती है, रोगी को बहुत प्यास रहती हो, इसे महा हिक्का कहते हैं, इसके वेग के समय रोगी का सारा शरीर हिल जाता है।

क्षीणमांसबलप्राणतेजसः सकफोऽनिलः।
गृहीत्वा सहसा कण्ठमुच्चैः घोषवतीं भृशम् ॥
करोति सततं हिक्कामेकद्वित्रिगुणां तथा।
प्राणः स्रोतांसि मर्माणि संरुध्योष्मामेव च ॥
संज्ञां मुष्णाति गात्रस्य स्तम्भं संजनयत्यपि।
मार्गं चैवान्नपानानां रुणद्धि अपहतस्मृतेः ॥
साश्रुविप्लुतनेत्रस्य स्तब्धशंखच्युतभ्रुवः।
सक्तजल्पप्रलापस्य निवृत्तिं नाधिगच्छतः ॥
महातेजा महावेगा महाशब्दा महाबला।
महाहिक्केति सा नृणां सद्यः प्राणहरा मता। चरक॥

वि० मन्तव्य—भगवान् पुनर्वसु के शब्दों में—प्राणोदकाऽन्नवाहीनि स्रोतांसि सकफोऽनिलः। हिक्काः करोति संरुध्य। च० चि० अ० १७, अर्थात्—प्राणवाही, जलवाही तथा अन्न-वाही स्रोतों में कफ के साथ अथवा कफ द्वारा रुककर वायु हिक्का रोग को उत्पन्न करता है। तात्पर्य यह है कि उक्त स्थानों में वायु कफ द्वारा रुक जाता है और जब कफ की रुकावट

को तोड़कर निकलता है तब हिक्का के रूप में निकलता है। अन्नजा हिक्का की प्रवृत्ति—अन्नवाही स्रोतस् अर्थात् आमाशय से होती है और आहार मार्ग में से होकर वायु बाहर आता है। यमला वह है जिसमें एक साथ दो हिक्का आती हैं, परन्तु इसमें व्यवधान काल अन्य हिक्काओं की अपेक्षा कुछ लम्बा होता है। इसे चरक में व्यपेता कहा गया है। व्यपेता अर्थात् विप्रकृष्टं कालं यावत् अपगत्य संशम्य इता प्राप्ता = जो कुछ ठहरकर आती है। और इसकी प्रवृत्ति भी अन्नवाही स्रोतस् से होती है। देखिये "व्यपेता प्राणोपरोधिनी" पाठ श्लोक० १० के नीचे। गम्भीरा—नाभि से-प्राणवाही स्रोतों से हृदय एवं फुप्फुसों में होकर श्वास मार्ग से आती है। इसी कारण इसमें श्वास एवं पार्श्वरुजा होती है। महाहिक्का—भीषण हिक्का होती है, निम्नलिखित चरकोक्त क्षीण....मता पाठ देखिये। इसकी प्रवृत्ति में नाभि, हृदय आदि मर्मों के साथ २ उदकवाही स्रोतों की विकृति भी कारण होती है। अतएव इसमें अतितृषा भी रहती है और अतएव चरक के शब्दों में यह हिक्का सद्य:प्राणहरा होती है ॥१४॥

आयम्यते हिक्कतोऽङ्गानि यस्य
　　दृष्टिश्चोर्ध्वं ताम्यते यस्य गाढम्।
क्षीणोऽन्नद्विट् कासते यश्च हिक्की
　　तौ द्वावन्त्यौ वर्जयेद्धिक्कमानौ ॥१५॥

हिचकी लेते हुए जिस पुरुष के अङ्ग तन जाते हैं (लम्बे हो हो जाते हैं), आंखें ऊपर को चढ़ जाती हैं, गहरा अन्धेरा सामने आ जाता है, क्षीण, अन्न से द्वेष करनेवाला, जिस हिक्का रोगी को खांसी होती हो, महाहिक्का और गम्भीरा हिक्कावाले, ये रोगी असाध्य हैं।

अतिसंचितदोषस्य भक्तच्छेदकृशस्य च।
व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्यातिव्यवायिनः॥
आसां या सा समुत्पन्ना हिक्का हन्त्याशु जीवितम्।
यमिका च प्रलापार्त्तितृष्णामोहसमन्विता॥
अक्षीणश्चाप्यदीनश्च स्थिरधात्विन्द्रियश्च यः।
तस्य साधयितुं शक्या यमिका हन्त्यतोऽन्यथा॥ चरक।

वि० मन्तव्य—गम्भीरा तथा महाहिक्का राजयक्ष्मा आदि अनेक रोगों में मृत्यु के समय उत्पन्न हो जाती हैं अथवा यों कहिये कि उन रोगों में जब उक्त हिक्का उत्पन्न हो जाती है तब सद्यः मृत्यु हो जाती है। सद्यः शब्द का प्रयोग सप्तरात्र—सप्ताह के लिये प्रयुक्त होता है, यथा—तत्र सद्यः प्राणहराणि सप्तरात्राभ्यन्तरात् मारयन्ति (सु० शा० अ० ६।२३) आयुर्वेदीय परिभाषामें सात दिनके भीतर मृत्यु होना सद्यः मृत्यु कहलाता है॥

प्राणायामोद्वेजनत्रासनानि
　　सूचीतोदैः संभ्रमश्चात्र शस्यः।

प्राणायाम (वायु का अवरोध), उद्वेजन, डराना, सुई चुभोकर मन को व्याकुल करना ये उपाय करे।

वक्तव्य—कुम्भक, पूरक, रेचक भेदों से कुम्भक प्राणायाम (वायु की ऊर्ध्वगति को रोकना) उत्तम है।

वि० मन्तव्य—सम्भ्रमः-अचम्भा, उद्वेजन-घबराहट उत्पन्न करना। देखा जाता है कि स्वस्थ की क्षुद्रा हिक्का इन उपायों से शान्त हो जाती है।

यष्ट्याह्वं वा माक्षिकेणावपीडे
　　पिप्पल्यो वा शर्कराचूर्णयुक्ताः॥१६॥

मुलैहठी को मधु के साथ या पिप्पली को शर्करा चूर्ण में मिलाकर अवपीड़न नस्य से देवे॥१६॥

सर्पिः कोष्णं क्षीरमिक्षो रसो वा
　　नाविक्षीणे छर्दनं शान्तिहेतोः।

गरम घी, दूध या ईख का रस पीना उत्तम है, रोगी बहुत क्षीण न हुआ हो तो वमन देना प्रशस्त है।

नारीपयःपिष्टमशुक्लचन्दनं
　　घृतं सुखोष्णं च ससैन्धवं तथा॥१७॥
चूर्णीकृतं सैन्धवमम्भसाऽथवा
　　निहन्ति हिक्कां च हितं च नस्यतः।

लालचन्दन को धावन में पीसकर नस्य देवे। सुहाते गरम घृत में सैन्धव मिलाकर नस्य देवे। सैन्धव को चूर्ण करके पानी मिलाकर नस्य देवे। इससे हिक्का रोग नष्ट होता है॥१७॥

युञ्ज्याद् धूमं शालनिर्यासजातं
　　नैपालं वा गोविषाणोद्भवं वा॥१८॥
सर्पिःस्निग्धैश्चर्मबालैः कृतं वा
　　हिक्कास्थाने स्वेदनं चापि कार्यम्।

राल का धुँवा, या मैनसिल का या गाय के सींग का अथवा गाय के चमड़े-बालों को घी से स्निग्ध करके, इनसे धुँवा देवे। हिक्का के स्थान कण्ठ और स्तनों के बीचमें स्वेदन करे। "मधूच्छिष्टं सर्जरसं घृतं मल्लकसंपुटे। कृत्वा धूमं पिबेच्छृङ्गं बालं वा स्नायु वा गवाम्॥" चरक॥१८॥

क्षौद्रोपेतं गैरिकं काञ्चनाह्वं
　　लिह्याद्भस्म ग्राम्यसत्त्वास्थिजं वा।१९।
तद्वच्छ्वाविन्मेषगोशल्य (ल्ल) कानां
　　रोमाण्यन्तर्धूमदग्धानि चात्र।
मध्वाज्याक्तं बर्हिपत्रप्रसूत-
　　मेवं भस्मौदुम्बरं तैल्वकं वा॥२०॥
स्वर्जिक्षारं बीजपूराद्रसेन
　　क्षौद्रोपेतं हन्ति लीढ्वाऽऽशु हिक्काम्।

स्वर्णगैरिक को मधु के साथ चाटे। ग्राम्य सत्त्व (गाय-बकरी आदि) की अस्थियों की भस्म को मधु के साथ चाटे। सेह, मेढा, गाय, शल्लक इनके रोगों को अन्तर्धूम विधि से जलाकर इनकी राख को मधु के साथ चाटे। मोर के पंखों

की भस्म को गूलर या तिल्वक (लोध) के छाल की भस्म को मधु और घी के साथ चाटे। स्वर्जिक क्षार को बिजौरे के रस और मधु के साथ चाटने से हिक्का तुरन्त शान्त होती है।

वक्तव्य—कफ से वायु का मार्ग अवरुद्ध होने से हिक्का होती है, इसलिये इन लेहों से मार्ग शोधन होता है। यथा—मारुतः प्राणवाहीनि स्रोतांसि आविश्य कुप्यति। उरःस्थकफमुद्धूय हिक्का श्वासान्करोति सः॥ प्राणोदकवाहीनि स्रोतांसि सकफोऽनिलः। हिक्कां करोति संरुध्य॥ चरक॥१८,२॥

सर्पिःस्निग्धा घ्नन्ति हिक्कां यवाग्वः
कोष्णग्रासाः पायसो वा सुखोष्णः॥२१॥

घी से स्निग्ध हुई यवागू हिक्का को नष्ट करती है, गरम कवल (गण्डूष) अथवा गरम खीर हिक्का को नष्ट करती हैं॥

शुण्ठीतोये साधितं क्षीरमाजं
तद्वत् पीतं शर्करासंयुतं वा।
आतृप्तेर्वा सेव्यमानं निहन्याद्
घ्रातं हिक्कामाशु मूत्रं त्वजाव्योः॥२२॥

सोंठ के क्वाथ में (दूध से चार गुणे) सिद्ध किया बकरी का दूध पीने पर हिक्का को नष्ट करता है। शर्करामिश्रित दूध तृप्ति पूर्वक (पेटभर कर) पीने से हिक्का को नष्ट करता हैं। बकरी या भेड़ का मूत्र नासा से सूंघने पर (नस्य लेने पर) हिक्का को नष्ट करता है॥२२॥

सपूतिकीटं लशुनोग्रगन्धा-
हिङ्ग्वब्जमाचूर्ण्य सुभावितं तत्।

पूतिकीट (तेलिया कीड़ा) को लहसुन, वच, हींग कमल के चूर्ण में मिलाकर बकरी या भेड़ के मूत्र में बहुत बार भावित करके सूंघने पर हिक्का को नष्ट करता है। (पूतिकीट-तेलियाकीड़ा-वर्षा में बहुत होता है)।

क्षौद्रं सितां वारणकेशरं च
पिबेद्रसेनेक्षुमधूकजेन॥२३॥

नागकेसर, मधु, शर्करा, इनको ईख के रस से तथा महुए के रस के साथ पीये।

वक्तव्य-षोडशाष्टचतुर्भागवातपित्तकफार्त्तिषु। क्षौद्रं कषाये दातव्यं विपरीता तु शर्करा॥ कर्षश्चूर्णस्य कल्कस्य गुटिकानां तु सर्वशः। द्रवशुक्त्याऽवलेढव्यः पातव्यश्च चतुर्गुणे॥२३॥

पिबेत् पलं वा लवणोत्तमस्य
द्वाभ्यां पलाभ्यां हविषः समग्रम्।

सैन्धव नमक एक पल को घी की दो पल मात्रा के साथ सम्पूर्ण रूप में पीये। (यह उत्तम मात्रा है, हीन, मध्यम रोगी के विचार से कम कर लेवे)।

हरीतकीं कोष्णजलानुपानां
पिबेद्घृतं क्षारमधूपपन्नम्॥२४॥
रसं कपित्थान्मधुपिप्पलीभ्यां
शुक्तिप्रमाणं प्रपिबेत् सुखाय॥२५॥

गरम जल के अनुपान से हरड़ का चूर्ण पीये। यवक्षार, मधु को गरम घी में मिलाकर पीये। कैथ के रस से मधु-पिप्पली को आधे पल की मात्रा में पीये। (मधु आधापल पिप्पली कर्षमात्र, कैथ के स्वरस से आरोग्य के लिये पीये। डल्हण ने क्षार के स्थान में क्षीर पढ़कर अर्थ किया है)॥२४,२५॥

कृष्णां सितां चामलकं च लीढं
सश्रृङ्गवेरं मधुनाऽथवाऽपि।
कोलास्थिमज्जाञ्जनलाजचूर्णं
हिक्कां विहन्यान्मधुनाऽवलीढम्॥२६॥

पिप्पली, शर्करा को मधु से चाटे, आंवला सोंठ और मधु को चाटे, यह दूसरा योग है। बेर की गुठली मज्जा, सौवीरांजन, लाजा-चूर्ण, इनको मधु से चाटे, इस से हिक्का नष्ट होती है॥

पाटलायाः फलं पुष्पं गैरिकं कटुरोहिणी।
खर्जूरमध्यं मागध्यं काशीसं दधिनाम च॥२७॥
चत्वार एते योगाः स्युः प्रतिपादप्रदर्शिताः।
मधुद्वितीयाः कर्तव्यास्ते हिक्कासु विजानता॥२८॥

चारयोग—(१) पाटला का फल और पुष्प, (२) गेरु और कुटकी, (३) खजूर की गुठली और पिप्पली, (४) कासीस और कैथ, ये चार योग प्रत्येक पाद में कहे हैं, इनको मधु के साथ मिलाकर चाटे, इनको हिक्का में बरतना चाहिये॥

कपोतपारावतलावशल्लक-
श्वदंष्ट्रगोधावृषदंशजान् रसान्।
पिबेत् फलाम्लाननहिमान् ससैन्धवान्
स्निग्धांस्तथैवर्ष्यमृगद्विजोद्भवान्॥२९॥

कबूतर, पारावत, बटेर, शल्लकी (सेह), श्वदंष्ट्र, गोधा, वृषदंश (बिल्ली) इनके तथा ऋष्य, मृग, पक्षी (जंघाला विष्किराः) इनके मांस रसों को अनार आदि अम्ल से खट्टा करके घृत से स्निग्ध करके, सैन्धव मिलाकर गरम-गरम पीये॥

विरेचनं पथ्यतमं ससैन्धवं
घृतं सुखोष्णं च सितोपलायुतम्।
सदागतावूर्ध्वगतेऽनुवासनं
वदन्ति केचिच्च हिताय हिक्किनाम्॥३०॥

सैन्धव मिश्रित विरेचन अतिशय पथ्य है, मिश्री मिला सुहाता गरम घृत पीना उत्तम है। कई आचार्य ऊर्ध्वगामि वायु के लिये हिक्का रोगियों को अनुवासन बस्ति देना हितकारी कहते हैं। (ये योग दोष की अधिकता देखकर बरतने चाहिये)॥३०॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सा तन्त्रे हिक्काप्रतिषेधो नाम (द्वादशोऽध्यायः, आदितः) पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अथातः श्वासप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे श्वास प्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

यैरेव कारणैर्हिक्का बहुभिः संप्रवर्तते ।
तैरेव कारणैः श्वासो घोरो भवति देहिनाम् ॥३॥

जिन विदाहि आदि बहुत से कारणों से हिक्का उत्पन्न होती है, उन्हीं कारणों से मनुष्यों में भयानक श्वास उत्पन्न होता है । इसी से कहा है—

कारणस्थानमूलैक्यादेकमेव चिकित्सितम् ।
द्वयोरपि यथा दृष्टं ऋषिभिः तन्निबोधत ॥ चरक ॥३॥

विहाय प्रकृतिं वायुः प्राणोऽथ कफसंयुतः ।
श्वासयत्यूर्ध्वगो भूत्वा तं श्वासं परिचक्षते ॥४॥

प्राणवायु अपनी प्रकृति को छोड़कर (ऊर्ध्वगामि बनकर) कफ के साथ मिलकर जब श्वास उत्पन्न करता है, तब इस अवस्था को श्वासरोग कहते हैं ।

यदा स्रोतांसि संरुध्य मारुतः कफपूर्वकः ।
विष्वग् व्रजति संरुद्धः तदा श्वासान् करोति सः ।

प्राणवायु कफ के साथ मिलता है, परन्तु अन्य दोष भी इसमें मिलते हैं, यथा—

"क्षुद्रको वातिकःश्लेष्मभूयिष्ठस्तमकःस्मृतः ।
छिन्नः पित्तप्रधानः स्यादन्यौ मारुतकोपजौ ॥"४॥

क्षुद्रकस्तमकश्छिन्नो महानूर्ध्वश्च पञ्चधा ।
भिद्यते स महाव्याधिः श्वास एको विशेषतः ॥५॥

क्षुद्रक, तमक, छिन्न, महान् , और ऊर्ध्वश्वास भेद से श्वास नामक एक महान् रोग पाँच प्रकार का है ॥५॥

प्राग्रूपं तस्य हृत्पीडा भक्तद्वेषोऽरतिः परा ।
आनाहः पार्श्वयोः शूलं वैरस्यं वदनस्य च ॥६॥

पूर्वरूप—हृदय में पीड़ा, भोजन में द्वेष, बहुत बेचैनी, आनाह, पार्श्वों में शूल, मुख में विरसता, ये पूर्वरूप हैं ॥६॥

किञ्चिदारभमाणस्य यस्य श्वासः प्रवर्तते ।
निषण्णस्यैति शांतिं च स क्षुद्र इति संज्ञितः ॥७॥

कुछ भी (थोड़ा सा भी थकान होने पर) काम करने से जिसको श्वास चढ़ने लगता है, और बैठ जाने से शान्त हो जाता है, उस श्वास को क्षुद्र श्वास कहते हैं ।

वक्तव्य—पहाड़ पर चढ़ने से या कईयों को सीढ़ी पर चढ़ने से जो हांपनी चढ़ती है, थोड़ी देर बैठने से शान्त हो जाती है, वह क्षुद्रश्वास है ॥७॥

तृट्स्वेदवमथुप्रायः कण्ठघुर्घुरिकान्वितः ।
विशेषाद् दुर्दिने ताम्येच्छ्वासः स तमको मतः ॥८॥
घोषेण महताऽऽविष्टः सकासः सकफो नरः ।
यः श्वसित्यबलोऽन्नद्विट् सुप्तस्तमकपीडितः ॥९॥
स शाम्यति कफे हीने स्वपतश्च विवर्धते ।
मूर्च्छाज्वराभिभूतस्य ज्ञेयः प्रतमकस्तु सः ॥१०॥

जिस श्वास में प्यास, स्वेद, वमन अधिकता से हो, गले में घर्घराहट हो, खासकर बादल के आने पर पीड़ा देवे, इस श्वास को तमक कहते हैं । तमक श्वास से पीड़ित, निर्बल, अन्न से द्वेष करनेवाला, सोते हुए बड़े भारी शब्द के साथ, कफयुक्त खांसता है, तथा कफ के कम होने पर जो शान्त हो जाता है, सोने पर बढ़ता है, रोगी मूर्च्छा, ज्वर से पीड़ित हो, उस श्वास को प्रतमक कहते हैं ॥

ज्वरमूर्च्छापरीतस्य विद्यात्प्रतमकं तु तत् ।
उदावर्त्तरजोऽजीर्णक्लिन्नकायनिरोधजः ॥
तमसा वर्धतेऽत्यर्थं शीतैश्चाशु प्रशाम्यति ।
मज्जतस्तमसीवाऽथ विद्यात्संतमकं तु तम् ॥८-१०॥

आध्मातो दह्यमानेन बस्तिना सरुजं नरः ।
सर्वप्राणेन विच्छिन्नं श्वस्याच्छिन्नं तमादिशेत् ॥११॥

आध्मानयुक्त, बस्ति (मूत्राशय में दाह, वेदना के साथ जो प्राणि सम्पूर्ण रूप में रुकता हुआ श्वास लेता है, उसे छिन्नश्वास कहते हैं ॥

वक्तव्य—इसमें रोगी का श्वास कुछ समय (मिनिटों) के लिये एकदम रुका प्रतीत होता है, फिर कुछ देर बाद आरम्भ हो जाता है । यथा—यस्तु श्वसिति विच्छिन्नं सर्वप्राणेन पीडितः । न वा श्वसिति दुःखार्त्तो मर्मच्छेदरुगर्दितः । आनाहस्वेदमूर्च्छार्त्तो दह्यमानेन बस्तिनः । विप्लुताक्षः परिक्षीणः श्वसन् रक्तैकलोचनः ॥ विचेताः परिशुष्कास्यो विवर्णः प्रलपन्नरः छिन्नश्वासेन विच्छिन्नः स शीघ्रं प्रजहात्यसून् ॥११॥

निःसंज्ञः पार्श्वशूलार्तः शुष्ककण्ठोऽतिघोषवान् ।
संरब्धनेत्रस्त्वायम्य यः श्वस्यात् स महान् स्मृतः ॥

चेतना रहित, पार्श्वशूल से पीड़ित, शुष्क कण्ठ युक्त, जोर के शब्द के साथ, शोथ युक्त आंखोंवाला, झुककर (दुहेरा होकर)—जिसमें श्वास लेता है, उसे महान् श्वास कहते हैं ।

वक्तव्य—जैसे गाड़ी के बैल जब भागकर आते हैं, उनका श्वास दूर से ही सुनाई देता है, उस प्रकार इस रोगी के श्वास का शब्द दूर से सुना जाता है,—

यथा—

उद्धूयमानवातो यः शब्दवत् दुःखितो नरः ।
उच्चैः श्वसिति संरुद्धो मत्तर्षभ इवानिशम् ॥
प्रनष्टज्ञानविज्ञानस्तथा विभ्रान्तलोचनः ।
विकृताक्ष्याननो बद्धमूत्रवर्चा विशीर्णवाक् ॥
दीनः प्रश्वसितं चास्य दूरात् विज्ञायते भृशम् ।
महाश्वासोपसृष्टः स क्षिप्रमेव विपद्यते ॥१२॥

मर्मस्वायम्यमानेषु श्वसन्मूढो मुहुश्च यः ।
ऊर्ध्वप्रेक्षी हतस्वस्तमूर्ध्वश्वासमादिशेत् ॥१३॥

जिसमें, हृदय, वस्ति, शिर इन मर्मों के खिंचने पर निश्चेष्ट बनकर जो मनुष्य बार-बार श्वास लेता है, ऊपर को देखता है, स्वर बैठ जाता है, उसे ऊर्ध्वश्वास कहते हैं। चरक चि० अ० १७—

दीर्घं श्वसिति यस्तूर्ध्वं न च प्रत्याहरत्यधः ।
श्लेष्मावृतमुखस्रोताः क्रुद्धगन्धवहार्दितः ॥
ऊर्ध्वदृष्टिर्विपश्यंश्च विभ्रान्ताक्ष इतस्ततः ।
प्रमुह्यन्वेदनार्त्तश्च शुष्कास्योऽरतिपीडितः ॥
ऊर्ध्वं श्वासे प्रकुपिते ह्यधः श्वासो निरुध्यते ।
मुह्यतः ताम्यतश्चोर्ध्वं श्वासस्तस्यै वहन्त्यसून् ॥१३॥

क्षुद्रः साध्यतमस्तेषां तमकः कृच्छ्र उच्यते ।
त्रयः श्वासा न सिध्यन्ति तमको दुर्बलस्य च ॥१४॥

इन श्वासों में क्षुद्र श्वास साध्य है, तमक श्वास कष्ट साध्य है। शेष तीन श्वास असाध्य हैं, दुर्बल व्यक्ति का तमक श्वास भी असाध्य होता है ॥१४॥

स्नेहबस्तिं विना केचिदूर्ध्वं चाधश्च शोधनम् ।
मृदु प्राणवतां श्रेष्ठं श्वासिनामादिशन्ति हि ॥१५॥

कई आचार्य स्नेहबस्ति के बिना बलवान् श्वास रोगियों को मृदु (पीड़ा न करनेवाला), वमन और विरेचन देना श्रेष्ठ बताते हैं ॥१५॥

श्वासे कासे च हिक्कायां हृद्रोगे चापि पूजितम् ।
घृतं पुराणं संसिद्धमभयाविडरामठैः ॥१६॥

श्वास, कास, हिक्का, हृदय रोग में-हरड़ विडनमक और हींग से सिद्ध दस साल पुराना घृत देना श्रेष्ठ है ॥१६॥

सौवर्चलाभयाबिल्वैः संस्कृतं वाऽनवं घृतम् ।
पिप्पल्यादिप्रतीवापं सिद्धं वा प्रथमे गणे ॥१७॥
सपञ्चलवणं सर्पिः श्वासकासौ व्यपोहति ।

सौवर्चल, हरड़, बिल्व इनसे संस्कृत पुरातन घृत देवे अथवा विदारिगन्धादिगण के क्वाथ में पिप्पल्यादिगण का प्रक्षेप देकर घृत सिद्ध करे। पाँचों नमक के प्रक्षेप के साथ घृत का उपयोग श्वास और कास को नष्ट करता है ॥१७॥

हिंस्राविडङ्गपूतीकत्रिफलाव्योषचित्रकैः ॥१८॥
द्विक्षीरं साधितं सर्पिश्चतुर्गुणजलाप्लुतम् ।
कोलमात्रैः पिबेत्तद्धि श्वासकासौ व्यपोहति ॥१९॥
अर्शांस्यरोचकं गुल्मं शकृद्भेदं क्षयं तथा ।
कृत्स्ने वृषकषाये वा पचेत् सर्पिश्चतुर्गुणे ॥२०॥
तन्मूलकुसुमावापं शीतं क्षौद्रेण योजयेत् ।

हिंस्रा (हिंटी), विडंग, करंज, त्रिफला, त्रिकटु, चित्रक, इनके कल्क से चौगुने जल में, एक प्रस्थ घी को दो प्रस्थ दूध के साथ सिद्ध करे। इसकी एक कर्ष मात्रा पीये, यह श्वास और कास को नष्ट करता है। अर्श, अरोचक, गुल्म, अतिसार और क्षय को नष्ट करता है। समूल पुष्प, शाखा के साथ अडूसे का कषाय चार प्रस्थ लेकर इसमें एक प्रस्थ घी को अडूसा के मूल और पुष्प का प्रक्षेप देकर सिद्ध करे। इस शीतल घृत को मधु के साथ मिलाकर खाये।

वि० मन्तव्य—सुश्रुत के पुराने टीकाकार श्रीजेजट जी का कथन है कि "कृत्स्ने वृषकषाये·······योजयेत्" पाठ यहाँ नहीं होना चाहिये क्योंकि अग्रिम श्लोक २१ में "वासाघृतं······ भवेत्" पाठ में वासा घृत का विधान किया गया है। और श्री डल्लनाचार्य श्लो० २६ की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि 'वासाघृतं षट्पलं च इत्यादि वासाघृतं कृत्स्ने विषे तत्कुसुमैः इत्यादिना रक्तपित्तोक्तं पित्तप्रधाने श्वासे हितं' (ड० टी०)। परन्तु वर्त्तमान सुश्रुत में 'कृत्स्ने' आदि पाठ रक्तपित्त प्रतिषेध में नहीं है अपितु शोष प्रतिषेध अ० १४ में है। अस्तु, हमारे विचार में यह कोई बड़ी समस्या नहीं है, क्योंकि एक स्थान पर योग एवं निर्माण विधि का उल्लेख और दूसरे स्थान पर केवल नामनिर्देश है। इन दोनों घृतों में भी एक में केवल कुसुमों का कल्क डालने का विधान है और दूसरे में मूल एवं कुसुमों का कल्क डालने का, अतः कोई दोष भी नहीं है॥

शृङ्गीमधूलिकाभार्गीशुण्ठीतार्क्ष्यसिताम्बुदैः ॥२१॥
सहरिद्रैः सयष्ट्याह्वैः समैरावाप्य योगतः ।
घृतप्रस्थं पचेद्धीमान् शीततोये चतुर्गुणे ॥२२॥
श्वासं कासं तथा हिक्कां सर्पिरेतन्नियच्छति ।

काकड़ाशृंगी, मधूलिका, भार्गी, सोंठ, रसौत, शर्करा, मुस्ता, हल्दी, मुलैहठी, प्रत्येक समान भाग लेकर इनके कल्क से चारप्रस्थ शीतल जल में-एक प्रस्थ घी बुद्धिमान् सिद्ध करे। यह घृत श्वास, कास, को नष्ट करता है। (योगतः—का अर्थ कल्क इस प्रमाण में मिलाये कि घृत कटु न हो, चतुर्थांश परिभाषा से नहीं) ॥२१,२२॥

सुवहा कालिका भार्गी शुकाख्या नैचुलं फलम् ॥२३॥
काकादनी शृङ्गवेरं वर्षाभूर्बृहतीद्वयम् ।
कोलमात्रैर्घृतप्रस्थं पचेदेभिर्जलद्विकम् ॥२४॥
चटूषणं पीतमेतद्धि श्वासामयविनाशनम् ।

सुवहा (निशोथ या गोधापदी), कालिका (काले

यक), भार्गी, शुकाख्या (शिरीष), जलवेतसफल, काकादनी (कौआठूँठी), सोंठ, पुनर्नवा, कटेरी, कटेरी बड़ी, प्रत्येक आधा कर्ष लेकर-इनसे एक प्रस्थ घृत, दो प्रस्थ जल में पकाये। यह कटु-उष्ण घृत पीने से श्वास रोग को नष्ट करता है ॥२३,२४॥

सौवर्चलयवक्षारकटुकाव्योषचित्रकैः ॥२५॥
वचाभयाविडङ्गैश्च साधितं श्वासशान्तये।
गोपवल्ल्युदके सिद्धं स्यादन्यद् द्विगुणे घृतम् ॥२६॥

सौवर्चल, यवक्षार, कुटकी, त्रिकटु, चित्रक, वच, हरड़, विडंग इनके कल्क से जल में सिद्ध किया घृत श्वास को नष्ट करता है। सारिवाक्वाथ, घी से दुगना लेकर, इसमें सिद्ध किया घृत श्वासनाशक है ॥२५,२६॥

पञ्चैतानि हवींष्याहुर्भिषजः श्वासकासयोः।

हिंस्रादि ये पांचों घृत वैद्य श्वास, कास में बरतने के लिये कहते हैं। (हिंस्रादि शृंग्यादि, सुवहादि, सौवर्चलादि, गोपवल्ली आदि)।

तालीशतामलक्युग्राजीवन्तीकुष्ठसैन्धवैः ॥२७॥
बिल्वपुष्करभूतीकसौवर्चलकणाग्निभिः।
पथ्यातेजोवतीयुक्तैः सर्पिर्जलचतुर्गुणम् ॥२८॥
हिङ्ग्वादयुतं सिद्धं सर्वश्वासहरं परम्।
वास।घृतं षट्पलं वा घृतं चात्र हितं भवेत् ॥२९॥

तालीश, भूँईआंवला, बच, जीवन्ती, कूठ, सैन्धव, बिल्व, पुष्करमूल, रोहिषघास, सौवर्चल, पिप्पली, चित्रक, हरड़, तेजबल इनके कल्क से एक द्रव्य की अपेक्षा हींग चतुर्थांश मिलाकर घी से चारगुणे जल में घृत सिद्ध करे। यह घी सब प्रकार के श्वासों को नाश करने में श्रेष्ठ है। वासाघृत (रक्तपित्तोक्त, पित्त श्वास में) षट्पलघृत (वातव्याधि में कहा वातप्रधान श्वास में) श्वासरोग में उत्तम है ॥२७-२९॥

तैलं दशगुणे सिद्धं भृङ्गराजरसे शुभे।
सेव्यमानं यथान्यायं श्वासकासौ व्यपोहति ॥३०॥

तैल से दसगुणे भांगरे के निर्मलस्वरस में सिद्ध किया तैल उचित विचारणा एवं अच्छपान विधि से सेवन करने पर श्वास कास को नष्ट करता है ॥३०॥

फलाम्ला विष्किररसाः स्निग्धाः प्रव्यक्तसैन्धवाः।
एणादीनां शिरोभिर्वा कौलत्था वा सुसंस्कृताः ॥३१॥
हन्युः श्वासं च कासं च संस्कृतानि पयांसि च।

बटेर आदि विष्किर प्राणियों के मांसरस में अनारदाना, बिजौरा आदि अम्ल, घी या तैल स्नेह और उत्कट सैन्धव मिलाकर देवे। हरिण आदि के शिरों से बनाये मांसरस अथवा कुलत्थी के भली प्रकार संस्कृत यूष श्वास और कास को नष्ट करते हैं, बृहत्पञ्चमूल आदि वातहर द्रव्यों से संस्कृत दूध श्वास, कास को नष्ट करते हैं ॥३१॥

तिमिरस्य च बीजानि कर्कटाख्या सुवर्चिका ॥३२॥
दुरालभाश्च पिप्पल्यः कटुकाख्या हरीतकी।
श्वाविन्मयूररोमाणि कोला मागधिकाकणाः ॥३३॥
भार्गीत्वक् शृङ्गबेरं च शर्करा शल्लकाङ्गजम्।
नृत्तकौण्डकबीजानि चूर्णितानि तु केवलम् ॥३४॥
पञ्च श्लोकाधिकास्त्वेते लेहा ये सम्यगीरिताः।
सर्पिर्मधुभ्यां ते लेह्याः कासश्वासार्दितैर्नरैः ॥३५॥

पांचलेह-(१) तिमिर (तिनिश) के बीज, कर्कटशृङ्गी, सज्जीखार, (२) धमासा, पिप्पली, कुटकी, हरड़, (३) सेह, मोर, इनके रोम, कोला (चव्य), पिप्पली, तण्डुल, (४) भार्गी की छाल, सोंठ, शर्करा, शल्लक की छाल, (५) नृत्तकौण्डक के बीज अकेले, इनका चूर्ण, ये पांच लेह आधे श्लोक में कहे हैं, इन लेहों को घी और मधु के साथ कास श्वास से पीड़ित मनुष्यों को चटाना चाहिये ॥३२ ३५॥

सप्तच्छदस्य पुष्पाणि पिप्पलीश्चापि मस्तुना।
पिबेत् संचूर्ण्य मधुना धानाश्चाप्यथ भक्षयेत् ॥३६॥

सप्तच्छद के पुष्प, पिप्पली इनका चूर्ण करके मस्तु के साथ पीये। धाना (भृष्ट जौ) को चूर्ण करके मधु के साथ खाये ॥३६॥

अर्काङ्कुरैर्भावितानां यवानां साध्वनेकशः।
तर्पणं वा पिबेदेषां सक्षौद्रं श्वासपीडितः ॥३७॥
शिरीषकदलीकुन्दपुष्पं मागधिकायुतम्।
तण्डुलाम्बुयुतं पीत्वा जयेच्छ्वासानशेषतः ॥३८॥

जौ को आक के पुष्प एवं कोमल पत्तों के क्वाथ से बहुत बार भावना देकर इन जौ का सत्तू बनावे। इस सत्तू को मधु के साथ श्वास से पीड़ित पीये। शिरीष के फूल, केले का फूल, कुन्द का फूल, पिप्पली, इनको चावल के धोवन के साथ पीने पर सम्पूर्ण प्रकार के श्वास नष्ट होते हैं। (कुन्द-निर्गन्ध श्वेतपुष्प) ॥३७,३८॥

कोलमज्जां तालमूलमृष्यचर्मससीमपि।
लिह्यात् क्षौद्रेण भार्गींञ्च सर्पिर्मधुसमायुताम् ॥३९॥
नीचैःकदम्बबीजं वा सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना।

बेर की मज्जा, मूसली, हरिण चर्म की राख, इनको मधु के साथ चाटे। अथवा भार्गी को घी और मधु के स थ चाटे। लघुकदम्ब के बीजों को मधु के साथ चावल के पानी के साथ पीये ॥३९॥

द्राक्षां हरीतकीं कृष्णां कर्कटाख्यां दुरालभाम् ॥४०॥
सर्पिर्मधुभ्यां विलिहन् हन्ति श्वासान् सुदारुणान्।

द्राक्षा, हरड़, पिप्पली, कर्कटशृंगी, धमासा, इनको घी और मधु के साथ चाटने पर भयानक श्वास भी नष्ट होते हैं ॥

हरिद्रां मरिचं द्राक्षां गुडं रास्नां कणां शटीम् ॥४१॥
लिह्यात्तैलेन तुल्यानि श्वासार्तो हितभोजनः।

हलदी, मरिच, द्राक्षा, गुड़, रास्ना, पिप्पली, कचूर, इनको

समान भाग में लेकर तैल से चाटे, हित भोजन करे ॥४१॥

गवां पुरीषस्वरसं मधुसर्पिःकणायुतम् ॥४२॥

लिह्याच्छ्वासेषुकासेषु वाजिनां वा शकृद्रसम्।

गाय के गोबर के स्वरस में घी, मधु, पिप्पली मिलाकर या घोड़े की लीद में घी मधु-पिप्पली मिलाकर श्वास और कास में चाटे ॥४२॥

पाण्डुरोगेषु शोथेषु ये योगाः संप्रकीर्तिताः ॥४३॥

श्वासकासापहास्तेऽपि कासघ्ना ये च कीर्तिताः।

पाण्डु रोगों में और शोथ में जो योग कहे हैं, तथा कास नाशक जो योग कहे हैं, वे सब श्वास, कास नाशक हैं ॥४३॥

भार्गीत्वक् त्र्यूषणं तैलं हरिद्रां कटुरोहिणीम् ॥४४॥

पिप्पलीं मरिचं चण्डां गोशकृद्रसमेव च।

भार्गी की छाल, त्रिकटु, तैल, हल्दी, कुटकी, पिप्पली, मरिच, चण्डा और गोबर का रस इनको चाटे ॥४४॥

तलकोटस्य बीजेषु पचेदुत्कारिकां शुभाम् ॥४५॥

सेव्यमाना निहन्त्येषा श्वासानाशु सुदुस्तरान्।

अंकोठ के बीजों से लप्सी बनाकर खाने पर भयंकर श्वास भी शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥४५॥

पुराणसर्पिः पिप्पल्यः कौलत्था जाङ्गला रसाः ॥४६॥

सुरा सौवीरकं हिङ्गु मातुलुङ्गरसो मधु।

द्राक्षामलकबिल्वानि शस्तानि श्वासिहिक्किनाम् ।४७।

पुरातन घृत, पिप्पली, कुलत्थी का यूष, जांगल मांस रस, सुरा, कांजी, हींग, बिजौरे का रस, मधु, द्राक्षा, आंवला, बिल्व ये श्वास और हिक्का रोगियों के लिये उत्तम हैं ॥४६,४७॥

श्वासहिक्कापरिगतं स्निग्धैः स्वेदैरुपाचरेत्।

आक्तं लवणतैलाभ्यां तैरस्य ग्रथितः कफः ॥४८॥

खस्थो विलयनं याति मारुतश्च प्रशाम्यति।

श्वास और हिक्का से पीड़ित रोगियों को स्नेहन देकर स्वेदन देवे। रोगी को सैन्धव मिश्रित तिल तैल से अभ्यंग करके स्वेदन देवे। इससे रोगी का स्रोतों में स्थित जमा कफ पिघलता है, और वायु शान्त होती है।

वि० मन्तव्य—तैल ८ तो० सैन्धव अथवा कोई भी लवण १ तो० एक साथ पीसकर वक्षस्, पार्श्व एवं पीठ पर अभ्यंग करे और द्रव स्वेद करे। इससे फुफ्फुसों एवं श्वासमार्ग में का कफ पिघलकर सुखसे निकलना प्रारम्भ हो जाता है और वायु-श्वासप्रश्वास की गति होने लगती है। तैल में १ तो० मोम भी पिघला लिया जाय तो उत्तम है ॥४८॥

स्विन्नं ज्ञात्वा ततश्चैव भोजयित्वा रसौदनम् ॥४९॥

वातश्लेष्मविबन्धे वा भिषग् धूमं प्रयोजयेत्।

मनःशिलादेवदारुहरिद्राच्छदनामिषैः ॥५०॥

लाक्षोरुबूकमूलैश्च कृत्वा वर्तीर्विधानतः।

स्वेदन देकर फिर मांसरस के साथ भात खिलावे। वायु कफ का अनुबन्ध होने पर वैद्य रोगी को धूँवा देवे। मैनसिल, देवदारु, हल्दी, तेजपत्र, गुग्गुल, लाख, एरण्डमूल, इनसे वर्ति बनाकर विधिपूर्वक धूम देवे ॥४९,५०॥

सर्पिर्यवमधूच्छिष्टशालनिर्यासजं तथा ॥५१॥

घी, जौ, मोम, राल इनसे धूम देवे ॥५१॥

शृङ्गबालखुरस्नायुत्वक् समस्तं गवामपि।

गाय के सींग-बाल-खुर-स्नायु खाल इन सबको धूम के लिये बरते।

तुरुष्कशल्लकीनां च गुग्गुलोः पद्मकस्य च ॥५२॥

तुरुष्क (सिह्लक), शल्लकी, गुग्गुलु और पद्माख इनका धुंवा देवे।

वि० मन्तव्य—उक्त धूमपान के पश्चात् घृत का पतला हलुवा खिलाना आवश्यक है ॥५२॥

एते सर्वे ससर्पिष्का धूमाः कार्या विजानता।

इन सब धूमों में घृत मिलाकर प्रयोग करना चाहिये। चरक में—

हिक्काश्वासार्दितं स्निग्धैरादौ स्वेदैरुपाचरेत्।
आक्तं लवणतैलेन नाडीप्रस्तरसंकरैः॥
तैरस्य ग्रथितः श्लेष्मा स्रोतःस्वभिविलीयते।
खानि मार्दवमायान्ति ततो वातानुलोमता॥
यथाद्रिकुञ्जेष्वर्कांशुतप्तं विष्यन्दते हिमम्।
श्लेष्मा तप्तः स्थिरो देहे स्वेदैः विष्यन्दते तथा॥
स्विन्नं ज्ञात्वा ततस्तूर्णं भोजयेत् स्निग्धमोदनम्।
मत्स्यानां शूकराणां वा रसैः दध्युत्तरेण वा॥
निर्हृते सुखमाप्नोति सकफे दुष्टविग्रहे।
स्रोतःसु च विशुद्धेषु चरत्यनिहतोऽनिलः॥
लीनश्चेद् दोषशेषः स्याद् धूमैस्तं निर्हरेद् बुधः।
हरिद्रायवमैरण्डमूलं लाक्षामनःशिलाम्॥
न स्वेद्याः पित्तदाहार्ता रक्तस्वेदातिवर्तिनः।
क्षीणधातुबला रूक्षा गर्भिण्यश्चापि पित्तलाः॥

बलीयसि कफग्रस्ते वमनं सविरेचनम् ॥५३॥

बलवान् एवं कफ से पीड़ित, रोगी को वमन और विरेचन देवें। ततः श्लेष्मणि संरुद्धे वमनं पाययेत्तु तम्॥ चरक॥

दुर्बले चैव रूक्षे च तर्पणं हितमुच्यते।

जाङ्गलोरभ्रजैर्मांसैरानूपैर्वा सुसंस्कृतैः ॥५४॥

दुर्बल एवं रूक्ष व्यक्ति का संतर्पण करना चाहिये। इसके लिये जांगल मांस, औरभ्र (मेंढे का मांस) मांस या आनूपमांस भलीप्रकार संस्कृत करके देवें ॥५४॥

निदिग्धिकां चामलकप्रमाणां
हिङ्गवर्धयुक्तां मधुना सुयुक्ताम्।

लिहन्नरः श्वासनिपीडितो हि
श्वासं जयत्येव बलात्त्र्यहेण ॥५५॥

कटेरी को पीसकर आंवले के बराबर (या एक कर्ष), हींग आंवले के परिमाण से आधी, इनको मधु के साथ चाटने पर श्वास पीड़ित रोगी तीन दिन में स्वस्थ हो जाता है ॥५५॥

यथाऽग्निरिद्धः पवनानुविद्धो
वज्रं यथा वा सुरराजमुक्तम् ।
रोगास्तथैते खलु दुर्निवाराः
श्वासश्च कासश्च विलम्बिका च ॥५६॥

वायु से बढ़ाई हुई प्रदीप्त अग्नि, इन्द्र के हाथ से छूटा हुआ वज्र, जिस प्रकार से दुर्निवार होता है, उसी प्रकार से श्वास, कास, और विलम्बिका रोगों से बचना कठिन है।

कामं प्राणहरा रोगा बहवो न तु ते तथा ।
यथा श्वासश्च हिक्का च प्राणानाशु निकृन्ततः ॥
अन्यैरप्युपसृष्टस्य रोगैर्जन्तोः पृथग्विधैः ।
अन्ते संजायते हिक्का श्वासो वा तीव्रवेदनः ॥ चरक ॥

चिकित्सा सूत्र—

यत्किञ्चित्कफवातघ्नमुष्णं वातानुलामनम् ।
भेषजं पानमन्नं वा तद्धितं श्वासहिक्किने ॥
वातकृद्वा कफहरं कफकृद्वाऽनिलापहम् ॥
कार्यं नैकान्तिकं ताभ्यां प्रायः श्रेयोऽनिलापहम् ॥
सर्वेषां बृंहणे ह्यल्पः शक्यश्च प्रायशो भवेत् ।
अवश्यं शमनोपायः भृशोऽशक्यश्च कर्शने ॥
चरक० चि० अ० १७। ४७॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतंन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे हिक्का-श्वासप्रतिषेधो नाम (त्रयोदशोऽध्यायः, आदितः) एकापञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अथातो कासप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे कासप्रतिषेध अध्याय का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

उक्ता ये हेतवो नृणां रोगयोः श्वासहिक्कयोः ।
कासस्यापि च विज्ञेयास्त एवोत्पत्तिहेतवः ॥३॥

श्वास और हिक्का इन दो रोगों के जो कारण कहे हैं, वे ही कारण कासरोग की उत्पत्ति के भी जानने चाहिये ॥३॥

धूमोपघाताद्रजसस्तथैव
व्यायामरूक्षान्ननिषेवणाच्च ।
विमार्गगत्वादपि भोजनस्य
वेगावरोधात् क्षवथोस्तथैव ॥४॥

प्राणो ह्युदानानुगतः प्रदुष्टः
संभिन्नकांस्यस्वनतुल्यघोषः ।
निरेति वक्त्रात् सहसा सदोषः
कासः स विद्वद्भिरुदाहृतस्तु ॥५॥

धूम की पीड़ा से, धूल से, व्यायाम, रूक्ष अन्न के सेवन, भोजन के विमार्ग (श्वासमार्ग) में जाने से, उपस्थित वेगों (जृम्भा आदि) के रोकने से, छींक के उपस्थित वेग को रोकने पर, प्राणवायु उदानवायु से मिलकर, कुपित बनकर, टूटे हुए कांसी के पात्र के समान आवाजवाली, सहसा (एकदम से) मुख से निकलता है, इस दुष्टि को वैद्य 'कास' (कसनात् कासः) कहते हैं।

अधःप्रतिहतो वायुरूर्ध्वस्रोतः समाश्रितः ।
उदानभावमापन्नः कण्ठे सक्तस्तथोरसि ॥
आविश्य शिरसः खानि सर्वाणि प्रतिपूरयन् ।
आभञ्जन्नाक्षिपन्देहं हनुमन्ये तथाऽक्षिणी ॥
नेत्रे पृष्ठमुरःपार्श्वे निर्भुज्य स्तम्भयंस्ततः ।
शुष्को वा सकफो वाऽपि कसनात् कास उच्यते ॥

वि० मन्तव्य—धूमोपघातात्—कण्ठ—श्वासमार्ग में धूम द्वारा उपघात विकृति हो जाने से, धूप में चले जाने से स्थायी अथवा तात्कालिक खाँसी हो जाती—आ जाती है। विमार्ग-गत्वात् अपि भोजनस्य—निगलते समय यदि आहार अन्नमार्ग में न जाकर श्वास मार्ग में चला जाता है, तब भी खांसी आ जाती है पाठक जानते हैं कि, कण्ठ में मुखकुहर के अन्तिम भाग में श्वास मार्ग एवं आहार मार्ग दोनों आगे पीछे विद्यमान हैं। प्राणो हि उदानानुगतः—प्राण वायु उदानवायु से अनुगत होकर-श्वास के रूप में परिवर्तित होकर, प्रदुष्टः—स्वयं दुष्ट तथा सदोषः अर्थात् पित्त एवं कफ से युक्त होकर सहसा—हठात्, मुख से बाहर निकलता है। सदोषः के स्थान में "सघोष" पाठान्तर है, इसका अर्थ है, घोष—ध्वनि के साथ। खाँसते समय एक विशिष्ट प्रकार का घोष होता है ॥४,५॥

स वातपित्तप्रभवः कफाच्च
क्षतात्तथाऽन्यः क्षयजोऽपरश्च ।
पञ्चप्रकारः कथितो भिषग्भि-
र्विवर्धितो यक्ष्मविकारकृत् स्यात् ॥६॥

यह कास वायु-पित्त कफ क्षय तथा क्षत (उरःक्षत) के कारण पाँच प्रकार का वैद्यों ने कहा है। बढ़ने पर कास यक्ष्मा रोग को उत्पन्न करता है ॥६॥

भविष्यतस्तस्य तु कण्ठकण्डू-
र्भोज्योपरोधो गलतालुलेपः ।
स्वशब्दवैषम्यमरोचकोऽग्नि-
सादश्च लिङ्गानि भवन्त्यमूनि ॥७॥

पूर्वरूप—कास के होने से पूर्व गले में कण्डू, ग्रास का गले

में रुकना (निगरण में काठिन्य), गले और तालु में मलवृद्धि प्राकृतिकशब्द (उच्चारण) में थोड़ी विषमता, अरोचक, अग्निमान्द्य ये लक्षण होते हैं।

पूर्वरूपं भवेत्तेषां शूकपूर्णगलास्यता।
कण्ठे गण्डूश्च भोज्यानामवरोधश्च जायते ॥ चरक ॥७॥

हृच्छङ्खमूर्धोदरपार्श्वशूली
क्षामाननः क्षीणबलस्वरौजाः।
प्रसक्तमन्तःकफमीरणेन
कासेत्तु शुष्कं स्वरभेदयुक्तः ॥८॥

वातजनितकास में रोगी के हृदय-शंख-शिर-उदर-पार्श्व में शूल रहता है, मुख क्षीण (कृश) हो जाता है, बल-स्वर और ओज घट जाता है, निरन्तर अन्दर में कफ रहता है, सूखी (कफ रहित) खाँसी निरन्तर आती है, रोगी को स्वरभेद रहता है, ये लक्षण वायु से होते हैं ॥८॥

उरोविदाहज्वरवक्त्रशोषै-
रभ्यर्दितस्तिक्तमुखस्तृषार्तः।
पित्तेन पीतानि वमेत् कटूनि
कासेत् स पाण्डुः परिदह्यमानः ॥९॥

पित्तजन्यकास में छाती में विदाह, ज्वर, मुख शोष से पीडित, मुख का स्वाद तिक्त, प्यास से पीडित, पित्त के कारण पीला-कटुरस का वमन, रोगी का शरीर पाण्डुवर्ण, तथा दाहयुक्त पित्तकास में होता है ॥९॥

प्र(वि)लिप्यमानेन मुखेन सीदन्
शिरोरुजार्तः कफपूर्णदेहः।
अभक्तरुग्गौरवसादयुक्तः
कासेत ना सान्द्रकफं कफेन ॥१०॥

कफ के कारण मुख के लिप्त रहने से शिथिल बना, शिरोवेदनायुक्त, कफ से शरीर भरा होता है, रोगी को भोजन में अरुचि, भारीपन, शिथिलता रहती है, कफ के कारण खाँसी में घट्ट कफ आता है ॥१०॥

वक्षोऽतिमात्रं विहतं तु यस्य
व्यायामभाराध्ययनाभिघातैः।
विश्लिष्टवक्षाः स नरः सरक्तं
ष्ठीवत्यभीक्ष्णं क्षतजं तमाहुः ॥११॥

स गात्रशूलज्वरदाहमोहान्
प्राणक्षयं चोपलभेत कासी।
(अतिव्यवायभाराध्वयुद्धाश्वगजविग्रहैः।
रूक्षस्योरःक्षतं वायुर्गृहीत्वा कासमावहेत् ॥
स पूर्वं कासते शुष्कं ततः ष्ठीवेत् सशोणितम्।
कण्ठेन रुजताऽत्यर्थं विभिन्नेनेव चोरसा ॥
सूचीभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना।
दुःखस्पर्शेन शूलेन भेदपीडाभितापिना।
पर्वभेदज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्यपीडितः।
पारावत इवाकूजन् कासवेगात् क्षतोद्भवात् ॥
विषमासात्म्यभोज्यातिव्यवायाद् वेगनिग्रहात् ॥
घृणिनां शोचतां नृणां व्यापन्नेऽग्नौ त्रयो मलाः।
कुपिता क्षयजं कासं कुर्युर्देहक्षयप्रदम् ॥)[1]

व्यायाम, भार, अध्ययन (पढ़ाना-पढ़ना-बोलना-व्याख्यान देना आदि) से या चोट लगने पर जिस पुरुष की छाती में विशेष पीड़ा होती है, वह मनुष्य वक्षस्थल में चोट लगनेसे बार बार रक्त मिश्रित थूकता है, इस अवस्था को क्षतजकास कहते हैं।

रूक्षस्योरःक्षतं वायुर्गृहीत्वा कासमावहेत्।
सपूर्वं कासते शुष्कं ततः ष्ठीवेत् सशोणितम् ॥
रुजमानेन कण्ठेन विरुग्णेनैव चोरसा।
सूचीभिरिव तीक्ष्णाभिः तुद्यमानेन शूलिना ॥
दुःखस्पर्शेन शूलेन भेदपीड़ाभितापिना।
पर्वभेदज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्यपीडितः ॥
पारावत इवाकूजन्कासवेगात्क्षतोद्भवात् ॥ चरक ॥११॥

शुष्यन् विनिष्ठीवति दुर्बलस्तु
प्रक्षीणमांसो रुधिरं सपूयम् ॥१२॥
ससर्वलिङ्गं भृशदुश्चिकित्स्यं
चिकित्सितज्ञाः क्षयजं वदन्ति।

क्षयजकास में रोगी की शरीर में दर्द, ज्वर, दाह, मूर्च्छा, एवं मृत्यु होती है। रोगी दिन प्रतिदिन दुर्बल बनता हुआ रुधिर और पूयमिश्रित थूकता है, मांस क्षीण हो जाता है। इसमें तीनों दोषों के लक्षण रहते हैं, यह अतिकष्टसाध्य है, वैद्य इसको क्षयजकास कहते हैं।

वक्तव्य—क्षयजकास के श्लेष्मा में तथा दूसरे कास के कफ में अन्तर रहता है, यथा-क्षयज कास का कफ, "दुर्गन्धं हरितं रक्तं ष्ठीवेत्पूयोपमं कफम्" ॥ दूसरी कास में कफ—"बहुलं मधुरं स्निग्धं निष्ठीवति घनं कफम्।" यह दोनों प्रकार के कास में कफ की भिन्नता रहती है। इसके सिवाय—

अकस्मादुष्णशीतार्त्तो बह्वाशी दुर्बलः कृशः।
स्निग्धाच्छमुखवर्णत्वक् श्रीमद्दर्शनलोचनः।
पाणिपादतलौ श्लक्ष्णौ सततासूयको घृणी।
ज्वरी मिश्राकृतिस्तस्य पार्श्वरुक् पीनसाऽरुचिः ॥
ये लक्षण चरक ने और भी स्पष्ट किये हैं ॥१२॥

वृद्धत्वमासाद्य भवेत्तु यो वै
याप्यं तमाहुर्भिषजस्तु कासम् ॥१३॥

बुढ़ापे में उत्पन्न हुआ जो भी कास होता है, उस कास को वैद्य याप्य कहते हैं ॥१३॥

शृङ्गीवचाकट्फलकत्तृणाब्द
धान्याभयाभार्ग्यमराह्वविश्वम्।
उष्णाम्बुना हिङ्गुयुतं तु पीत्वा
बद्धास्यमप्याशु जहाति कासम् ॥१४॥

---

१ यह हाराणचन्द्र ने अधिक पाठ दिया है।

सामान्यचिकित्सा—काकड़ाशृंगी, वच, कट्फल, कत्तृण (रोहिषघास), मोथा, धनिया, हरड़, भार्गी, देवदारु, सोंठ, और हींग इनको गरम पानी से पीये, इससे चिरकालानुबन्धि कास भी शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥१४॥

फलत्रिकव्योषविडङ्गशृङ्गी-
रास्नावचापद्मकदेवकाष्ठैः।
लेहः समैः क्षौद्रसिताघृताक्तः
कासं निहन्यादचिरादुदीर्णम् ॥१५॥

त्रिफला, त्रिकटु, वायविडंग, काकड़ाशृंगी, रास्ना, वच, पद्माख, देवदारु, प्रत्येक समान भाग लेकर इनको मधु, शर्करा और घी में लेह बनाकर खाये। इससे शीघ्र ही प्रबल कास भी नष्ट हो जाता है ॥१५॥

पथ्यां सितामामलकानि लाजां
समागधीं चापि विचूर्ण्य शुण्ठीम्।
सर्पिर्मधुभ्यां विलिहीत कासी
ससैन्धवां वोष्णजलेन कृष्णाम् ॥१६॥

हरड़, सिता, आँवला, लाजा, पिप्पली और सोंठ इनको मधु और घी के साथ कास रोगी चाटे। पिप्पली और सैन्धव को गरम जल से पीये। (कोई पिप्पली और सोंठ से दूसरा योग मानते हैं) ॥१६॥

खादेद् गुडं नागरपिप्पलीभ्यां
द्राक्षां च सर्पिर्मधुनाऽवलिह्यात्।
द्राक्षां सितां मागधिकां च तुल्यां
सशृङ्गवेरं मधुकं तुगां च ॥१७॥
लिह्याद् घृतक्षौद्रयुतां समांशां
सितोपलां वा मरिचांशयुक्ताम्।
धात्रीकणाविश्वसितोपलाश्च
संचूर्ण्य मण्डेन पिबेच्च दध्नः ॥१८॥

सोंठ और पिप्पली के साथ गुड़ खाये। घी और मधु के साथ द्राक्षा को चाटे। द्राक्षा, सिता (शर्करा) पिप्पली, सोंठ, मुलैठी, वंशलोचन इनको समान भाग लेकर घी और मधु के साथ चाटे। अथवा मिश्री को मरिच के साथ खाये। आँवला, पिप्पली, सोंठ, मिश्री, इनका चूर्ण करके दही के मण्ड (पानी) के साथ पीये। (द्राक्षा, सिता से एक योग, सोंठ-मुलैहठी का दूसरा योग-कई मानते हैं) ॥१७,१८॥

हरेणुकां मागधिकां च तुल्यां
दध्ना पिबेत् कासगदाभिभूतः।
उभे हरिद्रे सुरदारुशुण्ठीं
गायत्रिसारं च पिबेत् समांशम् ॥१९॥
बस्तस्य मूत्रेण सुखाम्बुना वा
दन्तीं द्रवन्तीं च सतिलवकाख्याम्।
भृष्टानि सर्पिष्यथ बादराणि
खादेत् पलाशानि ससैन्धवानि ॥२०॥

कासरोग से पीड़ित मनुष्य हरेणु, पिप्पली समान भाग लेकर दही के साथ पीये। हल्दी, दारुहल्दी, देवदारु, सोंठ, खैरसार (कत्था) इनको समान भाग लेकर बकरे के मूत्र या गरम पानी से पीये। दन्ती, द्रवन्ती (मोगलई एरण्ड), तिल्वक, बेरी के पत्र-इनको घी में भूनकर सैन्धव के साथ खाये। (दन्ती आदि सबके पत्ते लेने चाहिये–स्वर भेदमें उत्तम है) ॥१९,२०॥

कोलप्रमाणं प्रपिबेद्धि हिंगु
सौवीरकेणाम्लरसेन वाऽपि।

हींग को एक कर्ष मात्रा में प्रयोग ($\frac{1}{2}$ या $\frac{1}{4}$ कर्ष) कांजी के साथ या बिजौरे के रस से पीये।

क्षौद्रेण लिह्यान्मरिचानि वाऽपि
भार्गीवचाहिंगुकृता च वर्तिः ॥२१॥
धूमे प्रशस्ता घृतसंप्रयुक्ता
वेणुत्वगेलालवणैः कृता वा।

मरिच को मधु से चाटे। भार्गी, वच, हींग से बनाई वर्त्ति, या बाँस की छाल, इलायची, और नमक से बनाई वर्त्ति को घृत में मिलाकर धूम पीये, ये वर्त्तियाँ कास में उत्तम हैं ॥२१॥

मुस्तेङ्गुदीत्वङ्मधुकाह्वमांसी-
मनःशिलालैश्छगलाम्बुपिष्टैः ॥२२॥
विधाय वर्तीश्च पयोऽनुपानं
धूमं पिबेद्वातबलासकासी।

वात-कफ कासी रोगी—मुस्ता, हिंगोट की छाल, मुलैहठी जटामांसी, मैनशिल, हरिताल इनको बकरी के मूत्र में पीसकर वर्ति बनाये। इसका धूम पीकर पीछे से दूध को पीये ॥२२॥

पिबेच्च सीधुं मरिचान्वितं वा
तेनाशु कासं जयति प्रसह्य ॥२३॥

मरिच के साथ सीधु को पीये - इससे कास हठ पूर्वक (अवश्य) नष्ट होता है ॥२३॥

द्राक्षाम्बुमञ्जिष्ठपुराह्वयाभिः
क्षीरं शृतं माक्षिकसंप्रयुक्तम्।

द्राक्षा, मोथा, मजीठ, गुग्गुल से सिद्ध किये दूध में मधु मिलाकर पीये।

निदिग्धिकानागरपिप्पलीभिः
खादेच्च मुद्गान्मधुना सुसिद्धान् ॥२४॥

कटेरी, सोंठ, पिप्पली से सिद्ध किये मूंग को मधु के साथ खाये। यथा—

"क्षुद्रामृतानागरपिप्पलीभिः
खादेच्च मुद्गानथ साधुसिद्धान्" ॥२४॥

उत्कारिकां सर्पिषि नागराढ्यां
पक्त्वा समूलैस्त्रुटिकोलपत्रैः।
एभिर्निषेवेत कृतां च पेयां
तन्वीं सुशीतां मधुना विमिश्राम् ॥२५॥

इलायची, बेर के पत्ते और प्रचुर सोंठ के साथ घी में उत्कारिका (लप्सी) बनाकर खाये। इलायची, बेर के पत्ते,

सोंठ, इनसे पतली (थोड़ी माँड़ की) पेया बनाकर शीतल करके, मधु मिलाकर खाये ॥२५॥

यत् प्लीह्नि सर्पिर्विहितं षडङ्गं
तद्वातकासं जयति प्रसह्य ।
विदारिगन्धादिकृतं घृतं वा
रसेन वा वासकजेन पक्वम् ॥२६॥

प्लीहा में जो षट्फल घृत कहा है, यह घृत वातजन्य कास को शीघ्र अच्छा करता है। विदारिगन्धादिगण से पकाया अथवा वासास्वरस से पकाया घृत वात कास को नष्ट करता है॥

विरेचनं स्नैहिकमत्र चोक्त-
मास्थापनं चाप्यनुवासनं च ।
धूमं पिबेद् स्नैहिकमप्रमत्तः
पिबेत् सुखोष्णं घृतमेव चात्र ॥२७॥
हिता यवाग्वश्च रसेषु सिद्धाः
पयांसि लेहाः सघृतास्तथैव ।

वात कास में एरण्डतैल आदि का स्निग्ध विरेचन देवे, आस्थापन, अनुवासन, देवे। बिना आलस्य के स्नैहिक धूम पीये। सुहाता हुआ घृत पीये। मांसरसों में बनाई यवागू, वातहर द्रव्यों से सिद्ध दूध, घृत युक्त लेह प्रशस्त हैं ॥२७॥

प्रच्छर्दनं कायशिरोविरेका-
स्तथैव धूमाः कवलग्रहाश्च ॥२८॥
उष्णाश्च लेहाः कटुका निहन्युः
कफं विशेषेण विशोषणं च ।
कटुत्रिकं चापि वदन्ति पथ्यं
घृतं कृमिघ्नस्वरसे विपक्वम् ॥२९॥
निर्गुण्डिपत्रस्वरसे च पक्वं
सर्पिः कफोत्थं विनिहन्ति कासम् ।
पाठाविडव्योषविडङ्गसिन्धु-
त्रिकण्टरास्नाहुतभुग्बलाभिः ॥३०॥
शृङ्गीवचाम्भोधरदेवदारु-
दुरालभाभार्ग्यभयाशटीभिः ।
सम्यग्विपक्वं द्विगुणेन सर्पि-
र्निदिग्धिकायाः स्वरसेन चैतत् ॥३१॥
श्वासाग्निसादस्वरभेदभिन्ना-
न्निहन्त्युदीर्णानपि पञ्च कासान् ।

वमन, विरेचन, शिरोविरेचन, धूमपान, कवलग्रह, उष्ण एवं कटु द्रव्यों से (कफहर कटु द्रव्यों से) बने अवलेह, विशोषण (लघु, रूक्ष, अल्पभोजन)–ये विशेषतः कफ कास को नष्ट करते हैं। त्रिकटु भी पथ्य है, वायविडंग के स्वरस में (अभाव में वायविडंग के क्वाथ में) पकाया घृत, सम्भालु के पत्तों के स्वरस में पकाया घृत कफजन्य कास को शीघ्र नष्ट करता है। पाठा, विडनमक, त्रिकटु, विडंग, सैन्धव, गोखरु, रास्ना, चित्रक, बला, काकड़ाशृंगी, वच, मोथा, देवदारु, दुरालभा, भार्गी, हरड़, कचूर, इनके कल्क से घृत से द्विगुण कटेरी के स्वरस में घृत सिद्ध करे। यह घृत श्वास, अग्निमान्द्य, स्वरभेद तथा पाँचों कासों को नष्ट करता है।

वक्तव्य—विशोधन—'चतुःप्रकारा संशुद्धिः पिपासा मारुतातपौ। पाचनान्युपवासश्च व्यायामश्चेति लंघनम् ॥" चरक। नाना प्रकार का लंघन भी कफ को कम करता है ॥२८-३१॥

विदारिगन्धोत्पलसारिवादीन्
निष्क्वाथ्य वर्गं मधुरं च कृत्स्नम् ॥३२॥
घृतं पचेदिक्षुरसाम्बुदुग्धैः
काकोलिवर्गे च सशर्करं तत् ।
प्रातः पिबेत् पित्तकृते च कासे
रतिप्रसूते क्षतजे तु कासे ॥३३॥

विदारीगन्धादि, उत्पलादि, सारिवादि, और काकोल्यादि सम्पूर्ण मधुरगण इनके क्वाथ में गन्ना के रस, जल और दूध में काकोल्यादि गण का कल्क मिलाकर घृत सिद्ध करे। इस घृत में शर्करा मिलाकर पित्तजन्य कास में प्रातः पीये। क्षयजन्य कास में भी पीये।

वक्तव्य—द्रव परिमाण स्नेह के समान लेना है, यथा—पञ्चप्रभृति यत्र स्युः द्रवाणि स्नेहसंविधौ। तत्र स्नेहसमान्याहुरर्वाक् तु स्याच्चतुर्गुणम्॥ ३२,३३॥

खर्जूरभार्गीमगधाप्रियाल-
मधूलिकैलामलकैः समांशैः ।
चूर्णं सिताक्षौद्रघृतप्रगाढं
त्रीन् हन्ति कासानुपयुज्यमानम् ॥३४॥

खर्जूर, भार्गी, पिप्पली, पियाल, मधूलिका, इलायची, आँवला प्रत्येक समान भाग लेकर इनका चूर्ण करे। इसमें शर्करा, मधु घृत प्रचुर मात्रा में मिलाकर चाटे। इसके सेवन से तीनों कास नष्ट होते हैं ॥३४॥

रक्ताहरिद्राञ्जनवह्निपाठा-
मूर्वोपकुल्या विलिहेत् समांशाः ।
क्षौद्रेण कासे क्षतजे क्षयोत्थे
पिबेद् घृतं चेक्षुरसे विपक्वम् ॥३५॥

मजीठ, हल्दी, सौवीरांजन, चित्रक, पाठा, मूर्वा, पिप्पली समान भाग लेकर मधु के साथ क्षतजन्य एवं क्षयजन्य कास में चाटे। अथवा ईख के रस में पकाया घृत पीये ॥३५॥

चूर्णं पिबेदामलकस्य वाऽपि
क्षीरेण पक्वं सघृतं हिताशी ।

आँवले के चूर्ण को घृत के साथ पकाकर, हित भोजन करते हुए दूध से पीये।

चूर्णानि गोधूमयवोद्भवानि
काकोलिवर्गश्च कृतः सुसूक्ष्मः ॥३६॥
कासेषु पेयस्त्रिषु कासवद्भिः
क्षीरेण सक्षौद्रघृतेन वाऽपि ।

गेहूँ जौ और काकोल्यादिगण का सूक्ष्म चूर्ण बनाकर दूध से या मधु और घृत के साथ तीनों प्रकार के कासों में पीना चाहिये। (कोई गेहूँ आदि तीन द्रव्यों को दूध आदि तीन अनुपानों से तीनों कासों में देना कहते हैं) ॥३६॥

गुडोदकं वा क्वथितं पिबेद्धि
क्षौद्रेण शीतं मरिचोपदंशम् ॥३७॥

गुड़ का शीतकषाय विधि से क्वाथ करके फिर कुछ गरम करके ठंडा करके मधु मिलाकर मरिच का चूर्ण खाकर इसको पीये ॥३७॥

प्रस्थत्रयेणामलकीरसस्य
शुद्धस्य दत्त्वाऽर्धतुलां गुडस्य।
चूर्णीकृतैर्ग्रन्थिकचव्यजीर-
व्योषेभकृष्णाहपुषाजमोदैः ॥३८॥
विडङ्गसिन्धुत्रिफलायवानी-
पाठाग्निधान्यैश्च पिचुप्रमाणैः।
दत्त्वा त्रिवृच्चूर्णपलानि चाष्टा-
वष्टौ च तैलस्य पचेद्यथावत् ॥३९॥
तं भक्षयेदक्षफलप्रमाणं
यथेष्टचेष्टस्त्रिसुगन्धियुक्तम्।
अनेन सर्वे ग्रहणीविकाराः
सश्वासकासस्वरभेदशोथाः ॥४०॥
शाम्यन्ति चायं चिरमन्तरग्ने-
र्हतस्य पुंस्त्वस्य च वृद्धिहेतुः।
स्त्रीणां च वन्ध्यामयनाशनः स्यात्
कल्याणको नाम गुडः प्रतीतः ॥४१॥

आंवले का स्वरस तीन प्रस्थ, इसमें शुद्ध गुड़ पचास पल मिलाये। इसमें पिप्पलीमूल, चव्य, जीरा, त्रिकटु, गजपिप्पली, हाऊबेर, अजमोद, विडङ्ग, त्रिफला, अजवायन, पाठा, चित्रक, धनियाँ, प्रत्येक एककर्ष, निशोथचूर्ण आठ पल, और तैल आठ पल–मिलाकर यथावत् विधि से पाक करे। इसमें से एक कर्ष मात्रा को दालचीनी, इलायची, तेजपात, इन सुगन्धित द्रव्यों को मिलाकर खाये। इसमें किसी प्रकार परहेज नहीं। इससे सब ग्रहणी रोग, श्वास, कास, स्वरभेद, शोथ शान्त हो जाते हैं, यह चिरकाल से नष्ट हुए अग्नि को बढ़ाता है तथा मैथुनशक्ति को बढ़ाता है। स्त्रियों की वन्ध्यता को यह नष्ट करता है। यह कल्याण गुड़ उत्तम है। (निशोथ को तैल में भून कर गेरते हैं, इसमें मरोड़ा नहीं होता) मृदु, मध्य, क्रूर कोष्ठ की अपेक्षा से यथेच्छ मात्रा में खाये ॥३८–४१॥

द्विपञ्चमूलेभकणात्मगुप्ता-
भार्गीशटीपुष्करमूलविश्वान्।
पाठामृताग्रन्थिकशङ्खपुष्पी-
रास्नाग्न्यपामार्गबलायवासान् ॥४२॥
द्विपालिकान् न्यस्य यवाढकं च
हरीतकीनां च शतं गुरूणाम्।
द्रोणे जलस्याढकसंयुते च
क्वाथे कृते पूतचतुर्थभागे ॥४३॥
पचेत्तुलां शुद्धगुडस्य दत्त्वा
पृथक् च तैलात् कुडवं घृताच्च।
चूर्णं च तावन्मगधोद्भवाया
देयं च तस्मिन्मधु सिद्धशीते ॥४४॥
रसायनात् कर्षमतो विलिह्याद्-
द्वे चाभये नित्यमयाशु हन्यात्।
तद्राजयक्ष्मग्रहणीप्रदोष-
शोफाग्निमान्द्यस्वरभेदकासान् ॥४५॥
पाण्ड्वामयश्वासशिरोविकारान्
हृद्रोगहिक्काविषमज्वरांश्च।
मेधाबलोत्साहमतिप्रदं च
चकार चैतद् भगवानगस्त्यः ॥४६॥

दशमूल, गजपिप्पली, कौंच, भार्गी, कचूर, पुष्करमूल, सोंठ, पाठ, गिलोय, पिप्पलीमूल, शंखपुष्पी, रास्ना, चित्रक, चिरचिटा, बला, धमासा, प्रत्येक दो पल, जौ एक आढ़क, भारी (पानी में डूबनेवाली) हरड़ एक सौ गिनती में लेकर एक द्रोण और एक आढ़क जल में क्वाथ करे। जब चतुर्थांश शेष रह जाये तब छान ले। फिर इस क्वाथ में एक तुला गुड, स्विन्न हुई एक सौ हरड़, घी और तैल प्रत्येक आठ पल मिलाकर पकाये। पकने पर जब लेह के समान बन जाये तब इसमें पिप्पली चूर्ण चार पल, शीतल होने पर मधु आठ पल मिलाये। फिर इस रसायन में से कल्क आधा पल चाट कर दो हरड़ नित्यप्रति खाये। इसके सेवन से राजयक्ष्मा, ग्रहणीरोग, शोफ, अग्निमान्द्य, स्वरभेद, कास, पाण्डुरोग, श्वास, शिरोरोग, हृद्रोग, हिक्का, विषमज्वर, नष्ट होते हैं। इससे मेधा, बल, उत्साह, तथा बुद्धि बहुत बढ़ती है, इस रसायन को भगवान् अगस्त्य ने बनाया है। चरक।

वक्तव्य—चरक में पाँच आढ़क जल में पकाने को कहा है। इस क्वाथ की निष्पत्ति जौ के गलाने से बताई है, यथा—हरीतकीशतं भद्रं जले पञ्चाढके पचेत्। यवे स्विन्ने कषायं तं पूतं तच्चाभयं शतम् ॥४२–४६॥

कुलीरशुक्तीचटकैणलावा-
ञ्छिष्ट्वाथ्य वर्गं मधुरं च कृत्स्नम्।
पचेद् घृतं तत्तु निषेव्यमाणं
हन्यात् क्षतोत्थं क्षयजं च कायम् ॥४७॥
शतावरीनागबलाविपक्वं
घृतं विधेयं च हिताय कासिनाम्।

कुलीर (केकड़ा), शुक्ति (जलशुक्ति), चिड़िया, हरिण, बटेर, और सम्पूर्ण काकोल्यादि मधुरवर्ग इनका क्वाथ करके इनसे घृत सिद्ध करे। इस घृत को खाने से क्षतजन्य और क्षत-

जन्य कास नष्ट होते हैं। शतावरी, नागबला से घृत सिद्ध करना चाहिये, यह घृत कास रोगियों को देना चाहिये।

वक्तव्य—कई आचार्य कुलीर आदि का क्वाथ (मांसरस) करके इस में मधुर वर्ग का कल्क मिलाकर घृत सिद्ध करना कहते हैं ॥४७॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे कासप्रतिषेधो नाम (चतुर्दशोऽध्यायः, आदितः) द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अथातः स्वरभेदप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे स्वरभेदप्रतिषेध अध्याय का व्याख्यान करेंगे—जैसा भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

अत्युच्चभाषणविषाध्ययनातिगीत-
शीतादिभिः प्रकुपिताः पवनादयस्तु।
स्रोतःसु ते स्वरवहेषु गताः प्रतिष्ठां
हन्युः स्वरं भवति चापि हि षड्विधः सः ॥३॥

बहुत ऊंचा बोलने से, विष से, बहुत गाने से, शीत आदि कारणों से वातादि कुपित होकर स्वरवह स्रोतों में पहुँचकर स्वर को बिठा देते हैं, यह स्वरभेद छै प्रकार का है।

वक्तव्य—छै प्रकार का–वातादि दोषों से तीन प्रकार का, सन्निपात से, मेद दोष से और क्षयजन्य (जैसा कैन्सर रोग में) होता है। मेद क्षयजन्य स्वर भेद–थाई रौयड् ग्रन्थि के रोग में मिलता है। चरक में वातात् पित्तात्कफाद् रक्तात् कासवेगात् सपीनसात्–इस प्रकार से छ प्रकार का माना है। दोनों में यह मेद शल्यदृष्टि और काय चिकित्सा की दृष्टि से किया है। जैसा कि चरक में–भेत्ता हि भेद्यमन्यथा भिनत्ति, अन्यथा पुरस्ताद् भिन्नं भेदप्रकृत्यन्तरेण भिन्दन् भेदसंख्याविशेषमापादयति अनेकधा, न च पूर्वं भेदाग्रमुपहन्ति ॥ चरक वि० अ० ६—४।

वि० मन्तव्य—स्रोतस्सु ते स्वरवहेषु—सु० शा० अ० ६ में 'द्वाभ्यां भाषते, द्वाभ्यां घोषं करोति' कहते हुए भगवान् धन्वन्तरि ने जिन ४ धमनियों का उल्लेख किया है उन्हीं को यहाँ स्वरवह स्रोतस् कहा गया है। स्वरभेद में स्वर एवं व्यञ्जन का उच्चारण करने में विकृति आ जाती है। भाषते–भाषण वह है जिसमें व्यञ्जनों का उच्चारण होता है। भाष व्यक्तायां वाचि धातु भ्वादि गणीय से भाषा शब्द की निष्पत्ति होती है और जिसमें केवल शब्द-स्वर का उच्चारण होता है वह घोष कहलाता है। घुषिर् विशब्दने धातु है ॥३॥

वातेन कृष्णनयनाननमूत्रवर्चा
भिन्नं शनैर्वदति गद्गदवत् स्वरं च।

वायु के कारण उत्पन्न स्वर भेद में रोगी की आँख, मूत्र और मल काले हो जाते हैं। इसका स्वर फटा हुआ, धीमा, गद्गद (भर्राया हुआ) होता है। "स्वरभेदो भवेद् वातात् रूक्षःक्षामबलः स्वरः।।" चरक।

पित्तेन पीतवदनाक्षिपुरीषमूत्रो
ब्रूयाद्गलेन परिदाहसमन्वितेन ॥४॥

पित्तजनित स्वर भेद में रोगी को मुख, आँख, मल, मूत्र पीले हो जाते हैं, रोगी दाहयुक्त कण्ठ से बोलता है, रोगी का बोलते समय गले में जलन होती है। "तालुकण्ठपरिदाहः पित्ताद् वक्त्रमसूयते।" चरक ॥४॥

कृच्छ्रात् कफेन सततं कफरुद्धकण्ठो
मन्दं शनैर्वदति चापि दिवा विशेषः।

कफ के कारण कठिनाई से बोलता है, निरन्तर कफ से गला रुका रहता है। रोगी दिन में धीमे और धीरे से बोलता है। (रात में शीत के कारण आवाज नहीं निकलती)। "कफान्मन्दो विबद्धश्च स्वरः खुरखुरायते"। चरक।

सर्वात्मके भवति सर्वविकारसंप-
दव्यक्तता च वचसस्तमसाध्यमाहुः ॥५॥

सन्निपातजन्य स्वरभेद में सब दोषों के लक्षण रहते हैं। वाणी अस्पष्ट रहती है, इसको असाध्य कहते हैं ॥५॥

धूप्येत वाक् क्षयकृते क्षयमाप्नुयाच्च
वागेष चा (वा) पि हतवाक् परिवर्जनीयः।

क्षयजन्य स्वर भेद में वाणी में धूँवा-सा प्रतीत होता है, वाणी निरन्तर क्षीण होती जाती है। वाणी बन्द हो जाने पर यह असाध्य होता है।

अन्तर्गलं स्वरमलक्ष्यपदं चिरेण
मेदक्षयाद्वदति दिग्धगलौष्ठतालुः ॥६॥

क्षीणस्य वृद्धस्य कृशस्य चापि
चिरोत्थितो यश्च सहोपजातः।
मेदस्विनः सर्वसमुद्भवश्च
स्वरामयो यो न स सिद्धिमेति ॥७॥

मेद के क्षय से उत्पन्न स्वर भेद में स्वर गले के अन्दर ही रहता है, (बाहर नहीं आता), वाणी अस्पष्ट रहती है देर में बोलता है, गला, ओष्ठ, तालु मेद से लिप्त रहता है। क्षीण, वृद्ध, कृश व्यक्ति में चिरकालीन स्वरभेद, सहज (जन्मजात) स्वरभेद, मेदस्विपुरुष का सन्निपातजन्य स्वरभेद ठीक नहीं होते॥

स्निग्धान् स्वरातुरनरानपकृष्टदोषान्
न्यायेन तान् वमनरेचनबस्तिभिश्च।
नस्यावपीडमुखधावनधूमलेहैः
संपादयेच्च विविधैः कवलग्रहैश्च ॥८॥

स्वरभेद रोगियों को स्निग्ध करके यथाविधि से

वमन, विरेचन वस्तिद्वारा दोषों को बाहर करके, नस्य अवपीड़न मुखधावन (गण्डूष, कवल), धूम, लेह नानाप्रकार के कवलग्रह बरते।

वक्तव्य—"मुखं संचार्यते या तु गण्डूषे सा प्रकीर्त्तिता। असंचार्या तु या मात्रा कवले सा प्रकीर्त्तिता"॥८॥

यः श्वासकासविधिरादित एव चोक्त-
स्तं चाप्यशेषमवतारयितुं यतेत।
वैशेषिकं च विधिमूर्ध्वमतो वदामि
तं वै स्वरातुरहितं निखिलं निबोध॥९॥

श्वास, कास विधि में जो विधि प्रारम्भ में कही है, उसे सम्पूर्णरूप में स्वरभेद के अन्दर बरते।

स्वरभेद के लिये विशेष विधि इसके आगे कहूँगा, उसे सम्पूर्ण रूप में सुनो॥९॥

स्वरोपघातेऽनिलजे भुक्तोपरि घृतं पिबेत्।
कासमर्दकवार्ताकमार्कवस्वरसे शृतम्॥१०॥
पीतं घृतं हन्त्यनिलं सिद्धमर्तिगले रसे।

वातजन्य स्वर भेद में भोजन के ऊपर घृत पीये। कासमर्द, कटेरी, भांगरे के स्वरस, अर्तिगल (ककुभ) के क्वाथ में सिद्ध किया घृत पीने से वायुजन्य स्वरभेद को नष्ट करता है॥

यवक्षाराजमोदाभ्यां चित्रकामलकेषु वा॥११॥
देवदार्वग्निकाभ्यां वा सिद्धमाजं समाक्षिकम्।

तीन घृत—(१) यवक्षार और अजवायन से, (२) चित्रक और आंवला (३) देवदारु और चित्रक इन से सिद्ध किया बकरी का घृत मधु के साथ पीये॥११॥

सुखोदकानुपानो वा ससर्पिष्को गुडौदनः॥१२॥

गुड़ से बनाया भात घी के साथ खाकर गरम पानी को अनुपान रूप में पीये॥१२॥

क्षीरानुपानं पित्ते तु पिबेत् सर्पिरतन्द्रितः।

पित्तज स्वरभेद में बिना आलस्य के दूध अनुपान से घृत पीये।

अश्नीयाच्च ससर्पिष्कं यष्टीमधुकपायसम्॥१३॥

मुलैहठी से सिद्ध दूध में खीर बनाकर घी के साथ खाये॥

लिह्यान्मधुरकाणां वा चूर्णं मधुघृताप्लुतम्।
शतावरीचूर्णयोगं बलाचूर्णमथापि वा॥१४॥

काकोलीगण के चूर्ण को मधु और घृत में अच्छीप्रकार मिलाकर चाटे। शतावरी का चूर्ण या बला के चूर्ण को प्रचुर मधुर और घृत के साथ खाये॥१४॥

पिबेत् कटूनि मूत्रेण कफजे स्वरसंक्षये।
लिह्याद्वा मधुतैलाभ्यां भुक्त्वा खादेत् कटूनि वा॥१५॥

कफज स्वरभेद में त्रिकटु को गोमूत्र से पीये। त्रिकटु आदि द्रव्यों को मधु और तैल से चाटे। अथवा भोजन खाकर कटुद्रव्य खाये॥१५॥

स्वरोपघाते मेदोजे कफवद्विधिरिष्यते।

मेदोजन्य स्वरभेद में कफ की विधि बरतनी चाहिये।

सर्वजे क्षयजे चापि प्रत्याख्यायाचरेत् क्रियाम्॥१६॥

सन्निपातज, क्षयजन्य स्वरभेद में असाध्य कहकर चिकित्सा करे॥१६॥

शर्करामधुमिश्राणि शृतानि मधुरैः सह।
पिबेत् पयांसि यस्योच्चैर्वदतोऽभिहतः स्वरः॥१७॥

काकोल्यादि मधुरगण से सिद्ध किये दूध को शर्करा और मधु में मिलाकर पीये। जिसका स्वर बोलते हुए बैठ गया हो, वह इस दूध को पीये। (दूध-गाय-भैंस का दूध देवे)॥१७॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सा-
तन्त्रे छर्दिप्रतिषेधो नाम (पञ्चदशोऽध्यायः, आदितः)
त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५३॥

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अथातः क्रमिरोगप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः॥२॥

अब इसके आगे क्रमिरोग प्रतिषेध अध्याय का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था॥१,२॥

अजीर्णाध्यशनासात्म्यविरुद्धमलिनाशनैः।
अव्यायामदिवास्वप्नगुर्वतिस्निग्धशीतलैः॥३॥
माषपिष्टान्नविदलबिसशालूकसेरुकैः।
पर्णशाकसुराशुक्तदधिक्षीरगुडेक्षुभिः॥४॥
पललानूपपिशितपिण्याकपृथुकादिभिः।
स्वाद्वम्लद्रवपानैश्च श्लेष्मा पित्तं च कुप्यति॥५॥
क्रमीन् बहुविधाकारान् करोति विविधाश्रयान्
आमपक्वाशये तेषां कफविड्जन्मनां पुनः॥
धमन्यां रक्तजानां च प्रसवः प्रायशः स्मृतः॥६॥

अजीर्ण, अध्यशन, असात्म्य, विरुद्ध, मलिन भोजनों से, व्यायाम न करने से, दिन में सोने से, गुरु-अतिस्निग्ध, शीतल, वस्तुओं के सेवन से, उडद, पिट्ठी के भक्ष्यों से, विदल (चने आदि को दलकर बनाई वस्तुएँ), बिस (भिस), शालू (पद्मकन्द), कसेरू, पत्तों के शाक, सुरा, शुक्त, दधि, दूध, गुड़, ईख आदि वस्तुओं ईख से बनी वस्तुएँ भी) के सेवन से, तिलकल्क, आनूप मांस, पिण्याक (खल), चिवड़े एवं मधुर-अम्लद्रवों के पीने से, कफ और पित्त प्रकुपित होते हैं। इससे नाना आश्रयवाले बहुत प्रकार के क्रमि उत्पन्न होते हैं। कफजन्य पुरीषजन्य क्रमि आमाशय और पक्वाशय में (क्रमशः) रहते हैं। रक्तजन्य क्रमियों का स्थान प्रायः करके धमनियां कही हैं।

वक्तव्य—अजीर्ण-आम-विदग्धादि भेद-वाला। अध्यशन-अजीर्ण भोजन। असात्म्य-जो खाया हुआ मनके अनुकूल न हो। विरुद्ध-हिताहित अध्याय में कहा है ॥३-६॥

विंशतेः कृमिजातीनां त्रिविधः संभवः स्मृतः।
पुरीषकफरक्तानि, तासां वक्ष्यामि विस्तरम् ॥७॥

कृमि की जाति (कृमि) बीस प्रकार की हैं, इनका वर्गीकरण-पुरीषज, कफज, रक्तज, भेद से तीन प्रकार का है, इसको विस्तार से कहता हूँ।

वि० मन्तव्य—पुरीष में उत्पन्न होनेवाले-अतिसार एवं ग्रहणी आदि रोगी के पुरीष में पाए जानेवाले सूक्ष्म एवं स्थूल कृमि "पुरीषज" कहे जाते हैं। कफ में उत्पन्न होनेवाले-कास, श्वास, प्रतिश्याय एवं क्षय रोगों में कफ में पाए जानेवाले कृमि कफज कहलाते हैं। रक्त में उत्पन्न होनेवाले—कुष्ठ, व्रण आदि में तथा अन्य रोगों में रक्त में पाये जानेवाले कृमि "रक्तज" कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त च० वि० अ० ७ में दो कृमि बतलाये गये हैं जो शरीर एवं कपड़ों के मल-मैल में उत्पन्न होते हैं। इनका नाम है १—जूका-जूएँ यह दो प्रकार की होती हैं १—काली और २—श्वेत। ३—लिक्षा-लीख-चमजूँ ॥

अजवा विजवाः किप्याश्चिप्या गण्डूपदास्तथा।
चूरवो द्विमुखाश्चैव ज्ञेया सप्त पुरीषजाः ॥८॥

पुरीषजन्य कृमि सात हैं, यथा अजवा, विजवा, किप्य, चिप्य, गण्डूपद, चूरु, द्विमुख ॥८॥

श्वेताः सूक्ष्मास्तुदन्त्येते गुदं प्रतिसरन्ति च।
तेषामेवापरे पुच्छैः पृथवश्च भवन्ति हि ॥९॥
शूलाग्निमान्द्यपाण्डुत्वविष्टम्भबलसंक्षयाः।
प्रसेकारुचिहृद्रोगविड्भेदास्तु पुरीषजैः ॥१०॥

ये कृमि रंग में श्वेत, सूक्ष्म तथा गुद में चुभोते हैं तथा गुदा की ओर जाते हैं। इनमें से कुछ कृमि पूँछ पर चंपटे होते हैं। ये पुरीष जन्य कृमि शूल, अग्निमान्द्य, पाण्डुरोग, विष्टम्भ, बल का नाश, लालास्राव, अरुचि, हृदयरोग, अतिसार, उत्पन्न करते हैं, इन लक्षणों से इनको समझना चाहिये ॥

रक्ता गण्डूपदा दीर्घा गुदकण्डूनिपातिनः।
शूलाटोपशकृद्भेदपक्तिनाशकराश्च ते ॥११॥

इन कृमियों में गण्डूपदकृमि लालरंग का, लम्बा, केंचुए के आकार का होता है। शूल, आध्मान, अतिसार, और अग्निनाश करता है ॥११॥

दर्भपुष्पाः महापुष्पाः प्रलूनाश्चिपिटास्तथा।
पिपीलिका दारुणाश्च कफकोपसमुद्भवाः ॥१२॥

कफजन्यकृमि—दर्भपुष्प, महापुष्प, प्रलून, चिपिट, पिपीलिका, दारुण भेद से छै प्रकार के हैं ॥१२॥

रोमशा रोममूर्धानः सपुच्छाः श्यावमण्डलाः।
रूढधान्याङ्कुराकाराः शुक्लास्ते तनवस्तथा ॥१३॥

इनका आकार—सारे शरीर पर रोंआटेवाले, शिरपर बड़ेरोम, पूंछवाले आकार के, काले चकत्तोंवाले, उगते हुए धान्य के अंकुर के समान आकार के, श्वेत एवं पतले होते हैं। (रोग जहाँ बालों के लिये है, वहाँ सिरपर का रोमशब्द आगे बढ़े हुए पतले प्रवर्धन को भी बताता है, जिससे ये वस्तु का पकड़ते हैं, गति में सहायता पूंछ करती है) ॥१३॥

मज्जादा नेत्रलेढारस्तालुश्रोत्रभुजस्तथा।

ये कृमि मज्जा को खाते हैं, तालु एवं श्रोत्र को खाते हैं, आँखों को चाटते हैं, (आँखों में रेंगते हैं कण्डू करते हैं)।

शिरोहृद्रोगवमथुप्रतिश्यायकराश्च ते ॥१४॥

इनसे शिरोरोग, हृद्रोग, वमन, और प्रतिश्याय उत्पन्न होता है ॥१४॥

केशरोमनखादाश्च दन्तादाः किक्किशास्तथा।
कुष्ठजाः सपरीसर्पा ज्ञेयाः शोणितसंभवाः ॥१५॥

केशाद, रोमाद, नखाद, दन्ताद, किक्किश, कुष्ठज और परिसर्प भेद से रक्तजन्य कृमि सात प्रकार के हैं। (केश—सिर के बालों को खानेवाले, रोमाद-शरीर के रोम को खानेवाले, किक्किश—गर्भवती स्त्री के उदर पर जो श्वेत सी धारियाँ पड़ जाती हैं, उस प्रकार की रेखायें उत्पन्न करनेवाले) ॥१५॥

ते सरक्ताश्च कृष्णाश्च स्निग्धाश्च पृथवस्तथा।
रक्ताधिष्ठानजान् प्रायो विकारान् जनयन्ति ते ॥१६॥

ये रक्तजन्य कृमि ईषत् रक्तवर्ण, कृष्णवर्ण, चिकने और चपटे होते हैं। प्रायः करके ये कृमि रक्त के आश्रय से होनेवाले कुष्ठ, विसर्प, पिड़का आदि (व्याधि समुद्देश में कहे) रोगों को उत्पन्न करते हैं ॥१६॥

माषपिष्टान्नविदलपर्णशाकैः पुरीषजाः।
मांसमाषगुडक्षीरदधितैलैः कफोद्भवाः ॥१७॥
विरुद्धाजीर्णशाकाद्यैः शोणितोत्था भवन्ति हि।
ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्रोगः सदनं भ्रमः ॥१८॥
भक्तद्वेषोऽतिसारश्च संजातकृमिलक्षणम्।

उड़द, पिट्ठी के भक्ष्य, दाल-पत्तों के शाक से पुरीषजन्य कृमि उत्पन्न होते हैं। मांस, उदड़, गुड़, दूध, दही, तैल से कफजन्य कृमि उत्पन्न होते हैं। विरुद्ध भोजन, अजीर्ण में भोजन, शाक आदि से रक्तजन्य कृमि उत्पन्न होते हैं। ज्वर, शरीर में विवर्णता, शूल, हृद्रोग, शिथिलता, चक्कर आना, भोजन में अरुचि, अतिसार, ये कृमियों के उत्पन्न होने के लक्षण हैं ॥१७,१८॥

दृश्यास्त्रयोदशाद्यास्तु कृमीणां परिकीर्तिताः ॥१९॥
केशादाद्यास्त्वदृश्यास्ते द्वावाद्यौ परिवर्जयेत्।

प्रारम्भ के तेरह कृमि (पुरीषजन्य और कफजन्य) दृश्य हैं। केशाद आदि रक्तजन्य सात कृमि अदृश्य हैं। इन रक्तजन्य कृमियों में प्रारम्भ के दो कृमि असाध्य हैं ॥१९॥

एषामन्यतमं ज्ञात्वा जिघांसुः स्निग्धमातुरम् ॥२०॥
सुरसादिविपक्वेन सर्पिषा वान्तमादितः।
विरेचयेत्तीक्ष्णतरैर्योगैरास्थापयेच्च तम् ॥२१॥

इनमें से किसी एक प्रकार के भी कृमि को मारने की इच्छा से रोगी को सुरसादिगण से सिद्ध किये घृत से स्निग्ध करके, तीक्ष्णतर (अतितीक्ष्ण) योगों से (कफनाशक) प्रथम वमन कराये, फिर विरेचनोक्त योगों से विरेचन देवे।

वक्तव्य—"तत्र सर्वकृमीणामपकर्षणमेवादितः कार्यं, ततः प्रकृतिविघातः, अनन्तरं निदानोक्तानां भावानामनुपसेवनमिति ॥" चरक वि० अ० ७।१४ ॥२०,२१॥

यवकोलकुलत्थानां सुरसादेर्गणस्य च।
विडङ्गस्नेहयुक्तेन क्वाथेन लवणेन च ॥२२॥

कृमिरोगी को–जौ, बैर, कुलत्थी और सुरसादिगण के क्वाथ में विडंग से साधित तैल, और लवण मिलाकर आस्थापन बस्ति देवे ॥२२॥

प्रत्यागते निरूहे तु नरं स्नातं सुखाम्बुना।
युञ्ज्यात् कृमिघ्नैरशनैस्ततः शीघ्रं भिषग्वरः ॥२३॥
स्नेहनोक्तेन चैनं तु योजयेत् स्नेहबस्तिना।

निरूह के वापिस आजानेपर, रोगी को गरम पानी से स्नान करा के, तुरन्त वैद्य रोगी को कृमिनाशक भोजन देवे। विडंग साधित स्नेह से स्नेह बस्ति देवे ॥२३॥

ततः शिरीषकिणिहीरसं क्षौद्रयुतं पिबेत् ॥२४॥

फिर शिरीष, अपामार्ग के स्वरस को मधु के साथ पीये ॥

केबूकस्वरसं वाऽपि पूर्ववत्तीक्ष्णभोजनः।

अथवा केबूक का स्वरस मधु के साथ पीये। तीक्ष्ण द्रव्यों से संस्कृत भोजन करे।

वक्तव्य—तीक्ष्ण द्रव्य—"मूलकसर्षपकलशुनकरंजशिग्रुमधुशिग्रुकमठखरपुष्पाभूस्तृणसुमुखसुरसकुठेरकगण्डीरककालमालकपर्णासक्षवकफाणज्जकानि सर्वाणि अथवा यथालाभम् ॥" चरक वि० अ० ७।२०।

पलाशबीजस्वरसं कल्कं वा तण्डुलाम्बुना ॥२५॥

ढाक के बीज का स्वरस या इसका कल्क चावलों के पानी से पीये ॥२५॥

पारिभद्रकपत्राणां क्षौद्रेण स्वरसं पिबेत्।
पत्तूरस्वरसं वाऽपि पिबेद्वा सुरसादिजम् ॥२६॥

बकायन के पत्तों का स्वरस मधु के साथ पीये। पत्तूर (मछेछी) या सुरसादि गण के पत्तों का स्वरस मधु के साथ पीये ॥२६॥

लिह्यादश्वशकृच्चूर्णं वैडङ्गं वा समाक्षिकम्।

घोड़ा की लीद का चूर्ण या विडंग का चूर्ण मधु के साथ चाटे।

पत्रैर्मूषिकपर्ण्या वा सुपिष्टैः पिष्टमिश्रितैः ॥२७॥
खादेत् पूपलिकाः पक्वा धान्याम्लं च पिबेदनु।

मूषिकपर्णी (ऊँदरकानी) के पत्तों को पीसकर, इसमें पिट्ठी मिलाकर, इनसे पूपलिका (कचौड़ी) बनाकर खाये और पीछे से कांजी पीये। (कांजी का गुण कृमि नष्ट करना है, परन्तु निरन्तर सेवन कृमिकारक है) ॥२७॥

सुरसादिगणे पक्वं तैलं वा पानमिष्यते ॥२८॥
विडङ्गचूर्णयुक्तैर्वा पिष्टैर्भक्ष्यांस्तु कारयेत्।

अथवा सुरसादिगण में पकाया तैल पीना चाहिये। विडंग का चूर्ण पिट्ठी में मिलाकर इनसे भक्ष्य अन्न बनाये ॥२८॥

तत्कषायप्रपीतानां तिलानां स्नेहमेव वा ॥२९॥

अथवा विडंग के कषाय से अच्छी प्रकार भावित तिलों का तेल पीये ॥२९॥

श्वाविधः शकृतश्चूर्णं सप्तकृत्वः सुभावितम्।
विडङ्गानां कषायेण त्रैफलेन तथैव च ॥३०॥
क्षौद्रेण लीढ्वाऽनुपिबेद्रसमामलकोद्भवम्।
अक्षाभयारसं वाऽपि

सेह के पुरीष के चूर्ण को विडंग के कषाय से या त्रिफला के कषाय से भली प्रकार सात बार भावना देकर, इसका चूर्ण करके मधु के साथ चाटे, पीछे से आंवले का रस (क्वाथ), या बहेड़े का अथवा हरड़ का क्वाथ पीये ॥३०॥

विधिरेषोऽयसामपि ॥३१॥

यही विधि रांगा, सीसा, लोह, ताम्र आदि धातुओं में भी बरते, अर्थात् इन धातुओं की भस्म को विडंग या त्रिफला के क्वाथ से भली प्रकार भावना देकर मधु के साथ चाटे, पीछे आंवले आदि का क्वाथ पीये ॥३१॥

पूतीकस्वरसं वाऽपि पिबेद्वा मधुना सह।
पिबेद्वा पिप्पलीमूलमजामूत्रेण संयुतम् ॥३२॥
सप्तरात्रं पिबेद् घृष्टं त्रपु वा दधिमस्तुना।

करंज नाटा का स्वरस मधु के साथ पीये। पिप्पलीमूल को बकरी के मूत्र के साथ पीये। त्रपु (रांगा) को दही के पानी में घिसकर सात दिन पीये ॥३२॥

पुरीषजान् कफोत्थांश्च हन्यादेवं कृमीन् भिषक् ॥३३॥

पुरीषजन्य और कफजन्य कृमियों को इस विधि से नष्ट करे ॥३३॥

शिरोहृद्घ्राणकर्णाक्षिसंश्रितांश्च पृथग्विधान्।
विशेषेणाञ्जनैर्नस्यैरवपीडैश्च साधयेत् ॥३४॥

शिर, हृदय, नासिका, कान, आंख में स्थित नाना प्रकार के कृमियों की अंजन, नस्य, अवपीडन विधि से विशेष रूप में चिकित्सा करे ॥३४॥

शकृद्रसं तुरङ्गस्य सुशुष्कं भावयेदति ।
निष्क्वाथेन विडङ्गानां चूर्णं प्रधमनं तु तत् ॥३५॥

घोड़े की लीद के स्वरस को भलीप्रकार सुखाकर इसे विडंग के क्वाथ से भावित करके इस चूर्ण का नासा में प्रधमन नस्य (फूत्कार से देना) देवे ॥३५॥

अयश्चूर्णान्यनेनैव विधिना योजयेद् भिषक् ।
सकांस्यनीलं तैलं च नस्यं स्यात्सुरसादिके ॥३६॥

घोड़े की लीद की भांति रांगा, सीसा आदि धातुओं का चूर्ण विडंग के क्वाथ से भावना देकर प्रधमन नस्य देवे। कांसी को घिसकर इसकी स्याही को-सुरसादि गण में सिद्ध किये तैल में मिलाकर नस्य देवे ॥३६॥

इन्द्रलुप्तविधिश्चापि विधेयो रोमभोजिषु ।

रोम को खानेवाले कृमियों में इन्द्रलुप्त रोग की चिकित्सा करे।

दन्तादानां समुद्दिष्टं विधानं मुखरोगिकम् ॥३७॥

दांत को खानेवाली कृमियों की चिकित्सा मुख रोगों में कह दी है ॥३७॥

रक्तजानां प्रतीकारं कुर्यात् कुष्ठचिकित्सिते ।

रक्तजन्य कृमियों की चिकित्सा कुष्ठ चिकित्सा की भांति करे।

सुरसादिं तु सर्वेषु सर्वथैवोपयोजयेत् ॥३८॥

सब कृमियों में सुरसादिगण का उपयोग सब रूपों में (खाने में, पीने में, स्नान आदि में) करना चाहिये ॥३८॥

प्रव्यक्ततिक्तकटुकं भोजनं च हितं भवेत् ।

जिस भोजन में तिक्त और कटु प्रचुर परिमाण में स्पष्ट रहता हो वह देना हितकारी है।

कुलत्थक्षारसंसृष्टं क्षारपानं च पूजितम् ॥३९॥

कुलत्थी की भस्म को पानी में घोलकर, इसके साथ यवक्षार का पानी उत्तम है।

'यावशूकस्य पानं तु कुलत्थक्षारवारिणा'' ॥३९॥

क्षीराणि मांसानि घृतानि चैव
दधीनि शाकानि च पर्णवन्ति ।
समासतोऽम्लान्मधुरान् हिमांश्च
कृमीन् जिघांसुः परिवर्जयेत्तु ॥४०॥

निदानपरिवर्जनचिकित्सा—दूध, मांस, घृत, दही, पत्तों के शाक (सलाद आदि), अम्ल, मधुर और शीतल पदार्थ-इनको संक्षेप में, कृमियों के नाश की इच्छा रखनेवाला मनुष्य छोड़ देवे।

वक्तव्य—विटामीन के नाम पर कच्चे टमाटर, हरे शाक, सलाद आदि कच्चे खाने की जो प्रथा चल रही है, इसी प्रकार आईसक्रीम, रेफ्रेजेटर में रक्खा ठण्डा भोजन, ठण्डे पदार्थ खाना चला है, ये वस्तुयें आयुर्वेद के सिद्धान्त से अनुकूल नहीं। इनसे कृमि उत्पन्न होते हैं, अथवा हृदय रोग-रक्तचाप के रोग होते हैं।

चरक में—अश्वशकृद्रस के स्थान पर घोड़े की लीद का ही व्यवहार किया है, यथा—"अथाश्वशकृदाहृत्य महति किलिञ्जके प्रस्तीर्यातपे शोषयित्वोदूखले क्षोदयित्वा दृषदि पुनः श्लक्ष्णानि चूर्णानि कारयित्वा विडंगकषायेण त्रिफलाकषायेण वा अष्टकृत्वो दशकृत्वो वा आतपे सुपरिभावितानि भावयित्वा दृषदि पुनः सूक्ष्माणि चूर्णानि कारयित्वा नवे कलशे समावाप्यानुगुप्तं निधापयेत् ॥" चरक वि० अ० ७।२६ ॥४०॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तगते शालाक्यतन्त्रे कायचिकित्सातन्त्रे कृमिप्रतिषेधो नाम (षोडशो ऽध्यायः, आदितः) चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अथात उदावर्तप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे उदावर्त्तप्रतिषेध का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था १,२॥

अधश्चोर्ध्वं च भावानां प्रवृत्तानां स्वभावतः ।
न वेगान् धारयेत् प्राज्ञो वातादीनां जिजीविषुः ॥३॥

जीने की इच्छावाला बुद्धिमान् मनुष्य स्वभाव से प्रवृत्त होनेवाले वायु आदि के, नीचे, या ऊपर जानेवाले वेगों को भी न रोके।

वक्तव्य—वेगनिग्रहजा रोगा य एते परिकीर्त्तिताः। इच्छंस्तेषामनुत्पत्तिं वेगानेतान्न धारयेत् ॥ इमांस्तु धारयेद् वेगान् हितैषी प्रेत्य चेह च। साहसानामशस्तानां मनोवाक्कायकर्मणाम् ॥ लोभशोकभयक्रोधमानवेगान् विधारयेत्। नैर्लज्ज्येर्ष्यातिरागाणामभिध्यायांश्च बुद्धिमान् ॥ पारुष्यस्यातिमात्रस्य सूचकस्यानृतस्य च। वाक्यस्याकालयुक्तस्य धारयेद् वेगमुत्थितम् ॥ स्त्रीभोगास्तेयहिंसाद्या तस्या वेगान् विधारयेत्। देहप्रवृत्तिः या काचिद् वर्त्तते परपीडया ॥ आत्मनः प्रतिकूलानि न परेषां समाचरेत् ॥ चरक सू० अ० ७ ॥३॥

वातविण्मूत्रजृम्भाश्रुक्षवोद्गारवमीन्द्रियैः ।
व्याहन्यमानरुदितैरुदावर्तो निरुच्यते ॥४॥

वायु, मल, मूत्र, जृम्भा, अश्रु, छींक, उद्गार, वमन, इन्द्रिय (शुक्र), इनके उपस्थित वेगों को रोकने से उदावर्त्त उत्पन्न होता है। (श्रोत्रवागादिसत्त्वं च शुक्रं चेन्द्रियमुच्यते ॥

क्षुत्तृष्णाश्वासनिद्राणामुदावर्तो विधारणात् ।

भूख, प्यास, श्वास, निद्रा इनको रोकने से उदावर्त्त उत्पन्न होता है।

तस्याभिधास्ये व्यासेन लक्षणं च चिकित्सितम् ॥५॥

इस उदावर्त्त के लक्षण और चिकित्सा को विस्तार से कहूँगा ॥५॥

त्रयोदशविधश्चासौ भिन्न एतैस्तु कारणैः ।

पूर्वोक्त वातादि कारणों से भिन्न होने के कारण उदावर्त्त तेरह प्रकार का है ।

अपथ्यभोजनाच्चापि वक्ष्यते च तथाऽपरः ॥६॥

अपथ्य भोजन के कारण जो उदावर्त्त होता है वह इनसे भिन्न है, उसको अलग कहेंगे ॥६॥

आध्मानशूलौ हृदयोपरोधं
शिरोरुजं श्वासमतीव हिक्काम् ।
कासप्रतिश्यायगलग्रहांश्च
बलासपित्तप्रसरं च घोरम् ॥७॥
कुर्यादपानोऽभिहतः स्वमार्गे
हन्यात् पुरीषं मुखतः क्षिपेद्वा ।

वातजन्य उदावर्त्त—अपने मार्ग में रुकी अपान वायु—आध्मान, शूल, हृदय, का अवरोध, शिर में दर्द, श्वास की वृद्धि, हिक्का, कास, प्रतिश्याय, गलग्रह (टौंसिलायटिस), कफ पित्त का प्रसरण, पुरीष क्षय या मुख से मल की प्रवृत्ति उत्पन्न करता है ॥७॥

आटोपशूलौ परिकर्तनं च
सङ्गः पुरीषस्य तथोर्ध्ववातः ॥८॥
पुरीषमास्यादपि वा निरेति
पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य ।

पुरीष वेग को रोकने से—आध्मान, शूल, कर्त्तन के समान पीड़ा, मल का अवरोध, ऊर्ध्व वायु, अथवा मल की मुख से प्रवृत्ति होती है ॥८॥

मूत्रस्य वेगेऽभिहते नरस्तु
कृच्छ्रेण मूत्रं कुरुतेऽल्पमल्पम् ॥९॥
मेढ्रे गुदे वङ्क्षणबस्तिमुष्क-
नाभिप्रदेशेष्वथवाऽदि मूर्ध्नि ।
आनद्धबस्तिश्च भवन्ति तीव्रा
शूलाश्च शूलैरिव भिन्नमूर्तेः ॥१०॥

मूत्र वेग को रोकने से—मनुष्य मूत्र का कठिनाई से थोड़ा थोड़ा त्याग करता है। मेहन, गुद, वंक्षण, वस्ति, अण्ड, नाभि-प्रदेश, अथवा शिर में, तीव्र वेदना होती है, मूत्राशय में गति नहीं होती है, शरीर टूटता प्रतीत होता है, कांटों के चुभने के समान शूल-सा होता है ॥९,१०॥

मन्यागलस्तम्भशिरोविकारा
जृम्भोपघातात् पवनात्मकाः स्युः ।
श्रोत्राननघ्राणविलोचनोत्था
भवन्ति तीव्राश्च तथा विकाराः ॥११॥

जृम्भा के रोकने से—मन्यास्तम्भ, गल-स्तम्भ, शिरोरोग, कम्प, सुप्ति आदि वात रोग, कान-नाक-मुख और आँखों के भयानक रोग उत्पन्न होते हैं ॥११॥

आनन्दजं शोकसमुद्भवं वा
नेत्रोदकं प्राप्तममुञ्चतो हि ।
शिरोगुरुत्वं नयनामयाश्च
भवन्ति तीव्राः सह पीनसेन ॥१२॥

अश्रुजन्य उदावर्त्त—आनन्द के कारण या शोक के कारण से उत्पन्न आँसुओं को रोक लेने से शिर में भारीपन, भयानक नेत्र रोग, पीनस उत्पन्न होते हैं ॥१२॥

भवन्ति गाढं क्षवथोर्विघाता-
च्छिरोक्षिनासाश्रवणेषु रोगाः ।
कण्ठास्यपूर्णत्वमतीव तोदः
कूजश्च वायोरुत वाऽप्रवृत्तिः ॥१३॥

छींक को रोकने से—शिर, नाक, आंख, और कान में भयानक रोग होते हैं। कण्ठ और मुख वायु से भरे रहते हैं, गले और मुख में तीव्र व्यथा, कराहना, अथवा उच्छ्वास का अवरोध होता है ॥१३॥

उद्गारवेगेऽभिहते भवन्ति
घोरा विकाराः पवनप्रसूताः ।

उद्गार को रोकने से कम्प, हिक्का आदि वातजन्य भयानक रोग होते हैं।

छर्देर्विघातेन भवेच्च कुष्ठं
येनैव दोषेण विदग्धमन्नम् ॥१४॥

छर्दि के रोकने से—जिस दोष के कारण अन्न विदग्ध हुआ होता है, उसी दोष की अधिकतावाला कुष्ठ उत्पन्न होता है। (चकार से अरोचक आदि होते हैं) ॥१४॥

मूत्राशये पायुनि मुष्कयोश्च
शोफो रुजो मूत्रविनिग्रहश्च ।
शुक्राश्मरी तत्स्रवणं भवेद्वा
ते ते विकारा विहते तु शुक्रे ॥१५॥

शुक्र के उपस्थित वेग को रोकने से—मूत्राशय, गुद, मुष्क में शोफ, पीड़ा होती है, मूत्र का अवरोध, शुक्राश्मरी, शुक्र का क्षरण, हृत्पीड़ा, अंगमर्द आदि शुक्रवेगावरोधजन्य रोग होते हैं ॥१५॥

तन्द्राङ्गमर्दारुचिविभ्रमाः स्युः
क्षुधाऽभिघातात् कृशता च दृष्टेः ।

भूख के उपस्थित वेग को रोकने से—तन्द्रा, अंगों का टूटना, अरुचि, चक्कर आना, दृष्टि की निर्बलता होती है। (कार्श्यदौर्बल्यवैवर्ण्यसंगमर्दोऽरुचिर्भ्रमः क्षुद्वेगनिग्रहात्....)।

कण्ठास्यशोषः श्रवणावरोध-
स्तृष्णाभिघाताद्धृदये व्यथा च ॥१६॥

तृष्णा को रोकने से—गले और मुख में शोष, बहरापन, हृदय में पीड़ा (श्रम-स्वेद आदि) होती है ॥१६॥

श्रान्तस्य निःश्वासविनिग्रहेण
हृद्रोगमोहावथवाऽपि गुल्मः ।

जल्दी चलने या परिश्रम से उत्पन्न श्वास को रोकने से—हृदयरोग, मोह अथवा गुल्म उत्पन्न होता है।

जृम्भाऽङ्गमर्दोऽङ्गशिरोऽक्षिजाड्यं
निद्राभिघातादथवाऽपि तन्द्रा ॥१७॥

निद्रा के उपस्थित वेग को रोकने से—जृम्भा, अंगमर्द अंग-शिर-आँख में जड़ता (भारीपन) और तन्द्रा होती है ॥१७

तृष्णार्दितं परिक्लिष्टं क्षीणं शूलैरभिद्रुतम्।
शकृद्वमन्तं मतिमानुदावर्तिनमुत्सृजेत् ॥१८॥

तृष्णा से पीड़ित, अतिशय शिथिल (क्रिया रहित), क्षीण, शूल से पीड़ित, मल का वमन करनेवाले, उदावर्त रोगी की बुद्धिमान् चिकित्सा न करे ॥१८॥

सर्वेष्वेतेषु विधिवदुदावर्तेषु कृत्स्नशः।
वायोः क्रिया विधातव्याः स्वमार्गप्रतिपत्तये ॥१९॥
सामान्यतः पृथक्त्वेन क्रियां भूयो निबोध मे।

इन सब उदावर्तों में वातव्याधि की सम्पूर्ण चिकित्सा (स्नेह, स्वेद आदि) विधिपूर्वक करनी चाहिये, जिससे वायु अपने मार्ग में प्रवृत्त हो जाये। यह क्रिया सामान्यरूप में सबके लिये है, पृथक् पृथक् रूप में आगे सुनो ॥१६॥

आस्थापनं मारुतजे स्निग्धस्विन्ने विशिष्यते ॥२०॥

रोगी को स्नेहन और स्वेदन देकर वातहर द्रव्यों से बनाया आस्थापन (निरूह) वातोदावर्त में करे ॥२०॥

पुरीषजे तु कर्तव्यो विधिरानाहिको भवेत्।

पुरीषजन्य उदावर्त में आनाह चिकित्सा (फलवर्त्ति आदि, वातव्याधि में कही चिकित्सा) करे।

सौवर्चलाढ्यां मदिरां मूत्रे त्वभिहते पिबेत् ॥२१॥
एलां वाऽप्यथ मद्येन क्षीरं वाऽपि पिबेन्नरः।
धात्रीफलानां स्वरसं सजलं वा पिबेत्त्र्यहम् ॥२२॥
रसमश्वपुरीषस्य गर्दभस्याथवा पिबेत्।
मांसोपदंशं मधु वा पिबेद्वा सीधु गौडिकम् ॥२३॥
भद्रदारु घनं मूर्वा हरिद्रा मधुकं तथा।
कोलप्रमाणानि पिबेदान्तरिक्षेण वारिणा ॥२४॥
दुःस्पर्शास्वरसं वाऽपि कषायं कुङ्कुमस्य च।
एर्वारुबीजं तोयेन पिबेद्वाऽलवणीकृतम् ॥२५॥
पञ्चमूलीशृतं क्षीरं द्राक्षारसमथापि वा।

मूत्रजन्य उदावर्त में प्रभूत सौवर्चल नमक मिलाकर मदिरा को पीये। इलायची को मद्य के साथ पीये या दूध पीये। अथवा जल के साथ आँवले का स्वरस तीन दिन पीये। घोड़े की या गधे की लीद का स्वरस पीये। मांस भक्षण के साथ मधु मद्य, सीधु या गौडिकमद्य (गुड़ से बना) पीये। देवदारु, मुस्ता मूर्वा, हल्दी, मुलैहठी, इनको आधा कर्ष लेकर वर्षा जल के साथ पीये। धमासे का स्वरस (अभाव में क्वाथ) या केसर का कषाय, ककड़ी-खीरे के बीज इनको थोड़े से नमक मिश्रित जल के साथ पीये। लघुपंचमूल से सिद्ध किया दूध या द्राक्षारस पीये (पंचमूल लघु लेना 'लघुना पंचमूलेन शृतं क्षीरं पिबेन्नरः')।

वक्तव्य—मधु—यहाँ पर मद्य के लिये है, जैसा कि यक्ष्मा रोग में चरक में—"प्रसन्नां वारुणीं शीधुमरिष्टानासवान्मधु। स्वेदावगाहनाभ्यंगान् सर्पिषश्चावपीडकम्। मूत्रे प्रतिहते कुर्यात् त्रिविधं बस्तिकर्म च" ॥ चरक सू० अ० ६ ॥२१-२५॥

योगांश्च वितरेदत्र पूर्वोक्तानश्मरीभिदः ॥२६॥
मूत्रकृच्छ्रक्रमं चापि कुर्यान्निरवशेषतः।
भूयो वक्ष्यामि योगान् यान् मूत्राघातोपशान्तये ॥२७॥

मूत्रजन्य उदावर्त में अश्मरी को भेदन करनेवाले योग बरते। मूत्रकृच्छ्र की चिकित्सा सम्पूर्णरूप में करे। मूत्राघात की शान्ति के लिये आगे भी योगों को कहूंगा। उनको भी यहाँ पर बरते ॥२६,२७॥

स्नेहैः स्वेदैरुदावर्तं जृम्भाजं समुपाचरेत्।

जृम्भाजन्य उदावर्त में स्नेहन और स्वेदन करे।

अश्रुमोक्षोऽश्रुजे कार्यः स्निग्धस्विन्नस्य देहिनः ॥२८॥

अश्रुजन्य उदावर्त में रोगी को स्नेहन स्वेदन देकर आँसुओं का निःसारण करना चाहिये ॥२८॥

तीक्ष्णाञ्जनावपीडाभ्यां तीक्ष्णगन्धोपशिङ्घनैः।
वर्तिप्रयोगैरथवा क्षवसक्तिं प्रवर्तयेत् ॥२९॥
(तीक्ष्णोषधप्रधमनैरथवाऽऽदित्यरश्मिभिः।)

रुकी हुई छींक को तीक्ष्ण अंजन, तीक्ष्ण अवपीडन, तीक्ष्णगन्ध (मरिचादि) आदि को सूंघकर नाक में वर्त्ति डालकर, प्रवृत्त करे। (तीक्ष्ण औषधियों को नाक में फूंककर अथवा सूर्य की किरणों को देखकर छींक को प्रवृत्त करे) ॥२६॥

उद्गारजे क्रमोपेतं स्नैहिकं धूममाचरेत् ॥३०॥
सुरां सौवर्चलवतीं बीजपूररसान्विताम्।

उद्गारजन्य उदावर्त में धूम, नस्य, कवलग्रह विधि से स्नैहिक धूम बरते। सौवर्चल और बिजौरे के रस से मिली सुरा को पीये ॥३०॥

छर्द्याघातं यथादोषं सम्यक् स्नेहादिभिर्जयेत् ॥३१॥
सक्षारलवणोपेतमभ्यङ्गं चात्र दापयेत्।

छर्दि के उदावर्त में दोषों के अनुसार भली प्रकार स्नेहादि विधि करे। यवक्षार और लवण से मिश्रित अभ्यंग में घृत का उपयोग करना उत्तम है, तैल भी कुछ बरतते हैं ॥३१॥

बस्तिशुद्धिकरावापं चतुर्गुणजलं पयः ॥३२॥
आवारिनाशात् क्वथितं पीतवन्तं प्रकामतः।
रमयेयुः प्रिया नार्यः शुक्रोदावर्तिनं नरम् ॥३३॥

शुक्र—उदावर्त में वस्ति को शुद्ध करनेवाले (ककड़ी—कूष्माण्ड के बीज, पंचतृणमूल आदि) द्रव्यों

का प्रक्षेप देकर (दूध का ८ वां भाग) दूध से चार गुणे जल में दूध का पाक करे। जब पानी जल जाये, केवल दूध बचे तब उसको पीकर प्रिय स्त्रियोंके साथ रमण करे।

तत्राभ्यंगावगाहाश्च मदिराचरणायुधाः।
शालिःपयो निरूहाश्च शस्तं मैथुनमेव च ॥च० ।३३।

क्षुद्विघाते हितं स्निग्धमुष्णमल्पं च भोजनम्।

भूख को रोकने से उत्पन्न उदावर्त में स्निग्ध उष्ण, अल्पभोजन हितकारी है।

तृष्णाघाते पिबेन्मन्थं यवागूं वाऽपि शीतलाम् ॥३४॥

प्यास को रोकने से उत्पन्न उदावर्त में मन्थ (घृत के साथ शीतल जल में घोले सत्तू) या शीतल यवागू पीये ॥३४॥

भोज्यो रसेन विश्रान्तः श्रमश्वासातुरो नरः।

श्रमजनितश्वास से पीड़ित मनुष्य को विश्राम देकर मांस रस से भोजन देना चाहिये।

निद्राघाते पिबेत् क्षीरं स्वप्याच्चेष्टकथो नरः ॥३५॥

निद्रानाश में दूध पीये, सोये, इच्छित वार्तायें सुने। (दूध भैंस का पीना चाहिये, डल्हण ने गाय का दूध पीने को लिखा है) यथा-"निद्राघाते पिबेत्क्षीरं गोस्तनादथवा नरः।" परन्तु चरक में भैंस के दूध के गुण वर्णन में-"स्नेहान्यूनमनिद्राय हितमत्यग्नये च तत् ।।" इसमें भैंस का दूध लेना चाहिये ॥

आध्मानाद्येषु रोगेषु यथास्वं प्रयतेत हि।
यच्च यत्र भवेत्प्राप्तं तच्च तस्मिन् प्रयोजयेत् ॥३६॥

आध्मान, शूल, परिकर्तिका आदि में दोषों के अपने अनुसार चिकित्सा करे। जिस रोग में जो औषध ठीक हो, वह औषध उस रोग में बरते। (जो चिकित्सा यहाँ पर नहीं कही यदि वह योग्य हो, तो उसे भी बरते) ॥३६॥

वायुः कोष्ठानुगो रूक्षैः कषायकटुतिक्तकैः।
भोजनैः कुपितः सद्यः उदावर्तं करोति हि ॥३७॥
वातमूत्रपुरीषासृक्कफमेदोवहानि वै।
स्रोतांस्युदावर्तयति पुरीषं चातिवर्तयेत् ॥३८॥
ततो हृद्बस्तिशूलार्तो गौरवारुचिपीडितः।
वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण कुरुते नरः ॥३९॥
श्वासकासप्रतिश्यायदाहमोहवमिज्वरान्।
तृष्णाहिक्काशिरोरोगमनःश्रवणविभ्रमान् ॥४०॥
लभते च बहूनन्यान् विकारान् वातकोपजान्।

कोष्ठ में स्थित वायु रूक्ष, कषाय, कटु, तिक्त भोजनों से कुपित होकर तुरन्त ही उदावर्त उत्पन्न कर देता है। इसमें यह वायु-मूत्र मल-रक्त-कफ-मेदवह स्रोतसों को (अधोवह स्रोतों को) उदावर्त (ऊपर की ओर गतिवाला) करता है। मल को अत्यन्त वृत्त-गोल (लेंडने के रूप में) कर देता है। इससे हृदय वस्ति में शूल, भारीपन, अरुचि होती हैं। वायु मल-मूत्र कठिनाई से त्याग करता है। रोगी को श्वास, कास, प्रतिश्याय दाह, मोह, वमन, ज्वर, प्यास, हिचकी, शिरोरोग, मनोरोग कान के रोग, तथा अन्य बहुत से वातजन्य रोग हो जाते हैं।

वि० मन्तव्य—इस रोग में वायु, पुरीष की गुटिका बाँध देता है। जिसे "सुद्दा" कहते हैं तथा उक्त स्रोतों को उलटा कर देता है। फलतः वायु आदि प्रतिलोम हो जाते हैं और इसीलिये हृदयशूल आदि भीषण उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। इस रोग में बायु का अनुलोमन करना ही मुख्य है ॥३७-४०॥

तं तैललवणाभ्यक्तं स्निग्धं स्विन्नं निरूहयेत् ॥४१॥
दोषतो भिन्नवर्चस्कं भुक्तं चाप्यनुवासयेत्।

उदावर्त के इस रोगी को तैल-लवण से अभ्यंग करके स्निग्ध करके स्वेदन देकर निरूह देवे। जिस रोगी को अतिसार हो उसे दोष के अनुसार भोजन देकर अनुवासन वस्ति देवे। कहा भी है-"उदावर्ते तु अपथ्योत्थे मुनिरूढं ततो भिषक्। यथादोषं भुक्तवन्तमाशु चैवानुवासयेत्" ॥४१॥

न चेच्छान्ति व्रजत्येवमुदावर्तः सुदारुणः ॥४२॥
अथैनं बहुशः स्विन्नं युञ्ज्यात् स्नेहविरेचनैः।

कठिन उदावर्त यदि इस प्रकार से शान्त न हो तो उदावर्त रोगी को स्नेहन और स्वेदन देकर बहुत बार ऐरण्ड तैल आदि स्नेहन विरेचनों से विरेचन देवे ॥४२॥

पाययेत त्रिवृत्पीलुयवानीरम्लपाचनैः ॥४३॥
हिङ्गुकुष्ठवचास्वर्जिविडङ्गं वा द्विरुत्तरम्।
योगावेतावुदावर्तं शूलं चानिलजं हतः ॥४४॥

निशोथ और पीलु को कांजी एवं चित्रकादि पाचन द्रव्यों के क्वाथ के साथ पिलाये। हींग, कूठ, वच, स्वर्जक्षार, विडंग इनको क्रमशः दुगुना करके चूर्ण बनाये। इस चूर्ण को कांजी से देवे। ये दोनों योग उदावर्तजन्य एवं वातजन्य शूल को नष्ट करते हैं ॥४३,४४॥

देवदार्वग्निकौ कुष्ठं शुण्ठीं पथ्यां पलङ्कषाम्।
पौष्कराणि च मूलानि तोयस्यार्धाढके पचेत् ॥४५॥
पादावशिष्टं तत् पीतमुदावर्तमपोहति।

देवदारु, चित्रक, कूठ, सोंठ, हरड़, गुग्गुल, पुष्करमूल इनको आधा आढक (३२ पल जल) पानी में क्वाथ करे। चतुर्थांश शेष रखकर पीये। इसके पीने से उदावर्त नष्ट होता है ॥४५॥

मूलकं शुष्कमार्द्रं च वर्षाभूः पञ्चमूलकम् ॥४६॥
आरेवतफलं चाप्सु पक्त्वा तेन घृतं पचेत्।
तत् पीयमानं शाम्यमुदावर्तमशेषतः ॥४७॥

सूखी मूली, सूखा आर्द्रक (सोंठ), पुनर्नवा, बिल्वादि पंचमूल, अमलतास का गूदा, इनका पानी

में क्वाथ करके इससे घृत पकाये। इसको पीते रहने से भयानक उदावर्त सम्पूर्णरूप में नष्ट होता है ॥४६,४७॥

वचामतिविषां कुष्ठं यवक्षारं हरीतकीम्।
कृष्णां निर्दहनीं चापि पिबेदुष्णेन वारिणा ॥४८॥

वच, अतीस, कूठ, यवक्षार, पिप्पली, चित्रक इनको गरम पानी से पीये ॥४८॥

इक्ष्वाकुमूलं मदनं विशल्यातिविषे वचाम्।
कुष्ठं किण्वाग्निकौ चैव पिबेत्तुल्यानि पूर्ववत् ॥४९॥
मूत्रेण देवदार्वग्नित्रिफलाबृहतीः पिबेत्।

कटुतुम्बी का मूल, मैनफल, कलिहारी, अतीस, वच, कुष्ठ, किण्व (सुराबीज), चित्रक इनको परस्पर समान भाग लेकर चूर्ण करके गरम पानी से पीये। देवदारु, चित्रक, त्रिफला, बड़ी कटेरी इनका चूर्ण गोमूत्र से पीये ॥४९॥

यवप्रस्थं फलैः सार्धं कण्टकार्या जलाढके ॥५०॥
पक्त्वाऽर्धप्रस्थशेषं तु पिबेद्धिङ्गुसमन्वितम्।

जौ और कटेरी के फल मिलित एक प्रस्थ लेकर एक आढ़क जल में पकाये। आधा प्रस्थ (आधा पल) शेष रहने पर इसमें हींग मिलाकर पीये ॥५०॥

मदनालाबुबीजानि पिप्पलीं सनिदिग्धिकाम् ॥५१॥
संचूर्ण्य प्रधमेन्नाड्या विशत्येतद्यथा गुदम्।

मैनफल के बीज, तुम्बी के बीज, पिप्पली, कटेरी, इनका चूर्ण करके नाडीयंत्र से गुद में फूत्कार से प्रधमन करे (फूंके), जिससे यह चूर्ण गुदा में पहुँच जाये ॥

चूर्णं निकुम्भकम्पिल्लश्यामेक्ष्वाक्वग्निकोद्भवम् ।५२।
कृतवेधनमागध्योलवणानां च साधयेत्।
गवां मूत्रेण ता वर्तीः कारयेत्तु गुदानुगाः ॥
सद्यः शर्मकरावेतौ योगावमृतसंमितौ ॥५३॥

निकुम्भ (दन्ती), कमीला, निशोथ, कटुतुम्बी, चित्रक (अग्निक-अजवायन, डल्हण), कृतवेधन (कड़ुई तुम्बी), पिप्पली, सैन्धव इनका चूर्ण करके गोमूत्र में पकाये। जब घट्ट हो जाये और वर्त्ति बनाने योग्य हो तब उतारकर इनसे गुदा में जाने योग्य वर्त्तियाँ बनाये। ये दोनों योग तुरन्त ही रोगी को शान्ति देते हैं, ये अमृत के समान हैं।

"अन्ये च रोगा बहवोऽनिलोत्था
भवन्त्युदावर्तकृताः सुघोराः।
चिकित्सितं चास्य यथावदूर्ध्वं
प्रवक्ष्यते तच्छृणु चाग्निवेश" ॥चरक॥

तं तैलशीतज्वरनाशनोक्तं स्वेदैः यथोक्तैः प्रविलीनदोषम्। उपाचरेत् बस्तिनिरूहबस्तिस्नेहैः विरेकैरनुलोमनान्नैः। श्यामात्रिवृन्मागधिकां सदन्तीं गोमूत्रपिष्टां दशभागमाषाम्। सनीलिकां द्विर्लवणां गुडेन वर्तिं करांगुष्ठनिमां विदध्यात् ॥

पिण्याकसौवर्चलहिंगुभिर्वा ससर्षपत्र्यूषणयावशूकैः।
कृमिघ्नकम्पिल्लकशंखिनीभिःसुधार्कजक्षीरगुडैर्युताभिः।
स्यात् पिप्पलीसर्षपराढवेश्मधूमैः सगोमूत्रगुडैश्च वर्तिः।
श्यामाफलालाबुकपिप्पलीनां
नाड्योऽथवा तत् प्रधमेत्तु चूर्णम् ॥
रक्षोघ्नतुम्बीकरहाटकृष्णा–
चूर्णं सजीमूतकसैन्धवं वा ॥
स्निग्धे गुदे तान्यनुलोमयन्ति
नरस्य वर्चोऽनिलमूत्रसंगम् ॥
चरक चि० अ० । २६ १३–१५

वि० मन्तव्य—एतौ योगौ—यह दोनों योग अर्थात् श्लो० ५१ में कहा मदनफल आदि प्रधमन योग तथा श्लो० ५३ में कहा निकुम्भ आदि की बत्ती का योग ॥५२,५३॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे
उदावर्तप्रतिषेधो नाम (सप्तदशोऽध्यायः, आदितः)
पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अथातो विसूचिकाप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ।१।
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे विसूचिका प्रतिषेध आध्याय का व्याख्यान करेंगे-जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था।

अजीर्णमामं विष्टब्धं विदग्धं च यदीरितम्।
विसूच्यलसकौ तस्माद्भवेच्चापि विलम्बिका ॥३॥

अन्नपान विधि में आमाजीर्ण, विष्टब्धाजीर्ण विदग्धाजीर्ण (रसशेषाजीर्ण भी) जो कहे हैं, उनके कारण विसूचिका और अलसक होते हैं। विलम्बिका भी इन्हीं अजीर्णों से उत्पन्न होती है।

वक्तव्य—तं द्विविधमामप्रदोषमाचक्षते भिषजः विसूचिकामलसकं च।

सूचीभिरिव गात्राणि तुदन् संतिष्ठतेऽनिलः।
यस्याजीर्णेन सा वैद्यैरुच्यते तु विसूचिका ॥४॥

जिस अजीर्ण के कारण वायु शरीर में सूई चुभने के समान वेदना उत्पन्न करती है, उस अवस्था को वैद्य विसूचिका कहते हैं ॥४॥

न तां परिमिताहारा लभन्ते विदितागमाः।
मूढास्तामजितात्मानो लभन्ते कलुषाशयाः ॥५॥

परिमित (मात्रा) में खानेवाले एवं भोजन विधि को जाननेवाले (प्रकृति करण आदि अष्टविध आयतनों को तथा इष्टे देशे आदि विधि को जाननेवाले) मनुष्य विसूचिका रोग से पीड़ित नहीं होते। दूषित आमाशयवाले, अजितेन्द्रिय, खाने के लालची मूर्ख लोग विसूचिका से पीड़ित होते हैं।

वि० मन्तव्य—परन्तु कभी कभी विशेषतः वसन्त ऋतु के अन्त में कहीं कहीं जनपदोद्ध्वंस (चरक) या मारक (सुश्रुत) के रूप में विसूचिका फैलती है ॥५॥

मूर्च्छातिसारौ वमथुः पिपासा
शूलं भ्रमोद्वेष्टनजृम्भदाहाः ।
वैवर्ण्यकम्पौ हृदये रुजश्च
भवन्ति तस्यां शिरसश्च भेदः ॥६॥

लक्षण—मूर्च्छा, अतिसार, वमन, प्यास, शूल, चक्कर आना, ऐंठन, जम्भाई आना, दाह, विवर्णता, कम्प, हृदय में पीड़ा, शिर में फटने का सा शूल होता है ।

तत्र विसूचिकामूर्ध्वं चाधश्च प्रवृत्तामदोषां यथोक्तरूपां विद्यात् । चरक ।

वि० मन्तव्य—इस रोग में प्रथम शूल उठता है और साथ ही वमन एवं विरेचन का प्रारम्भ हो जाता है, फिर अन्य पिपासा आदि लक्षण व्यक्त होने लगते हैं। खाया पिया निकल जाने पर चरक के शब्दों में आम—मांस धावन का सा द्रव प्रवृत्त हो जाता है तथा उद्वेष्टन (ऐंठन) विशेषतः टांगों एवं बाँहों में होने लगता है और वमन विरेचन के अतियोग के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं (देखिये सु० चि० अ० ३५।-११)। ऐलोपेथ जिसे "कालरा" कहते हैं वह चरक के शब्दों में "आमविष" है क्योंकि उसमें विष के सदृश लक्षण होते हैं (च० वि० अ० २) ॥६॥

कुक्षिरानह्यतेऽत्यर्थं प्रताम्यति विकूजति ।
निरुद्धो मारुतश्चापि कुक्षौ विपरिधावति ॥७॥
वामवर्चोनिरोधश्च कुक्षौ यस्य भृशं भवेत् ।
तस्यालसकमाचष्टे तृष्णोद्गारावरोधकौ ॥८॥

अलसक—उदर में अतिशय आध्मान, मूर्छित (बेभान) होना, कराहना, उदर में रुकी अपान वायु ऊपर को चढ़ती है, वायु और मल का कोष्ठ में बहुत अवरोध रहता है। इस अवस्था को अलसक कहते हैं, इसमें प्यास उद्गार रुके रहते हैं।

वक्तव्य—अलसक अलस—आलसी होना, रियैक्शन—की शक्ति नष्ट होना ।

दुर्बलस्याग्नेः बहुश्लेष्मणो वातमूत्रपुरीषवेगविधारिणः स्थिरगुरुबहुरूक्षशीतशुष्कान्नसेविनः तदन्नपानमनिलप्रपीडितं श्लेष्मणा च विबद्धमार्गमतिमात्रप्रलीनमलसत्वान्न बहिर्मुखीभवति, ततश्छर्द्यतिसारवर्ज्यानि आमप्रदोषलिंगानि यथोक्तान्यभिदर्शयत्यतिमात्राणि, अतिमात्रप्रदुष्टाश्च दोषाः प्रदुष्टामवद्धमार्गाः तिर्यग् गच्छन्तः कदाचित्केवलमेवास्य शरीरं दण्डवत्स्तम्भयन्ति, ततस्तं दण्डालसकमसाध्यं ब्रुवते ॥

चरक० ० अ० वि२।१४,१५॥

दुष्टं तु भुक्तं कफमारुताभ्यां
प्रवर्तते नोर्ध्वमधश्च यस्य ।
विलम्बिकां तां भृशदुश्चिकित्स्या-
माचक्षते शास्त्रविदः पुराणाः ॥९॥

किया हुआ भोजन कफ और वायु से दूषित होकर न तो ऊपर को (वमन रूप में) जाता है, और न नीचे (विरेचनरूप में) प्रवृत्त होता है। इस अवस्था को शास्त्र को जाननेवाले पुराने आचार्य विलम्बिका कहते हैं, यह अतिकष्टसाध्य है।

वि० मन्तव्य—इस रोग में खाया हुआ आहार (भुक्त) उदर में वायु एवं कफ से ही विशेष रूप से दूषित होता है, और इसमें पित्त का सम्पर्क नहीं होता । वैसे अलसक के समान इसमें भी न वमन ही होता है, और न अतिसार ही होता है। कफ एवं वायु के अजीर्ण के लक्षण देखिये सू० अ० ४६ श्लो० ५०२ में ॥९॥

यत्रस्थमामं विरुजेत्तमेव देशं विशेषेण विकारजातैः ।
दोषेण येनावततं स्वलिङ्गैस्तं लक्षयेदामसमुद्भवैश्च ॥१०॥

जिस देश में स्थित, जिस दोष से व्याप्त आम हो, उस देश में विशेष रूप से वह दोष वेदना करता है। उस स्थान को दोष के लक्षणवाले (तोद आदि आमजन्य) रोगों के लक्षणों से (स्तम्भन आध्मान आदि से) पहचाने ।

वि० मन्तव्य—यह आम का विवरण है—आम जहाँ भी स्थित हो जाता है, वहीं रोग-वेदना उत्पन्न करता है, अर्थात् यदि आमाशय में स्थित होता है तो आमाशय में, अन्त्र में स्थित होता है तो अन्त्र में और मलाशय में स्थित होता है तो मलाशय में विकार उत्पन्न करता है, और आम जिस दोष से व्याप्त रहता है उस दोष के लक्षणोंवाले विकार उत्पन्न करता है, परन्तु आम के अपने लक्षण भी उनमें रहते हैं। वायु से व्याप्त होने पर शूल आदि, पित्त से व्याप्त होने पर दाह आदि तथा कफ से व्याप्त होने पर छर्दि आदि लक्षण होते हैं। परन्तु साथ में गौरव, अवसाद आदि तथा ऐंठन आदि आम के लक्षण भी रहते हैं ॥१०॥

यः श्यावदन्तोष्ठनखोऽल्पसंज्ञ-
श्छर्दितोऽभ्यन्तरयातनेत्रः ।
क्षामस्वरः सर्वविमुक्तसन्धि-
र्यायान्नरः सोऽपुनरागमाय ॥११॥

जिस रोगी के दांत, ओठ, नख काले पड़ गये, जिसको थोड़ी चेतना हो, वमन होती हो, आँखें अन्दर धँस गई हों, स्वर कृश हो गया हो, सन्धियाँ सब शिथिल हो गई हों, वह मनुष्य मर जाता है, असाध्य होता है ॥११॥

साध्यासु पार्ष्ण्योर्दहनं प्रशस्त-
मग्निप्रतापो वमनं च तीक्ष्णम् ।
पक्वे ततोऽन्ने तु विलंघनं स्यात्
संपाचनं चापि विरेचनं च ॥१२॥

साध्यविसूचिका में एड़ी में दाह (संज्ञा प्रबोधन के लिये) करे। अग्निपाचन के लिये अग्नि से सेक देवे। अन्नशल्य को निकालने के लिये तीक्ष्ण वमन देवे। दोष के पाकाभिमुख होने पर लंघन, स्वेद आदि से पाचन, और विरेचन देवे ॥१२॥

विशुद्धदेहस्य हि सद्य एव
मूर्च्छातिसारादिरुपैति शान्तिम्।

इस प्रकार वमन विरेचन से शोधन हो जाने पर मूर्च्छा, अतिसार आदि शीघ्र ही शान्त हो जाते हैं।

आस्थापनं चापि वदन्ति पथ्यं
सर्वासु योगानपरान्निबोध ॥१३॥

विसूचिका आदि में आस्थापन को भी पथ्य कहते हैं, अन्य योगों को भी सुनो। (विसूचिका, अलसक सब में निरूह देवे) ॥

पथ्यावचाहिङ्गुकलिङ्गगृञ्ज-
सौवर्चलैः सातिविषैश्च चूर्णम्।
सुखाम्बुपीतं विनिहन्त्यजीर्णं
शूलं विसूचीमरुचिं च सद्यः ॥१४॥

हरड़, वच, हींग, इन्द्रजौ, लहसुन, सौवर्चल, अतीस, इनका चूर्ण गरम पानी से पीने पर शूल विसूचिका और अरुचि को तुरन्त नष्ट करता है। (गृञ्जन—लहसुन) ॥१४॥

क्षारागदं वा लवणं विडं वा
गुडप्रगाढानथ सर्षपान् वा।
अम्लेन वा सैन्धवहिङ्गुयुक्तौ
सबीजपूरौ सघृतौ त्रिवर्गौ ॥१५॥
कटुत्रिकं वा लवणैरुपेतं
पिबेत् स्नुहीक्षीरविमिश्रितं तु।
कल्याणकं वा लवणं पिबेत्तु
यदुक्तमादावनिलामयेषु ॥१६॥

घवाश्वकर्ण शिरीष आदि से दुन्दुभिस्वनीय में कहे क्षारागद को या विडलवण को अथवा प्रचुर गुड़ युक्त सरसों को गरम पानी से पीये। सैन्धव और हींग को कांजी से पीये। त्रिफला, त्रिकटु को समान मात्रा में बिजौरे के रस से पीये। त्रिकटु को-पाँचों नमक के साथ थोर के दूध में मिलाकर पीये। वातव्याधि में गण्डीर पलाश आदि से जो कल्याणक लवण कहा है, वह भी इसमें बरते ॥१५,१६॥

कृष्णाजमोदक्षवकाणि वाऽपि
तुल्यौ पिबेद्वा मगधानिकुम्भौ।
दन्तीयुतं वा मगधोद्भवानां
कल्कं पिबेत् कोषवतीरसेन ॥१७॥
उष्णाभिरद्भिर्मगधोद्भवानां
कल्कं पिबेन्नागरकल्कयुक्तम्।

पिप्पली, अजवाइन, क्षवक (नकछिकनी) इनको या पिप्पली और दन्ती को कांजी से पीये। पिप्पली के कल्क को दन्ती के साथ कडुई तुरई के रस से पीये। पिप्पली और सोंठ के कल्क को गरम पानी से पीये ॥१७॥

व्योषं करञ्जस्य फलं हरिद्रे
मूलं समं चाप्यथ मातुलुङ्गयाः ॥१८॥
छायाविशुष्का गुटिकाः कृतास्ता
हन्युर्विसूचीं नयनाञ्जनेन।

त्रिकटु, करंज का फल, हल्दी, दारुहल्दी, इनके बराबर बिजौरे की जड़, इनको पानी में पीसकर, गोलियाँ बनाकर छाया में सुखाये। इन गोलियों के अंजन करने से विसूचिका नष्ट होती है।

वि० मन्तव्य—यह अञ्जन विसूचिका में उत्पन्न मूर्च्छा की शान्ति के लिये किया जाता है, मूर्च्छा शान्त हो जाने पर तत्कालोचित अन्य उपचार करते रहना चाहिये ॥१८॥

सुवामितं साधु विरेचितं वा
सुलंघितं वा मनुजं विदित्वा ॥१९॥
पेयादिभिर्दीपनपाचनीयैः
सम्यक्क्षुधार्तं समुपक्रमेत।

भली प्रकार वमन, विरेचन, लंघन हो जाने पर, रोगी को भूख लगने पर दीपनीय पाचनीय (चित्रक आदि) औषधियों से संस्कृत पेया, विलेपी आदि से चिकित्सा करे ॥१९॥

आमं शकृद्वा निचितं क्रमेण
भूयो विबद्धं विगुणानिलेन ॥२०॥
प्रवर्तमानं न यथास्वमेनं
विकारमानाहमुदाहरन्ति।

क्रमशः आम (अपक्व अन्न रस) और मल संचित होकर कुपित-ऊर्ध्वगामि अपानवायु से अवरुद्ध होने पर और भी बढ़कर अपने स्वाभाविक मार्ग में जब प्रवृत्त नहीं होता, तब इस अवस्था को आनाह कहते हैं।

वि० मन्तव्य—आनाह—यह रोग आहार की आमावस्था में भी होता है और पक्वावस्था में भी हो जाता है। इसमें आमाशय, अंत्र एवं मलाशय की गति रुक जाती है। यह सामान्यतः दो प्रकार का होता है १—आमाशय की गति रुकने से 'आमसमुद्भव' (श्लो०२१) और २—पक्वाशयज (श्लो० २२) अर्थात् मलाशय की गति रुकने से होता है। इन दोनों आशयों के मध्यवर्ती अन्त्र की गति भी रुक जाती है। आनाह को आध्मान कहना या समझना उचित नहीं है, आध्मान में उदर में वायु

रहने के कारण वह फूलता है और आनाह में उदर आनद्ध-आबद्ध-स्तब्ध हो जाता है। 'आनाहः विबन्धः स्यात्' (अमरकोश)—आनाह=णह्-बन्धने धातु (दिवादिगणीय) से तथा विबन्ध=बन्ध-बन्धने धातु (क्रियादिगणीय) से निष्पन्न होता है। यह विष्टब्धाजीर्ण का ही रूप है। देखिये सु० सू० अ०४६ का श्लो० ५०२ ॥२०॥

तस्मिन् भवन्त्यामसमुद्भवे तु
तृष्णाप्रतिश्यायशिरोविदाहाः ॥२१॥
आमाशये शूलमथो गुरुत्वं
हृल्लास उद्गारविघातनं च।

आमजन्य आनाह में तृष्णा, प्रतिश्याय, शिर में दाह, आमाशय में शूल, आमाशय में भारीपन, जी मचलाना, उद्गार की असम्यक् प्रवृत्ति होती है ॥२१॥

स्तम्भः कटीपृष्ठपुरीषमूत्रे
शूलोऽथ मूर्च्छा स सकृद्वमेच्च ॥२२॥
श्वासश्च पक्वाशयजे भवन्ति
लिङ्गानि चात्रालसकोद्भवानि।

पुरीषजन्य आनाह में कटि-पीठ-मल-मूत्र में स्तम्भ (जड़ता) कटि पीठ में शूल, मूर्च्छा, मल का वमन, श्वास, अलसक रोग के लक्षण पक्वाशयजन्य आनाह में होता है ॥२२॥

आमोद्भवे वान्तमुपक्रमेत
संसर्गभक्तक्रमदीपनीयैः ॥२३॥

आमजन्य आनाह में (अविपाकरसजन्य) रोगी को वमन कराके, पिप्पल्यादि दीपनीय द्रव्यों से साधित पेयादि क्रम बरते ॥२३॥

अथेतरं यो न शकृद्वमेत्त-
मामं जयेत् स्वेदनपाचनैश्च।

जो रोगी मल का वमन न करता हो, उस पुरुष के पुरीषजन्य आमान्वित आनाह को स्वेदन पाचन से शान्त करे।

विसूचिकायां परिकीर्तितानि
द्रव्याणि वैरेचनिकानि यानि ॥२४॥
तान्येव वर्तीर्विरेचयेद्विचूर्ण्य
महिष्यजावीभगवां तु मूत्रैः।
स्विन्नस्य पायौ विनिवेश्य ताश्च
चूर्णानि चैषां प्रधमेत्तु नाड्या ॥२५॥

विसूचिका में दन्ती आदि जो विरेचन द्रव्य कहे हैं, उनका चूर्ण करके भैंस, बकरी, भेड़, हाथी, गाय इनके मूत्र में पकाकर, वर्ति बनाये। इन वर्तियों को स्वेदन दिये पुरुष की गुद में रक्खे। इन विरेचन द्रव्यों का चूर्ण नाड़ी द्वारा गुद में प्रधमन करे (फूंके) ॥२४,२५॥

मूत्रेषु संसाध्य यथाविधानं
द्रव्याणि यान्यूर्ध्वमधश्च यान्ति।
क्वाथेन तेनाशु निरूहयेच्च
मूत्रार्धयुक्तेन समाक्षिकेण ॥२६॥
त्रिभण्डियुक्तं लवणप्रकुञ्चं
दत्त्वा विरिक्तक्रममाचरेच्च।

संशोधन से शमन अध्याय में कहे वमन-विरेचन द्रव्यों को विधिपूर्वक भैंस, बकरी, भेड़, हाथी और गाय के मूत्रों में सिद्ध करके, इस क्वाथ में आधा मूत्र मिलाकर मधु, तथा निशोथ, सैन्धानमक एक पल मिलाकर निरूह देवे। निरूह देने के पीछे भली प्रकार विरेचन हो जाने पर पेयादि संसर्जन विधि का पालन करे। (यह आस्थापन आमावस्था में नहीं देना चाहिये) ॥२६॥

एष्वेव तैलेन च साधितेन
प्राप्तं यदि स्यादनुवासयेच्च ॥२७॥

इन्हीं वमन—विरेचन द्रव्यों से तैल सिद्ध करके यदि योग्य हो तो अनुवासन बस्ति देवे।

वक्तव्य—आम का परिपाक हो जाने पर वायु का अतिप्रकोप हो, तब अनुवासन देवे।

विसूचिकायां तु लंघनमेवाग्रे विरिक्तवच्चानुपूर्वी।

आमप्रदोषेषु त्वन्नकाले जीर्णाहारं पुनर्दोषावलिप्तामाशयं स्तिमितगुरुकोष्ठमनन्नाभिलाषिणमभिसमीक्ष्य पाययेद्दोषशेषपाचनार्थमौषधमग्निसंधुक्षणार्थं च। नत्वेवाजीर्णाशनम्, आमप्रदोषदुर्बलो ह्यग्निर्न युगपद्दोषमौषधमाहारजातं च शक्तः पक्तुम्। अपि चामप्रदोषाहारौषधविभ्रमोऽतिबलत्वाद् उपरतकायाग्निं सहसैवातुरमबलमतिपातयेत्॥ च० वि० वि० अ० २ १७-१८।

विमुक्तामप्रदोषस्य पुनः परिपक्वदोषस्य दीप्ते चाग्नावभ्यंगास्थापनानुवासनं विधिवत्स्नेहपानं च युक्त्या प्रयोज्यम्। चरक० वि० अ० २।२०॥२७॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे विसूचिकाप्रतिषेधो नाम (अष्टादशोऽध्यायः आदितः) षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अथातोऽरोचकप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे अरोचकप्रतिषेध अध्याय का व्याख्यान करेंगे-जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था।

वि० मन्तव्य—अरोचक-आहार की रुचि-इच्छा अभिलाषा चाह न होना तथा खाने में स्वाद का अनुभव न होना। यह वातादि दोषों की विकृति से भी होता है और काम शोक आदि मानसिक विकृति से भी होता है। यह रस शेषाजीर्ण

ही समझा जाय तो अनुचित नहीं है, देखिये सु० सू० अ० ४६ श्लो० ५०३ तथा श्लो० ४६६। अरोचकरोग में रसनेन्द्रिय भी क्रियाहीन हो जाती है, जिससे रस का भलीभांति ग्रहण नहीं होता ॥१,२॥

दोषैः पृथक् सह च चित्तविपर्ययाच्च
भक्तायनेषु हृदि चावतते प्रगाढम्।
नान्ने रुचिर्भवति तं भिषजो विकारं
भक्तोपघातमिह पञ्चविधं वदन्ति ॥३॥

वातादि पृथक् दोषों से, तीनों दोषों के मिलने से तथा चित्त के विपर्यय से-(काम, शोक, भय आदि से) अन्नवह स्रोतों में और हृदय में दोषों के अतिशय व्याप्त हो जाने पर अन्न में रुचि नहीं होती। वैद्य इस रोग को भक्तोपघात—(अरोचक) कहते हैं, यह पांच प्रकार का है।

वक्तव्य—"मात्रयाऽप्यभ्यवहृतं पथ्यं चान्नं न जीर्यति। चिन्ताशोकभयक्रोधदुःखशय्याप्रजागरैः" च० वि० अ०२-११।

पृथग्दोषैः समस्तैर्वा जिह्वाहृदयसंस्थितैः।
जायतेऽरुचिराहारे द्विष्टैरर्थैश्च मानसैः॥
कषायतिक्तमधुरैः विद्यान्मुखरसैः क्रमात्।
वाताद्यैररुचिं जातां मानसीं दोषदर्शनात्॥

लक्षण—

प्रक्षिप्तं तु मुखे चान्नं जन्तोर्न स्वदते मुहुः।
अरोचकः स विज्ञेयो भक्तद्वेषमतः शृणु॥
चिन्तयित्वा तु मनसा दृष्ट्वा श्रुत्वाऽपि भोजनम्।
द्वेषमायाति यज्जन्तुः भक्तद्वेषः स उच्यते॥
यस्य चान्ने भवेच्छ्रद्धा सोऽभक्तच्छन्द उच्यते॥३॥

हृच्छूलपीडनयुतं विरसाननत्वं
वातात्मके भवति लिङ्गमरोचके तु।

वातजन्य अरोचक में हृदय में शूल, हृदय में पीड़ा, मुख में विरसता होती है।

हृद्दाहचोषबहुता मुखतिक्तता च
मूर्च्छा सतृड् भवति पित्तकृते तथैव॥४॥

पित्तजन्य अरोचक में, हृदय में, दाह, चोष की अधिकता, मुख में तिक्तता, मूर्च्छा, प्यास होती है ॥४॥

कण्डूगुरुत्वकफसंस्रवसादतन्द्राः
श्लेष्मात्मके मधुरमास्यमरोचके तु।

कफजन्य अरोचक में—कण्डू, भारीपन, कफ का संस्राव, शिथिलता, तन्द्रा और मुख में मधुरता रहती है।

सर्वात्मके पवनपित्तकफा बहूनि
रूपाण्यथास्य हृदये समुदीरयन्ति ॥५॥

सन्निपातजन्य अरोचक में वायु, पित्त, कफ इसके हृदय बहुत से लक्षण उत्पन्न कर देते हैं ॥५॥

संरागशोकभयविप्लुतचेतसस्तु
चिन्ताकृतो भवति सोऽशुचिदर्शनाच्च।

संराग (काम), शोक, भय से विकृत चित्त के कारण तथा बीभत्स वस्तु के दर्शन से चिन्ताजन्य अरोचक होता है।

वाते वचाम्बुवमनं कृतवान् पिबेच्च
स्नेहैः सुराभिरथवोष्णजलेन चूर्णम् ॥६॥
कृष्णाविडङ्गयवभस्महरेणुभार्गी-
रास्नैलहिङ्गुलवणोत्तमनागराणाम्।

वातजन्य अरोचक में वचा के क्वाथ से वमन करके मनुष्य पिप्पली, विडंग, यवक्षार, हरेणु, भार्गी, रास्ना, इलायची, हींग, सैन्धव, सोंठ इनका चूर्ण स्नेह (घी), सुरा या गरम जल से पीये ॥६॥

पित्ते गुडाम्बुमधुरैर्वमनं प्रशस्तं
स्नेहः ससैन्धवसितामधुसर्पिरिष्टः ॥७॥

पित्त में गुड़ के जल (शर्बत) से या काकोल्यादि गण से वमन करना प्रशस्त है। सैन्धव, शर्करा, मधु, घी का स्नेह उत्तम है ॥७॥

निम्बाम्बुवामितवतः कफजेऽनुपानं
राजद्रुमाम्बु मधुना तु सदीप्यकं स्यात्।

कफजन्य, अरोचक में नीम के क्वाथ से वमन करके, अमलतास का क्वाथ, अजवाइन और मधु के साथ पीये।

चूर्णं यदुक्तमथवाऽनिलजे तदेव
सर्वैश्च सर्वकृतमेवमुपक्रमेत ॥८॥

वायु का अनुबन्ध होने पर कफजन्य अरोचक में वातजन्य अरोचक में कहा कृष्णा विडंग आदि चूर्ण पीये। सन्निपातजन्य अरोचक असाध्य कहकर वातादिज अरोचक नाशक चिकित्सा करे ॥८॥

द्राक्षापटोलविडवेत्रकरीरनिम्ब-
मूर्वाभयाक्षबदरामलकेन्द्रवृक्षैः।
बीजैः करञ्जनृपवृक्षभवैश्च पिष्टै-
र्लेहं पचेत् सुरभिमूत्रयुतं यथावत् ॥९॥
मुस्तां वचां त्रिकटुकं रजनीद्वयं च
भार्गीं च कुष्ठमथ निर्दहनीं च पिष्ट्वा।
मूत्रेऽविजे द्विरदमूत्रयुते पचेद्वा
पाठां तुगामतिविषां रजनीं च मुख्याम्॥
मण्डूकिमर्कममृतां च सलाङ्गलाख्यां
मूत्रे पचेत्तु महिषस्य विधानविद्वा।
एतान्न सन्ति चतुरो लिहतस्तु लेहान्
गुल्मारुचिश्वसनकण्ठहृदामयाश्च ॥११॥

चार लेह—(१) द्राक्षा, पटोल, विडनमक, बेत, करीर, नीम, मूर्वा, हरड़, बहेड़ा, बेर, आंवला, कुटज, करंज के बीज, अमलतास का गूदा इनसे गोमूत्र में विधि पूर्वक लेह बनाये (२) मुस्ता, बच, त्रिकटु

हल्दी, दारुहल्दी, भार्गी, कुष्ठ, चित्रक इनको पीसकर मेढे के मूत्र में लेह की भांति पकाये। (३) पाठा, वंशलोचन, अतीस पिण्ड-हरिद्रा इनको पीसकर इनसे हाथी के मूत्र में लेह बनाये। (४) मण्डूकि (ब्राह्मी या जलशुक्ति), आक, गिलोय, कलिहारी इनको भैंस के मूत्र में विधि पूर्वक बनाये। इन चार लेहों को चाटनेवाले व्यक्ति में गुल्म, अरुचि, श्वास, कण्ठरोग, हृदयरोग नहीं होते।

वक्तव्य—लेह की परीक्षा—लेहपाक लक्षणं तन्तु यावद्गुडादि जायते तावत् पचेद्।

वि० मन्तव्य—हमारे विचार में यहाँ "लाङ्गलाख्याम्" लाङ्गल नाम से कलिहारी नहीं समझना चाहिये। क्योंकि कलिहारी विष है, अपितु तृणराज अर्थात् ताड़ अथवा नारियल समझना चाहिये। भले ही डल्लनाचार्य ने भी "लाङ्गलीकलिकारिका" लिखा है ॥११॥

सात्म्यान् स्वदेशरचितान् विविधांश्च भक्ष्यान्
पानानि मूलफलषाडवरागयोगान्।
अद्यादसांश्च विविधान् विविधैः प्रकारै-
र्भुञ्जीत चापि लघुरूक्षमनःसुखानि ॥१२॥

जिस देश में जैसे भक्ष्य बनाये जाते हैं, उन भक्ष्यों को, अपने देश के नानाप्रकार के भक्ष्यों को, मन के अनुकूल भक्ष्यों को, मूल, फल, षाड़व, राग (रायता) के साथ खावे। पान पेयों को पीये। नानाप्रकार के मांसरसों को नानाप्रकार से खाये। लघु, रूक्ष, मन के अनुकूल भक्ष्यों को खाये।

वक्तव्य—षाडवरसालादि—"सितारुचकसिन्धूत्थैः सवृक्षाम्लपरूषकैः जम्बूफलरसैर्युक्तो रागो राजिकया कृतः॥ मधुराम्लकटूनां तु संस्कारा षाडवा मताः॥ राग—द्राक्षाक्वाथ. शालिसक्तुपपन्नो मध्वांशाढ्याः सत्रिजातस्सधान्यः। गौलोपेतः शर्करापांशुमिश्रो रागो ज्ञेयः षाडवो दाडिमाम्लः॥ रागषाडव—क्वथितं तु गुडोपेतं सहकारफलं नवम्। तैलनागरसंयुक्तो विज्ञेयो रागषाडवः॥ षाड़व से कोई यमानी षाड़व लेते हैं।

वि० मन्तव्य—राग एवं खाड़व या षाडव—विविध प्रकार के खटमिठे एवं चटपटे—चटनी, अचार मुरब्बा आदि पदार्थ ॥१२॥

आस्थापनं विधिवदत्र विरेचनं च
कुर्यान्मृदूनि शिरसश्च विरेचनानि।

इस अरोचक में विधिपूर्वक निरूह देवे। मृदुविरेचन, शिरोविरेचन (मृदु) देवे।

त्रीण्यूषणानि रजनीत्रिफलायुतानि
चूर्णीकृतानि यवशूकविमिश्रितानि ॥१३॥
क्षौद्रायुतानि वितरेन्मुखबोधनार्थ-
मन्यानि तिक्तकटुकानि च भेषजानि।

त्रिकटु, हल्दी, त्रिफला, इनका चूर्ण करके, यवक्षार मिलाकर मधु के साथ मुख में रसोत्पत्ति के लिये अवलेह रूप में चटाये।

वि० मन्तव्य—मुखबोधनार्थ—रसनेन्द्रिय को जगाने के लिये। जिससे रस का भलीभांति ग्रहण हो—अनुभव हो ॥१३॥

मुस्तादिराजतरुवर्गदशाङ्गसिद्धैः
क्वाथैर्जयेन्मधुयुतैर्विविधैश्च लेहैः ॥१४॥
मूत्रासवैर्गुडकृतैश्च तथा त्वरिष्टैः
क्षारासवैश्च मधुमाधवतुल्यगन्धैः।

मुस्तादिगण, आरग्वधादिगण, दशमूल इनके क्वाथ में तिक्त-कटु द्रव्यों से बनाये लेह मधु के साथ खाये। मूत्र से बनाये आसव, गुड़ से बनाये अरिष्ट, पलाशक्षार पानी के साथ बनाये क्षारासव, मधु (मद्यभेद), माधव (मधुकृतमद्य) इनके समान गन्धवाले मद्य पीये ॥१४॥

स्यादेष एव कफवातहते विधिश्च
शान्ति गते हुतभुजि प्रशमाय तस्य ॥१५॥

कफ वात के कारण अग्निमान्द्य होने पर उनकी शान्ति के लिये यह विधि बरते ॥१५॥

इच्छाभिघातभयशोकहतेऽन्तरग्नौ
भावान् भवाय वितरेत् खलु शाक्यरूपात्।
अर्थेषु चाप्यपचितेषु पुनर्भवाय
पौराणिकैः श्रुतिशतैरनुमानयेत्तम् ॥१६॥
दैन्यं गते मनसि बोधनमत्र शस्तं
यद्यत् प्रियं तदुपसेव्यमरोचके तु ॥१७॥

वांछित वस्तु की अप्राप्ति से, भय से, शोक से अन्तरग्नि-जठराग्नि के नष्ट हो जाने पर प्राप्य पदार्थों को रुचि उत्पन्न करने के लिये रोगी को देवे। अप्राप्त विषयों के फिर से प्राप्त होने के लिये पुरातन सैकड़ों कथायें (राम, नल, युधिष्ठिर-आदि की) सुनाकर उसे समझाये। मन में दीनता (न्युरेंसथेनिया) हो जाने पर-आश्वासन देना उत्तम है। अरोचक में जो जो प्रिय हो, वह-वह सेवन करना चाहिये ॥१६,१७॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रेऽरोचकप्रतिषेधो नाम (एकोनविंशोऽध्यायः, आदितः) सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अथातः मूत्राघातप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे मूत्राघातप्रतिषेध अध्याय का व्याख्यान करेंगे-जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था।

वि० मन्तव्य—मूत्राघातों में मूत्र को बढ़ानेवाले शुद्ध करनेवाले, प्रवृत्त करनेवाले आहार, विहार तथा औषध का प्रयोग किया जाता है। श्लो० २७ में कहे उपचारों के साथ २ वस्ति प्रदेश तथा समस्त उदर पर शीतल अथवा उष्ण जल का सेचन, राई एवं सौंफ आदि का लेप एवं शीतल जल में अवगाह आदि का प्रयोग भी किया जाय ॥१,२॥

वातकुण्डलिकाऽष्ठीला वातबस्तिस्तथैव च।
मूत्रातीतः सजठरो मूत्रोत्सङ्गः क्षयस्तथा ॥३॥
मूत्रग्रन्थिर्मूत्रशुक्रमुष्णवातस्तथैव च।
मूत्रौकसादौ द्वौ चापि रोगा द्वादश कीर्तिताः ॥४॥

वातकुण्डलिका, अष्ठीला, वातवस्ति, मूत्रातीत, मूत्रजठर, मूत्रोत्संग, मूत्रक्षय, मूत्रग्रन्थि, मूत्रशुक्र, उष्णवात, मूत्रौकसाद (दो) इस प्रकार से बारह प्रकार के मूत्राघात कहे हैं।

वक्तव्य—चरक में वाताष्ठीला माना है। अष्ठीला का अर्थ प्रोस्टेट ग्रन्थि से है। अष्ठीला के लिये पत्थर या लोहारों की नेह का जो अर्थ किया है, वह इसकी कठोरता का द्योतक है। यह ग्रन्थि भी बढ़कर कठोर होती है। प्रोस्टेट ग्रन्थि से उत्पन्न मूत्राघात में प्रायः यह होता है कि रोगी का मन जब इधर मूत्र प्रवाहण में लगा रहता है, तभी मूत्र रुकता है, मन अन्यत्र लगा हो तो मूत्र आता रहता है। सम्भवतः इसीलिये इसे वाताष्ठीला नाम दिया हो। चरक में बस्तिकुण्डल नामक एक अन्य मूत्राघात माना है, इसको मानकर तेरह मूत्राघात माने हैं। यह रोग असाध्य है, यथा—द्रुताध्वलंघनायासादभिघातात्प्रपीडनात्। स्वस्थानाद् वस्तिरुद्वृत्तः स्थूलस्तिष्ठति गर्भवत् ॥ शूलस्पन्दनदाहार्त्तो बिन्दुं बिन्दुं स्रवत्यपि। पीडितस्तु सृजेद्धारां संस्तम्भोद्वेष्टनार्तिमान् ॥ बस्तिकुण्डलमाहुस्तं घोरं शस्त्रविषोपमम्। पवनप्रबलं प्रायो दुर्निवारमबुद्धिभिः ॥ चरक सि० अ० ९। ४४-४६ ॥३,४॥

रौक्ष्याद्वेगविघाताद्वा वायुरन्तरमाश्रितः।
मूत्रं चरति संगृह्य विगुणः कुण्डलीकृतः ॥५॥
सृजेदल्पाल्पमथवा सरुजस्कं शनैः शनैः।
वातकुण्डलिकां तं तु व्याधिं विद्यात् सुदारुणम् ॥६॥

वातकुण्डलिका—रूक्षता से या मलमूत्रादि के उपस्थित वेगों को रोकने के कारण बस्ति में आश्रित वायु मूत्र को साथ में लेकर (रोककर), वर्त्तुलाकार बनकर, विरुद्ध गति होकर गति करती है। इससे मूत्र थोड़ा थोड़ा वेदना के साथ, धीरे धीरे प्रवृत्त होता है। इस अवस्था को वातकुण्डलिका कहते हैं, यह अतिदारुण है।

गतिसंगाद् उदावृत्तः समूत्रस्थानमार्गयोः। मूत्रस्य विगुणो वायुः भग्नव्याविद्धकुण्डली ॥ मूत्रं विहन्ति संस्तम्भमङ्गगौरववेदनैः। तीव्ररुक् मूत्रविट्संगैः वातकुण्डलिकेति सा ॥ चरक सि० अ० ९ ॥५,६॥

शकृन्मार्गस्य बस्तेश्च वायुरन्तरमाश्रितः।
अष्ठीलावद्घनं ग्रन्थिं करोत्यचलमुन्नतम् ॥७॥
विण्मूत्रानिलसङ्गश्च तत्राध्मानं च जायते।
वेदना च परा बस्तौ वाताष्ठीलेति तां विदुः ॥८॥

गुद और मूत्राशय के मध्य में स्थित अपान वायु अष्ठीला के समान कठोर ग्रन्थि को उत्पन्न करती है। यह ग्रन्थि स्थिर, ऊँची उठी होती है। इसके कारण मल-मूत्र वायु का अवरोध होता है, मूत्राशय में आध्मान होता है। बस्ति में तीव्र वेदना होती है, इसे वाताष्ठीला कहते हैं ॥७,८॥

वेगं विधारयेद्यस्तु मूत्रस्याकुशलो नरः।
निरुणद्धि मुखं तस्य बस्तेर्बस्तिगतोऽनिलः ॥९॥
मूत्रसङ्गो भवेत्तेन बस्तिकुक्षिनिपीडितः।
वातबस्तिः स विज्ञेयो व्याधिः कृच्छ्रप्रसाधनः ॥१०॥

जो मूर्ख व्यक्ति मूत्र के उपस्थित वेग को रोकता है, उसमें बस्तिगत अपान बस्ति के मुख को बन्द कर देता है, इससे मूत्र की रुकावट हो जाती है, बस्ति (मूत्राशय) और कुक्षि में वेदना होती है। इस रोग को वातवस्ति जानना, यह कष्टसाध्य है ॥९,१०॥

वेगं सन्धार्य मूत्रस्य यो भूयः स्रष्टुमिच्छति।
तस्य नाभ्येति यदि वा कथञ्चित्संप्रवर्तते ॥११॥
प्रवाहतो मन्दरुजमल्पमल्पं पुनः पुनः।
मूत्रातीतं तु तं विद्यान्मूत्रवेगविघातजम् ॥१२॥

मूत्र के प्रवृत्तोन्मुख वेग को रोककर जब फिर से मनुष्य प्रवृत्त करना चाहता है तब उसका मूत्र प्रवाहित नहीं होता, यदि किसी प्रकार होता भी है, तो मूत्र धीरे-धीरे, थोड़ा थोड़ा, वार वार (रुक-रुक कर) आता है। इसको मूत्रातीत कहते हैं, यह रोग मूत्र वेग के रोकने से उत्पन्न होता है ॥११,१२॥

मूत्रस्य विहते वेगे तदुदावर्तहेतुना।
अपानः कुपितो वायुरुदरं पूरयेद् भृशम् ॥१३॥
नाभेरधस्तादाध्मानं जनयेत्तीव्रवेदनम्।
तं मूत्रजठरं विद्यादधःस्रोतोनिरोधनम् ॥१४॥

उदावर्त के कारण मूत्र के वेग के रुक जाने से कुपित हुआ अपान वायु उदर में अतिशय रूप से भर जाता है। इससे नाभि के नीचे तीव्र वेदना युक्त आध्मान होता है। इसको मूत्र जठर कहते हैं, इससे मूत्र और मलवाही स्रोत बन्द हो जाते हैं। (यह उदावर्त प्रायः वातजन्य होता है) ॥१३,१४॥

बस्तौ वाऽप्यथवा नाले मणौ वा यस्य देहिनः।
मूत्रं प्रवृत्तं सज्जेत सरक्तं वा प्रवाहतः ॥१५॥
स्रवेच्छनैरल्पमल्पं सरुजं वाऽथ नीरुजम्।
विगुणानिलजो व्याधिः स मूत्रोत्सङ्गसंज्ञितः ॥१६॥

मूत्रप्रवाहण करते करते मूत्र वस्ति में या मूत्रनाल में अथवा मेहन की मणि (अग्रभाग) में सहसा बन्द हो जाये (रुक जाये) या प्रवाहण करते समय रक्त के साथ, धीरे, थोड़ा-थोड़ा, वेदना के साथ अथवा वेदना के बिना प्रवाहित हो, वह मूत्रोत्सङ्ग रोग है। यह रोग विमार्गगामि वायु (अपानवायु) के कारण उत्पन्न होता है। (इससे मेहन में भारीपन होता है) ॥१६॥

रूक्षस्य क्लान्तदेहस्य बस्तिस्थौ पित्तमारुतौ।
सदाहवेदनं कृच्छ्रं कुर्यातां मूत्रसंक्षयम् ॥१७॥

रूक्ष एवं क्लान्त शरीरवाले पुरुष के वस्ति में स्थित पित्त और वायु कष्टदायक दाह, वेदना उत्पन्न करते हैं, इसको मूत्रसंक्षय कहते हैं।

वि० मन्तव्य—इसमें—मूत्र का निर्माण ही नहीं होता अथवा बहुत थोड़ा होता है, वातात् मूत्रे शुष्यति संक्षयः च० सि० अ० ६ अर्थात् वायु के कारण मूत्र सूखने पर मूत्रक्षय नामक रोग हो जाता है ॥१७॥

अभ्यन्तरे बस्तिमुखे वृत्तोऽल्पः स्थिर एव च।
वेदनावानति सदा मूत्रमार्गनिरोधनः ॥१८॥
जायते सहसा यस्य ग्रन्थिरश्मरिलक्षणः।
स मूत्रग्रन्थिरित्येवमुच्यते वेदनादिभिः ॥१९

बस्तिद्वार के अन्दर, गोल, छोटी, स्थिर सदा वेदना युक्त, मूत्रमार्ग को रोकनेवाली, अश्मरी के लक्षणों से युक्त, ग्रन्थि जिस पुरुष में सहसा उत्पन्न हो जाती है, इसे मूत्रग्रन्थि कहते हैं, वेदना आदि से अश्मरी के लक्षण होते हैं।

वक्तव्य—अश्मरी और मूत्रग्रन्थि में भेद—अश्मरी में रक्त का सम्बन्ध होता है। "रक्तं वातकफाद्दुष्टं बस्तिद्वारे सुदारुणम्। ग्रन्थिं कुर्यात् स कृच्छ्रेण सृजेन्मूत्रं तदावृतम्॥ अश्मरीसमशूलं तं मूत्रग्रन्थिं प्रचक्षते॥"

चरक सि० अ० ६।४० ॥१८,१९॥

प्रत्युपस्थितमूत्रस्तु मैथुनं योऽभिनन्दति।
तस्य मूत्रयुतं रेतः सहसा संप्रवर्तते ॥२०॥
पुरस्ताद्वाऽपि मूत्रस्य पश्चाद्वाऽपि कदाचन।
भस्मोदकप्रतीकाशं मूत्रशुक्रं तदुच्यते ॥२१॥

मूत्र वेग के उपस्थित होने पर जो पुरुष मैथुन करता है, उसमें वीर्य के साथ मूत्र सहसा प्रवृत्त होता है। यह वीर्य कभी मूत्र के पहले या कभी मूत्र के पीछे प्रवृत्त होता है। इसमें मूत्र का रंग राख मिश्रित पानी के समान होता है, इसको मूत्रशुक्र कहते हैं ॥२०,२१॥

व्यायामाध्वातपैः पित्तं बस्तिं प्राप्यानिलावृतम्।
बस्तिं मेढ्रं गुदं चैव प्रदहन् स्रावयेदधः ॥२२॥
मूत्रं हारिद्रमथवा सरक्तं रक्तमेव वा।
कृच्छ्रात् प्रवर्तते जन्तोरुष्णवातं वदन्ति तम् ॥२३॥

व्यायाम, मुसाफरी, धूप आदि से वायु द्वारा आवृत पित्त वस्ति में पहुँच कर वस्ति, मेहन गुद को जलाता हुआ मूत्र को नीचे की ओर प्रवृत्त करता है। इसमें मूत्र का रंग हल्दी के समान या रक्त मिश्रित या केवल रक्त ही आता कठिनाई से प्रवृत्त होता है, इसको उष्णवात कहते हैं ॥२२,२३॥

विशदं पीतकं मूत्रं सदाहं बहलं तथा।
शुष्कं भवति यच्चापि रोचनाचूर्णसन्निभम् ॥२४॥
मूत्रौकसादं तं विद्याद्रोगं पित्तकृतं बुधः।
पिच्छिलं संहतं श्वेतं तथा कृच्छ्रप्रवर्तनम् ॥२५॥
शुष्कं भवति यच्चापि शङ्खचूर्णप्रपाण्डुरम्।
मूत्रौकसादं तं विद्यादामयं द्वादशं कफात् ॥२६॥

जब मूत्र—विशद (पिच्छिल विपरीत), पीत वर्ण, दाह-युक्त, घट्ट होता है। इसका रंग सूखने पर गोरोचना के चूर्ण के समान होता है। इस रोग को मूत्रौकसाद कहते हैं, इस रोग को बुद्धिमान् पित्तजन्य कहते हैं। जब मूत्र पिच्छिल, घट्ट, श्वेत, क्लेश से प्रवृत्त होता है, तथा सूखने पर शंख के चूर्ण के समान श्वेत वर्ण होता है, इसको मूत्रौकसाद कहते हैं, यह कफ के कारण से होता है, ये बारह मूत्राघात कह दिये हैं॥

कषायकल्कसर्पींषि भक्ष्यान् लेहान् पयांसि च।
क्षारमद्या (ध्वा) सवस्वेदान् बस्तींश्चोत्तरसंज्ञितान् २७
विदध्यान्मतिमांस्तत्र विधिं चाश्मरिनाशनम्।

सामान्यचिकित्सा—कषाय, कल्क, घृत, भक्ष्य, लेह, दूध, क्षार, मद्य, आसव, स्वेद, उत्तरवस्ति और अश्मरि नाशक विधि बुद्धिमान् इनमें बरते ॥२७॥

मूत्रोदावर्तयोगांश्च कार्त्स्न्येनात्रप्रयोजयेद् ॥२८॥

मूत्रजन्य उदावर्त के योग (सौवर्चलाढ्यां मदिरां इत्यादि) भी मूत्राघातों में बरते ॥२८॥

कल्कमेर्वारुबीजानामक्षमात्रं ससैन्धवम्।
धान्याम्लयुक्तं पीत्वैव मूत्रकृच्छ्रात् प्रमुच्यते ॥२९॥

ककड़ी, खीरे आदि के बीजों का कल्क एक कर्ष, सैन्धव के साथ मिलाकर कांजी के साथ पीने पर मूत्रकृच्छ्र से मुक्त हो जाता है ॥२९॥

सुरां सौवर्चलवतीं मूत्रकृच्छ्री पिबेन्नरः।
मधु मांसोपदंशं वा पिबेद्वाऽप्यथ गौडिकम् ॥३०॥

मूत्रकृच्छ्र युक्त रोगी सौवर्चल युक्त सुरा को पीये। मांस भक्षण करके मधु मद्य या गुड़ का बना मद्य पीये ॥३०॥

पिबेत् कुङ्कुमकर्षं वा मधूदकसमायुतम्।
रात्रिपर्युषितं प्रातस्तथा सुखमवाप्नुयात् ॥३१॥

केसर को एक कर्ष मात्रा में मधु के शर्बत से पीये। इस शर्बत को रात में बनाकर रख दे, और प्रातः पीये ॥३१॥

दाडिमाम्लां युतां मुख्यामेलाजीरकनागरैः ।
पीत्वा सुरां सलवणां मूत्रकृच्छ्रात् प्रमुच्यते ॥३२॥

अनार का रस (या अनारदाना), इलायची, जीरा, सोंठ, थोड़ा सा नमक, पिष्टि से बनी सुरा में मिलाकर पीने पर मूत्रकृच्छ्र से रोगी मुक्त हो जाता है ॥३२॥

पृथक्पर्ण्यादिवर्गस्य मूलं गोक्षुरकस्य च ।
अर्धप्रस्थेन तोयस्य पचेत् क्षीरचतुर्गुणम् ॥३३॥
क्षीरावशिष्टं तच्छीतं सिताक्षौद्रयुतं पिबेत् ।
नरो मारुतपित्तोत्थमूत्राघातनिवारणम् ॥३४॥

विदारीगन्धादिवर्ग, गोखरू का मूल, इसके आधे प्रस्थ से, दूध से चार गुणे पानी में दूध का पाक करे। दूध मात्र शेष रहने पर, इसे शीतल करके इसमें शर्करा और मधु मिलाकर पीये। इससे वात पित्तजन्य मूत्राघात नष्ट होते हैं ॥३३,३४॥

निष्पीड्य वाससा सम्यग्वर्चो रासभवाजिनोः ।
रसस्य कुडवं तस्य पिबेन्मूत्ररुजापहम् ॥३५॥

गधे और घोड़े की लीद को कपड़े में से भली प्रकार निचोड़कर इस रस का एक कुडव पीये। यह मूत्र वेदना को नष्ट करता है ॥३५॥

मुस्ताऽभयादेवदारुमूर्वाणां मधुकस्य च
पिबेदक्षसमं कल्कं मूत्रदोषनिवारणम् ॥३६॥

मुस्ता, हरड़, देवदारु, मूर्वा, मुलैहठी इनका कल्क, एक अक्षमात्रा में पीये। यह मूत्र दोष को नष्ट करता है ॥३६॥

अभयामलकाक्षाणां कल्कं बदरसंमितम् ।
अम्भसाऽलवणोपेतं पिबेन्मूत्ररुजापहम् ॥३७॥

हरड़, आंवला, बहेड़ा, प्रत्येक आधा कर्ष लेकर इसमें थोड़ा सा नमक मिलाकर जलसे पीये। मूत्र वेदनाको नष्ट करता है॥

उदुम्बरसमं कल्कं द्राक्षाया जलसंयुतम् ।
पिबेत् पर्युषितं रात्रौ शीतं मूत्ररुजापहम् ॥३८॥

द्राक्षा का कल्क एक कर्ष लेकर जल में भिगोकर रातभर पड़ा रहने देवे। प्रातःकाल इसको शीतल पीये—मूत्रवेदना को नष्ट करता है ॥३८॥

निदिग्धिकायाः स्वरसं पिबेत् कुडवसंमितम् ।
मूत्रदोषहरं कल्कमथवा क्षौद्रसंयुतम् ॥३९॥

कटेरी का स्वरस चार पल मात्रा में प्रातः पीये। यह मूत्र दोष नाशक है ॥३९॥

प्रपीड्यामलकानां तु रसं कुडवसंमितम् ।
पीत्वाऽगदी भवेज्जन्तुर्मूत्रदोषरुजातुरः ॥४०॥

अथवा आंवलों को निचोड़कर उनका स्वरस एक एक कुडव (चारपल) मात्रा में मधु के साथ पीये। इसके पीने से मूत्र दोष जन्य वेदना से पीड़ित मनुष्य स्वस्थ होता है ॥४०॥

धात्रीफलरसेनैवं सूक्ष्मैलां वा पिबेन्नरः ।

आंवले के फल के स्वरस से ही छोटी इलायची का चूर्ण मनुष्य पीये।

पिष्ट्वाऽथवा सुशीतेन शालितण्डुलवारिणा ॥४१॥
तालस्य तरुणं मूलं त्रपुसस्य रसं तथा ।
श्वेतं कर्कटकं चैव प्रातस्तु पयसा पिबेत् ॥४२॥

ताड़ के नूतन मूल को या खीरे के रस को शाली चावलों के शीतल जल से पीसकर पीये अथवा खीरे को दूध के साथ प्रातःकाल पीये ॥४१,४२॥

शृतं वा मधुरैः क्षीरं सर्पिर्मिश्रं पिबेन्नरः ।
मूत्रदोषविशुद्ध्यर्थं तथैवाश्मरिनाशनम् ॥४३॥

काकोल्यादि मधुर गण से सिद्ध किया दूध घी मिलाकर मनुष्य पीये। इससे मूत्र दोष एवं अश्मरी नष्ट होते हैं ॥४३॥

बलाश्वदंष्ट्राक्रौञ्चास्थिकोकिलाक्षकतण्डुलान् ।
शतपर्वकमूलं च देवदारु सचित्रकम् ॥४४॥
अक्षबीजं च सुरया कल्कीकृत्य पिबेन्नरः ।
मूत्रदोषविशुद्ध्यर्थं तथैवाश्मरिनाशनम् ॥४५॥

बला, गोखरु, कौंच की अस्थि, तालमखाना, चावल, शतपर्वक मूल (जल गण्डीर दूब) देवदारु, चित्रक, बहेड़े की मजा इनको सुरा के साथ पीसकर (सुरा से) मनुष्य पीये। इससे मूत्र दोषों का शोधन होता है, और अश्मरी नष्ट होती है ।४४,४५।

पाटलाक्षारमाहृत्य सप्तकृत्वः परिस्रुतम् ।
पिबेन्मूत्रविकारघ्नं संसृष्टं तैलमात्रया ॥४६॥

पाटला के क्षार को जल में घोलकर नितारे, इस प्रकार सात बार करे। इसमें थोड़ा सा तैल मिलाकर पीये, यह मूत्र विकार को नष्ट करता है। (क्षार और जल का प्रमाण क्षार कल्प विधि से जानना। इसमें क्षार को चौगुने जलमें घोलकर छानना चाहिये) ॥४६॥

नलाश्मभेददर्भेक्षुत्रपुसैर्वारुबीजकान् ।
क्षीरे परिश्रृतान् तत्र पिबेत् सर्पिःसमायुतान् ॥४७॥

नड़सर, पाषाणभेद, दर्भ, ईख, खीरा, ककड़ी, एवं बिजयसार इनको दूध में पकाकर घी मिलाकर पीये।

वक्तव्य—वृद्ध काश्यपीयसंहिता के वचन से खीरा ककड़ी के बीज लेने चाहिये। यह ठीक भी है, विजयसार (असन) मूत्रल नहीं है। यहाँ पर मूत्रल वस्तुओं का ग्रहण है ॥४७॥

पाटल्या यावशूकाच्च पारिभद्रात्तिलादपि ।
क्षारोदकेन मतिमान् त्वगेलोषणचूर्णकम् ॥४८॥
पिबेद्गुडेन मिश्रं वा लिह्याल्लेहान् पृथक् पृथक् ।

पाटला, यवक्षार, पारिभद्र (फरहद या बकायन), तिल इनके क्षारोदक से दालचीनी, इलायची पिप्पली इनका चूर्ण पीये। अथवा पाटला आदि प्रत्येक के पृथक् २ क्षारोदक में दालचीनी आदि का चूर्ण मिलाकर गुड़ के साथ लेह बनाकर खाये ।४८।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि मूत्रदोषे क्रमं हितम् ॥४९॥
स्नेहस्वेदोपपन्नानां हितं तेषु विरेचनम् ।
ततः संशुद्धदेहानां हिताश्चोत्तरबस्तयः ॥५०॥

अब इसके आगे मूत्र दोष में चिकित्सा विधि को कहूँगा। स्वेदन देकर रोगी को विरेचन देवे। इससे शरीर का शोधन हो जाने पर उत्तर बस्तियाँ देनी चाहिये ॥४९,५०॥

स्त्रीणामतिप्रसङ्गेन शोणितं यस्य दृश्यते ।
मैथुनोपरमस्तस्य बृंहणश्च विधिः स्मृतः ॥५१॥

स्त्रियों के अतिसंग करने से जिस पुरुष में रक्त प्रवृत्ति हो, वह मैथुन से निवृत्त होकर बृंहण विधि (मांस-क्षीर आदि का सेवन) को करे।

वि० मन्तव्य—उत्तर बस्ति की विधि सु० चि० अ० ३७ श्लो० १०८-११३ में देखिये ॥५१॥

ताम्रचूडवसा तैलं हितं चोत्तरबस्तिषु ।
विधानं तस्य पूर्वं हि व्यासतः परिकीर्तितम् ॥५२॥

मुर्गे की वसा और तैल इनको उत्तरबस्ति में देना हितकारी है। उत्तरबस्ति की विधि विस्तार से पहले कह दी है ॥

क्षौद्रार्धपात्रं दत्त्वा च पात्रं तु क्षीरसर्पिषः ।
शर्करायाश्च चूर्णं च द्राक्षाचूर्णं च तत्समम् ॥५३॥
स्वयङ्गुप्ताफलं चैव तथैवेक्षुरकस्य च ।
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तमर्धभागं प्रकल्पयेत् ॥५४॥
तदैकध्यं समानीय खजेनाभिप्रमन्थयेत् ।
ततः पाणितलं चूर्णं लीढ्वा क्षीरं ततः पिबेत् ॥५५॥
एतत् सर्पिः प्रयुञ्जानः शुद्धदेहो नरः सदा ।
मूत्रदोषाञ्जयेत् सर्वानन्ययोगैः सुदुर्जयान् ॥५६॥
जयेच्छोणितदोषांश्च वन्ध्या गर्भं लभेत च ।
नारी चैतत् प्रयुञ्जाना योनिदोषात् प्रमुच्यते ॥५७॥

मधु आधा आढक, दूध को मथकर निकाला घी एक आढक, शर्करा का चूर्ण, द्राक्षा चूर्ण प्रत्येक एक आढक, कौंच का, तालमखाने का, पिप्पली का चूर्ण प्रत्येक आधा भाग (आधा आढक) मिलाये। इन सबको एक करके मन्थन दण्ड से मथे। इसमें एक कर्ष (या हथेली में आनेवाली) मात्रा चाट कर ऊपर से दूध पीये। वमनादि से शुद्ध शरीर होकर इस घृत का सेवन सदा करने से, मूत्रदोष जन्य सब रोगों को, जो कि दूसरे योगों से शान्त नहीं हो सकते, वे सब शान्त होते हैं। रक्तजन्य दोष भी शान्त हो जाते हैं। वन्ध्या स्त्री गर्भ धारण करती है। इस घी के सेवन में स्त्री योनि दोषों से मुक्त हो जाती है ॥५३-५७॥

बला कोलास्थि मधुकं श्वदंष्ट्राऽथ शतावरी ।
मृणालं च कशेरुश्च बीजानीक्षुरकस्य च ॥५८॥
सहस्रवीर्याऽशुमती पयस्या सह काल्या ।
शृगालविन्नाऽतिबला बृंहणीयो गणस्तथा ॥५९॥
एतानि समभागानि मतिमान् सह साधयेत् ।
चतुर्गुणेन पयसा गुडस्य तुलया सह ॥६०॥
द्रोणावशिष्टं तत् पूतं पचेत्तेन घृताढकम् ।
तत् सिद्धं कलशे स्थाप्यं क्षौद्रप्रस्थेन संयुतम् ॥६१॥
सर्पिरेतत् प्रयुञ्जानो मूत्रदोषात् प्रमुच्यते ।
तुगाक्षीर्याश्च चूर्णानि शर्करायास्तथैव च ॥६२॥
क्षौद्रेण तुल्यान्यालोड्य शस्तेऽहनि लेहयेत् ।
तस्य खादेद्यथाशक्ति मात्रां क्षीरं ततः पिबेत् ॥६३॥
शुक्रदोषाञ्जयेन्मर्त्यः प्राश्य सम्यक् सुयन्त्रितः ।
व्यवायक्षीणरेतास्तु सद्यः संलभते सुखम् ॥६४॥
ओजस्वी बलवान्मर्त्यः पिबन्नेव च हृष्यति ।

बलाघृत—बला, बेर की मज्जा, मुलैहठी, गोखरू, शतावरी कमलनाल, कशेरू, तालमखाने बीज, दूर्वा, शालपर्णी, विदारी, कालानुसारिवा, पृश्निपर्णी, अतिबला, काकोल्यादिगण (गिलोय को छोड़कर), इनको परस्पर समान भाग लेकर चार गुणे जल में, एक तुला (एक सौ पल) गुड़ के साथ पकाये। द्रोण परिमाण (चार आढ़क) शेष रहने पर उतार कर, इससे एक आढ़क घृत सिद्ध करे। इस घृत के सेवन से मनुष्य मूत्र दोषों से मुक्त हो जाता है। (डल्हण ने पय का अर्थ दूध किया है। परन्तु पानी के बिना औषधियों का रस नहीं आता)। वंशलोचन का चूर्ण, शर्करा का चूर्ण इनको समान भाग लेकर सबके बराबर मधु मिलाकर प्रशस्त दिन में चाटना प्रारम्भ करे। इसमें से यथाशक्ति मात्रा खाकर पीछे से दूध पीये। जितेन्द्रिय बनकर इसके खाने से मनुष्य शुक्रदोषों से मुक्त हो जाता है। मैथुन से क्षीण मनुष्य शीघ्र ही आरोग्य लाभ करता है। ओजस्वी बलवान् मनुष्य इसके पीने से ही उत्तेजित हो जाता है ॥५८-६४॥

चित्रकः सारिवा चैव बला कालानुसारिवा ॥६५॥
द्राक्षा विशाला पिप्पल्यस्तथा चित्रफला भवेत् ।
तथैव मधुकं पथ्यां दद्यादामलकानि च ॥६६॥
घृताढकं पचेदेभिः कल्कैः कर्षसमन्वितैः ।
क्षीरद्रोणे जलद्रोणे तत्सिद्धमवतारयेत् ॥६७॥
शीतं परिस्रुतं चैव शर्काराप्रस्थसंयुतम् ।
तुगाक्षीर्याश्च तत् सर्वं मतिमान् परिमिश्रयेत् ॥६८॥
ततो मितं पिबेत्काले यथादोषं यथाबलम् ।
वातरेताः श्लेष्मरेताः पित्तरेतास्तु यो भवेत् ॥६९॥
रक्तरेता ग्रन्थिरेताः पिबेदिच्छन्नरोगताम् ।
जीवनीयं च वृष्यं च सर्पिरेतद्बलावहम् ॥७०॥
प्रज्ञाहितं च धन्यं च सर्वरोगापहं शिवम् ।
सर्पिरेतत् प्रयुञ्जाना स्त्री गर्भं लभतेऽचिरात् ॥७१॥
असृग्दोषाञ्जयेच्चापि योनिदोषांश्च संहतान् ।
मूत्रदोषेषु सर्वेषु कुर्यादेतच्चिकित्सितम् ॥७२॥

महाबलाघृत—चित्रक, सारिवा, बला, कालानुसारिवा, द्राक्षा, इन्द्रायण, पिप्पली, एरण्ड, मुलैहठी, हरड़, आंवला प्रत्येक एक कर्ष लेकर इनके कल्क से, एक द्रोण जल, एक द्रोण में घी का एक आढ़क सिद्ध करे। छानकर शीतल होने पर इसमें शर्करा एक प्रस्थ, वंशलोचन एक प्रस्थ, भली प्रकार मिलाये। इसमें से परिमित मात्रा को, यथासमय, दोष और बल के अनुसार पीये। वात से, पित्त से, कफ से दूषित शुक्र-वाला, रक्त से दूषित, ग्रन्थि रेतवाला जो स्वास्थ्य-आरोग्य चाहे, वह पीये। यह घृत जीवनीय, बृंहण, बलवर्धक है। बुद्धि के लिये हितकारी, धन्य, सर्वरोगनाशक, कल्याणकारी है। इस घृत के सेवन से स्त्री को पुत्र प्राप्ति शीघ्र ही होती है। असृग्जन्य दोषों को तथा सम्पूर्ण दोषों को यह घृत नष्ट करता है सम्पूर्ण मूत्र दोषों में यह चिकित्सा करे ॥६५-७२॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे मूत्राघातप्रतिषेधो नाम (विंशोऽध्यायः, आदितः) अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

ऊनषष्टितमोऽध्यायः

अथातो मूत्रकृच्छ्रप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥१॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे मूत्रकृच्छ्रप्रतिषेध अध्याय का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

वातेन पित्तेन कफेन सर्वै-
स्तथाऽभिघातैः शकृदश्मरीभ्याम्।
तथापरः शर्करया सुकष्टो
मूत्रोपघातः कथितोऽष्टमस्तु ॥३॥

मूत्रकृच्छ्र आठ प्रकार के हैं, यथा—वायु से, पित्त से, कफ से, सन्निपात से, अभिघात से, शकृत् के कारण, अश्मरी से और शर्करा से मूत्रकृच्छ्र (दुःख से मूत्र प्रवृत्ति) होती है।

वक्तव्य—मूत्राघात में मूत्र का अवरोध रुकावट रहती है। मूत्रकृच्छ्र में मूत्र प्रवृत्त होता है, परन्तु कठिनाई से प्रवृत्त होता है ॥३॥

अल्पमल्पं समुत्पीड्य मुष्कमेहनबस्तिभिः।
फलद्भिरिव कृच्छ्रेण वाताघातेन मेहति ॥४॥

वातजन्य मूत्रकृच्छ्र में वायु, मुष्क, मेहन, वस्ति (मूत्राशय) को पीड़ित करके कठिनाई से थोड़ा-थोड़ा मूत्र त्याग करता है, यह वेदना फटने के समान होती है। मुष्क वस्ति मेहन में फटने के समान बेदना रहती है ॥४॥

हारिद्रमुष्णं रक्तं वा मुष्कमेहनबस्तिभिः।
अग्निना दह्यमानाभैः पित्ताघातेन मेहति ॥५॥

पित्ताजन्यमूत्रकृच्छ्र में मुष्क-मेहन वस्ति में अग्नि से जलते हुए के समान, हल्दी की भाँति पीला, उष्ण, या लाल मूत्र आता है।

वि० मन्तव्य—पित्तजमूत्रकृच्छ्र से रोगी—हल्दी के समान पीला, उष्ण अथवा लाल मूत्र त्यागता है, और अण्डकोश, शिश्न (मूत्र मार्ग) तथा मूत्राशय अग्नि से जलते हुए प्रतीत होते हैं ॥

स्निग्धं शुक्लमनुष्णं च मुष्कमेहनबस्तिभिः।
संहृष्टरोमा गुरुभिः श्लेष्माघातेन मेहति ॥६॥

कफजन्यमूत्रकृच्छ्र में रोमांच होता है, मुष्क, मेहन और वस्ति में भारीपन होता है। मूत्र, चिकना, श्वेत और ईषद् उष्ण त्याग करता है ॥६॥

दाहशीतरुजाविष्टो नानावर्णं मुहुर्मुहुः।
ताम्यमानस्तु कृच्छ्रेण सन्निपातेन मेहति ॥७॥

सन्निपात से रोगी दाह, शीत, वेदना से पीड़ित, नाना रंग का (पीत, रक्त, श्वेत वर्ण), बार-बार तम अन्धकार में प्रविष्ट होता हुआ अतिकष्ट से मूत्र त्याग करता है ॥७॥

मूत्रवाहिषु शल्येन क्षतेष्वभिहतेषु च।
स्रोतःसु मूत्राघातस्तु जायते भृशवेदनः ॥८॥
वातबस्तेस्तु तुल्यानि तस्य लिङ्गानि लक्षयेत्।
शकृतस्तु प्रतीघाताद्वायुर्विगुणतां गतः ॥९॥
आध्मान स सशूलं च मूत्रभङ्गं करोत हि।

मूत्रबाहि स्रोतों में शल्य से क्षत हो जाने पर या चोट लग जाने पर अतिशय वेदनावाला मूत्राघात उत्पन्न होता है। इसमें वात वस्ति के समान लक्षण होते हैं। मल के अवरोध से वायु विपरीतगामि होकर आध्मान, शूल और मूत्र संग उत्पन्न करता है ॥८,९॥

अश्मरीहेतुकः पूर्वं मूत्राघात उदाहृतः ॥१०॥

अश्मरीजन्य मूत्राघात प्रथम निदान स्थान अ० ३ में कह दिया है ॥१०॥

अश्मरी शर्करा चैव तुल्ये संभवलक्षणैः।
शर्कराया विशेषं तु श्रृणु कीर्तयतो मम ॥११॥
पच्यमानस्य पित्तेन भिद्यमानस्य वायुना।
श्लेष्मणोऽवयवा भिन्नाः शर्करा इति संज्ञिताः ॥१२॥
हृत्पीडा वेपथुः शूल कुक्षौ वह्निः सुदुर्बलः।
आभिर्भवति मूर्च्छा च मूत्राघातश्च दारुणः ॥१३॥
मूत्रवेगनिरस्तासु तासु शाम्यति वेदना।
यावदन्या पुनर्नैति गुडिका स्रोतसो मुखम् ॥१४॥
शर्करासंभवस्यैतन्मूत्राघातस्य लक्षणम्।

अश्मरी और शर्करा के कारण और लक्षण समान हैं। शर्करा के विशेष लक्षण मुझ से सुनो, कफ का पित्त से परिपाक होने के समय वायु से टुकड़े-टुकड़े होने पर कफ के छोटे-छोटे टुकड़े शर्करा नाम से कहे जाते हैं। इनसे हृदय में पीड़ा, कम्पन, कुक्षि में शूल, वह्नि में दुर्बलता, मूर्च्छा, और भयानक मूत्राघात होता है। मूत्र वेग में शर्करा निकल जाने से वेदना शान्त हो जाती है। यह वेदना शान्ति

तबतक रहती है, जबतक कि दूसरी शर्करा गुटिका के रूप में स्रोत–मूत्र स्रोत के मुख में नहीं फँस जाती। शर्करांजन्य मूत्राघात के ये लक्षण हैं ॥११-१४॥

चिकित्सितमथैतेषामष्टानामपि वक्ष्यते ॥१५॥

इसके आगे आठों मूत्राघातों की चिकित्सा कही जायेगी ॥

अश्मरीं च समाश्रित्य यदुक्तं प्रसमीक्ष्य तत्।
यथादोषं प्रयुञ्जीत स्नेहादिमपि च क्रमम् ॥१६॥

अश्मरी चिकित्सा में वातादि भेद से जो चिकित्सा कही है, उसी चिकित्सा को दोष के अनुसार करे—स्नेहादि विधि भी करे ॥१६॥

श्वदंष्ट्राश्मभिदौ कुम्भीं हपुषां कण्टकारिकाम्।
बलां शतावरीं रास्नां वरुण गिरिकर्णिकाम् ॥१७॥
तथा विदारिगन्धादिं संहृत्य त्रैवृतं पचेत्।
तैलं घृतं वा तत् पेयं तेन वाऽप्यनुवासनम् ॥१८॥
दद्यादुत्तरबस्तिं च वातकृच्छ्रोपशान्तये।

गोखरु, पाषाणभेद, कुम्भी (जलकुम्भी), हाऊवेर, कटेरी, बला, शतावरी, रास्ना, वरुण, गिरिकर्णिका (अपराजिता कोयल), और विदारिगन्धादिगण, इन सबको एकत्रित करके इनसे त्रैवृत तैल या त्रैवृत घृत (वसा, मज्जा घृत के साथ तैल या वसा मज्जा तैल के साथ घी) बनाये। इनको पीये, अनुवासन बस्ति देवे, और उत्तर वस्ति देवे—इससे वातजन्य मूत्रकृच्छ्र शान्त होता है ॥१७,१८॥

श्वदंष्ट्रास्वरसे तैलं सगुडक्षीरनागरम् ॥१९॥
पक्त्वा तत् पूर्ववद्योज्यं तत्रानिलरुजापहम्।

गोखरू के स्वरस में गुड़, दूध, सोंठ के साथ तैल सिद्ध करे। इस तैल को पान अनुवासन और उत्तरवस्ति में बरते। यह वातजन्य वेदना को शान्त करता है ॥१९॥

तृणोत्पलादिकाकोलीन्यग्रोधादिगणैः कृ (श्रृ) तम् २०
पीतं घृतं पित्तकृच्छ्रं नाशयेत् क्षीरमेव वा।

तृणोत्पलादि, काकोल्यादि, न्यग्रोधादि गण से सिद्ध किया घृत या दूध पित्तजन्यमूत्रकृच्छ्र को नष्ट करता है ॥२०॥

दद्यादुत्तरबस्तिं च पित्तकृच्छ्रोपशान्तये ॥२१॥

इसी से - पित्तजन्यकृच्छ्र की शान्ति के लिये उत्तर वस्ति देवे ॥२१॥

एभिरेव कृतः स्नेहस्त्रिविधेष्वपि बस्तिषु।
हितं विरेचनं चेक्षुक्षीरद्राक्षारसैर्युतम् ॥२२॥

तृणोत्पलादि (पञ्चतृण आदि) से सिद्ध किया स्नेहनिरूह अनुवासन, उत्तर वस्ति तीनों में उत्तम है। इक्षु, दूध, द्राक्षा रस से युक्त विरेचन देना उत्तम है ॥२२॥

सुरसोषकमुस्तादौ वरुणादौ च यत् कृतम्।
तैलं तथा यवाग्वादि कफाघाते प्रशस्यते ॥२३॥

कफजन्यमूत्रकृच्छ्र में—सुरसादि, ऊषकादि मुस्तादिगण में तथा वरुणादिगण में सिद्ध किया तैल एवं सुरसादि, ऊषकादिगण, वरुणादि गण, मुस्तादिगण से सिद्ध की यवागू—लप्सी आदि देवे ॥२३॥

यथादोषोच्छ्रयं कुर्यादेतानेव च सर्वजे।

सान्निपातिक मूत्रकृच्छ्र में जिस दोष की अधिकता दिखाई देवे, उस दोष नाशक चिकित्सा करे।

फल्गुवृश्चीरदर्भाश्मसारचूर्णं च वारिणा ॥२४॥
सुरेक्षुरसदर्भाम्बुपीतं कृच्छ्रं रुजापहम्।

कठगूलर, पुनर्नवा, दर्भ, शिलाजतु इनका चूर्ण, पानी, सुरा, इक्षुरस, दाभ के पानी से (दोष के अनुसार) पीने से मूत्रकृच्छ्र की वेदना को नष्ट करता है। (प्रसंग से सन्निपातजन्य कृच्छ्र को) ॥२४॥

तथाऽभिघातजे कुर्यात् सद्योव्रणचिकित्सितम् ॥२५॥

अभिघातजन्यमूत्रकृच्छ्र में सद्योव्रण चिकित्सा करे ॥२५॥

मूत्रकृच्छ्रे शकृज्जाते कार्या वातहरी क्रिया।
स्वेदावगाहाभ्यङ्गबस्तिचूर्णक्रियास्तथा ॥२६॥

शकृत्जन्य मूत्रकृच्छ्र में वातनाशक चिकित्सा करे। स्वेद, अवगाहन, अभ्यंग, वस्ति, चूर्ण क्रिया विधि करे ॥२६॥

ये त्वन्ये तु तथा कृच्छ्रे तयोः प्रोक्तः क्रियाविधिः ॥२७॥

अश्मरीजन्य, शर्कराजन्य शेष दो जो मूत्रकृच्छ्र हैं, उनमें अश्मरी, शर्करा चिकित्सा की विधि बरतनी चाहिये ॥१७॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते कायचिकित्सातन्त्रे मूत्रकृच्छ्रप्रतिषेधो नाम (एकविंशतितमोऽध्यायः, आदितः) एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

षष्टितमोऽध्यायः

अथातोऽमानुषोपसर्गप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे अमानुषोपसर्गप्रतिषेध अध्याय का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥

वि० मन्तव्य—यहाँ भूतविद्या—जो आयुर्वेद का एक अङ्ग है, का वर्णन किया गया है ॥१,२॥

निशाचरेभ्यो रक्ष्यस्तु नित्यमेव क्षतातुरः।
इति यत् प्रागभिहितं विस्तरस्तस्य वक्ष्यते ॥३॥

क्षत रोगी की नित्य प्रति निशाचरों से रक्षा करनी चाहिये, यह जो पहिले कहा है, उसको विस्तार से कहेंगे।

वक्तव्य—कुछ आधुनिकों का कहना है कि—निशाचर, राक्षस, कृमि, जर्म्स, वैसिलाई, कोकाई, ये सब समानार्थवाची हैं। चूंकि दोनों रात को आक्रमण करते हैं, और मांस को खावे

हैं। इनके गुण धर्म समान हैं, इसलिये इनको राक्षस कहते हैं, परन्तु ॥३॥

गुह्यानागतविज्ञानमनवस्थाऽसहिष्णुता।
क्रिया वाऽमानुषी यस्मिन् स ग्रहः परिकीर्त्यते ॥४॥

सामान्यलक्षण—गुप्तवस्तु का, भावी का (भविष्य का) ज्ञान, अनवस्थिति (अस्थिरता), असहिष्णुता मनुष्यों से अधिक क्रिया (वर देना आदि, या कूदने फाँदने की क्रिया), जिस रोगी में होती है उसे ग्रह से आक्रान्त जाने।

अमर्त्यबलवीर्यपौरुषपराक्रमग्रहणधारणस्मरणज्ञानविज्ञानवचनविज्ञानानि......चरक। वि० अ० ७।

वि० मन्तव्य—आयुर्वेद के सिद्धान्तानुसार ग्रह अर्थात् भूत से आक्रान्त मानव में गुह्याऽनागत विज्ञान आदि भाव उत्पन्न हो जाते हैं, जो अमानुष–अमानवीय होते हैं। इन उन्मादों के निदान, पूर्वरूप, रूप, सम्प्राप्ति एवं उपशय दोषजनित उन्मादों से विलक्षण होते हैं ॥४॥

अशुचिं भिन्नमर्यादं क्षतं वा यदि वाऽक्षतम्।
हिंस्युर्हिंसाविहारार्थं सत्कारार्थमथापि वा ॥५॥

अपवित्र, मर्यादा का अतिक्रमण करनेवाले, व्रणवाले, अथवा व्रण रहित मानव को मारने की इच्छा से अथवा विहार रति के लिये अथवा सत्कार (पूजा) प्राप्त करने के लिये हिंसा करते हैं।

"त्रिविधं तु खलून्मादकराणां भूतानामुन्मादने प्रयोजनं भवति। तद्यथा-हिंसा, रतिः, अभ्यर्चनं चेति॥" चरक ॥५॥

असङ्ख्येया ग्रहगणा ग्रहाधिपतयस्तु ये।
व्यज्यन्ते विविधाकारा भिद्यन्ते ते तथाऽष्टधा ॥६॥

देव-दैत्य राक्षस आदि जो असंख्य ग्रह समूह हैं, वे भिन्न भिन्न प्रकार के लक्षणोंवाले होने से आठ प्रकार के हैं ॥६॥

देवास्तथा शत्रुगणाश्च तेषां
गन्धर्वयक्षाः पितरो भुजङ्गाः।
रक्षांसि या चापि पिशाचजाति-
रेषोऽष्टको देवगणो ग्रहाख्यः ॥७॥

देवता (दीव्यन्तीति-देवाः), देवताओं के शत्रुगण (दैत्य), गन्धर्व, यक्ष, पितर, भुजंग (सांप), राक्षस, और पिशाच (मांस खानेवाले) यह आठ देवगण हैं।

वक्तव्य—चरक में गुरु, वृद्ध, सिद्ध, ऋषि भी इसका कारण कहे हैं। उन्होंने दैत्य और भुजंग को नहीं गिना ॥७॥

संतुष्टः शुचिरपि चेष्टगन्धमाल्यो
निस्तन्द्री ह्यवितथसंस्कृतप्रभाषी।
तेजस्वी स्थिरनयनो वरप्रदाता
ब्रह्मण्यो भवति नरः स देवजुष्टः ॥८॥

देवग्रह से युक्त मनुष्य—संतोषी, पवित्र गन्ध माला की चाह रखनेवाला, आलस्य रहित निरन्तर संस्कृत बोलता (शुद्ध धाराप्रवाह भाषा) है, तेजस्वी, पलकें नहीं गिरतीं (जैसा दमयन्ती के स्वयंवर में देवताओं में पलक नहीं झपकती थी), सबको वर देनेवाला, ब्रह्मण्य (ब्राह्मण के आचार-विचारवाला) मनुष्य देवग्रह से युक्त रहता है ॥८॥

संस्वेदी द्विजगुरुदेवदोषवक्ता
जिह्माक्षो विगतभयो विमार्गदृष्टिः।
सन्तुष्टो भवति न चान्नपानजातै-
र्दुष्टात्मा भवति च देवशत्रुजुष्टः ॥९॥

प्रस्वेद युक्त, ब्राह्मण गुरु देवता के दोषों को कहनेवाला, टेढ़ी आँखों का, भयशून्य, कुमार्ग में दृष्टिवाला, खान पान समूह से भी सन्तुष्ट नहीं होता, दूषित आत्मावाला मनुष्य देवशत्रु (दैत्य) से आक्रान्त रहता है ॥९॥

हृष्टात्मा पुलिनवनान्तरोपसेवी-
स्वाचारः प्रियपरिगीतगन्धमाल्यः।
नृत्यन् वै प्रहसति चारु चाल्पशब्दं
गन्धर्वग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥१०॥

प्रसन्नचित्त, पुलिन (द्वीप) तथा वन के बीच में रमण करनेवाला, शोभन आचार का, गीत-गन्ध माला में रुचिवाला, नाचते हुए-हँसकर सुन्दर और थोड़ा बोलनेवाला मनुष्य गन्धर्वग्रह गण से पीड़ित रहता है ॥१०॥

ताम्राक्षः प्रियतनुरक्तवस्त्रधारी
गम्भीरो द्रुतमतिरल्पवाक् सहिष्णुः।
तेजस्वी वदति च किं ददामि कस्मै
यो यक्षग्रहपीडितो मनुष्यः ॥११॥

लालनेत्रों का, कमनीय पतले लाल वस्त्र को पहनने का आदी, गम्भीर, चंचल बुद्धि, थोड़ा बोलनेवाला, सहनशील, तेजस्वी, 'किसको क्या दें' ऐसा कहनेवाला मनुष्य यक्षग्रह से पीड़ित रहता है ॥११॥

प्रेतेभ्यो विसृजति संस्तरेषु पिण्डान्
शान्तात्मा जलमपि चापसव्यवस्त्रः
मांसेप्सुस्तिलगुडपायसाभिकाम-
स्तद्भक्तो भवति पितृग्रहाभिभूतः ॥१२॥

कुशा को बिछाकर भूतों के लिये जौ-तिल आदि पिण्ड देता है, शान्तस्वभाव, दक्षिण की ओर वस्त्र करके, पितरों को जल भी देता है। मांस, तिल, गुड़, खीर की चाह रखता है, इनको खाता है, ऐसा मनुष्य पितृग्रह से आक्रान्त रहता है॥

भूमौ यः प्रसरति सर्पवत् कदाचित्
सृक्किण्यौ विलिखति जिह्वया तथैव।
निद्रालुर्गुडमधुदुग्धपायसेप्सु-
र्विज्ञेयो भवति भुजङ्गमेन जुष्टः ॥१३॥

जो मनुष्य छाती से सांप की भांति कभी भूमि पर रेंगता है, कभी ओठों को जीभ से चाटता है, सोनेवाला, गुड़, मधु,

दूध, खीर की चाहवाला मनुष्य सांप से आक्रान्त जानना चाहिये ॥१३॥

मांसासृग्विविधसुराविकारलिप्सु-
निर्लज्जो भृशमतिनिष्ठुरोऽतिशूरः।
क्रोधालुर्विपुलबलो निशाविहारी
शौचद्विड् भवति च रक्षसा गृहीतः ॥१४॥

मांस, रक्त, नानाप्रकार की सुरा इसकी बनावट की चाहवाला लज्जारहित, अतिक्रूर, अतिशूर, क्रोधी, अतिशय बलवान् रात में घूमनेवाला, पवित्रता से द्वेष करनेवाला मनुष्य राक्षस से आक्रान्त होता है ॥१४॥

उद्धस्तः कृशपरुषश्चिरप्रलापी
दुर्गन्धो भृशमशुचिस्तथाऽतिलोलः।
बह्वाशी विजनहिमाम्बुरात्रिसेवी
व्याविग्नो भ्रमति रुदन् पिशाचजुष्टः ॥१५॥

हाथों को ऊपर उठाये, कृश, कठोर बोलनेवाला, दुर्गन्धयुक्त, अतिशय, अपवित्र, अति लालची, बहुत खानेवाला, एकान्तस्थान-शीतल जल का सेवन करनेवाला, रात में घूमनेवाला, उद्विग्न, एवं रोता हुआ जो मनुष्य घूमता है, वह पिशाच से आक्रान्त रहता है ॥१५॥

स्थूलाक्षस्त्वरितगतिः स्वफेनलेही
निद्रालुः पतति च कम्पते च योऽति।
यश्चाद्रिद्विरदनगादिविच्युतः सन्
संसृष्टो न भवति वार्धकेन जुष्टः ॥१६॥

असाध्यलक्षण—जिसकी आँखें मोटी मोटी (सूजी) हों, शीघ्रगति, मुख से निकली अपनी फेन को चाटनेवाला, निद्राशील, बहुत ही गिरता एवं कांपता रहता है, पहाड़ से, हाथी, वृक्ष आदि के गिरने के कारण जो ग्रहसे आक्रान्त होता है, तथा, वार्धक (हिंसा प्रवृत्ति) से जो आक्रान्त रहता है, वह मनुष्य नहीं बचता-यह असाध्य है ॥१६॥

देवग्रहाः पौर्णमास्यामसुराः सन्ध्ययोरपि।
गन्धर्वाः प्रायशोऽष्टम्यां यक्षाश्च प्रतिपद्यथ ॥१७॥
कृष्णक्षये च पितरः पञ्चम्यामपि चोरगाः।
रक्षांसि निशि पैशाचाश्चतुर्दश्यां विशन्ति च ॥१८॥

देवग्रह पूर्णमासी के दिन, असुरग्रह सन्ध्याकालों में, गन्धर्व प्रायः करके अष्टमी में, यक्ष प्रतिपदा के दिन, पितर अमावस्या में, सर्प पञ्चमी में, राक्षस रात्रि में, और पैशाच चौदह तथा अमावस के दिन भी आविष्ट होते हैं।

उन्मादयिष्यतामपि खलु देवर्षिपितृगन्धर्वयक्षराक्षसपिशाचानां गुरुवृद्धसिद्धानां वा एष्वन्तरेष्वभिगमनीयाः पुरुषाः भवन्ति, तद्यथा—पापस्य कर्मणः समारम्भे, पूर्वकृतस्य कर्मणः परिणामकाले,................सन्ध्यावेलायां, अप्रयतभावे वा, पर्वसन्धिषु वा, मिथुनीभावे, रजस्वलाभिगमने वा, विगुणे वाऽध्ययनबलिमंगलहोमप्रयोगे, नियमव्रतब्रह्मचर्यभङ्गे वा, महाहवे वा, देशकालपुरविनाशे वा, महाग्रहोपगमने वा, स्त्रिया वा प्रजननकाले, विविधभूताशुभाशुचिस्पर्शने वा, वमनविरेचनरुधिरस्रावे अशुचेरप्रयतस्य वा, चैत्यदेवायतनाभिगमने वा, मांसमधुतिलगुडमद्योच्छिष्टे वा, दिग्वाससि वा, निशिनगरनिगमचतुष्पथोपवनश्मशानाघातनाभिगमने वा द्विजगुरुसुरयतिपूज्याभिधर्षणे वा, धर्माख्यानव्यतिक्रमे वा, अन्यस्य वा कर्मणोऽप्रशस्तस्यारम्भे, इत्यभिघातकाला व्याख्याता भवन्ति ॥ चरक नि० अ० ७.१७।

"तत्र शौचाचारं तपःस्वाध्यायकोविदं नरं प्रायः शुक्ल प्रतिपदि त्रयोदश्यां च छिद्रमवेक्ष्याभिधर्षयन्ति देवाः, स्नानशुचिविविक्ताऽसेविनं धर्मशास्त्रश्रुतिवाक्यकुशलं प्रायः षष्ठ्यां नवम्यां ऋषयः.......इत्यपरिसंख्येयानां ग्रहाणामाविष्कृततमा ह्यष्टावेते व्याख्याताः ॥"

चरक चि० अ० ९।२८ ॥१७,१८॥

दर्पणादीन् यथा छाया शीतोष्णं प्राणिनो यथा।
स्वमणिं भास्करस्योस्रा यथा देहं च देहधृक् ॥
विशन्ति च न दृश्यन्ते ग्रहास्तद्वच्छरीरिणम् ॥१९॥

जिस प्रकार छाया आयना (दर्पण) आदि में प्रविष्ट होती नहीं दीखती, प्राणियों में सरदी-गरमी जाती है, सूर्यकान्त में जैसे सूर्य की किरणें जाती हैं, और जैसे शरीर में आत्मा-जीव प्रविष्ट होता है, ये जैसे अन्दर शरीर में जाते दिखाई नहीं देते, उसी प्रकार मनुष्यों में ग्रह प्रविष्ट होते हुए नहीं दीखते।

"अदूषयन्तः पुरुषस्य देहं देवादयः स्वैश्च गुणप्रभावैः।
विशन्त्यदृश्यास्तरसा यथैव छायातपौ दर्पणसूर्यकान्तौ॥"

वि० मन्तव्य—जो भूतों को अपनी आँखों देखने का आग्रह किया करते हैं वे भगवान् धन्वन्तरि के अथवा भूतविद्या के इस वाक्य को देखने का कष्ट करें। यही बालग्रहों के सम्बन्ध में अ० २७–७ में कहा गया है ॥१९॥

तपांसि तीव्राणि तथैव दानं
व्रतानि धर्मो नियमाश्च सत्यम्।
गुणास्तथाऽष्टावपि तेषु नित्या
व्यस्ताः समस्ताश्च यथाप्रभावम् ॥२०॥

इन सब ग्रहों में तीव्रतप, दान, व्रत (चान्द्रायण आदि), धर्म, नियम (शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान), सत्य, आठों गुण, ये अपने प्रभाव के अनुसार सम्पूर्ण रूप में, या थोड़े-थोड़े (दो, तीन, चार) रहते हैं।

वक्तव्य—आठगुण—"अणिमा, लघिमा, महिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्यं, ईशित्वं, वशित्वम्।" अथवा "आवेशश्चेतसो ज्ञानमर्थानां छन्दतः क्रिया। दृष्टिः श्रोत्रं स्मृतिः कान्तिरिष्टतश्चाप्यदर्शनम्॥" च० अ० १।

वि० मन्तव्य—गुरु, वृद्ध, सिद्ध तथा ऋषि भी यदि योगी हैं तो वे अन्यमानव के शरीर में आवेश कर जाते हैं, क्योंकि यह अणिमा आदि तथा आवेश आदि आठ गुण-योगियों का ईश्वरीय बल है और शुद्ध सत्त्व (मनस्) के समाधान (समाधि) से यह सब सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं ॥२०॥

न ते मनुष्यैः सह संविशन्ति
न वा मनुष्यान् क्वचिदाविशन्ति ।
ये त्वाविशन्तीति वदन्ति मोहा-
त्ते भूतविद्याविषयादपोह्याः ॥२१॥

ये देवगण मनुष्यों के साथ कभी एकत्रित नहीं होते और न मनुष्य शरीरों में कभी प्रविष्ट होते हैं। जो वैद्य अज्ञान के कारण इनका शरीर में प्रविष्ट होना कहते हैं, उन वैद्यों को भूतविद्या के विषय से अनभिज्ञ जानना चाहिये ॥२१॥

तेषां ग्रहाणां परिचारका ये
कोटीसहस्रायुतपद्मसंख्याः ।
असृग्वसामांसभुजः सुभीमा
निशाविहाराश्च तमाविशन्ति ॥२२॥

इन देवता गणों के जो करोड़ों, हजारों, लाखों, पद्म असंख्येय नौकर हैं, जो नौकर रक्त, वसा, मांस का भोजन करते हैं, देखने में बहुत भयानक, रात में विहार करनेवाले हैं वे पुरुषों में प्रविष्ट होते हैं।

"निवृत्तामिषमद्यो यो हिताशी प्रयतः शुचिः ।
निजागन्तुभिरुन्मादैः सत्त्ववान् न स युज्यते ॥" चरक ।२२।

निशाचराणां तेषां हि ये देवगणमाश्रिताः ।
ते तु तत्सत्त्वसंसर्गाद्विज्ञेयास्तु तदञ्जनाः ॥२३॥

उन राक्षसों के अनुचर (नौकर) जिस देवगण के आश्रित हैं, (नौकर होते हैं), वे नौकर, उस देवता आदि के सत्त्व के संयोग से उसी देवता के लक्षणोंवाले जानने चाहिये।

वक्तव्य—गवर्नर का जो नौकर है, उस नौकर को भी गवर्नर के प्रतिनिधि रूप में मानकर व्यवहार किया जाता है ॥

देवग्रहा इति पुनः प्रोच्यन्तेऽशुचयश्च ते
देववच्च नमस्यन्ते प्रत्यर्थ्यन्ते च देववत् ॥२४॥

इनमें जो नौकर पवित्र होते हैं, वे देवग्रह कहे जाते हैं। इनको देवता के समान नमस्कार किया जाता है और देवता के समान इनसे याचना की जाती है ॥४२॥

स्वामिशीलक्रियाचाराः क्रम एष सुरादिषु ।
निर्ऋतेर्या दुहितरस्तासां स प्रसवः स्मृतः ॥२५॥

ये नौकर स्वामी के स्वभाव, क्रिया के समान आचरणवाले होते हैं, यह नियम देवग्रह आदि में है। क्योंकि ये नौकर निर्ऋति (राक्षसों का पितामह) की स्त्रियों की संतान हैं, इसलिये प्रसूति के गुणोंवाले हैं ॥२५॥

सत्यत्वादप्रवृत्तेषु वृत्तिस्तेषां गणैः कृता ।

शास्त्रोक्त सत्यव्यवहार के छोड़ देने से ही इनकी गणों से अनुचर वृत्ति बना दी जाती है।

हिंसाविहारा ये केचिद्देवभावमुपाश्रिताः ॥२६॥
भूतानीति कृता संज्ञा तेषां संज्ञाप्रवक्तृभिः ।

जो देवता भाव में आश्रित होकर हिंसा की इच्छा करते हैं, उनकी 'भूत' यह संज्ञा, संज्ञा बनानेवालों ने की है। (जो ग्रह देवता रूप होकर भी हिंसा की रुचि करते हैं, उनको भूत कहते हैं) ॥२६॥

ग्रहसंज्ञानि भूतानि यस्माद्वेत्त्यनया भिषक् ॥२७॥
विद्यया भूतविद्यात्वमत एव निरुच्यते ।

क्योंकि वैद्य इस विद्या से ग्रह संज्ञक भूतों को जानता है, इसलिये इस विद्या को भूत विद्या कहते हैं ॥२७॥

तेषां शान्त्यर्थमन्विच्छन् वैद्यस्तु सुसमाहितः ॥२८॥
जपैः सनियमैर्होमैरारभेत चिकित्सितुम् ।

इन ग्रहों की शान्ति की इच्छा करनेवाला वैद्य अति सावधानी से जप, नियम, होम के द्वारा चिकित्सा करनी आरम्भ करे।

'शान्तिकर्मेष्टिहोमांश्च जपस्वस्त्ययनानि च ।
वेदोक्तान् नियमांश्चापि प्रायश्चित्तानि चाचरेद् ॥
भूतानामधिपं देवमीश्वरं जगतः प्रभुम् ।
पूजयन् प्रयतो नित्यं जयत्युन्मादजं भयम् ॥" चरक ।

रक्तानि गन्धमाल्यानि बीजानि मधुसर्पिषी ॥२९॥
भक्ष्याश्च सर्वे सर्वेषां सामान्यो विधिरुच्यते ।

लालवर्ण के गन्ध, माला (केशर, लाल कनेर, गुडहल का फूल आदि) सरसों, तिल, जौ आदि बीज, मधु, घी सब प्रकार के भक्ष्य (लड्डू आदि), यह सब के लिये सामान्य विधि है ॥

वस्त्राणि गन्धमाल्यानि मांसानि रुधिराणि च ॥३०॥
यानि येषां यथेष्टानि तानि तेभ्यः प्रदापयेत् ।
हिंसन्ति मनुजान् येषु प्रायशो दिवसेषु तु ॥३१॥
दिनेषु तेषु देयानि तद्भूतविनिवृत्तये ।

वस्त्र, सुगन्ध, माला, मांस, रक्त और जो जो जिस जिस ग्रह को इष्ट हो, वह उनके लिये देवे। जिन दिनों में मनुष्यों को प्रायः करके ये पीड़ित करते हैं, उन दिनों में, उस भूत की निवृत्ति के लिये उपर्युक्त वस्तुयें वस्त्र, सुगन्ध माला आदि देवे।

देवग्रहे देवगृहे हुत्वाऽग्निं प्रा (दा) पयेद्बलिम् ॥३२॥
कुशास्वस्तिकपूपाज्यच्छत्रपायससंभृतम् ।

देवग्रह में मन्दिर के अन्दर अग्नि में होम करके बलि देवे। इसके लिये कुशा, स्वस्तिक (×), अपूप, घी, छत्र, खीर, इनसे बलि देवे ॥३२॥

असुराय यथाकालं विदध्याच्चत्वरादिषु ॥३३॥
असुर ग्रह के लिये सन्ध्याकाल में चौराहे पर बलि देवे ॥
गन्धर्वस्य गवां मध्ये मद्यमांसाम्बुजाङ्गलम् ।
गन्धर्व ग्रह के लिये गौओं के बीच में मद्य मांस पानी और जांगल मांस की बलि देवे ।
हृद्ये वेश्मनि यक्षस्य कुल्माषासृक्सुरादिभिः ॥३४॥
अतिमुक्तककुन्दाब्जैः पुष्पैश्च वितरेद्बलिम् ।
यक्षग्रह के लिये मनके अनुकूल सुन्दर घर में—कुल्माष (अर्धस्विन्न जौ), उड़द, रक्त, सुरा आदि मद्य, अतिमुक्तक (माधवी लता), कुन्द, कमल इनके फूलों से बलि देवे ॥३४॥
नद्यां पितृग्रहायेष्टं कुशास्तरणभूषितम् ॥३५॥
पितृग्रह के लिये नदी के किनारे—कुशा बिछाकर उसमें तिल, गुड़, जौ की बलि देवे ॥३५॥
तत्रैवोपहरेच्चापि नागाय विविधं बलिम् ।
नाग (सर्प) के लिये नदी के किनारे पर ही गुड़, मधु, खीर आदि से नानाप्रकार की बलि देवे ॥३६॥
चतुष्पथे राक्षसस्य भीमेषु गहनेषु वा ॥३६॥
शून्यागारे पिशाचस्य तीव्रं बलिमुपाहरेत् ।
राक्षस के लिये चौराहे पर या गहन-भयानक वनों में मांस, रक्त, सुरा आदि की बलि देवे। पिशाच के लिये खाली घर में—तीव्र बलि (कच्चा मांस, पशु बलि) को देवे ॥३६॥
पूर्वमाचरितैर्मन्त्रैर्भूतविद्यानिदर्शितैः ॥३७॥
न शक्या बलिभिर्जेतुं योगैस्तान् समुपाचरेत् ।
भूतविद्या में कहे हुए—मंत्रों के प्रथम प्रयोग करने से तथा बलि देने से जो ग्रह शान्त नहीं हो सके, उनको शान्त करने के लिये—योगों को बरते ॥३७॥
अजर्क्षचर्मरोमाणि शल्यकोलूकयोस्तथा ॥३८॥
हिङ्गु मूत्रं च बस्तस्य धूमनस्यं प्रयोजयेत् ।
एतेन शाम्यति क्षिप्रं बलवानपि यो ग्रहः ॥३९॥
बकरा, रीछ, सेह, उल्लू—इनकी खाल, रोम, हींग बकरे का मूत्र, इनका धूंवा रोगी को देवे । इससे बलवान् ग्रह भी शीघ्र शान्त हो जाता है ॥३८,३९॥
गजाह्वपिप्पलीमूलव्योषामलकसर्षपान् ।
गोधानकुलमार्जारऋक्ष्यपित्तप्रपेषितान् ॥४०॥
नस्याभ्यञ्जनसेकेषु विदध्याद्योगतत्त्ववित् ।
गजपिप्पली, पिप्पलीमूल, त्रिकटु, आंवला, सरसों इनको गोह, नेवला, बिल्ली, रीछ इनके पित्तों से पीसकर, इसे नस्य, अभ्यंग, परिषेक आदि में योगतत्त्व को जाननेवाला बरते ॥४०॥
खराश्वतरोलूककरभश्वश्रृगालजम् ॥४१॥
पुरीषं गृध्रकाकानां वराहस्य च पेषयेत् ।
बस्तमूत्रेण तत्सिद्धं तलं स्यात् पूर्ववद्धितम् ॥४२॥

गधा, घोड़ा, खच्चर, उल्लू, ऊंट, कुत्ता, गीदड़, गीध, कौआ, सूअर इनकी पुरीष (मल) इनको पीसकर (इनके कल्क से) बकरे के मूत्र में तैल सिद्ध करे। (इसका प्रयोग नस्य, अभ्यंग तथा सेवन) ॥४१,४२॥
शिरीषबीजं लशुनं शुण्ठीं सिद्धार्थकं वचाम् ।
मञ्जिष्ठां रजनीं कृष्णां बस्तमूत्रेण पेषयेत् ॥४३॥
वर्त्यश्छायाविशुष्कास्ताः सपित्ता नयनाञ्जनम् ।
शिरीष के बीज, लहसुन, सोंठ, सरसों, बच, मजीठ, हल्दी, पिप्पली इनको बकरे के मूत्र से पीसकर गाय का पित्त मिलाकर—वर्त्तियां बनाकर छाया में सुखा ले। ये वर्त्तियां घिसकर आँखों में अंजन करे ॥४३॥
नक्तमालफलं व्योषं मूलं श्योनाकबिल्वयोः ॥४४॥
हरिद्रे च कृता वर्त्यः पूर्ववन्नयनाञ्जनम् ।
करंज का फल, सोंठ, मरिच, पिप्पली, श्योनाक और बिल्व का मूल, हल्दी, दारुहल्दी से बनाई वर्त्तियाँ, (पूर्व की भांति से बनाई बकरे के मूत्र में पीसकर, छाया में सुखाकर, पित्त के साथ) अंजन करे ॥४४॥
सैन्धवं कटुकां हिङ्गु वयःस्थां च वचामपि ।
बस्तमूत्रेण संपिष्टं मत्स्यपित्तेन पूर्ववत् ॥४५॥
ये ये ग्रहा न सिध्यन्ति सर्वेषां नयनाञ्जनम् ।
सैन्धव, कुटकी, हींग, गिलोय (या आंवला) बच, इनको बकरे के मूत्र से पीसकर, छाया में सुखाकर बनाई वर्त्ति मछली के पित्त के साथ अंजन करे। जो जो ग्रह शान्त नहीं होते, उनमें आंखों में इसका अंजन करे ॥४५॥
पुराणसर्पिर्लशुनं हिङ्गु सिद्धार्थकं वसा ॥४६॥
गोलोमी चाजलोमी च भूतकेशी जटा तथा ।
कुक्कुटा सर्पगन्धा च तथा काणविकाणिके ॥४७॥
वज्रप्रोक्ता वयःस्था च शृङ्गी मोहनवल्लिका ।
अर्कमूलं त्रिकटुकं लता स्रोतोजमञ्जनम् ॥४८॥
नैपाली हरितालं च रक्षोघ्ना ये च कीर्तिताः ।
सिंहव्याघ्रर्क्षमार्जारद्वीपिवाजिगवां तथा ॥४९॥
श्वाविच्छल्यकगोधानामुष्ट्रस्य नकुलस्य च ।
विट्त्वग्रोमवसामूत्ररक्तपित्तनखादयः ॥५०॥
अस्मिन् वर्गे भिषक् कुर्यात्तैलानि च घृतानि च ।
पानाभ्यञ्जननस्येषु तानि योज्यानि जानता ॥५१॥
अवपीडेऽञ्जने चैव विदध्याद्गुटिकीकृतम् ।
विदधीत परीषेके क्वथितं चूर्णितं तथा ॥५२॥
उद्धूलने, श्लक्ष्णपिष्टं प्रदेहे चावचारयेत् ।
एष सर्वविकारांस्तु मानसानपराजितः ॥५३॥
हन्यादल्पेन कालेन स्नेहादिरपि च क्रमः ।
पुरातन घृत (दस साल का), लहसुन, हींग, सरसों, बच, दूर्वा, श्वेतदूब, भूतकेशी, बालछड़, कुक्कुट, सर्प गन्धा,

काकोली, क्षीर काकोली, वज्रकन्द, गिलोय, काकड़ाश्रृङ्गी, मोहनवल्लिका (वट पत्रिका), आक का मूल, त्रिकटु, प्रियंगु, स्रोतोंजन, मैनशिल, हरताल, श्वेत सरसों, (अथवा गुग्गुल आदि जो रक्षोघ्न द्रव्य हैं, इनको तथा सिंह, व्याघ्र, रीछ, बिल्ली, चीता, घोड़ा, गाय, सेह, श्वावित् (बड़ी सेह), गोह, ऊंट, नेवला इनकी विष्ठा, त्वचा, रोम, वसा, मूत्र, रक्त, पित्त नख आदि लेकर इनसे वैद्य तैल और घृत अलग-अलग सिद्ध करे। इन तैल या घृतों को जाननेवाला वैद्य पान, अभ्यंग नस्य आदि में बरते। इनसे गोलियाँ बनाकर अवपीडन नस्य, अंजन करे। इनका क्वाथ परिषेक-स्नान बरते, इनका चूर्ण शरीर पर छिड़के, इनको बारीक पीसकर शरीर पर लेप करे। वह मनोजन्य सब रोगों का अपराजित रहता है। थोड़े ही समय में सब मानसिक रोगों को नष्ट करता है, स्नेहन, धूपन आदि उपचार भी करे।

"विशेषतः पुराणं च घृतं तं पाययेद् भिषक्।
उग्रगन्धं पुराणं स्याद् दशवर्षस्थितं घृतम्॥
लाक्षारसनिभं शीतं तद्धि सर्वग्रहापहम्।
मेध्यं विरेचनेष्वग्र्यं प्रपुराणमतः परम्॥
नासाध्यं नाम तस्यास्ति यत्स्याद् वर्षशतस्थितम्।
दृष्टं स्पृष्टमथाघ्रातं तद्धि सर्वं ग्रहापहम्॥"

चरक चि० अ० ९ ॥४६-५३॥

न चाचौक्षं प्रयुञ्जीत प्रयोगं देवताग्रहे ॥५४॥

देवता आदि पवित्र ग्रहों में अपवित्र प्रयोग नहीं करना चाहिये।

वि० मन्तव्य—च अ चौक्षं—अपवित्र—उक्त पुरीष एवं रोम आदि अपवित्र द्रव्यों के धूप, अञ्जन, परिषेचन एवं लेप आदि प्रयोग न हो ॥५४॥

**ऋते पिशाचादन्यत्र प्रतिकूलं न चाचरेत्।
वैद्यातुरौ निहन्युस्ते ध्रुवं क्रुद्धा महौजसा ॥५५॥**

पिशाच ग्रह को छोड़कर अन्यत्र प्रतिकूल कार्य न करे, क्योंकि महान् शक्तिवाले ये ग्रह क्रुद्ध होकर वैद्य और रोगी दोनों को निश्चित मार देते हैं।

देवर्षिपितृगन्धर्वैः उन्मत्तस्य तु बुद्धिमान्।
वर्जयेदञ्जनादीनि तीक्ष्णानि क्रूरकर्म च॥
सर्पिष्पानादि तस्येह मृदु भैषज्यमाचरेत्।
पूजां बलि उपहारांश्च मंत्राञ्जनविधींस्तथा॥

चरक। चि० अ० ९॥

वि० मन्तव्य—भूतोन्माद में—ताड़न, त्रासन एवं तर्जन आदि का भी विधान है, परन्तु वह केवल पिशाच ग्रह से पीड़ित में ही करना चाहिये। अन्यान्य देव, यक्ष एवं पितृग्रह आदि में नहीं करना चाहिये ॥५५॥

**हिताहितीये यच्चोक्तं नित्यमेव समाचरेत्।
ततः प्राप्स्यति सिद्धिं च यशश्च विपुलं भिषक् ॥५६॥**

हिताहितीय अध्याय में जो आहार कहा है, उसे सदा बरते।

इस प्रकार करने से ग्रह से मुक्ति, रोगी को मिलती है, और वैद्य को यश मिलता है ॥५६॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते भूतविद्यातन्त्रेऽमानुषोपसर्गप्रतिषेधो नाम (प्रथमोऽध्यायः, आदितः) षष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥

एकषष्टितमोऽध्यायः

**अथातोऽपस्मारप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥**

अब इसके आगे अपस्मारप्रतिषेध अध्याय का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

स्मृति (याददास्त स्मरण) भूतार्थ (अनुभव किया विषय), इनके ज्ञान का नष्ट होना या भूल जाना, अपस्मार कहा है, यह अपस्मार रोग विनाशकारक है।

वक्तव्य—"अपस्मारं पुनः स्मृतिबुद्धिसत्वसंप्लवाद्बीभत्सचेष्टमावस्थिकं तमःप्रवेशमाचक्षते॥" चरक।

स्मृतेरपगमं प्राहुरपस्मारं भिषग्विदः॥"

चरक चि० अ० १०, ३ ॥३॥

**स्मृतिर्भूतार्थविज्ञानमपश्च परिवर्जने।
अपस्मार इति प्रोक्तस्ततोऽयं व्याधिरन्तकृत् ॥३॥
मिथ्यातियोगेन्द्रियार्थकर्मणामभिसेवनात्।
विरुद्धमलिनाहारविहारकुपितैर्मलैः ॥४॥
वेगनिग्रहशीलानामहिताशुचिभोजिनाम्।
रजस्तमोभिभूतानां गच्छतां च रजस्वलाम् ॥५॥
तथा कामभयोद्वेगक्रोधशोकादिभिर्भृशम्।
चेतस्यभिहते पुंसामपस्मारोऽभिजायते ॥६॥**

इन्द्रियों के विषय और कर्मों के मिथ्या योग, अथवा अतियोग के सेवन से, विरुद्ध एवं मलिन आहार, विहार से कुपित हुए दोषों से, उपस्थित मल मूत्रादि के वेगों को रोकने के स्वभाववाले, अहित, अपवित्र भोजन करनेवालों में, रज एवं तम से आक्रान्त मनवालों में रजस्वला के साथ सम्भोग करने से, तथा कामशोक-भय-उद्वेग, क्रोध आदि से मन पर बहुत आघात होने पर पुरुषों में अपस्मार उत्पन्न होता है।

"त एवंविधानां प्राणभृतां क्षिप्रमभिनिर्वर्त्तन्ते, तद्यथा—रजस्तमोभ्यामुपहतचेतसामुद्भ्रान्तविषमबहुदोषाणां समलविकृतोपहितानि अशुचीनि अभ्यवहारजातानि वैषम्ययुक्तेनोपयुञ्जानानां

तन्त्रप्रयोगमपि च विषममाचरतामन्याश्च शरीरचेष्टाविषमाः समाचरतामत्युपक्षीणदेहानां वा दोषाः प्रकुपिताः रजस्तमोभ्यामुपहतचेतसामन्तरात्मनः श्रेष्ठतममायतनं हृदयमुपसृत्य पर्यवतिष्ठन्ते तथेन्द्रियायतनानि च तत्र तत्र चावस्थिताः सन्तो यदा हृदयमिन्द्रियायतनानि चेरिताः कामक्रोधभयलोभमोहहर्षशोकचिन्तोद्वेगादिभिः भूयः सहसाऽभिपूरयन्ति, तदा जन्तुरपस्मरति।।"

चरक नि० अ० ८-४ ।।४-६।।

हृत्कम्पः शून्यता स्वेदो ध्यानं मूर्च्छा प्रमूढता ।
निद्रानाशश्च तस्मिंस्तु भविष्यति भवन्त्यथ ।।७।।

पूर्वरूप—हृदय में कम्प, शून्यता (हृदय में), स्वेद, ध्यान (चिन्तन-एकाग्रता), मूर्च्छा, अतिशय संज्ञानाश और निद्रानाश होता है।

तस्येमानि पूर्वरूपाणि भवन्ति, तद्यथा—भ्रूव्युदासः सततमक्ष्णोर्वैकृतमशब्दश्रवणं, लालासिंघाणप्रस्रवणमनन्नाभिलषणमरोचकविपाकौ हृदयग्रहः, कुक्षेराटोपो दौर्बल्यमस्थिभेदोऽङ्गमर्दो, मोहस्तमसो दर्शनम्, मूर्च्छा, भ्रमश्चाभीक्ष्णं च स्वप्ने मदनर्त्तनपीडनवेपथुव्यथनपतनादीन्यपस्मारपूर्वरूपाणि भवन्ति, ततोऽनन्तरमपस्माराभिनिर्वृत्तिरेव ।।

चरक नि० अ० ८-७ ।।७

संज्ञावहेषु स्रोतःसु दोषव्याप्तेषु मानवः ।
रजस्तमःपरीतेषु मूढो भ्रान्तेन चेतसा ।।८।।
विक्षिपन् हस्तपादं च विजिह्मभ्रूविलोचनः ।
दन्तान् खादन् वमन् फेनं विवृताक्षः पतेत् क्षितौ ।९।
अल्पकालान्तरं चापि पुनः संज्ञां लभेत सः ।
सोऽपस्मार इति प्रोक्तः—

संज्ञावाही स्रोतों के दोषों से भर जाने पर तथा रज एवं तम से युक्त हो जाने के कारण मूढ़ हुआ मनुष्य विक्षिप्त चित्त से हाथ पैर को फेंकता है, भ्रू और आंख कुटिल हो जाती है, दांत कटकटाता है, मुख से झाग गिरता है, आंखें पलट जाती हैं, भूमि पर गिर पड़ता है, कुछ देर के पीछे फिर चेतना प्राप्त करता है, इसको अपस्मार कहते हैं।

"धमनीभिः श्रिता दोषा हृदयं पीडयन्ति हि ।
संपीड्यमाने व्यथते मूढो भ्रान्तेन चेतसा ।।
पश्यत्यसन्ति रूपाणि पतति प्रस्फुरत्यपि ।
जिह्वाक्षिभ्रूः स्रवल्लालो हस्तौ पादौ च विक्षिपन् ।
दोषवेगे च विगते सुप्तवत्प्रतिबुध्यते ।।"

चरक० चि० अ० १०.६-६ ।।८,६।।

स च दृष्टश्चतुर्विधः ।।१०।।
वातपित्तकफैर्नॄणां चतुर्थः सन्निपाततः ।

यह अपस्मार मनुष्यों में वायु, पित्त, कफ और सन्निपात से चार प्रकार का होता है ।।१०।।

वेपमानो दशन् दन्तान् श्वसन् फेनं वमन्नपि ।।११।।
यो ब्रूयाद्विकृतं सत्त्वं कृष्णं मामनुधावति ।
ततो मे चित्तनाशः स्यात् सोऽपस्मारोऽनिलात्मकः ।।

जो रोगी कांपता हुआ, दांतों को काटते हुए जोर से श्वास लेता है, झाग मुख से गिरती हो, जो रोगी यह कहे कि विकृत आकार का काला प्राणी मेरी ओर दौड़ रहा है, इससे मेरी संज्ञा नष्ट होती है, उसे वातजन्य अपस्मार से पीड़ित जाने।।

तृट्तापस्वेदमूर्च्छार्तो धुन्वन्नङ्गानि विह्वलः ।
यो ब्रूयाद्विकृतं सत्त्वं पीतं मामनुधावति ।।१२।।
ततो मे चित्तनाशः स्यात् स पित्तभव उच्यते ।

प्यास, ताप, स्वेद, मूर्च्छा से पीड़ित, अंगों को फेंकता हुआ, बेचैन, जो पीले रंग के विकृत प्राणि को अपनी ओर दौड़ता हुआ अनुभव करके बेहोश होता है, उसे पित्तजन्य अपस्मार से पीड़ित जाने ।।१३।।

शीतहृल्लासनिद्रार्तः पतन् भूमौ वमन् कफम् ।।१४।।
यो ब्रूयाद्विकृतं सत्त्वं शुक्लं मामनुधावति ।
ततो मे चित्तनाशः स्यात् सोऽपस्मारः कफात्मकः।१५।

शीत जी मचलाना, निद्रा से पीड़ित, भूमि पर गिरकर कफ का वमन करता है, जो श्वेत रंग के विकृत प्राणी को अपनी ओर भागता हुआ अनुभव करके मूर्च्छित होता है, उसे कफजन्य अपस्मार से पीड़ित जानना ।।१४,१५।।

हृदि तोदस्तृडुत्क्लेदस्त्रिष्वप्येतेषु संख्यया ।

वातज में हृदय में पीड़ा, पित्तज में प्यास और कफज अपस्मार में जी मचलाना होता है।

प्रलापः कूजनं क्लेशः प्रत्येकं तु भवेदिह ।।१६।।

प्रलाप, कराहना, क्लेश, ये लक्षण तीनों दोषों के अपस्मारों में सामान्य हैं ।।१६।।

सर्वलिङ्गसमावायः सर्वदोषप्रकोपजे ।

सन्निपातजन्य अपस्मार में सब लक्षणों का मेल रहता है।

अनिमित्तागमाद्व्याधेर्गमनादकृतेऽपि च ।।१७।।
आगमाच्चाप्यपस्मारं वदन्त्यन्ये न दोषजम् ।

विना कारण के रोग का आक्रमण होने से, चिकित्सा न करने पर भी रोग के मिट जाने से, कुछ लोग शास्त्र (अपने) से अपस्मार को आगन्तुज मानते हैं, दोषजन्य नहीं मानते ।।

क्रमोपयोगाद्दोषाणां क्षणिकत्वात्तथैव च ।।१८।।
आगमाद्वैश्वरूप्याच्च स तु निर्वर्ण्यते बुधैः ।
देवे वर्षत्यपि यथा भूमौ बीजानि कानिचित् ।।१६।।
शरदि प्रतिरोहन्ति तथा व्याधिसमुद्भवः ।
स्थायिनः केचिदल्पेन कालेनाभिप्रवर्धिताः ।।२०।।
दर्शयन्ति विकारांस्तु विश्वरूपास्त्रिसर्गतः ।
अपस्मारो महाव्याधिस्तस्माद्दोषज एव तु ।।२१।।

दोषों का संचय आदि क्रम से रोगोत्पत्ति करने के कारण, अपस्मार दोषजन्य है। वातादि दोषों के क्षणिक होने के कारण अपस्मार दोषजन्य है। जब तक दोष का वेग रहता है, तब तक रोग रहता है। आगम (चरक में) अपस्मार को दोषजन्य कहा है। विश्वरूप होने से वात, पित्त, कफ एवं रज और तम ये दोष विश्वरूप हैं, इसलिये अपस्मार दोषजन्य हैं। इसलिये विद्वान् अपस्मार को दोषजन्य मानते हैं। जिस प्रकार बादल के बरसने पर भी कुछ बीज शरद् काल में उगते हैं, इसी प्रकार रोग भी अपने समय पर उत्पन्न होते हैं। अवश्य अस्थायी वातादि दोष इसी थोड़े से समय के लिये बढ़कर नानाप्रकार के रोगों को अपने स्वाभाविक दूषण स्वभाव के कारण दिखाते हैं। इसलिये अपस्मार नामक महारोग दोषजन्य ही है।

वक्तव्य—"इह खलु चत्वारोऽपस्मारा भवन्ति, वात-पित्त-कफ-सन्निपातनिमित्ताः ॥" (२) पक्षाद्वा द्वादशाहाद्वा मासाद्वा कुपिता मलाः। अपस्माराय कुर्वन्ति वेगं किंचिदथान्तरम् ॥ (३) अधिशेते यथा भूमिं बीजं काले च रोहति। अधिशेते तथा धातुं दोषः काले च कुप्यति"॥

वि० मन्तव्य—कुछ आचार्य श्लो० १७ के अनुसार अपस्मार को आगन्तु मानते हैं जैसे विषम ज्वरों को, परन्तु कुछ आचार्य इसको "दोषज" मानते हैं, अस्तु। इस विवाद का समाधान भगवान् पुनर्वसु ने इस प्रकार किया है कि—

यदा दोषनिमित्तस्य भवति आगन्तुः अन्वयः।
तदा साधारणं कर्म प्रवदन्ति भिषग्वराः। च० नि०अ० ८

अर्थात्—जब किसी दोषज व्याधि में आगन्तु कारण भी होता है तब विद्वान् चिकित्सक साधारण अर्थात् दोनों के लिये उपयोगी कर्म-उपचार करते हैं। जैसे विषम ज्वरों में तथा उन्मादों में। भगवान् धन्वन्तरि ने उक्त दोनों मतों का उल्लेख कर दिया है 'दोषज एव तु' पाठ अपस्मार को दोषज मानने-वालों का है, क्योंकि—अग्रिम श्लो० २३ में 'उपयोगो ग्रहोक्तानां योगानां तु विशेषतः' पाठ में ग्रह शामक योगों के उपयोग का निर्देश किया गया है। और श्लो० २६ में रुद्र एवं रुद्र के गणों की पूजा का निर्देश किया है, अतः भगवान धन्वन्तरि जी दोनों मतों को मानते हैं ॥२१॥

तस्य कार्यो विधिः सर्वो य उन्मादेषु वक्ष्यते।
पुराणसर्पिषः पानमभ्यङ्गश्चैव पूजितः ॥२२॥
उपयोगो ग्रहोक्तानां योगानां तु विशेषतः।
ततः सिध्यन्ति ते सर्वे योगैरन्यैश्च साधयेत्।
शिग्रुकट्वङ्गकिण्वाहिनिम्बत्वग्रससाधितम् ॥२३॥
चतुर्गुणे गवां मूत्रे तैलमभ्यञ्जने हितम्।

अपस्मार में उन्माद में कही जानेवाली सम्पूर्ण विधि बरतनी चाहिये। पुरातन घृत का पान कराये और पुरातन घृत का अभ्यंग करे। ग्रहों में कहे योगों को विशेष रूप में बरते। इनसे सब अपस्मार अच्छे होते हैं, अन्ययोगों से भी चिकित्सा करे। यथा—शोभांजन, श्योनाक, किण्ही (कटभी), नीम की छाल, इनके स्वरस (रस में) और कल्क से तैल से चार गुणे गोमूत्र में तैल सिद्ध करे। यह तैल अभ्यंग में उत्तम है।

"कटभी निम्बकट्वङ्गमधुशिग्रुत्वचां रसे।
सिद्धं मूत्रसमं तैलमभ्यङ्गार्थे प्रशस्यते ॥" चरक॥२२,२३॥

गोधानकुलनागानां पृषतर्क्षगवामपि ॥२४॥
पित्तेषु सिद्धं तैलं च पानाभ्यङ्गेषु पूजितम्।

गोह, नेवला, हाथी, चित्रलमृग, रीछ, गाय, इनके पित्त से सिद्ध किया तैल पान और अभ्यंग में प्रशस्त है ॥२४॥

तीक्ष्णैरुभयतोभागैः शिरश्चापि विशोधयेत् ॥२५॥

तीक्ष्ण वमन, तीक्ष्ण विरेचन और तीक्ष्ण शिरो-विरेचन से चिकित्सा करे ॥२५॥

पूजां रुद्रस्य कुर्वीत तद्गणानां च नित्यशः।

रुद्र की और उनके गणों की नित्यप्रति पूजा करे।

वातिकं बस्तिभिश्चापि पैत्तिकं तु विरेचनैः ॥२६॥
कफजं वमनैर्धीमानपस्मारमुपाचरेत्।

वातिक अपस्मार की बस्तियों से, पैत्तिक की विरेचनों से, कफज अपस्मार की वमनों से बुद्धिमान् चिकित्सा करे ॥२६॥

कुलत्थयवकोलानि शणबीजं पलङ्कषाम् ॥२७॥
जटिलां पञ्चमूल्यौ द्वे पथ्यां चोत्क्वाथ्य यत्नतः।
बस्तमूत्रयुतं सर्पिः पचेत्तद्वातिके हितम् ॥२८॥

कुलत्थी, जौ, बेर, सन के बीज, गुग्गुलु, जटामासी, दशमूल, हरड़ इनको सावधानी से क्वाथ करके, इस में बकरे का मूत्र मिलाकर घृत सिद्ध करे, यह घृत वातिक अपस्मार में हितकारी है ॥२७,२८॥

काकोल्यादिप्रतीवापं सिद्धं च प्रथमे गणे।
पयोमधुसितायुक्तं घृतं तत् पैत्तिके हितम् ॥२९॥

विदारीगन्धादिगण के क्वाथ में काकोल्यादि गण का प्रक्षेप देकर, घी को सिद्ध करे। इस घी को दूध, मधु शर्करा के साथ खाये। यह घृत पित्तज अपस्मार में हित है।

वक्तव्य—डल्हण ने दूध, मधु, शर्करा के साथ घी सिद्ध करने को कहा है। इसमें मधु के साथ घी सिद्ध करने में मधु जल जायेगा। अथवा रोगप्रभाव से विधेय होगा। यथा—'क्षीरादिप्रक्षेपयुक्तं घृतं हितम् ॥' कहा है॥

कृष्णावचामुस्तकाद्यैर्युक्तमारग्वधादिके ।
पक्वं च मूत्रवर्गं तु श्लेष्मापस्मारिणे हितम् ॥३०॥

विप्पल्यादि, वचादि, मुस्तकादि, इनके क्वाथ में आरग्वधादिगण का कल्क प्रक्षेप देकर आठों मूत्रों के साथ सिद्ध किया घृत कफजन्य अपस्मार में उत्तम है ॥३०॥

सुरद्रुमवचाकुष्ठसिद्धार्थव्योषहिङ्गुभिः ।
मञ्जिष्ठारजनीयुग्मसमङ्गात्रिफलाम्बुदैः ॥३१॥
करञ्जबीजशैरीषगिरिकर्णीहुताशनैः ।
सिद्धं सिद्धार्थकं नाम सर्पिर्मूत्रचतुर्गुणम् ॥३२॥
कृमिकुष्ठगरश्वासबलासविषमज्वरान् ।
सर्वभूतग्रहोन्मादानपस्मारांश्च नाशयेत् ॥३३॥

सिद्धार्थक घृत—देवदारु, वच, कूठ, सरसों सोंठ, मरिच, पिप्पली, हींग, मंजीठ, हल्दी, दारुहल्दी, मंजीठ, त्रिफला, मुस्ता, करंज के बीज, शिरीष के बीज, श्वेत स्यन्द (सफेद कोयल), इनके कल्क से चार गुणे मूत्र में सिद्ध किया घी, सिद्धार्थक घृत है। यह घृत कृमि, कुष्ठ, गर, श्वास, कफ, विषमज्वर, सब प्रकार की भूत बाधा, ग्रह, उन्माद, अपस्मार, को नष्ट करता है ॥३१-३३॥

दशमूलेन्द्रवृक्षत्वङ्मूर्वाभार्गीफलत्रिकैः ।
शम्पाकश्रेयसीसप्तपर्णापामार्गफल्गुभिः ॥३४॥
शृतैः कल्कैश्च भूनिम्बपूतिकव्योषचित्रकैः ।
त्रिवृत्पाठानिशायुग्मसारिवाद्वयपौष्करैः ॥३५॥
कटुकायासदन्त्युग्रानीलिनीकृमिशत्रुभिः ।
सर्पिरेभिश्च गोक्षीरदधिमूत्रशकृद्रसैः ॥३६॥
साधितं पञ्चगव्याख्यं सर्वापस्मारभूतनुत् ।
चातुर्थकक्षयश्वासानुन्मादांश्च नियच्छति ॥३७॥

पंचगव्यघृत—दशमूल, कुटज की छाल, मूर्वा, भार्गी, त्रिफला, अमलतास, गजपिप्पली, सप्तपर्ण, चिरचिटा, कठगूलर, इनके क्वाथ में, चिरायता, करंज, त्रिकटु, चित्रक, निशोथ, पाठा, हल्दी, दारुहल्दी, सारिवा, कृष्ण सारिवा, पुष्कर मूल, कुटकी, धमासा, दन्ती, वच, नलिनी, विडंग इनके कल्क से, गाय का दूध, दही, मूत्र, गोबर का स्वरस, और घी (ये सब परस्पर समान भाग लेकर) इनसे घृत सिद्ध करे। यह पंचगव्य घृत सब प्रकार के अपस्मार को, भूतबाधा को नष्ट करता है। चातुर्थिक ज्वर, क्षय, श्वास, और उन्माद को नष्ट करता है ॥

भार्गीशृते पचेत् क्षीरे शालितण्डुलपायसम् ।
त्र्यहं शुद्धाय तं भोक्तुं वराहायोपकल्पयेत् ॥३८॥
ज्ञात्वा च मधुरीभूतं तं विशस्यान्नमुद्धरेत् ।
त्रीन् भागांस्तस्य चूर्णस्य किण्वभागेन संसृजेत् ।३९।
मण्डोदकार्थे देयश्च भार्गीक्वाथः सुशीतलः ।
शुद्धे कुम्भे निदध्याच्च संभारं तं सुरां ततः ॥४०॥
जातगन्धां जातरसां पाययेदातुरं भिषक् ।

भार्गी से सिद्ध किये दूध में शालि चावलों की खीर बनाये। सुअर को तीन दिन भूखा रखकर खीर खाने को देवे। जब खीर में मधुरता (विदाह प्रथम अवस्था पाक) आ जाय, तब सुअर को मारकर इस अन्न को उसके पेट में (आमाशय से) निकाल ले। इस अन्न को सुखाकर चूर्ण कर लेवे। इस चूर्ण के तीन भाग लेकर इसमें एक भाग सुरा बीज (किण्व) मिलाये। सन्धान के लिये भार्गी का क्वाथ ठण्डा करके इसमें मिलाये। इस संभार को शुद्ध साफ घड़े में रख देवे। फिर जब इस सुरा में गन्ध और रस उत्पन्न हो जाये, तब रोगी को पिलाये।

वक्तव्य—दूध पाक विधि—दूध से चौथाई भार्गी का कल्क मिलाकर, दूध से चार गुणा जल डालकर दूध का पाक करे। दूध मात्र शेष रहने पर उतार लेवे। सूअर को खिलाया अन्न आमाशय से आगे न जाने पाये उस अन्न में केवल आमाशय की ही क्रिया हो, इतने तक में वह अन्न निकाल लेना चाहिये। अर्थात् निशास्ता भाग अभी शर्करा में ही परिणत हुआ हो। यथा—

अन्नस्य भुक्तमात्रस्य षड्रसस्य प्रपाकतः ।
मधुरात्प्राक् कफो भावात्फेनभूत उदीर्यते ।च०।३८-४०।

शुद्ध कुम्भ—चातुर्जातक, मधु, पिप्पली आदि से लिप्त किये ॥३८-४०॥

सिरां विध्येदथ प्राप्तां माङ्गल्यानि च धारयेत् ॥४१॥

हनुसन्धिमध्यगत सिरा का वेधन करे। व्रणितोपासनीय अध्याय में कही छत्रा, अतिच्छत्रा आदि मांगल्य वस्तुओं को धारण करे।

वक्तव्य—चरक में अतत्त्वाभिनिवेश एक रोग कहा है, यथा—

अतत्त्वाभिनिवेशो यस्तद्धेत्वाकृतिभेषजम् ।
तत्र नोक्तं तत् श्रोतुमिच्छामि तदिहोच्यताम् ॥
शुश्रूषवे वचः श्रुत्वा शिष्यायाह पुनर्वसुः ।
महागदं सौम्य शृणु सहेत्वाकृतिभेषजम् ॥
मलिनाहारशीलस्य वेगान्प्राप्तान् निगृह्णतः ।
शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैः हेतुभिश्चातिसेवितैः ॥
हृदयं समुपाश्रित्य मनोबुद्धिवहाः सिराः ।
दोषाः सन्दूष्य तिष्ठन्ति रजोमोहावृतात्मनः ॥
रजस्तमोभ्यां वृद्धाभ्यां बुद्धौ मनसि चावृते ।
हृदये व्याकुले दोषैरथ मूढाल्पचेतसः ॥
करोति विषमां बुद्धिं नित्यानित्ये हिताहिते ।
अतत्त्वाभिनिवेशं तमाहुराप्ता महागदम् ॥
स्नेहस्वेदोपपन्नं तं संशोध्य वमनादिभिः ।
कृतसंसर्जनं मेध्यैरन्नपानैरुपाचरेत् ॥

ब्राह्मीस्वरसंयुक्तं यत् पंचगव्यमुदाहृतम् ।
तत्सेव्यं शंखपुष्पी च यच्च मेध्यं रसायनम् ॥

वि० मन्तव्य—सु० शा० अ० ८ में अपस्मार के विनाशार्थ हनु की सन्धि में विद्यमान सिरा का वेध करने का विधान है, परन्तु सिरा सर्वाङ्ग शोधन होती है, अतः अन्य स्थान में भी सिरावेध किया जा सकता है ॥४२॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते भूतविद्यातन्त्रेऽपस्मार-प्रतिषेधो नाम (द्वितीयोऽध्यायः आदितः) एकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

द्विषष्टितमोऽध्यायः

अथातो उन्मादप्रतिषेधमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे उन्मादप्रतिषेध अध्याय का व्याख्यान करेंगे—जैसा भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

मदयन्त्युद्ध(द्गु)ता दोषा यस्मादुन्मार्गमाश्रिताः ।
मानसोऽयमतो व्याधिरुन्माद इति कीर्तितः ॥३॥

उपचित हुए दोष उन्मार्ग में आश्रित होकर क्योंकि मन को चलायमान (विभ्रमयुक्त) कर देते हैं, इसलिये यह उन्माद रोग मानस-मनोजन्य कहा है। मनोवहस्रोतों के दूषित होने से यह मानस रोग होता है। यथा—

विरुद्धदुष्टाशुचिभोजनानि
प्रधर्षणं देवगुरु द्विजानाम् ।
उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वो
मनोऽभिघातो विषमाश्च चेष्टाः ॥
तैरल्पसत्त्वस्य मलाः प्रदुष्टा
बुद्धेर्निवासं हृदयं प्रदूष्य ।
स्रोतांस्यधिष्ठाय मनोवहानि
प्रमोहयन्त्याशु नरस्य चेतः ॥
चरक० चि० अ० ९.५ ।

वि० मन्तव्य—उन्मार्ग आश्रितः—पुरुष (चेतना धातु—आत्मा) कर्मेन्द्रियों द्वारा चेष्टा (कर्म) करता है, ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ज्ञान प्राप्त करता है, मनस् द्वारा मनन—चिन्तन करता है बुद्धि द्वारा बोध—सत् असत् का विवेक करता है और अहंकार द्वारा अहं—मैं हूँ आदि भावना करता है। जिन मार्गों द्वारा यह सब होता है वे उन्मार्ग कहे जाते हैं। उनमें जब वातादि दोष आश्रित हो जाते हैं तब उक्त सब कार्य अव्यवस्थित—विश्रृंखल हो जाते हैं और इसी दशा का नाम "उन्माद" है ॥३॥

एकैकशः समस्तैश्च दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः ।
मानसेन च दुःखेन स पञ्चविध उच्यते ॥४॥
विषाद्भवति षष्ठश्च यथास्वं तत्र भेषजम् ।
स चाप्रवृद्धस्तरुणो मदसंज्ञां बिभर्ति च ॥५॥

उन्माद, वात, पित्त, कफ इन तीन दोषों के पृथग् पृथग्, अतिशय मिले हुए तीनों दोषों को सन्निपात से एक, मानसिक दुःख के कारण एक, इस प्रकार से उन्माद पांच प्रकार का है। विष के कारण से भी छठे प्रकार का उन्माद होता है, परन्तु इसमें विष की अपनी चिकित्सा की जाती है। यह छठा उन्माद अल्प लक्षणोंवाला, तथा अल्प मात्रा में होने से 'मद' नाम से कहा जाता है।

उन्मादं पुनः मनोबुद्धिसंज्ञाज्ञानस्मृतिभक्तिशीलचेष्टाचार-विभ्रमं विद्यात् ॥ चरक।

वि० मन्तव्य—विष तथा तद्गुणयुक्त मद्य से जो उन्माद होता है उसकी प्रारम्भिक अवस्था में वही दशा होती है जो मद्य (भांग-सुरा आदि मादक द्रव्य) के सेवन में होती है जिसको मद या नशा कहते हैं। मद की दशा से आगे चलकर जो मदमत्त की दशा होती है वही उन्माद से उन्मत्त की दशा हो जाती है ॥४,५॥

मोहोद्वेगौ स्वनः श्रोत्रे गात्राणामपकर्षणम् ।
अत्युत्साहोऽरुचिश्चान्ने स्वप्ने कलुषभोजनम् ॥६॥
वायुन्नोन्मथनं चापि भ्रमश्चक्रगतस्य वा ।
यस्य स्यादचिरेणैव उन्मादं सोऽधिगच्छति ॥७॥

पूर्वरूप—मोह (मन की विचित्रता), उद्वेग, कानों में शब्द, अंगों में कृशता, अतिशय, उत्साह, अन्न में अरुचि, स्वप्न में (सुपने में), मलिन भोजन वायु से हृदय का उन्मथन, चक्कर पर चढ़े हुए के समान चक्कर आना, ये लक्षण जिनमें होते हैं, उसे शीघ्र ही उन्माद रोग होगा ॥६,७॥

रूक्षच्छविः परुषवाग्धमनीततो वा
शीतातुरः कृशतनुः स्फुरिताङ्गसन्धिः ।
आस्फोटयत्यटति गायति नृत्यशीलो
विक्रोशति भ्रमति चाप्यनिलप्रकोपात् ॥८॥

वातिक उन्माद में रोगी की कान्ति रूक्ष, वाणी कर्कश, शरीर पर धमनियों का जाल, शीत से पीड़ित, शरीर कृश, अंगों की सन्धियों में स्फुरण, सन्धियों को चटकाता है, वे मतलब घूमता है, गाता है, नाचता है, चिल्लाता है, चक्कर काटता है।

अनियतानां च सततं गिरामुत्सर्गः। फेनागमनमास्यात्। स्मितहसितनृत्यगीतवादित्रादिप्रयोगश्चास्थाने । यानमयानैः, कार्श्यं, पारुष्यम्, उत्पिण्डता, अरुणाक्षता। चरक ॥८॥

तृट्स्वेददाहबहुलो बहुभुग्विनिद्र-
श्छायाहिमानिलजलान्तविहारसेवी ।
तीक्ष्णो हिमाम्बुनिचयेऽपि स वह्निशङ्की
पित्ताद्दिवा नभसि पश्यति तारकाश्च ॥९॥

पित्तोन्माद में प्यास, स्वेद, दाह की अधिकता, बहुत भोजन करना, नींद न आना, छाया, शीतल, वायु, जल के

किनारे पर रहने या घूमनेवाला, तीक्ष्ण (क्रोधी), शीतल पानी के संचय में भी अग्नि की शंका रखनेवाला, दिन में भी आकाश में तारों को देखता है ॥९॥

छर्द्यग्निसादसदनारुचिकासयुक्तो
योषिद्विविक्तरतिरल्पमतिप्रचारः।
निद्रापरोऽल्पकथनोऽल्पभुगुष्णसेवी
रात्रौ भृशं भवति चापि कफप्रकोपात् १०

कफोन्माद में—वमन, अग्निमान्द्य, अरुचि, कास, स्त्रियों से एकान्त में प्रीति करने की चाह, थोड़ी बुद्धि, थोड़ा चलना-गिरना, सोने की आदत, थोड़ा बोलनेवाला, थोड़ा खानेवाला, उष्ण वस्तु की चाह करता है। कफके प्रकोप से उन्माद रातमें अधिक बढ़ जाता है। (चरक में-श्वयथुरानने–यह चिह्न भी है)॥

सर्वात्मके पवनपित्तकफा यथास्वं
संहर्षिता इव च लिङ्गमुदीरयन्ति ॥११॥

सन्निपातजन्य उन्माद में वायु, पित्त, कफ, अतिशय बढ़कर (एक दूसरे से होड़ लेकर) अपने अपने लक्षणों को उत्पन्न करते हैं। (इसी से यह असाध्य होता है) ॥११॥

चौरैर्नरेन्द्रपुरुषैररिभिस्तथाऽन्यै-
र्वित्रासितस्य धनबान्धवसंक्षयाद्वा।
गाढं क्षते मनसि च प्रियया रिरंसो-
र्जायेत चोत्कटतरो मनसो विकारः ।१२।

चोरों से, राजपुरुषों से, शत्रुओं से, तथा दूसरे पुरुषों से डराये जाने के कारण, धन-बान्धव के नाश हो जाने से, मन पर तीव्र आघात पहुँचने के कारण अथवा इच्छित प्रियस्त्री से रमण करने की इच्छा होने के कारण (उसके न मिलने से) अतिशय प्रबल मानसिक विकार से उन्माद उत्पन्न होता है ॥

चित्रं स जल्पति मनोनुगतं विसंज्ञो
गायत्यथो हसति रोदिति मूढसंज्ञः।

वह मन में आई वस्तु को अबुद्धि पूर्वक बे सोचे समझे-चेतना के बिना भिन्न भिन्न रूप में बकता है, गाता है, हंसता है, रोता है, मूर्च्छित हो जाता है।

रक्तेक्षणो हतबलेन्द्रियभाः सुदीनः
श्यावाननो विषकृतेऽथ भवेत् परासुः १३

विषोन्माद में—आंखें लाल, बल एवं इन्द्रियों की कान्ति नष्ट हो जाती है, अतिशय गरीब, मुख में कालापन तथा उपेक्षा करने से मर जाता है॥१३॥

स्निग्धं स्विन्नं तु मनुजमुन्मादार्तं विशोधयेत्।
तीक्ष्णैरुभयतोभागैः शिरसश्च विरेचनैः ॥१४॥
विविधैरवपीडैश्च सर्षपस्नेहसंयुतैः।
योजयित्वा तु तच्चूर्णं घ्राणे तस्य प्रयोजयेत् ॥१५॥

उन्माद रोगी मनुष्य का स्नेहन और स्वेदन करके तीक्ष्ण वमन, तीक्ष्ण विरेचन, तीक्ष्ण शिरोविरेचनों से शोधन करे। सरसों के तेल में मिलाकर नानाप्रकार के अवपीड़न (नस्य) देवे। सरसों का चूर्ण रोगी की नासा में प्रधमन करे।१४,१५।

सततं धूपयेच्चैनं श्वगोमांसैः सुपूतिभिः।
सर्षपाणां च तैलेन नस्याभ्यङ्गौ हितौ सदा ॥१६॥

अच्छी प्रकार पवित्र साफ किये कुत्ते और गोमांस से इसको निरंतर धूप देवे। सरसों के तेल से नस्य एवं अभ्यंग करना सदा उत्तम है ॥१६॥

दर्शयेदद्भुतान्यस्य वदेन्नाशं प्रियस्य वा।
भीमाकारैर्नरैर्नागैर्दान्तैर्व्यालैश्च निर्विषैः ॥१७॥
भीषयेत् संयतं पाशैः कशाभिर्वाऽथ ताडयेत्।
यन्त्रयित्वा सुगुप्तं वा त्रासयेत्तं तृणाग्निना ॥१८॥
जलेन तर्जयेद्वाऽपि रज्जुघातैर्विभावयेत्।
बलवांश्चापि संरक्षेत् जलेऽन्तः परिवासयेत्।
प्रतुदेदारया चैनं मर्माघातं विवर्जयेत्।
वेश्मनोऽन्तः प्रविश्यैनं रक्षंस्तद्वेश्म दीपयेत् ॥१९॥
सापिधाने जरत्कूपे सततं वा निवासयेत्।

जो वस्तु न देखी हो, ऐसे विचित्र रूप इसको दिखाये। प्रिय वस्तु का नाश कहे सुनाये। भीषण आकारवाले मनुष्यों से, शिक्षित हाथियों से, विष रहित सांपो से इसको डराये। पाशों से-रस्सियों से बाँधकर, कशा से-चाबुक से इसको मारे। बाँधकर सुरक्षित रूप में तिनकों की आग से इसको डराये। मगर जल से कम्पाये। रस्सी की चोट से मारे। बलवान् व्यक्ति इसको बचाते हुए जल में डुबाने का नाटक करें। मोटी नाक सूई से चुभायें, परन्तु मर्म स्थानों पर चोट न करे। घर के अन्दर ले जाकर इसको बचाते हुए घर में आग लगा देवे। जल रहित कुएँ में इसको रखकर ढांप देवे।

वि० मन्तव्य-इस प्रकार के उपायों से उसका मन ठिकाने आ जाता है, क्योंकि शारीरिक दुःखों के भय की अपेक्षा प्राण का भय महान् होता है और प्राणभय होने पर—मृत्यु का भय उपस्थित होने पर इधर उधर भटकता हुआ मन शान्ति को प्राप्त कर लेता है ॥

कशाभिस्ताडयित्वा वा सुबद्धं विजने गृहे।
रुन्ध्याच्चेतो हि विभ्रान्तं व्रजत्यस्य यथा शमम् ॥
देहदुःखभयेभ्यो हि परं प्राणभयं महत्।
तेन याति शमं तस्य सर्वतो विप्लुतं मनः ॥
इष्टद्रव्यविनाशात्तु मनो यस्योपहन्यते।
तस्य तत्सदृशप्राप्तिसान्त्वाश्वासैः शमं नयेत् ॥ चरक ॥

त्र्यहात्त्र्यहाद्यवागूश्च तर्पणान् वा प्रदापयेत् ॥२०॥
केवलानम्बुयुक्तान् वा कुल्माषान् वा बहुश्रुतः।
हृद्यं यद्दीपनीयं च तत्पथ्यं तस्य भो (यो) जयेद् ।२१।
(बिडङ्गत्रिफलामुस्तमञ्जिष्ठादाडिमोत्पलैः।
श्यामैलवालुकैलाभिश्चन्दनामरदारुभिः ॥२२॥

बर्हिष्ठरजनीकुष्ठपर्णिनीसारिवाद्वयैः ।
हरेणुकात्रिवृद्दन्तीवचातालीसकेसरैः ॥२३॥
द्विक्षीरं साधितं सर्पिर्मालतीकुसुमैः सह ।
गुल्मकासज्वरश्वासक्षयोन्मादनिवारणम् ॥२४॥
एतदेव हि सम्पक्वं जीवनीयोपसंभृतम् ।
चतुर्गुणेन दुग्धेन महाकल्याणमुच्यते ॥२५॥
अपस्मारं ग्रहं शोषं क्लैब्यं कार्श्यमबीजताम् ।
घृतमेतन्निहन्त्याशु ये चादौ गदिता गदाः ॥२ ॥

एक एक दिन छोड़कर इसको यवागू, तर्पण (जौ का मन्थ या लाजा सत्तू) देवे। इन सत्तुओं को अकेले जल के साथ देवे। बहुत विचक्षण वैद्य कुल्माष (अर्धस्विन्न जौ) देवे। हृदय के लिये प्रिय (हितकारी) और दीपनीय (अग्निवर्धक), जो पथ्य भोजन हो, वह इस रोगी को देवे। (विडंग, त्रिफला, मुस्ता, मजीठ, अनारदाना, नीलोफर, निशोथ, ऐलवालुक, इलायची, चन्दन, देवदारु, बर्हिष्ठ, हल्दी, कूठ, मुद्गपर्णी, सारिवा, कृष्णसारिवा, हरेणु, त्रिवृत्, दन्ती, वच, तालीस, केसर, चमेली के फूल, इनके कल्क से, घी से दुगुने दूध में सिद्ध किया घी गुल्म, कास, ज्वर, श्वास, क्षय, उन्माद को नष्ट करता है। उपर्युक्त द्रव्यों में जीवनीय गण के द्रव्य मिलाकर चार गुणे दूध से सिद्ध किया घृत महाकल्याण कहा जाता है। यह घृत अपस्मार, ग्रह, शोष, क्लीबता, कृशता, नपुंसकता को तथा पूर्वोक्त कहे रोगों को शीघ्र नष्ट करता है[1]।

वि० मन्तव्य—अबीजताम्-अबीजता शुक्र का वह विकार है जिसमें मैथुन शक्ति तो होती है परन्तु उस शुक्र से गर्भोत्पत्ति नहीं होती ॥२०-२६॥

बर्हिष्ठकुष्ठमञ्जिष्ठाकटुकैलानिशाह्वयैः ।
तगरत्रिफलाहिङ्गुवाजिगन्धामरद्रुमैः ॥२७॥
वचाऽजमोदाकाकोलीमेदामधुकपद्मकैः॥
सशर्करं हितं सर्पिःपक्वं क्षीरचतुर्गुणम् ॥२८॥
बालानां ग्रहजुष्टानां पुंसां दुष्टाल्परेतसाम् ।
ख्यातं फलघृतं स्त्रीणां वन्ध्यानां चाशु गर्भदम्)।

फलघृत—बर्हिष्ठ, कूठ, मजीठ, कुटकी, इलायची, हल्दी, तगर, त्रिफला, हींग, अश्वगन्धा, देवदारु, वच, अजवाइन, काकोली, मेदा, मुलैहठी, पद्माख, इनके कल्क से शर्करा के साथ चार गुणे दूध में (घी से) सिद्ध किया घी—ग्रहों से पीड़ित बालकों के लिये दुष्ट एवं अल्प शुक्रवाले पुरुषों के लिये उत्तम है, वन्ध्या स्त्रियों के लिये शीघ्र ही गर्भप्रद है) ॥२७,२८॥

ब्राह्मीमैन्द्रीं विडङ्गानि व्योषं हिङ्गु सुरां जटाम् ।
विषघ्नीं लशुनं रास्नां विशल्यां सुरसां वचाम् ॥३०॥
ज्योतिष्मतीं नागरं च अनन्तामभयां तथा ।
सौराष्ट्रीं च समांसानि गजमूत्रेण पेषयेत् ॥३१॥
छायाविशुष्कास्तद्वर्तीर्योजयेद्विधिकोविदः ।
अवपीडेऽञ्जनेऽभ्यङ्गे नस्ये धूमे प्रलेपने ॥३२॥

ब्राह्मी, इन्द्रवारुणी, विडंग, त्रिकटु, हींग, देवदारु, जटामांसी, विषघ्नी (हल्दी), लहसुन, रास्ना, विशल्या, (कलिहारी), तुलसी, वच, मालकांगनी, सोंठ, सारिवा, हरड़ और सोरठी-मिट्टी, इनको परस्पर समान भाग लेकर हाथी के मूत्र से पीसे। इनकी वर्त्ति बनाकर छाया में सुखा ले। विधि को जाननेवाला वैद्य इनको अवपीड में, अंजन में, अभ्यंग में, नस्य में, धूम में, प्रलेप में बरते ॥३०-३२॥

उरोऽपाङ्गललाटेषु सिराश्चास्य विमोक्षयेत् ।

उन्माद रोगी के उर, अपांग और ललाट में सिरा का वेधन करे।

अपस्मारक्रियां चापि ग्रहोद्दिष्टां च कारयेत् ॥३३॥

अपस्मार में कही एवं ग्रह में कही चिकित्सा करे ॥३३॥

शान्तदोषं विशुद्धं च स्नेहबस्तिभिराचरेत् ।
उन्मादेषु च सर्वेषु कुर्याच्चित्तप्रसादनम् ।
मृदुमुर्वां मदेऽप्येवं क्रियां मृद्वीं प्रयोजयेत् ॥३४॥
शोकशल्यं व्यपनयेदुन्मादे पञ्चमे भिषक् ।
विषजे मृदुपूर्वां च विषघ्नीं कारयेत् क्रियाम् ॥३५॥

उन्माद के शान्त हो जाने पर—वमनादि से शुद्ध करके स्नेह बस्तियोंसे चिकित्सा करे। उन्माद शान्त होने का लक्षण—

प्रसादश्चेन्द्रियार्थानां बुद्ध्यात्ममनसां तथा ।
धातूनां प्रकृतिस्थत्वं विगतोन्मादलक्षणम् ॥ चरक।

सब प्रकार के उन्मादों में चित्त की प्रसन्नता उत्पन्न करे। मद में प्रथम मृदु संशोधन देकर पीछे से कोमल अंजन, अवपीड़न रूपी चिकित्सा करे। शोकजन्य पांचवें उन्माद में वैद्य शोकशल्य को निकाल देवे। विषजन्य उन्माद में मृदु-शोधन देकर विषनाशक चिकित्सा करे ॥३४,३५॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रान्तर्गते भूतविद्यातन्त्रे उन्मादप्रतिषेधो नाम (तृतीयोऽध्यायः, आदितः) द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

अथातो रसभेदविकल्पमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे रस भेद विकल्प अध्याय का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

दोषाणां पञ्चदशधा प्रसरोऽभिहितस्तु यः ।
त्रिषष्ट्या रसभेदानां तत्प्रयोजनमुच्यते ॥३॥

---

१ कल्याणक घृत में क्षीर के स्थान में जल लेना उत्तम है। चरक में जल ही पाठ है, यथा—चतुर्गुणे जले सम्यक् घृतप्रस्थं विपाचयेत्। महाकल्याणक में 'गृष्टिक्षीरे चतुर्गुणे' पाठ है।

दोषों का जो पन्द्रह प्रकार से प्रसर कहा है, उसका प्रयोजन, तिरसठ रस भेदों की दृष्टि से है।

वक्तव्य—पन्द्रह दोषों के उपलक्षण मात्र हैं। दोष परस्पर मिलकर तिरसठ प्रकार के हैं, रस भी संसर्ग रूप में तिरसठ हैं, इसलिये दोनों की तुलना करके इन रसों का प्रयोग करना चाहिये ॥३॥

अविदग्धा विदग्धाश्च भिद्यन्ते ते त्रिषष्टिधा।
रसवेदत्रिषष्टिं तु वीक्ष्य वीक्ष्यावचारयेत् ॥४॥

अविदग्ध (असंयुक्त-एकाकी) रस और विदग्ध (संयुक्त मिले) रस तिरसठ प्रकार के हैं। रसों के इन तिरसठ भेदों के दोषों को देख देखकर बरतना चाहिये ॥४॥

एकैकेनानुगमनं भागशो यदुदीरितम्।
दोषाणां तत्र मतिमान् त्रिषष्टिं तु प्रयोजयेत् ॥५॥

दोषों का अंशांश कल्पना से एक एक रस का अनुकरण करना, जो कहा है, उनमें बुद्धिमान् वैद्य इन तिरसठ रस भेदों को बरते ॥५॥

यथाक्रमप्रवृत्तानां द्विकेषु मधुरो रसः।
पञ्चानुक्रमते योगानम्लश्चतुर एव तु ॥६॥
त्रींश्चानुगच्छति रसो लवणः कटुको द्वयम्।
तिक्तः कषायमन्वेति ते द्विका दश पञ्च च ॥७॥

तद्यथा—मधुराम्लः १, मधुरलवणः २, मधुरकटुकः ३, मधुरतिक्तः ४, मधुरकषायः ५, एते पञ्चानुक्रान्ता मधुरेण, अम्ललवणः १, अम्लकटुकः २, अम्लतिक्तः ३, अम्लकषायः ४, एते चत्वारोऽनुक्रान्ता अम्लेन, लवणकटुकः १, लवणतिक्तः २, लवणकषायः ३, एते त्रयोऽनुक्रान्ता लवणेन, कटुतिक्तः १, कटुकषायः २, द्वावेतावनुक्रान्तौ कटुकेन, तिक्तकषायः १, एक एवानुक्रान्तस्तिक्तेन, एवमेते पञ्चदश द्विकसंयोगा व्याख्याताः ॥८॥

दो रसों के संयोग में क्रम से मधुर रस पाँच रसों में, अम्ल रसों के चार योगों में, लवणरस तीन योगों में, कटु रस दो में और तिक्त केवल कषाय के साथ मिलता है, इस प्रकार दो रसों के संयोग पन्द्रह हैं।

यथा—मधुराम्ल, मधुरलवण, मधुरकटुक, मधुरतिक्त, मधुरकषाय—ये पाँच मधुररस के संयोग से बने हैं। अम्ललवण, अम्लकटु, अम्लतिक्त, अम्लकषाय ये चार प्रकार अम्ल से बने हैं। लवणकटु, लवणतिक्त, लवणकषाय, ये तीन लवण के योग से बने हैं। कटुतिक्त, कटुकषाय, ये दो कटुरस से बने हैं। तिक्तकषाय तिक्त से एक ही संयोग है। इस प्रकार से ये पन्द्रह योग दो रसों के संयोग से बने हैं ॥६-८॥

त्रिकान् वक्ष्यामः—

आदौ प्रयुज्यमानस्तु मधुरो दश गच्छति।
षडम्लो लवणस्तस्मादर्धमेकं तथा कटुः ॥९॥

तद्यथा—मधुराम्ललवणः १, मधुराम्लकटुकः २, मधुराम्लतिक्तः ३, मधुराम्लकषायः ४, मधुरलवणकटुकः ५, मधुरलवणतिक्तः ६, मधुरलवणकषायः ७, मधुरकटुकतिक्तः ८, मधुरकटुकषायः ९, मधुरतिक्तकषायः १०, एवमेषां दशानां त्रिकसंयोगानामादौ मधुरः प्रयुज्यते, अम्ललवणकटुकः १, अम्ललवणतिक्तः २, अम्ललवणकषायः ५, अम्लतिक्तकषायः ६, एवमेषां षण्णामादावम्लः प्रयुज्यते, लवणकटुतिक्तः १, लवणकटुकषायः २, लवणतिक्तकषायः ३, एवमेषां त्रयाणामादौ लवणः प्रयुज्यते, कटुतिक्तकषायः १, एवमेकस्यादौ कटुकः प्रयुज्यते, एवमेते त्रिकसंयोगा विंशतिर्व्याख्याताः ॥१०॥

त्रिक—तीन के संयोग को कहेंगे—मधुर को प्रारम्भ में रखकर दस संयोग बनते हैं। अम्ल को आगे में रखकर छै संयोग, लवण को आगे में रखकर तीन संयोग बनते हैं। यथा—

मधुराम्ललवण, मधुराम्लकटु, मधुराम्लतिक्त, मधुराम्लकषाय, मधुरलवणकटु, मधुरलवणतिक्त, मधुरलवणकषाय, मधुरकटुतिक्त, मधुरकटुकषाय, मधुरतिक्तकषाय; इस प्रकार इन तीन रसों के दस संयोगों में मधुररस प्रारम्भ में हैं। अम्ललवणकटु, अम्ललवणतिक्त, अम्ललवणकषाय, अम्लकटुतिक्त, अम्लकटुकषाय, अम्लतिक्तकषाय, इन छै में अम्लरस पहले आता है। लवणकटुतिक्त, लवणकटुकषाय, लवणतिक्तकषाय, इन तीन के प्रारम्भ में लवण बरता गया है। कटुतिक्तकषाय—इस एक में कटु रस ही आरम्भ में बरता गया है। इस प्रकार तीन रसों के बीस संयोग कह दिये हैं।

वि० मन्तव्य—तीन रसों के संयोग का नाम 'त्रिक' है और इसी प्रकार चार रसों के संयोग का नाम "चतुष्क" पाँच रसों के संयोग का नाम "पञ्चक" तथा छः रसों के संयोग का नाम "षट्क" है ॥९,१०॥

चतुष्कान् वक्ष्यामः—

चतुष्करससंयोगान्मधुरो दश गच्छति।
चतुरोऽम्लोऽनुगच्छेच्च लवणस्त्वेकमेव तु ॥११॥

मधुराम्ललवणकटुकः १, मधुराम्ललवणतिक्तः २, मधुराम्ललवणकषायः ३, मधुराम्लकटुतिक्तः ४- मधुराम्लकटुकषायः ५, मधुराम्लतिक्तकषायः ६, मधुरलवणतिक्तकषायः ९, मधुरकटुतिक्तकषायः १०, एवमेषां दशानामादौ मधुरः प्रयुज्यते, अम्ललवणकटुतिक्तः १, अम्ललवणकटुकषायः २, अम्ललवणतिक्तकषायः ३, अम्लकटुतिक्तकषायः ४, एवमेषां चतुर्णामादावम्लः प्रयुज्यते, लवणकटुतिक्तकषायः १, एवमेकस्यादौ लवणः प्रयुज्यते, एवमेते चतुष्करससंयोगाः पञ्चदश कीर्तिताः ॥१२॥

चार रसों के संयोगों को कहेंगे—चार रसों के संयोग में

मधुर रस आगे आकर दस संयोग बनते हैं। अम्ल रसों के चार संयोग और लवण का एक संयोग बनता है, यथा—

मधुराम्ललवणकटु, मधुराम्ललवणतिक्त, मधुराम्लतिक्त, मधुराम्लकटुकषाय, मधुराम्लतिक्तकषाय, मधुरलवणकटुतिक्त, मधुरलवणकटुकषाय, मधुरलवणतिक्तकषाय, मधुरकटुतिक्तकषाय—इस प्रकार इन दस के प्रारम्भ में मधुर रस बरता जाता है। अम्ललवणकटुतिक्त, अम्ललवणकटुकषाय, अम्लकटुतिक्तकषाय, अम्ललवणतिक्तकषाय–इन चार में अम्लरस प्रारम्भ में बरता गया है। लवणकटुतिक्तकषाय—इस प्रकार चार रस के पन्द्रह संयोग कह दिये हैं ॥१२॥

पञ्चकान् वक्ष्यामः—

पञ्चकान् पञ्च मधुर एकमम्लस्तु गच्छति ॥१३॥

मधुराम्ललवणकटुतिक्तः १, मधुराम्ललवणकटुकषायः २, मधुराम्ललवणतिक्तकषायः ३, मधुराम्लकटुतिक्तकषायः ४, मधुरलवणकटुतिक्तकषायः ५, एवमेषां पञ्चानामादौ मधुरः प्रयुज्यते, अम्ललवणकटुतिक्तकषायः, १, एवमेकस्यादावम्लः, एवमेते षट् पञ्चकसंयोगा व्याख्याताः ॥१४॥

पाँच रसों के संयोगों को कहते हैं—मधुररस पांच संयोगों में पहले आता है और अम्ल रस एक संयोग में यथा—

मधुराम्ललवणकटुतिक्त, मधुराम्ललवणकषाय, मधुराम्ललवणतिक्तकषाय, मधुराम्लकटुतिक्तकषाय, मधुलवणकटुतिक्तकषाय, इस प्रकार इन पाँच के प्रारम्भ में मधुररस बरता जाता है। अम्ललवणकटुतिक्तकषाय इस एक में अम्लरस बरता गया, इस प्रकार से पाँच रसों के छै संयोग कह दिये हैं ॥१३,१४॥

षट्कमेकं वक्ष्यामः एकस्तु षट्कसंयोगः—मधुराम्ललवणकटुतिक्तकषायः एष एक एव षट्क संयोगः ॥१५॥

छै रसों का संयोग एक कहेंगे—छै रसों का संयोग एक ही है—मधुराम्ललवणकटुतिक्तकषाय, यही एक छै रसों का संयोग है ॥१५॥

एकैकश्च षड्रसा भवन्ति—मधुरः १, अम्लः २, लवणः ३, कटुकः ४, तिक्तः ५, कषायः ६, इति ॥१६॥

एक एक रस छै हैं, यथा–मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय ॥१६॥

भवति चात्र—

एषा त्रिषष्टिर्व्याख्याताः रसानां रसचिन्तकैः।
दोषभेदत्रिषष्ट्यां तु प्रयोक्तव्या विचक्षणैः ॥१७॥

इस विषय में श्लोक है—रस के विचारकों ने रसों के ये तिरसठ भेद कहे हैं। बुद्धिमानों को चाहिये कि दोष भेद के तिरसठ भेदों में इनका प्रयोग करे।

वि० मन्तव्य—द्रव्यं एकरसं नास्ति न रोगोऽपि एकदोषजः - के अनुसार संसार का कोई भी द्रव्य एक रस अर्थात् केवल एकरसवाला नहीं और कोई रोग भी एक दोषज अर्थात् केवल एक दोषज नहीं है। अतएव अनेक रस अर्थात् एक रस से अधिक रसवाले द्रव्यों का प्रयोग अनेक दोषज अर्थात् एक से अधिक दोषों से उत्पन्न रोगों में—द्रव्याश्रित रसों का विचार करके करना चाहिये तभी लाभ होता है। यह विचार इस प्रकार किया जाता है—रसाः तावत् षट्-मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषायाः। ते सम्यक् उपयुज्यमाना शरीरं यापयन्ति, मिथ्या उपयुज्यमानाः तु खलु दोष प्रकोपाय उपकल्पन्ते। और–दोषाः पुनः त्रयः वात-पित्त-श्लेष्माणः। ते प्रकृतिभूताः शरीरोपकारका भवन्ति, विकृतिम् आपन्नाः तु खलु नानाविधैः विकारैः शरीरम् उपतापयन्ति। और— तत्र दोषं एकैकं त्रयः त्रयः रसा जनयन्ति, त्रयः त्रयः च उपशमयन्ति। तद्–यथा–कटुतिक्तकषाया वातं जनयन्ति, मधुर–अम्ललवणाः तु एनं (वातं) शमयन्ति, कटुकअम्ललवणाः पित्तं जनयन्ति मधुरतिक्तकषायाः तु एनत् (पित्तं) शमयन्ति। मधुरअम्ल लवणाः श्लेष्माणं जनयन्ति, कटुतिक्तकषायाः तु एनं (कफं) शमयन्ति। परन्तु–रसदोषसन्निपाते तु ये रसाः यैः दोषैः समानगुणाः समानगुणभूयिष्ठा वा भवन्ति ते (रसाः) तान् (दोषान्) अभिवर्द्धयन्ति। विपरीतगुणाः तु विपरीतगुणभूयिष्ठा वा शमयन्ति अभ्यस्यमाना (सेव्यमानाः) इति। (च० नि० अ० १)– सारांश–रस छै हैं और दोष तीन हैं, तीन तीन रस एक एक दोष को बढ़ाते हैं और तीन तीन एक एक दोष को शान्त करते हैं, परन्तु रस एवं दोषों के सन्निपात (संयोग) में भी जो २ रस दोषों के समान गुणवाले होते हैं वे उनको बढ़ाते हैं और जो २ विपरीत गुणवाले होते हैं वे उनको शान्त करते हैं। भगवान् धन्वन्तरि के उक्त श्लोक का यही तात्पर्य है, परन्तु यह सब केवल रसों को ध्यान में रखकर अथ च मुख्य मानकर कहा गया है। पाठक यह भी न भूलें कि रसों से भी अधिक कार्यकर गुण, वीर्य, विपाक एवं प्रभाव हैं, जो दोषों के वर्द्धन एवं शमन में हेतु होते हैं। देखिये सु० सू० अ० ४०। अतएव भगवान् पुनर्वसु ने उक्त पाठ से आगे पाठकों को सावधान करने के लिये कहा है कि—एतद्व्यवस्था हेतोः परस्परेण असंसृष्टानां (असंयुक्तानां) रसानां षट्त्वं उपदिश्यते दोषाणां च त्रित्वम्। अर्थात् यह केवल व्यवस्था के लिये— परस्पर न मिले हुए रस छै और दोष तीन कह दिये जाते हैं॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रे तन्त्रभूषणाध्यायेषु रसभेदविकल्पाध्यायो नाम (प्रथमः आदितः) त्रिषष्टितमोऽध्यायः ६३॥

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

अथातो स्वस्थवृत्तमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥१॥
यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे स्वस्थवृत्त अध्याय का व्याख्यान करेंगे—जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

सूत्रस्थाने समुद्दिष्टः स्वस्थो भवति यादृशः ।
तस्य यद्रक्षणं तद्धि चिकित्सायाः प्रयोजनम् ॥३॥

सूत्रस्थान में 'समदोषः समाग्निश्च' इत्यादि (सू० अ० १५) से जो स्वस्थव्यक्ति कहा है, उसकी जो रक्षा करनी है, वही चिकित्सा का प्रयोजन है।

वक्तव्य—चिकित्सा का प्रयोजन यही है कि स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा हो सके। इसी से आयुर्वेद का प्रयोजन बताते हुए कहा है "व्याध्युपसृष्टानां व्याधिपरिमोक्षः स्वास्थ्यस्य परिरक्षणं च ॥" रोगचिकित्सा कह दी, अब स्वास्थ्यरक्षा कहते हैं ॥३॥

तस्य यद्वृत्तमुक्तं हि रक्षणं च मयाऽऽदितः ।
तस्मिन्नर्थाः समासोक्ता विस्तरेणेह वक्ष्यते ॥४॥

उस स्वस्थ व्यक्ति की रक्षा के लिये अनागत बाधा प्रतिषेध अध्याय में जो विषय संक्षेप से मैंने कहे हैं, उनको यहाँ पर विस्तार से कहूँगा ॥४॥

यस्मिन् यस्मिन्नृतौ ये ये दोषाः कुप्यन्ति देहिनाम् ।
तेषु तेषु प्रदातव्या रसास्ते ते विजानता ॥५॥

जिस जिस ऋतु में मनुष्यों के जो जो दोष प्रकुपित होते हैं, उन उन ऋतुओं में वे-वे रस जाननेवाला वैद्य देवे।

वि० मन्तव्य—देखिये-अ० ६३ के श्लो० १५ का विशेषवचन ॥५॥

'प्रक्लिन्नत्वाच्छरीराणां वर्षासु भिषजा खलु ।
मन्देऽग्नौ कोपमायान्ति सर्वेषां मारुतादयः ॥६॥
तस्मात् क्लेदविशुद्ध्यर्थं दोषसंहरणाय च ।
कषायतिक्तकटुकै रसैर्युक्तमुपद्रवम् ॥७॥
नातिस्निग्धं नातिरूक्षमुष्णं दीपनमेव च ।
देयमन्नं नृपतये यज्जलं चोक्तमादितः ॥८॥
तप्तावरतमम्भो वा पिबेन्मधुसमायुतम् ।
अह्नि मेघानिलाविष्टेऽत्यर्थशीताम्बुसङ्कुले ॥९॥
तरुणत्वाद्विदाहं च गच्छन्त्योषधयस्तदा ।
मतिमांस्तन्निमित्तं च नातिव्यायाममाचरेत् ॥१०॥
अत्यम्बुपानावश्यायग्राम्यधर्मातपांस्त्यजेत् ।
भूबाष्पपरिहारार्थं शयीत च विहायसि ॥११॥
शीते साग्नौ निवाते च गुरुप्रावरणे गृहे ।
यायान्नागवधूभिश्च प्रशस्तागुरुभूषितः ॥१२॥
दिवास्वप्नमजीर्णं च वर्जयेत्तत्र यत्नतः ।

वर्षा ऋतु में शरीरों में अतिशय आर्द्रता रहने के कारण अग्नि के मन्द हो जाने से वायु आदि दोष कुपित हो जाते हैं। इसलिये क्लिन्नता की शुद्धि के लिये, और दोष के नाश के लिये कषाय, तिक्त, कटु से मिश्रित, द्रवहीन भोजन वैद्य देवे। न तो बहुत स्निग्ध, न बहुत रूक्ष, उष्ण, अग्निदीपक अन्न राजा को वैद्य देवे। पानीयवर्ग में-वर्षास्वान्तरिक्षं-में का जल पीने को देवे। अथवा गरम करके ठण्डा किया जल मधु मिलाकर पीये। दिन के बादल वायु से भरे आक्रान्त रहने से, अतिशयशीत जल से व्याप्त एवं नूतन उत्पन्न होने से, औषधियों में अम्लता आ जाती है। इस कारण विद्वान् मनुष्य वर्षाकाल में बहुत व्यायाम न करे। पानी का बहुत पीना, ओस, मैथुन, धूप से बचता रहे। जमीन की बाष्प (सीलन) से बचने के लिये-छत पर (अट्टालिका में दुमंजिले पर) सोये। ठण्ड होने पर, भारी वस्त्र ओढ़कर अग्नि से गरम किये वायु रहित घर में रहे। उत्तम अगर का शरीर पर लेप करके हथिनियों द्वारा आना जाना करे। दिन में सोना और अजीर्ण इससे वर्षा ऋतु में कोशिश करके बचता रहे।

"भूबाष्पान्मेघनिष्यन्दात्पाकादम्लजलस्य च ।
वर्षास्वग्निबले क्षीणे कुप्यन्ति पवनादयः ॥
तस्मात्साधारणः सर्वो विधिर्वर्षासु शस्यते ॥" चरक ॥

सेव्याः शरदि यत्नेन कषायस्वादुतिक्तकाः ॥१३॥
क्षीरेक्षुविकृतिक्षौद्रशालिमुद्गादिजाङ्गलाः ।
(श्वेतस्रजश्चन्द्रपादाः प्रदोषे लघु चाम्बरम् ॥१४॥)
सलिलं च प्रसन्नत्वात् सर्वमेव तदा हितम् ।
सरःस्वाप्लवनं चैव कमलोत्पलशालिषु ॥१५॥
प्रदोषे शशिनः पादाश्चन्दनं चानुलेपनम् ।
तिक्तस्य सर्पिषः पानैरसृक्स्रावैश्च युक्तितः ॥१६॥
वर्षासूपचितं पित्तं हरेच्चापि विरेचनैः ।
नोपेयात्तीक्ष्णमम्लोष्णं क्षारं स्वप्नं दिवाऽऽतपम् ॥१७॥
रात्रौ जागरणं चैव मैथुनं चापि वर्जयेत् ॥
(स्वादुशीतजलं मेध्यं शुचिस्फटिकनिर्मलम् ॥१८॥
शरच्चन्द्रांशुनिर्धौतमगस्त्योदयनिर्विषम् ।
प्रसन्नत्वाच्च सलिलं सर्वमेव तदा हितम् ॥१९॥
सचन्दनं सकर्पूरं वासश्चामलिनं लघु ।
भजेच्च शारदं माल्यं सीधोः पानं च युक्तितः ॥२०॥
पित्तप्रशमनं यच्च तच्च सर्वं समाचरेत् ।)

प्रयत्नपूर्वक शरद् ऋतु में कषाय, स्वादु, तिक्त रस, दूध, गन्ने के रस की बनावटें, मधु, शालिधान्य, मूंग आदि एवं जांगल मांस सेवन करना चाहिये। श्वेत माला, रात के प्रथम प्रहर में चन्द्रमा की किरणों का सेवन करे। हल्के-सूक्ष्म वस्त्र पहने। जल के निर्मल होने के कारण सब जल (नदी, कुएँ आदि का सब स्थानों का) हितकारी है। कमल-नील कमल से शोभित तालाबों में तैरना चाहिये। रात्रि के प्रथम प्रहर में चन्द्रमा की किरणें एवं चन्दन का लेप शरीर पर करे। वर्षा

में संचित पित्त को तिक्त घृतों के पीने से, युक्तिपूर्वक रक्तमोक्षण से, विरेचनों से निकाले। तीक्ष्ण अम्ल, उष्ण, क्षार दिन में सोना, धूप इनसे बचे। रात्रि में जागना, मैथुन भी छोड़ देवे।

(मधुर-शीतल जल मेध्य (मेधावर्धक). पवित्र, स्फटिक के समान निर्मल, शरद् ऋतु के चन्द्रमा की किरणों से धुला, अगस्त्य के निकलने से निर्विष बना निर्मल होने के कारण सब जल इसमें हितकारी है। चन्दन कपूर से सुगन्धित करके, निर्मल लघु कपड़े पहिने। शरद ऋतु के फूलों की माला पहने और युक्ति से सीधु की पीये। पित्तनाशक जो भी हो, उन सब का सेवन करे)। वक्तव्य—हंसोदक—

दिवा सूर्यांशुसंतप्तं निशि चन्द्रांशुशीतलम्।
कालेन पक्वं निर्दोषमगस्त्येनाविषीकृतम्॥
हंसोदकमिति ख्यातं शारदं विमलं शुचि।
स्नानपानावगाहेषु हितमम्बु यथाऽमृतम्॥
शारदानि च माल्यानि वासांसि विमलानि च।
शरत्काले प्रशस्यन्ते प्रदोषे चन्द्ररश्मयः॥१३-२०॥
(हेमन्तः शीतलो रूक्षो मन्दसूर्योऽनिलाकुलः॥२१॥
ततस्तु शीतमासाद्य वायुस्तत्र प्रकुप्यति।
कोष्ठस्थः शीतसंस्पर्शादन्तःपिण्डीकृतोऽनलः॥२२॥
रसमुच्छोषयत्याशु तस्मात् स्निग्धं तदा हितम्।)
हेमन्ते लवणक्षारतिक्ताम्लकटुकोत्कटम्॥२३॥
ससर्पिस्तैलमहिममशनं हितमुच्यते।
तीक्ष्णान्यपि च पानानि पिबेदगुरुभूषितः॥२४॥
तैलाक्तस्य सुखोष्णे च वारिकोष्ठेऽवगाहनम्।
साङ्गारयाने महति कौशेयास्तरणास्तृते॥२५॥
शयीत शयने तैस्तैर्वृतो गर्भगृहोदरे।
स्त्रीः श्लिष्टाऽगुरुधूपाढ्याः पीनोरुजघनस्तनीः॥२६॥
प्रकामं च निषेवेत मैथुनं तर्पितो नृपः।
(मधुरं तिक्तकटुकमम्लं लवणमेव च॥२७॥
अन्नपानं तिलान् माषाञ्छाकानि च दधीनि च।
तथेक्षुविकृतीः शालीन् सुगन्धांश्च नवानपि॥२८॥
प्रसहानूपमांसानि क्रव्यादबिलशायिनाम्।
औदकानां प्लवानां च पादिनां चोपसेवयेत्॥२९॥
मद्यानि च प्रसन्नानि यच्च किञ्चिद् बलप्रदम्।
कामतस्तन्निषेवेत पुष्टिमिच्छन् हिमागमे॥३०॥
दिवास्वप्नमजीर्णं च वर्जयेत्तत्र यत्नतः।)
एष एव विधिः कार्यः शिशिरे समुदाहृतः॥३१॥

(हेमन्त ऋतु शीतल, रूक्ष, सूर्य का तेज मन्द, वायु की अधिकतावाली होती है। इस ऋतु के शीतल होने से इस ऋतु में वायु कुपित होता है। शीतस्पर्श के कारण जाठराग्नि अन्दर में पिण्डीभूत-एकत्रित हो जाती है, इससे वह रस को सुखाती है, अतः स्निग्धभोजन इस ऋतु में हितकारी है)। हेमन्त ऋतु में प्रबल लवण-तिक्त-क्षार-अम्ल-कटु रसों का, प्रचुर घी तैल का तथा उष्ण भोजन का सेवन हितकारी है। शरीर पर अगरु का लेप करके तीक्ष्ण पानों को (पेयों को) पीये। शरीर पर तैल की मालिश करके गरम पानी से भरे टब में स्नान करे। अंगारों से भरी अंगीठीवाले, घर में बड़े विस्तृत रेशम से बिछाये बिस्तर पर शीतको मिटानेवाले वस्त्रों को ओढ़कर गर्भगृह के अन्दर सोये। अगरु और धूप से भरी, उरु, जघन एवं स्तनवाली स्त्रियों का आलिंगन करके वाजीकरण खान-पान से तृप्त हुआ राजा इच्छानुसार मैथुन करे। (मधुर तिक्त कटु, अम्ल, लवण, खान-पान, तिल, माष, शाक, दही, गन्ने के रस से बने पदार्थ, सुगन्धित नवीन शालिधान्य, प्रसह-आनूपमांस, मांस खानेवाले एवं बिलेशयों का मांस, औदक (मछली आदि) मांस, प्लव (बत्तख आदि) आदि का मांस, कछुए आदि पादियों का मांस खाये। निर्मल स्वच्छ मद्य पीये। और जो भी बलप्रद हो, उसको हेमन्तऋतु में इच्छापूर्वक खाये, दिन में सोना, अजीर्ण, इनको प्रयत्न पूर्वक छोड़ देवे) शिशिर में यही विधि बरते।

वक्तव्य—"प्रावराजिनकौशेयप्रवेणीकुथकास्ततम्—" ये वस्त्रों के भेद हैं, जो कि गरम होते हैं।

"वर्जयेदन्नपानानि लघूनि वातलानि च।
प्रवातं प्रमिताहारमुदमन्थं हिमागमे"॥चरक॥२१-३१॥
(हेमन्ते निचितः श्लेष्मा शैत्याच्छीतशरीरिणाम्।
औष्ण्याद्वसन्ते कुपितः कुरुते च गदान् बहून्॥३२॥
ततोऽम्लमधुरस्निग्धलवणानि गुरूणि च।
वर्जयेद्वमनादीनि कर्माण्यपि च कारयेत्॥३३॥
षष्टिकान्नं यवाञ्छीतान् मुद्गान् नीवारकोद्रवान्।
लावादिविष्किररसैर्द्यायूषैश्च युक्तितः॥३४॥
पटोलनिम्बवार्ताकतिक्तकैश्च हिमात्यये।
सेवेन्मध्वासवारिष्टान् सीधुमाध्वीकमाधवान्॥३५॥
व्यायामभञ्जनं धूमं तीक्ष्णं च कवलग्रहम्।
सुखाम्बुना च सर्वार्थान् सेवेत कुसुमागमे॥३६॥
तीक्ष्णरूक्षकटु क्षारकषायं कोष्णमद्रवम्।
यवमुद्गमधुप्रायं वसन्ते भोजनं हितम्॥३७॥
व्यायामोऽत्र नियुद्धाध्वशिलानिर्घातजो हितः।
उत्सादनं तथा स्नानं वनिताः काननानि च॥३८॥
सेवेत निर्हरेच्चापि हेमन्तोपचितं कफम्।
शिरोविरेकवमननिरूहकवलादिभिः॥३९॥
वर्जयेन्मधुरस्निग्धदिवास्वप्नगुरुद्रवान्।

शीतल शरीरवाले पुरुषों में हेमन्त के अन्दर संचित हुआ कफ वसन्त में गरमी से कुपिय होकर बहुत से रोगों को उत्पन्न करता है। इससे अम्ल, मधुर, स्निग्ध, लवण और गुरु वस्तुओं का त्याग करे, और वमन-विरेचन आदि कर्मों को

करे। सांठी अन्न, जौ (ठण्डे किये), मूँग, नीवार, कोदा आदि को बटेर आदि विष्किर मांस रसों के साथ या मूंग कुलथी आदि के यूष से देवे। वसन्त में परवल, नीम बैंगन, तिक्तक वस्तुओं से भोजन करे। मधु, आसव, अरिष्ट, सीधु, मधु-मद्य, माध्वीक, माधव (मधु से बने मद्य) का सेवन करे। व्यायाम, अंजन, तीक्ष्ण धूम, कवलग्रह को बरते। वसन्त में जल के सब कार्यों में गरम पानी बरते। तीक्ष्ण, रूक्ष, कटु, क्षार, कषाय, सुहाता गरम, द्रवरहित, जौ मूंग मधु की अधिकता का भोजन वसन्त में हितकारी है। नियुद्ध (कुश्ती), मुसाफरी, पत्थर फेंकना आदि व्यायाम हितकारी हैं। उबटन, स्नान, स्त्रियाँ, वन इनका वसन्त में सेवन करे। हेमन्त में संचित कफ को शिरोविरेचन, वमन, निरूह, कवल आदि से निकाले। मधुर, स्निग्ध, दिन में सोना, भारी द्रव बहुल वस्तुओं का त्याग करे॥

व्यायाममुष्णमायासं मैथुनं परिशोषि च ॥४०॥
रसांश्चाग्निगुणोद्रिक्तान् निदाघे परिवर्जयेत्।

ग्रीष्मऋतु में व्यायाम, धूप, परिश्रम, मैथुन, शरीर को सुखानेवाले आहार, अग्नि गुण की अधिकतावाले रसों का त्याग कर देवे। (अग्नि गुण की अधिकतावाले रस कटु, अम्ल और लवण हैं) ॥४०॥

सरांसि सरितो वापीर्वनानि रुचिराणि च ॥४१॥
चन्दनानि परार्घ्याणि स्रजः सकमलोत्पलाः।
तालवृन्तानिलाहारांस्तथा शीतगृहाणि च ॥४२॥
घर्मकाले निषेवेत वासांसि सुलघूनि च।
शर्कराखण्डदिग्धानि सुगन्धीनि हिमानि च ॥४३॥
पानकानि च सेवेत मन्थांश्चापि सशर्करान्।
भोजनं च हितं शीतं सघृतं मधुरद्रवम् ॥४४॥
शृतेन पयसा रात्रौ शर्करामधुरेण च।
प्रत्यग्रकुसुमाकीर्णे शयने हर्म्यसंस्थिते ॥४५॥
शयीत चन्दनार्द्राङ्गः स्पृश्यमानोऽनिलैः सुखैः।

ग्रीष्म ऋतु में तालाब, नदियाँ, बावड़ी, सुन्दरवन, उत्कृष्ट चन्दन, कमल, नीलोफर की मालायें, ताड़ के बने पंखों की वायु, शीतल घर, हलके पतले वस्त्रों का सेवन करे। शर्करा, खाँड से लिप्त, सुगन्धित, शीतल पानक (शर्बतों) का सेवन करे, और शर्करा मिश्रित मन्थों को पीये। शीतल, घृतयुक्त, मधुर, एवं द्रव भोजन हितकारी है। गरम किये दूध में शर्करा मिलाकर इससे रात्रि में भोजन करना उत्तम है। अट्टालिका की छत पर बिछाये, नूतन-नये फूलों से भरे बिस्तर पर शरीर पर चन्दन का लेप करके सुखदायक वायु का स्पर्श लेते हुए सोये।

वक्तव्य—"दिवा पानानि शीतानि हितं रात्रौ च भोजनम्। ससर्पिःशर्करं शीतं शृतेन पयसा युतम्॥ दिवा शीतगृहे निद्रां निशि चन्द्रांशुशीतले। भजेच्चन्दनदिग्धाङ्गः प्रवाते हर्म्यमस्तके॥" चरक ॥४१-४५॥

तापात्यये हिता नित्यं रसा ये गुरवस्त्रयः ॥४६॥
पयो मांसरसाः कोष्णास्तैलानि च घृतानि च।
बृंहणं चापि यत्किञ्चिदभिष्यन्दि तथैव च ॥४७॥
निदाघोपचितं चैव प्रकुप्यन्तं समीरणम्।
निहन्यादनिलघ्नेन विधिना विधिकोविदः ॥४८॥
(नदीजलं रूक्षमुष्णमुदमन्थं तथाऽऽतपम्।
व्यायामं च दिवास्वप्नं व्यवायं चात्र वर्जयेत् ॥४९॥
(नवान्नरूक्षशीताम्बुसक्तूंश्चापि विवर्जयेत्।)
यवषष्टिकगोधूमान् शालींश्चाप्यनवांस्तथा ॥५०॥
हर्म्यमध्ये निवाते च भजेच्छय्यां मृदूत्तराम्।
सविषप्राणिविण्मूत्रलालानिष्ठीवनादिभिः ॥५१॥
समाप्लुतं तदा तोयमान्तरीक्षं विषोपमम्।
वायुना विषदुष्टेन प्रावृषेण्येन दूषितम् ॥५२॥
तद्धि सर्वोपयोगेषु तस्मिन् काले विवर्जयेत्।
अरिष्टासवमैरेयान् सोपदंशांस्तु युक्तितः ॥५३॥
पिबेत् प्रावृषि जीर्णांस्तु रात्रौ तानपि वर्जयेत्।
निरूहैर्बस्तिभिश्चान्यैस्तथाऽन्यैर्मारुतापहैः ॥५४॥
(कुपितं शमयेद्वायुं वार्षिकं चाचरेद्विधिम्॥)

ग्रीष्म के बीत जाने पर प्रावृड् काल में नित्य भारी तीन रसों का (मधुर, अम्ल, लवण का) सेवन करे। दूध सुहाते गरम मांसरस, तैल, घृत इनका सेवन करे। जो भी कोई द्रव्य बृंहण एवं अभिष्यन्दि हो, उनका सेवन करे। ग्रीष्म में संचित वायु के प्रकोप को, विधि को जाननेवाला वैद्य वातनाशक विधि से शान्त कर दे। (इसी ऋतु में नदी का पानी, रूक्ष, उष्ण वस्तुएँ, पानी में घुले सत्तु, धूप, व्यायाम, दिन में सोना और मैथुन छोड़ देवे)। नूतन अन्न (एक साल से कम), रूक्ष, शीतल अन्न, शीतल जल, सत्तू (पानी में घुले) छोड़ दे। जौ, गेहूँ, पुराने साँठी, शाली का सेवन करे। मकान के मध्य में वायु रहित स्थान पर अतिशय कोमल शय्या पर सोये। वर्षा का जल विषवाले प्राणी के मल मूत्र, लाला, थूक आदि से मिला होने के कारण विष के समान होता है, प्रावृड् ऋतु के विष से दूषित वायु से दूषित होने के कारण इस ऋतु में प्रत्येक कार्य में यह निन्दित होता है। प्रावृड् ऋतु में चटनी आदि (या मांस को) खाकर युक्ति से पुरातन अरिष्ट, आसव, मैरेय को पीये। रात्रि में इनका भी परित्याग कर देवे। निरूह से, अनुवासन वस्ति से, तथा दूसरी वातनाशक विधियों से कुपित वायु को शान्त करे। वर्षा की ऋतुचर्या का सेवन करे।

वक्तव्य—प्रावृड्काल में वायु का संचय होता है, संचय काल में ही वायु को शान्त करना चाहिये। यथा—"संचयेऽपहृता दोषा लभन्ते नोत्तरा गतीः" ॥४६-५४॥

ऋतावृतौ य एतेन विधिना वर्तते नरः ॥५५॥

घोरानृतुकृतान् रोगान्नाप्नोति स कदाचन।

इस विधि से जो मनुष्य प्रत्येक ऋतु में बरतता है, वह ऋतुजन्य भयानक रोगों से कभी भी आक्रान्त नहीं होता ॥५५॥

अत ऊर्ध्वं द्वादशाशनप्रविचारान् वक्ष्यामः। तत्र शीतोष्णस्निग्धरूक्षद्रवशुष्कैककालिकद्विकालिकौषधयुक्त-मात्राहीनदोषप्रशमनवृत्त्यर्थाः ॥५६॥

इसके आगे भोजन के बारह विभागों को कहेंगे—इनमें शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, द्रव, शुष्क, एककालिक, द्विकालिक, औषधयुक्त, मात्राहीन, दोषप्रशमन, वृत्ति के लिये ॥५६॥

तृष्णोष्णमदद्दाहार्तान् रक्तपित्तविषातुरान्।
मूर्च्छार्तान् स्त्रीषु च क्षीणान् शीतैरन्नैरुपाचरेत् ॥५७॥

तृष्णा, गरमी, मद, दाह से पीड़ित, रक्तपित्त, विष के रोगी, मूर्च्छा पीड़ित, स्त्रीसंग से क्षीण पुरुषों की शीतल अन्न (खान-पान) से चिकित्सा करे ॥५७॥

कफवातामयाविष्टान् विरिक्तान् स्नेहपायिनः।
अक्लिन्नकायांश्च नरानुष्णैरन्नैरुपाचरेत् ॥५८॥

कफ-वात के रोगों से आक्रान्त, विरेचन लिये, स्नेह पीये, क्लेद रहित शरीरवालों की उष्ण अन्न से चिकित्सा करे ॥५८॥

वातिकान् रूक्षदेहांश्च व्यवायोपहतांस्तथा।
व्यायामिनश्चापि नरान् स्निग्धैरन्नैरुपाचरेत् ॥५९॥

वात प्रकृति, रूक्ष शरीर, मैथुन से पीड़ित (थके), नित्य-प्रति व्यायाम करनेवालों की स्निग्ध अन्न (खान-पान) से चिकित्सा करे ॥५९॥

मेदसाऽभिपरीतांस्तु स्निग्धान्मेहातुरानपि।
कफाभिपन्नदेहांश्च रूक्षैरन्नैरुपाचरेत् ॥६०॥

मेद से व्याप्त शरीरवालों की, स्निग्ध एवं मेहरोगियों की कफ से भरे शरीरवालों की रूक्ष अन्न से चिकित्सा करे ॥६०॥

शुष्कदेहान् पिपासार्तान् दुर्बलानपि च द्रवैः।

शुष्कशरीरवाले, पिपासा से पीड़ित, दुर्बल मनुष्यों की द्रव भोजनों से चिकित्सा करे।

प्रक्लिन्नकायान् व्रणिनः शुष्कैर्मेहिन एव च ॥६१॥

कुष्ठ आदि से सड़े शरीरवाले, व्रण रोगियों की, मेहरोगियों की शुष्क अन्न से चिकित्सा करे।

वक्तव्य—क्लिन्न व्रणों में शुष्क भोजन देवे। अक्लिन्न व्रणों में द्रव भोजन विधेय है ॥६१॥

एककालं भवेद्देयो दुर्बलाग्निविवृद्धये।

दुर्बल अग्नि को बढ़ाने के लिये एक समय भोजन देना चाहिये।

समाग्नये तथाऽऽहारो द्विकालमपि पूजितः ॥६२॥

समान अग्नि के लिये दोनों समय आहार देना उत्तम है ॥

औषधद्वेषिणे देयस्तथौषधसमायुतः।

औषध से द्वेष रखनेवाले को औषध से मिला अन्न देवे।

मन्दाग्नये रोगिणे च मात्राहीनः प्रशस्यते ॥६३॥
तदर्तुदत्तस्त्वाहारो दोषप्रशमनः स्मृतः।

मन्दाग्नि और रोगी को मात्रा से कम आहार देवे। ऋतु के अनुसार दिया अन्न आहार दोष प्रशामक कहा गया है ॥

अतः परं तु स्वस्थानां वृत्त्यर्थं सर्व एव च।
प्रविचारानिमान्नेव द्वादशात्र प्रयोजयेत् ॥६४॥

इसके उपरान्त समान धातु एवं समदोष प्रकृति स्वस्थ पुरुषों के लिये शरीर के धारण के लिये अन्न देवे। इन बारह विभागों को इस प्रकार प्रयोग करे ॥६४॥

अत ऊर्ध्वं दशौषधकालान् वक्ष्यामः। तत्राभक्तं प्राग्भक्तमधोभक्तं मध्येभक्तमन्तराभक्तं सभक्तं सामुद्गं मुहुर्मुहुर्ग्रासग्रासान्तरं चेति दशौषधकालाः ॥६५॥

इसके आगे दस औषध कालों को कहेंगे इनमें अभक्त, प्राग्भक्त, अधोभक्त, मध्येभक्त, अन्तराभक्त, सभक्त, सामुद्ग, मुहुर्मुहुः, ग्रास, ग्रासान्तर-ये दस औषधकाल (औषध देने के समय) हैं ॥६५॥

तत्राभक्तं तु यत् केवलमेवौषधमुपयुज्यते ॥६६॥

इनमें जब केवल औषध ही बरती जाती है, उसको अभक्त कहते हैं।

वि० मन्तव्य—जैसे लंघन-उपवास करते २ औषध खिलाई जाती है ॥६६॥

वीर्याधिकं भवति भेषजमन्नहीनं
हन्यात्तथाऽऽमयमसंशयमाशु चैव।
तद्बालवृद्धवनितामृदवस्तु पीत्वा
ग्लानिं परां समुपयान्ति बलक्षयं च ॥६७॥

अन्न के बिना औषध अधिक शक्तिशाली होती है। इससे औषध बिना संशय के रोगों को शान्त करती है। परन्तु इस प्रकार की औषध बालक, वृद्ध, स्त्री एवं कोमल प्रकृति के मनुष्य पीकर विशेष ग्लानि तथा बलक्षय को प्राप्त होते हैं।

वि० मन्तव्य—इससे लाभ तो बहुत होता है, परन्तु बाल आदि को उससे हानि भी होती है, और उनको भी जिनको लंघन का निषेध है। ऐसे रोगियों को लघु भोजन के साथ २ औषध देना चाहिये देखिये निम्नलिखित श्लोक ६९ ॥६७॥

प्राग्भक्तं नाम प्रोक्तं यत् प्राग्भक्तस्योपयुज्यते ॥६८॥

जो औषध भोजन से पूर्व दी जाती है, उसका नाम प्राग्भक्त है ॥६८॥

शीघ्रं विपाकमुपयाति बलं न हिंस्या-
दन्नावृतं न च मुखर्वदनान्निरेति।
प्राग्भक्तसेवितमथौषधमेतदेव
दद्याच्च वृद्धशिशुभीरुकृशाङ्गनाभ्यः ॥६९॥

इस प्रकार की औषधि शीघ्र ही सुखपूर्वक पच जाती है, बल का नाश नहीं करती। अन्न से आवृत होने के कारण मुख से वापिस नहीं निकलती। भोजन से पूर्व सेवन की औषध वृद्ध, शिशु, डरपोक, कृश एवं स्त्रियों के लिये देनी चाहिये ॥६९॥

अधोभक्तं नाम—यदधो भक्तस्येति ॥७०॥

जो औषध भोजन के पीछे दी जाती है, उसका नाम अधोभक्त है ॥७०॥

मध्येभक्तं नाम—यन्मध्ये भक्तस्य पीयते ॥७१॥

जो औषध भोजन के बीच में दी जाती है, उसका नाम मध्येभक्त है ॥७१॥

पीतं यदन्नमुपयुज्य तदूर्ध्वकाये
हन्याद् गदान् बहुविधांश्च बलं ददाति।
मध्ये तु पीतमपहन्त्यविसारिभावा-
द्ये मध्यदेहमभिभूय भवन्ति रोगाः ॥७२॥

औषध पीकर जो अन्न खाया जाता है, वह शरीर के ऊर्ध्व भाग के बहुत से रोगों को नष्ट करके, शरीर के ऊर्ध्व भाग में बल देता है। भोजन के बीच में पी हुई औषध न फैलने के स्वभाव के कारण कोष्ठ के रोगों को नष्ट करती है ॥७२॥

अन्तराभक्तं नाम—यदन्तरा पीयते पूर्वापरयोर्भक्तयोः ७३

पूर्व और अपर भोजनों के बीच में जो औषध पी जाती है, (प्रातः और सायं भोजन के बीच में) वह अन्तराभक्त है ॥७४॥

सभक्तं नाम—यत् सह भक्तेन ॥७४॥

भोजन के साथ सिद्ध की या खाई हुई औषध सभक्त है ॥

पथ्यं सभक्तमबलाबलयोर्हि नित्यं
तद्द्वेषिणामपि तथा शिशुवृद्धयोश्च।
हृद्यं मनोबलकरं त्वथ दीपनं च
पथ्यं सदा भवति चान्तरभक्तकं यत् ॥६५॥

स्त्री, दुर्बल, औषध से द्वेष रखनेवाले, शिशु, वृद्ध इनके लिये भोजन के साथ औषध देना सदा हितकारी है। इस प्रकार दी हुई औषध हृदय के लिये प्रिय, मनोबल को देनेवाली, अग्निदीपक, सदा पथ्य है ॥७५॥

सामुद्गं नाम—यद्भक्तस्यादावन्ते च पीयते ॥७६॥

दोषे द्विधा प्रविसृते च समुद्गसंज्ञ-
माद्यन्तयोर्यदशनस्य निषेव्यते तु ॥७७॥

सामुद्ग—भोजन के आदि में और भोजन के अन्त में जो औषध दी जाती है, वह सामुद्ग है। दोष के ऊपर और नीचे दोनों ओर प्रसृत होने पर औषध को भोजन के आदि और अन्त में दिया जाता है, इसको सामुद्ग कहते हैं ॥७६,७७॥

मुहुर्मुहुर्नाम—
सभक्तमभक्तं वा यदौषधं मुहुर्मुहुरुपयुज्यते ॥७८॥

श्वासे मुहुर्मुहुरतिप्रसृते च कासे
हिक्कावमीषु स वदन्त्युपयोज्यमेतत् ॥७९॥

भोजन के साथ या भोजन के बिना जो औषध बार-बार सेवन की जाती है, उसका नाम मुहुः मुहुः है। श्वास में या कास के बहुत वेगवान् होने पर, हिचकी में, वमन में औषध को बार-बार देना चाहिये ॥

ग्रासं तु—यत्पिण्डत्वासिश्रम् ॥८०॥

कवल के साथ मिलाई औषध ग्रास औषध हैं ॥

ग्रासान्तरं तु यद्ग्रासान्तरेषु ॥८१॥

दो ग्रासों (कवलों) के बीच में दी गई औषध ग्रासान्तर औषध कही जाती है ॥८८॥

ग्रासेषु चूर्णमबलाग्निषु दीपनीयं
वाजीकराण्यपि तु योजयितुं यतेत।
ग्रासान्तरेषु वितरेद्वमनीयधूमान्
श्वासादिषु प्रथितदृष्टगुणांश्च लेहान् ॥८२॥

दुर्बलाग्नियों में, ग्रासों में औषध देवे। दीपन गुण एवं वाजीकरण औषधियों को भी इसी रूप में देने का यत्न करे। वमन कारक धूमों को ग्रासों के बीच में देवे। श्वास आदि रोगों में इष्ट गुणवाले प्रसिद्ध लेहों को ग्रासान्तरों में दे ॥८२॥

एवमेते दशौषधकालाः ॥८३॥

इस प्रकार से ये दश औषधकाल हैं।

रोग्यवेद्य यथा प्रायः निरन्नो बलवान् पिबेत्।
भेषजं लघुपथ्यान्नैः युक्तमद्यात्तु दुर्बलः ॥
भैषज्यकालौ भक्तादौ मध्ये पश्चान्मुहुर्मुहुः।
सामुद्गं भक्तसंयुक्तं ग्रासे ग्रासान्तरे तथा ॥ चरक ॥

विसृष्टे विण्मूत्रे विशदकरणे देहे च सुलघौ
विशुद्धे चोद्गारे हृदि सुविमले वाते च सरति।
तथाऽन्नश्रद्धायां क्लमपरिगमे कुक्षौ च शिथिले
प्रदेयस्त्वाहारो भवति भिषजां कालः स तु मतः ॥८४॥

आहारकाल—मलमूत्र का त्याग कर चुकने पर, इन्द्रियों के निर्मल होने पर, शरीर में हल्कापन प्रतीत होने से, उद्गार के शुद्ध हो जाने पर, हृदय में निर्मलता होने से, अपान वायु का अधः प्रवाहण होने पर, भोजन में रुचि होने पर, थकान मिट जाने पर, उदर में ढीलापन होने से, वैद्य को चाहिये कि इस समय आहार देवे, क्योंकि भोजन का सच्चा समय यही है ॥८४॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रे तन्त्रभूषणाध्यायेषु स्वस्थवृत्ताध्यायो नाम (द्वितीयोऽध्यायः, आदितः) चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

अथातस्तन्त्रयुक्तिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥१॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे तंत्रयुक्ति अध्याय का व्याख्यान करेंगे— जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ।

वि० मन्तव्य—तन्त्र-तत्र आयुर्वेदः, शाखा, विद्या, सूत्रं, ज्ञानं, शास्त्रं, लक्षणं तन्त्रम् इति अनर्थान्तरम् (च० सू० अ० ३०) अर्थात् ये सब शब्द तन्त्र के पर्याय हैं । युक्ति-योजना-जोड़ना अर्थात् तन्त्रमें लिखे गये वाक्यों के शब्दों को जोड़कर उचित अर्थ निकालना "तन्त्रयुक्ति" कहलाता है । तन्त्रयुक्तियों के बिना वाक्यों का तात्पर्य नहीं निकाला-समझा जा सकता ॥

द्वात्रिंशत्तन्त्रयुक्तयो भवन्ति शास्त्रे । तद्यथा—अधिकरणं १, योगः २, पदार्थः ३, हेत्वर्थः ४, उद्देश्यः ५, निर्देशः ६, उपदेशः ७, अपदेशः ८, प्रदेशः ९, अतिदेशः १०, अपवर्गः ११, वाक्यशेषः १२, अर्थापत्तिः १३, विपर्ययः १४, प्रसङ्गः १५, एकान्तः १४, अनेकान्तः १७, पूर्वपक्षः १८, निर्णयः १९, अनुमतं २०, विधानम् २१, अनागतावेक्षणम् २२, अतिक्रान्तावेक्षणं २३, संशयः २४, व्याख्यानं २५, स्वसंज्ञा २६, निर्वचनं २७, निदर्शनं २८, नियोगः २०, विकल्पः ३०, समुच्चयः ३१, ऊह्यम् ३२, इति ॥३॥

सुश्रुत शास्त्र में बत्तीस तंत्रयुक्तियां है । यथा—अधिकरण, योग, पदार्थ, हेत्वर्थ, उद्देश, निर्देश, उपदेश, अपदेश, प्रदेश, अतिदेश, अपवर्ग, वाक्यशेष, अर्थापत्ति, विपर्यय, प्रसंग, एकांत, अनेकान्त, पूर्वपक्ष, निर्णय, अनुमत, विधान, अनागतावेक्षण, अतिक्रान्तवेक्षण, संशय, व्याख्यान, स्वसंज्ञा, निर्वचन, निदर्शन, नियोग, विकल्प, समुच्चय, और ऊह्य ये बत्तीस तंत्रयुक्तियां हैं ।

वक्तव्य—अन्य शास्त्रों में छत्तीस तंत्रयुक्तियां मानी हैं ॥३॥

अत्रासां तन्त्रयुक्तानां किं प्रयोजनम् ? उच्यते—वाक्ययोजनमर्थयोजनं च ॥४॥

इन तंत्र युक्तियों का लाभ क्या है ? कहते हैं—असम्बद्ध वाक्य का सम्बन्ध जोड़ना और छिपे हुए अर्थ को प्रकाशित करना, इन तंत्र युक्तियों का प्रयोजन है ।

वि० मन्तव्य—प्रयोजन-तन्त्रयुक्तियों का आवश्यकता—अधीयानोऽपि शास्त्राणि तन्त्रयुक्त्यविचक्षणः । नाधिगच्छति शास्त्रार्थान् अर्थान् भाग्यक्षये यथा ॥ च० सि० अ० १२ । अर्थात् जो तन्त्रयुक्तियों को भली भांति नहीं जानता वह शास्त्रों को पढ़ता हुआ भी शास्त्र के अर्थों को नहीं समझ सकता । और 'अतश्च प्रकृतं बुद्ध्वा देशकालान्तराणि च । तन्त्रकर्त्तुः अभिप्रायान् उपायान् च अर्थं आदिशेत् । ३७ । (च० अ० २६) । तात्पर्य—तन्त्रकर्त्ता के अभिप्राय को समझकर ही अर्थ कहना चाहिये ॥४॥

भवन्ति चात्रइ लोकाः—

असद्वादिप्रयुक्तानां वाक्यानां प्रतिषेधनम् ।
स्ववाक्यसिद्धिरपि च क्रियते तन्त्रयुक्तितः ॥५॥
व्यक्ता नोक्तास्तु ये ह्यर्था लीना ये चाप्यनिर्मलाः ।
लेशोक्ता ये च केचित्स्युस्तेषां चापि प्रसाधनम् ॥६॥

इस विषय में श्लोक भी है—तंत्र युक्तियों द्वारा असद्वादियों से प्रयुक्त वाक्यों का प्रतिषेध किया जाता है । तथा तंत्रयुक्तियों से अपने वाक्य की सिद्धि भी की जाती है । स्पष्ट होने से जो विषय नहीं कहे, तथा जो अर्थ छिपे होने के कारण स्पष्ट नहीं हैं, और जो विषय संक्षिप्त रूप में (लेशमात्र) कहे हैं, उनका भी स्पष्टीकरण तंत्रयुक्तियों से होता है ॥५,६॥

यथाऽम्बुजवनस्यार्कः प्रदीपो वेश्मनो यथा ।
प्रबोधस्य प्रनाशार्थं तथा तन्त्रस्य युक्तयः ॥७॥

जिस प्रकार कि कमल वन के लिये सूर्य, घर के लिये दीपक प्रकाश करनेवाला होता है, उसी प्रकार तंत्र को प्रकाशित करने के लिये, स्पष्ट करने के लिये युक्तियाँ हैं ॥७॥

तत्र यमर्थमधिकृत्योच्यते तदधिकरणं,
यथा—रसं दोषं वा ॥८॥

इसमें जिस अर्थ (विषय) को लेकर कहा जाता है, उसका नाम अधिकरण है, यथा रस या दोष को लेकर कहेंगे ।

वि० मन्तव्य—अधिकरण—अध्याय, प्रकरण आदि का पर्याय है । अधिकरणं नाम यं अधिकृत्य प्रवर्त्तते कर्त्ता (च० सि० अ० १२ श्लो० ७१ की च० पा० टी०) ॥८॥

येन वाक्यं युज्यते स योगः यथा—

'तैलं पिबेच्चामृतवल्लिनिम्ब-
हिंस्राभयावृक्षकपिप्पलीभिः ।
सिद्धं बलाभ्यां च सदेवदारु
हिताय नित्यं गलगण्डरोगे' ॥

इत्यत्र तैलं सिद्धं पिबेदिति प्रथमं वक्तव्ये तृतीयपादे सिद्धमिति प्रयुक्तं, एवं दूरस्थानामपि पदानामेकीकरणं योगः ॥९॥

जिससे वाक्य जोड़ा जाता है वह योग है । गिलोय, नीम, हिंस्रा, हरड़, कुटज, पिप्पली, बला, अतिबला, देवदारु इनसे सिद्ध किया तैल पीये । यह गलगण्ड रोग में हितकारी है । इसमें सिद्ध तैल पीयें, इस प्रकार कहने की अपेक्षा है, 'सिद्ध किया' यह शब्द तीसरे पाद में हैं, दूरस्थ होने पर भी पद को मिलाकर एक करने का नाम योग है ॥९॥

योऽर्थोऽभिहितः सूत्रे पदे वा स पदार्थः, पदस्य पदयोः पदानां वाऽर्थः, अपरिमिताश्च पदार्थाः । यथा—स्नेहस्वेदाञ्जनेषु निर्दिष्टेषु द्वयोस्त्रयाणां वाऽर्थानामुप-

पत्तिर्दृश्यते, तत्र योऽर्थः पूर्वापरयोगसिद्धो भवति स ग्रहीतव्यः, यथा—'वेदोत्पत्तिमध्यायं व्याख्यास्याम' इत्युक्ते सन्दिह्यते बुद्धिः—कतमस्य वेदस्योत्पत्तिं वक्ष्यतीति, यतः ऋग्वेदादयस्तु वेदाः, 'विद विचारणे, विदॢ लाभे' इत्येतयोश्च धात्वोरनेकार्थयोः प्रयोगात्, तत्र पूर्वापरयोगमुपलभ्य प्रतिपत्तिर्भवति—आयुर्वेदोत्पत्तिमयं विवक्षुरिति एष पदार्थः ॥१०॥

सूत्र में या पद में जो अर्थ कहा हो उसे पदार्थ कहते हैं। एक पद का, दो पद का, वा बहुत से पदों का जो अर्थ होता है, वह पदार्थ है। पदों के अर्थ असंख्येय होते हैं। यथा—स्नेहन स्वेदन-अंजन में कहे हुए दो या तीन अर्थों की प्रतीति (अनुभव) होती है (कौनसा स्नेहन, कौनसा स्वेद, कौनसा अंजन बरते), इनमें पूर्वापर योग को देखकर जो अर्थ निर्णय किया जाये, वह लेना चाहिये। यथा—"वेदोत्पत्ति अध्याय का व्याख्यान करेंगे—" ऐसा कहने पर बुद्धि में सन्देह उत्पन्न होता है कि कौन से वेद की उत्पत्ति को कहें। क्योंकि ऋग्वेद आदि वेद हैं, विद् विचारणे और विदॢ लाभे-इन धातुओं का अनेक अर्थों में प्रयोग देखा जाता है। इस अवस्था में पूर्वापर संयोग को देखकर ज्ञान होता है कि आयुर्वेदोत्पत्ति को कहनेवाले हैं, यह पदार्थ है ॥१०॥

यदन्यदुक्तमन्यार्थसाधकं भवति स हेत्वर्थः। यथा मृत्पिण्डोऽद्भिः प्रक्लिद्यते तथा माषदुग्धप्रभृतिभिर्व्रणः प्रक्लिद्यत इति ॥११॥

अन्य के लिये कही हुई जो बात दूसरे अर्थ को सिद्ध करती है, उसे हेत्वर्थ कहते हैं। यथा—पानी से मिट्टी का ढेला गीला होता है उसी प्रकार उड़द दूध आदि से व्रण भी क्लेदयुक्त होता है ॥११॥

समासवचनमुद्देशः। यथा—शल्यमिति ॥१२॥

संक्षेप में कहने का नाम उद्देश है, यथा—शल्यम् ॥१२॥

विस्तरवचनं निर्देशः। यथा—शारीरमागन्तुकं चेति॥

विस्तार से कहने का नाम निर्देश है, यथा-शारीरशल्य, आगन्तुजशल्य ॥१३॥

एवमित्युपदेशः। यथा—तथा न जागृयाद्रात्रौ दिवास्वप्नं च वर्जयेत् ॥१४॥

इस प्रकार से करे, यह उपदेश है, यथा रात में न जागे और दिन में सोना छोड़ देवे।

वक्तव्य—उपदेश नियोग में भेद—उपदेश प्रायिक होता है, और नियोग अप्रायिक होता है ॥१४॥

अनेन कारणेनेत्यपदेशः, यथाऽपदिश्यते—मधुरः श्लेष्माणमभिवर्धयतीति ॥१५॥

इस कारण से यह कार्य हुआ है, या होता है, ऐसा कहना अपदेश है, यथा-कहते हैं कि मधुर रस कफ को बढ़ाता है ॥

प्रकृतस्यातिक्रान्तेन साधनं प्रदेशः। यथा देवदत्तस्यानेन शल्यमुद्धृतं तथा यज्ञदत्तस्याप्ययमुद्धरिष्यतीति ॥

प्रकृत वस्तु के भी आगे जाकर सिद्ध करने का नाम प्रदेश है। यथा—इसने देवदत्त का शल्य निकाला है, इसी प्रकार यज्ञदत्त का भी (शल्य) निकाल लेगा ॥१६॥

प्रकृतस्यानागतस्य साधनमतिदेशः यथा- यतोऽस्य वायुरूर्ध्वमुत्तिष्ठते तेनोदावर्ती स्यादिति ॥१७॥

प्रकृत में न आई हुई वस्तु को सिद्ध करने का नाम अतिदेश है, यथा—क्योंकि इसकी वायु ऊपर को उठती है, इसलिये वह उदावर्त्ती रोगी होगा। यह संभावना हो जाती है ॥

अभिव्याप्यापकर्षणमपवर्गः, यथा—अस्वेद्या विषोपसृष्टाः, अन्यत्र कीटविषादिति ॥१८॥

सब में व्याप्त होकर फिर अपकर्षण करना (अपवाद करना) अपवर्ग है, यथा—विष से पीड़ितों को स्वेद नहीं देना चाहिये यह कहकर कीट विषादि को छोड़कर यह कहना अपवर्ग है ॥

येन पदेनानुक्तेन वाक्यं समाप्यते स वाक्यशेषः। यथा—शिरःपाणिपादपार्श्वपृष्ठोदरोरसामित्युक्ते पुरुषग्रहणं विनाऽपि गम्यते पुरुषस्येति ॥१९॥

जिस अनुक्त पद से वाक्य समाप्त किया जाता है, वह वाक्यशेष है, यथा शिर, हाथ, पैर, पार्श्व, पीठ, उदर, छाती इतना कहने पर 'पुरुष के' कहे बिना भी पुरुष के, यह जान लिया जाता है ॥१ ॥

यदकीर्तितमर्थादापद्यते साऽर्थापत्तिः। यथा--ओदनं मोक्ष्ये इत्युक्तेऽर्थादापन्नं भवति-नायं पिपासुर्यवागूमिति ॥

जो न कहा हुआ भी अर्थ से प्रतिपादित होता है, उसको अर्थापत्ति कहते हैं, यथा—चावल खाऊँगा यह कहने से अर्थ से समझ लिया जाता है कि, यह यवागू नहीं पीना चाहता ॥

यद्यत्राभिहितं तस्य प्रातिलोम्यं विपर्ययः। यथा—कृशाल्पप्राणभीरवो दुश्चिकित्स्या इत्युक्ते विपरीतं गृह्यते दृढादयः सुचिकित्स्या इति ॥२१॥

जो यहां कहा हो, उसके विपरीत का नाम विपर्यय है, यथा-कृश, अल्पप्राण, भीरु पुरुष दुश्चिकित्स्य होते हैं, यह कहने पर विपरीत रूप में समझ लिया जाता है कि दृढ बहुप्राण निडर व्यक्ति सुचिकित्स्य हैं ॥२१॥

प्रकरणान्तरेण समापनं प्रसङ्गः, यद्वा प्रकरणान्तरितो योऽर्थोऽसकृदुक्तः समाप्यते स प्रसङ्गः, यथा—पञ्चमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुषस्तस्मिन् क्रिया सोऽधिष्ठानमिति

वेदोत्पत्तावभिधाय, भूतचिन्तायां पुनरुक्तं—यतोऽभिहितं पञ्चमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुष इति, स खल्वेष कर्मपुरुषश्चिकित्साधिकृत इति ॥२२॥

दूसरे प्रकरण समान (तुल्य) का नाम प्रसंग है, अथवा प्रकरणों के बीच में जो विषय बार-बार कहा जाता है-समात किया जाता है, उसे प्रसंग कहते हैं। यथा-वेदोत्पत्ति अध्याय में 'पंचमहाभूतशरीरिसमवायःपुरुषः' उसमें, क्रिया, वही अधिष्ठान हैं, यह कहकर भूतचिन्ता अध्याय में फिर कहना कि क्योंकि कहा है 'पंचमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुषः' इति यही कर्मपुरुष चिकित्सा में अधिकृत है ॥२२॥

(सर्वत्र) यदवधारणेनोच्यते स एकान्तः यथा—त्रिवृद्विरेचयति, मदनफलं वामयति (एव) ॥२३॥

जो विना विकल्प के निश्चित रूप से कहा जाता है, वह एकान्त है, यथा—निशोथ विरेचन करता है, मदनफल वमन कराता है ॥२३।

क्वचित्तथा क्वचिदन्यथेति यः सोऽनेकान्तः, यथा-केचिदाचार्या ब्रवते द्रव्यं प्रधानं, केचिद्रसं, केचिद्वीर्यं केचिद्विपाकमिति ॥२४॥

कहीं ऐसा और कहीं दूसरा ऐसा जहाँ हो (अनिश्चित) उसे अनेकान्त कहते हैं, यथा—कोई आचार्य कहते हैं कि द्रव्य प्रधान है, कोई रस को, कोई वीर्य को और कोई विपाक को प्रधान मानते हैं ॥२४॥

आक्षेपपूर्वकः प्रश्नः पूर्वपक्षः। यथा—कथं वातनिमित्ताश्चत्वारः प्रमेहा असाध्या भवन्तीति ॥२५॥

आक्षेपपूर्वकप्रश्न को पूर्वपक्ष कहते हैं, यथा-वातजन्य चार प्रमेह किस कारण से असाध्य होते हैं ॥२५॥

तस्योत्तरं निर्णयः। यथा—शरीरं प्रपीड्य पश्चादधो गत्वा बसामेदोमज्जानुविद्धं मूत्रं विसृजति वातः, एवमसाध्या वातजा इति ॥२६॥

तथा चोक्तम्—

कृत्स्नं शरीरं निष्पीड्य मेदोमज्जावसायुतः।
अधः प्रकुप्यते वायुस्तेनासाध्यास्तु वातजाः ॥२७॥

इसके उत्तर का नाम निर्णय है, यथा—शरीर को पीड़ित करके पीछे नीचे मूत्राशय में जाकर वसा, मेद, मज्जा से मिला मूत्र वायु त्याग करता है, इसलिये वातजन्य प्रमेह असाध्य हैं। कहा भी है—सम्पूर्ण शरीर को पीड़ित करके मेद, मज्जा, वसा से मिली वायु अधोभाग में प्रकुपित होती है, इसलिये वातजन्य प्रमेह असाध्य हैं ॥२६-२७॥

परमतमप्रतिषिद्धमनुमतम्। यथा-अन्यो ब्रूयात्—सप्त रसा इति, तच्चाप्रतिषेधादनुमन्यते कथंचिदिति ॥

दूसरे मत को स्वीकार करना (विरोध न करना) अनुमत है, यथा—दूसरा कहे सात रस हैं, इसका विरोध न करने से किसी भी प्रकार में सहमत होना अनुमत है ॥२८॥

प्रकरणानुपूर्व्याऽभिहितं विधानम्। यथा—सक्थिमर्माण्येकादश प्रकरणानुपूर्व्याऽभिहितानि ॥२९॥

प्रकरण के अनुसार कहने का नाम विधान है, यथा—टांग के मर्म ग्यारह प्रकरण के अनुसार कह दिये हैं ॥२९॥

एवं वक्ष्यतीत्यनागतावेक्षणम्। यथा—श्लोकस्थाने ब्रूयात्—चिकित्सितेषु वक्ष्यामीति ॥३०॥

इस प्रकार से कहेंगे, यह कहना अनागतावेक्षण है, यथा-श्लोकस्थान में कहे कि—चिकित्सा में कहेंगे ॥३०॥

यत्पूर्वमुक्तं तदतिक्रान्तावेक्षणम्। यथा—चिकित्सितेषु ब्रूयात्—श्लोकस्थाने यदीरितमिति ॥३१॥

जो पहले कहा हो, उसे कहना अतिक्रान्तावेक्षण है, यथा-चिकित्सा में कहे कि—श्लोकस्थान में जैसा कहा है ॥३१॥

उभयहेतुदर्शनं संशयः। यथा—तलहृदयाभिघातः प्राणहरः, पाणिपादच्छेदनमप्राणहरमिति ॥३ ॥

हेतु का दोनों में घटना संशय है, यथा—तलहृदय (मर्म) पर चोट लगना प्राणहर है, हाथ पैर का काटना प्राणनाशक नहीं है ॥३२॥

तन्त्रेऽतिशयोपवर्णनं व्याख्यानम्। यथा—इह पञ्चविंशतिकः पुरुषो व्याख्यायते, अन्येष्वायुर्वेदतन्त्रेषु भूतादिप्रभृत्यारभ्य चिन्ता ॥३३॥

अतिरिक्त विषय का कहना व्याख्यान है, यथा—इस सुश्रुत में पच्चीस तत्त्वोंवाले पुरुष को कहा जाता हैं, दूसरे आयुर्वेद तंत्रों में भूतादि अहंकार से आरम्भ करके (अव्यक्त से नहीं) व्याख्यान किया जाता है ॥३३॥

अन्यशास्त्रासामान्या स्वसंज्ञा। यथा—मिथुनमिति मधुसर्पिषोर्ग्रहणं, लोकप्रसिद्धमुदाहरणं वा ॥३४॥

अन्य शास्त्रों के समान न होना स्वसंज्ञा है। यथा मिथुन से मधु और घृत का ग्रहण करना, अथवा लोक प्रसिद्ध उदाहरण का नाम स्वसंज्ञा हैं, यथा महास्नेह ॥३४॥

निश्चितं वचनं निर्वचनम्। यथा—आयुर्विद्यतेऽस्मिन्नेन वा, आयुर्विन्दतीत्यायुर्वेदः ॥३५॥

निश्चित वचन का कहना निर्वचन है, यथा—इसमें (इस शास्त्र में) आयु (आयु का ज्ञान) रहती है, या इस शास्त्र से आयु प्राप्त की जाती है यह आयुर्वेद है ॥३५॥

दृष्टान्तव्यक्तिर्निदर्शनम्। यथा—अग्निर्वायुना सहितः कक्षे वृद्धिं गच्छति तथा वातपित्तकफदुष्टो व्रण इति ॥३६॥

दृष्टान्त देकर स्पष्ट करने का नाम निदर्शन है, यथा—अग्नि वायु के साथ मिलकर तिनकों के ढेर में बढ़ती है, इसी प्रकार वात-पित्त कफ से दूषित व्रण बढ़ता है ॥३६॥

इदमेव कर्तव्यमिति नियोगः। यथा—पथ्यमेव भोक्तव्यमिति ॥३७॥

यही करना चाहिये, इनका नाम नियोग है, यथा पथ्य ही खाना चाहिये ॥

वक्तव्य—इसका अपवाद भी होता है—

"उत्पद्यते हि साऽवस्था देशकालबलं प्रति।

यस्यां कार्यमकार्यं स्याद् वर्जितं कार्यमेव च ॥"३७॥

इदं चेदं चेति समुच्चयः। यथा—मांसवर्गे एणहरिणादयो लावतित्तिरिसारङ्गाश्च प्रधानानीति ॥३८॥

'यह भी है और यह भी है' इसका नाम समुच्चय है, यथा–मांसवर्ग में एण, हरिण आदि मुख्य हैं और वटेर-तितर-सारङ्ग आदि भी मुख्य हैं ॥३८॥

इदं वेदं वेति विकल्पः। यथा–रसौदनः सघृता यवागूर्वा (भवत्विति) ॥३६॥

यह अथवा यह—इसका नाम विकल्प है, मांसरस के साथ भात अथवा घृतमिश्रित यवागू खाये ॥३६॥

यदनिर्दिष्टं बुद्ध्याऽवगम्यते तदूह्यम्। यथा—अभिहितमन्नपानविधौ चतुर्विधं चान्नमुपदिश्यते—भक्ष्यं भोज्यं लेह्यं पेयमिति, एवं चतुर्विधे वक्तव्ये द्विविधमभिहितम्, इदमत्रोह्यम्—अन्नपाने विशिष्टयोर्द्वयोर्ग्रहणे कृते चतुर्णामपि ग्रहणं भवतीति चतुर्विधश्चाहारः प्रविरलः प्रायेण द्विविध एव, अतो द्वित्वं प्रसिद्धमिति। किञ्चान्यत्—अन्नेन भक्ष्यमवरुद्धं, घनसाधर्म्यात्, पेयेन लेह्यं, द्रवसाधर्म्यात् ॥४०॥

जो न कहा हो, उसे बुद्धि से जानने का नाम उह्य है, यथा—अन्नपानविधि में कहा है कि चार प्रकार का अन्न कहा जाता है। भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, पेय। इस प्रकार चार प्रकार का कहने में दो प्रकार का कहा है। इसमें यहाँ तर्क बुद्धि से विचारना चाहिये कि मुख्य रूप से दो प्रकार के अन्नपान के ग्रहण करने में चारों प्रकार के अन्न का ग्रहण हो जाता है। अतिशय विभाग रूप में चार प्रकारका आहार भी दो प्रकार का ही है, इसलिये दो प्रकार का प्रसिद्ध है। और भी कुछ अन्न से भक्ष्य वस्तु अलग नहीं, घन वस्तु की समानता से। पेय में लेह्य का समावेश हो जाता है, द्रव की समानता से ॥४०॥

भवन्ति चात्र—

सामान्यदर्शनेनासां व्यवस्था संप्रदर्शिता।

विशेषस्तु यथायोगमुपधार्यो विपश्चिता ॥४१॥

द्वात्रिंशद्युक्तयो ह्येतास्तन्त्रसारगवेषणे।

मया सम्यग्विनिहताः शब्दार्थन्यायसंयुताः ॥४२॥

यो ह्येता विधिवद्वेत्ति दीपीभूतास्तु बुद्धिमान्।

स पूजार्हो भिषक्श्रेष्ठ इति धन्वन्तरेर्मतम् ॥४३॥

इस विषय में श्लोक हैं—इन तंत्रयुक्तियों की व्यवस्था सामान्य रूप में यहाँ कह दी है, विद्वान् को चाहिये कि इनकी विशेषताओं को योग के अनुसार निश्चय कर ले। यन्त्र के सार को ढूंढने में बत्तीस युक्तियाँ हैं, इनको शब्द-अर्थ-न्याय के साथ मैंने भली प्रकार कह दिया है। जो बुद्धिमान् इन प्रकाशमान् युक्तियों को भली प्रकार जानता है, वह पूजा के योग्य श्रेष्ठ वैद्य है, ऐसा धन्वन्तरि का मत है ॥४१-४३॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रे तन्त्रभूषणाध्यायेषु तन्त्रयुक्तिर्नाम (तृतीयोऽध्यायः, आदितः)

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥६५॥

षट्षष्टितमोऽध्यायः

अथातो दोषभेदविकल्पमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥१॥

यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः ॥२॥

अब इसके आगे दोषभेदविकल्प अध्याय का व्याख्यान करेंगे जैसा कि भगवान् धन्वन्तरि ने कहा था ॥१,२॥

अष्टाङ्गवेदविद्वांसं दिवोदासं महौजसम्।

छिन्नशास्त्रार्थसंदेहं सूक्ष्मागाधागमोदधिम् ॥३॥

विश्वामित्रसुतः श्रीमान् सुश्रुतः परिपृच्छति।

आयुर्वेद के आठों अंगों के विद्वान् महा तेजस्वी, शास्त्र के अर्थों में सम्पूर्ण रूप से संशय रहित, सूक्ष्म अगाध शास्त्र के सागर दिवोदास को विश्वामित्र पुत्र श्रीमान् सुश्रुत ने पूछा।

वक्तव्य—विश्वामित्र यद्यपि राजर्षि थे-तथापि तप के कारण ब्रह्म तेज से दीप्त होने के कारण श्रीमान् कहे हैं, यथा—"विद्यासमाप्तौ ब्राह्मं वा सत्त्वमार्षमथापि वा। ध्रुवमाविशति ज्ञानात्तस्माद् वैद्यो द्विजः स्मृतः ॥"च०॥३॥

द्विषष्टिर्दोषभेदा ये पुरस्तात्परिकीर्तिता ॥४॥

कति तत्रैकशो ज्ञेया द्विशो वाप्यथवा त्रिशः।

आपने रसभेद विकल्प में दोषों के जो बासठ भेद कहे हैं, उनमें कितने एकवाले, कितने दोवाले और कितने तीनवाले जानने चाहिये।

वक्तव्य—दोष संसर्ग बासठ हैं, रसभेद तिरसठ हैं, यथा—

द्विषष्टिर्दोषभेदाः स्यू रसभेदास्त्रिषष्टिधा।

स्वास्थ्यं त्रिषष्टं विज्ञेयं तत्र षड्रसयोजितम् ॥

एकशः षड् द्विशस्त्वेकविंशतिश्चतुरन्विता।

त्रिशो द्वात्रिंशदित्येवं त्रयो दोषाः त्रिषष्टिधा ॥

वि० मन्तव्य—अध्याय ६४ श्लो० ४ में अविग्दध अर्थात्

प्रकृतिस्थ तथा विदग्ध अर्थात् विकृत दोषों के जो ६३ भेद कहे हैं उन्हीं का विवरण इस अध्याय में किया गया है। जब दोष प्रकृतिस्थ रहते हैं तब स्वास्थ्य (आरोग्य-नीरोगता) बना रहता है और जब विकृत हो जाते हैं तब विविध रोग उत्पन्न हो जाते हैं। देखिये—सू० अ० १५। विधिभेद से विदग्ध दोष दो प्रकार के होते हैं, १-वृद्ध-स्वपरिमाण से अधिक-बढ़े हुए, २-क्षीण-स्वपरिमाण से घटे हुए ॥४॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा संशयच्छिन्महातपाः ॥५॥
प्रीतात्मा नृपशार्दूलः सुश्रुतायाह तत्त्वतः।

सुश्रुत के इन वचनों को सुनकर संशय को नाश करनेवाले महातपस्वी, प्रसन्न आत्मा, नृपशार्दूल धन्वन्तरि ने सुश्रुत के लिये यथार्थरूप में कहा कि—

त्रयो दोषा धातवश्च पुरीषं मूत्रमेव च ॥६॥
देहं सन्धारयन्त्येते ह्यव्यापन्ना रसैर्हितैः।

पथ्य रसों से अविकृत हुए तीन दोष, सातों धातु मल और मूत्र इस शरीर को धारण करते हैं ॥५,६॥

पुरुषः षोडशकलः प्राणाश्चैकादशैव ये ॥७॥
रोगाणां तु सहस्रं यच्छतं विंशतिरेव च।
शतं च पञ्च द्रव्याणां त्रिसप्तत्यधिकोत्तरम् ॥८॥
व्यासतः कीर्तितं तद्धि

षोडशकलावाला पुरुष, एकादश (ग्यारह) प्राण, एकहजार एकसौ बीस रोग, पाँच सौ तिहत्तर द्रव्य ये विस्तार से कह दिये हैं।

वक्तव्य—षोडश कलावाला पुरुष पंचमहाभूत, एकादश इन्द्रियाँ, ये सोलह विकार, ग्यारह प्राण-अग्नि, सोम, वायु, सत्त्व, रज, तम और पाँच इन्द्रियाँ; एक हजार एकसौ बीस रोग, इन रोगों का विस्तृत वर्णन श्लोक बद्ध करके डल्हण ने टीका में दिया है।

चरक में सोलह कला से—चतुष्पदं षोडशकलं भेषजमिति भिषजो भाषन्ते, इस वाक्य से षोडशगुण रोगी, वैद्य, परिचारक, औषध इनके सोलह गुण कोई मानते हैं। उनके मत में कला शब्द गुणवाची है[1]। इससे कोई सर्वभूत चिन्ता शरीरोक्त सुख दुःख इच्छा द्वेष प्रयत्नादि को षोडश गुण मानते हैं।

वि० मन्तव्य—डल्लन टीका में श्लोक बद्ध विवरण इस प्रकार है—

अत्र सौश्रुते तन्त्रे षट्स्थानेषु प्रोक्तरोगाः श्लोकैः अभिधीयन्ते—

हीनाऽतिदग्धौ क्षारेण, त्रयः प्लुष्टादयोऽग्निना।
चतुर्थो धूमविहितः पञ्च शोणितदुष्टयः ॥१॥
दोषधातुमलादीनां द्वात्रिंशत् क्षयवृद्धितः।
द्वे स्थौल्यकार्श्ये त्रिविधो विस्रंसाद्यो बलक्षयः ॥२॥
षट् शोफाः षड्व्रणा वह्नित्रितयं विषयादिकम्।
आमं विदग्धं विष्टब्धं अजीर्णं च तथा त्रिधा ॥३॥
इति षट्षष्टिः आतङ्काः सूत्रस्थाने निदर्शिताः।
आमपक्वाशये श्रोत्रे तथा इन्द्रियचतुष्टये ॥४॥
त्वगाभिषसिरास्नायुसन्ध्यस्थिमज्जसम्भवाः।
शुक्रे चैकाङ्गसर्वाङ्गगताः सताधिका दश ॥५॥
त्रयोदशाऽऽवृतैः अन्यैः दोषैः स्युः मारुतैः खलु।
पक्षाघातोऽपतन्त्रश्च मन्यास्तम्भोऽर्दितस्तथा ॥६॥
गृध्रसी सह विश्वाच्या शिरः क्रोष्टुकपूर्वकम्।
खञ्जः पङ्गुः कलायाख्यः कण्टकः पाददाहकृत् ॥७॥
पादहर्षोऽवबाहुश्च मूकमिन्मिनगद्गदाः।
तून्याऽध्मानद्वयेऽष्ठीलाद्वयं अर्शांसि षट् तथा ॥८॥
चर्मकीलः चतस्रश्चाऽश्मर्यः पञ्च भगन्दराः।
तथाऽष्टादश कुष्ठानि किलासानि पुनः त्रिधा ॥९॥
प्रमेहा विंशतिः प्रोक्ताः पिडका नव तत्कृताः।
उदराणि तथाऽष्टौ च मूढगर्भस्तथाऽष्टधा ॥१०॥
बाह्या विद्रधयः षट् स्युः तथाऽन्तःस्थाः स्मृता दश।
विसर्पनाडीस्तनजाः तथैव पञ्च पञ्च च ॥११॥
ग्रन्थयः सप्त, चैका स्यात् अपची, सप्तधाऽर्बुदम्।
गलगण्डाः त्रयः, सप्त, वृद्धयः परिकीर्त्तिताः ॥१२॥
उपदंशा मताः पञ्च, श्लीपदं च तथा त्रिधा।
भग्ना अष्टादश ज्ञेयाः शूकदोषास्तथैव च ॥१३॥
चत्वारिंशत् तथाऽष्टौ च क्षुद्ररोगाः प्रकीर्त्तिताः।
अष्टौ ओष्ठभवा दन्तमूलेषु दश पञ्च च ॥१४॥
अष्टौ दन्तेषु, जिह्वायां पञ्च, तालुगता नव।
कण्ठे च अष्टादश ज्ञेयाः चतुःसर्वसरा गदाः ॥१५॥
एवं मुखे सप्तषष्टिः इति स्थाने द्वितीयके।
द्वाचत्वारिंशदधिका त्रिशती परिकीर्त्तिता ॥१६॥
अष्टौ शुक्रगता रोगा अष्टौ आर्त्तवदुष्टयः।
चत्वारोऽसृग्दराः प्रोक्ता अप्राप्तः तु अपराकृतः ॥१७॥
मक्कल्ललीनशोषाश्च नैगमेशाह्वतस्तथा।
नागोदरः स्रुतिगर्भे शारीरे सप्तविंशतिः ॥१८॥
अथ मेदोऽनिलावेगात् श्वयथुः सरुजश्च यः।
आढ्यवातः सर्वसराः शोफाः पञ्च प्रकीर्त्तिताः ॥
कर्णपाल्याऽऽमयाः पञ्च क्लैब्यं उक्तं चतुर्विधम् ॥१९॥
वान्तरेचितयोः प्रोक्ता व्यापदो दश पञ्च च।
षट् नेत्रप्रणिधानस्य नेत्रस्य एकादश एव तु ॥२०॥
पञ्चवस्तिकृताः तत्र चत्वारः पीडने कृताः।
एकादश द्रव्यकृताः, सप्त शय्याकृतास्तथा ॥२१॥
चत्वारिंशत् चतस्रश्च वैद्यतो व्यापदस्तथा।
क्रोधाऽऽयासादिकाः पञ्च दश च आतुरहेतुकाः ॥२२॥
स्नेहस्य कारणानि अष्टौ अप्रत्यागमकृन्ति च।
इति नेत्रादिदोषेण षष्टिः सप्त समासतः ॥२३॥

---

1. "षोडशकलं षोडशगुणम्" इति चरकः।

एवं चिकित्सितस्थाने रुजोऽष्टानवतिः तथा ।
अन्नादिरक्षाविज्ञाने विंशतिः विषहेतुका ॥२४॥
स्थावरे वेगाः स्युः दर्वीकरमण्डलिनां विषे ।
राजिलवैकरञ्जानां प्रत्येकं सप्त सप्त च ॥२५॥
मूषिकास्तु दशाऽष्टौ च सप्तवेगा अलर्कजाः ।
सप्तषष्टिशतं चात्र कीटानां विषपायिनाम् ॥२६॥
सप्त चत्वारिंशद्युतं कल्पस्थाने शतद्वयम् ।
नव सन्ध्याश्रयाः प्रोक्ता वर्त्मजाश्च एकविंशतिः ॥२७॥
शुक्लभागे दशैकश्च चत्वारः कृष्णभागजाः ।
सर्वाश्रयाः सप्तदश दृष्टिजा द्वादशैव तु ॥२८॥
बाह्यजौ द्वौ नेत्ररोगौ इति षट्सप्ततिः स्मृता ।
कुकूणकः शिशोरेव, कर्णेऽष्टाविंशतिर्नृणाम् ॥२९॥
एकत्रिंशद् घ्राणगताः सप्रतिश्यायपञ्चकाः ।
एकादश शिरोरोगाः परं शालाक्यसंज्ञिते ॥३०॥
आतङ्कानां शतं प्रोक्तं षट्चत्वारिंशता युतम् ।
नव बालग्रहा योनिव्यापदो विंशतिः स्त्रियाः ॥३१॥
एवं कुमारतन्त्रेऽस्मिन् एकोनत्रिंशद् आमयाः ।
अष्टौ ज्वरा, अतीसाराः षट्, चतस्रः प्रवाहिकाः ॥३२॥
चत्वारो ग्रहणीदोषा, यक्ष्मैको गुल्मपञ्चकम् ।
हृद्रोगाः पञ्च, चत्वारः पाण्ड्वाख्याः कामलाद्वयम् ॥३३॥
हलीमकः पानकी च रक्तपित्तं चतुर्विधम् ।
षट् प्रकारा मता मूर्च्छा विकाराः सप्त मद्यजाः ॥३४॥
दाहाः पञ्च, तृषः सप्त छर्दयः पञ्च देहिनाम् ।
हिक्काः श्वासाः तथा कासाः प्रत्येकं पञ्च पञ्च च ॥३५॥
स्वरभेदाः तथा षट् स्युः, विंशतिः कृमिजातयः ।
नवोदावर्त्तका दृष्टा विसूच्यः तिस्र एव च ॥३६॥
आनाहौ द्वौ आमविट्कौ तथाऽरोचकपञ्चकम् ।
मूत्राघाता द्वादश स्युः इति कायचिकित्सिते ॥३७॥
आमयानां शतं प्रोक्तं चत्वारिंशत् च सप्त च ।
देवता दैत्य-गन्धर्व-यक्ष-पितृ-अहि-रक्षसाम् ॥३८॥
पिशाचस्याऽभिषङ्गेन गदाः च अष्टौ प्रकीर्त्तिताः ।
अपस्माराश्च चत्वारः उन्मादाः षड् उदीरिताः ॥३९॥
अष्टादश गदा भूतविद्यायां सूक्ष्मदर्शिभिः ।
एवं हि सौश्रुते तन्त्रे काशिराजेन कीर्त्तिताः ॥४०॥
रोगाणां तु सहस्रं यत् शतं विंशतिरेव च ।

भिन्ना दोषास्त्रयो गुणाः ।
द्विषष्टिधा भवन्त्येते भूयिष्ठमिति निश्चयः ॥९॥

जिस प्रकार सत्त्व, रज, तम गुण भिन्न हुए बासठ प्रकार के होते हैं, उसी प्रकार से तीनों दोष भी विभक्त होकर बासठ प्रकार के हो जाते हैं।

वक्तव्य—"रजोभूयिष्ठो मारुतः, रजो हि प्रवर्त्तकं सर्वभावानाम् पित्तं सत्त्वोत्कटम् लघुप्रकाशकत्वात् । कफः तमोबहुलः—गुरुप्रावरणकत्वात् ।" कफप्रकृति पुरुष में सत्त्व गुण की प्रधानता कफ में सत्त्व और तम दोनों गुण के रहने से है । यथा—
"सत्त्वतमोबहुला आपः" ॥

त्रय एव पृथग् दोषा द्विशो नव समाधिजैः ।
त्रयोदशाधिकैकद्विसममध्योल्बणैस्त्रिशः ॥१०॥
पञ्चाशदेवं तु सह भवन्ति क्षयमागतैः ।
क्षीणमध्याधिकक्षीणक्षणवृद्धैस्तथाऽपरैः ॥११॥
द्वादशैवं समाख्यातास्त्रयो दोषा द्विषष्टिधा ।

पृथग् रूप में वात, पित्त, कफ, तीन दोषों में दो दोष स्वस्थ और एक बढ़ा रहे, इस प्रकार से तीन भेद बनते हैं। दो दोष के समान रूप में बढ़ने से और एक के स्वस्थ रहने से, तीन, तथा दो दोषों में एक दोष के अधिक बढ़ने से और तीसरे दोष के स्वस्थ रहने से छै भेद, इस प्रकार सम अधिक भेद से कुल नौ भेद होते हैं। तीनों दोषों के बढ़ने से तेरह भेद होते हैं, यथा—तीनों दोषों के मिलने पर एक दोष की अधिकता से तीन, तीनों दोषों के मिलने पर दो दोषों के बढ़ने से तीन, सम, मध्यम, उल्वण भेद से छै, तीनों की अधिकता से एक, इस प्रकार तेरह भेद हैं। जिस प्रकार दोषों की वृद्धि से ये पचीस भेद होते हैं, उसी प्रकार दोषों के क्षीण होने से भी पचीस भेद हो जाते हैं। क्षीण मध्य, अधिक क्षीण, क्षीण, भेद होते हैं, इस प्रकार से ये बासठ भेद हैं[1]।

---

१ (१) वायुर्वृद्धः पित्तकफौ समौ। पित्तं वृद्धं वायुकफौ समौ। कफो वृद्धो वायुपित्ते समे।—३,

(२) वायुपित्ते वृद्धे, कफः समः। वायुकफौ वृद्धौ पित्तं समम्। पित्तकफौ वृद्धौ वायुः समः। एक की अति वृद्धि छै—वायोःपित्तं वृद्धं कफः समः। पित्ताद् वायुर्वृद्धः कफः समः। कफात् वायुर्वृद्धः पित्तं समम्। वायोः कफो वृद्धः पित्तं समम्। पित्तात्कफो वृद्धो वायुः समः। कफात् पित्तं वृद्धं वायुः समः॥७-८-९॥

(३) वायोः पित्तकफौ वृद्धौ। पित्तात्कफवायू। कफाद् वायुपित्ते। वातपित्ताभ्यां कफो वृद्धः वायुकफाभ्यां पित्तं वृद्धम्, पित्तकफाभ्यां वायुर्वृद्धः ॥—६

(४) वायुपित्तकफा वृद्धा वृद्धतरा वृद्धतमाः। इसी प्रकार वायु कफ पित्त। पित्त कफ वायु। पित्त वायु कफ। वायु पित्त कफ। कफ पित्त वायु।—६

(५) वायुपित्तकफा वृद्धाः।—१

इस प्रकार दोष की वृद्धि से पच्चीस ३+९+६+६+१=२५ बनते हैं।

वृद्ध शब्द के स्थान पर क्षीण शब्द प्रयोग कर देने से इसी प्रकार २५ बनते हैं।

वि० मन्तव्य—यह स्मरण रखिये कि दोषों के बढ़ने ही से रोग नहीं होते, अपितु घटने से भी रोग होते हैं। विदग्ध दोषों के ये ६२ भेद अर्थात् अवस्थाएँ हैं, और रोग का निदान करते समय दोषों की अंशांश कल्पना द्वारा इनका विवेचन किया जाता है। चिकित्सक इसका विचार करे कि कौन दोष वृद्ध है, कौन दोष क्षीण है, तथा कौन दोष सम है। रोगस्तु दोषवैषम्यं—दोषों की विषमावस्था रोग है, और दोषसाम्यमरोगता—दोषों की समवस्था अरोगता (स्वास्थ्य) है। यह ६२ भेद तो केवल परस्पर मिले हुए तीन दोषों के हैं, परन्तु रस आदि धातुओं तथा मलों के साथ मिलाकर तो इनके भेद असंख्य हो जाते हैं, (देखिये श्लो० १२)।

द्व्युल्बणैकोल्बणैः षट् स्युर्हीनमध्याधिकैश्च षट्। समैश्चैको विकारास्ते सन्निपातास्त्रयोदश ॥ संसर्गे नव षट् तेभ्य एक वृद्धया समैस्त्रयः। पृथक् त्रयः स्युस्तैर्वृद्धैर्व्याधयः पंचविंशतिः ॥ यथा वृद्धैस्तथा क्षीणैर्दोषैः स्युः पंचविंशतिः। वृद्धिक्षयकृतश्चान्यो विकल्प उपदेक्ष्यते ॥ वृद्धिरेकस्य समता चैकस्यैकस्य संक्षयः। द्वन्द्वं वृद्धिः क्षयश्चैकस्यैकवृद्धिर्द्वयोः क्षयः ॥

चरक सू० अ० १७-४१-४४ ॥

मिश्रा धातुमलैर्दोषा यान्त्यसंख्येयतां पुनः ॥१२॥
तस्मात् प्रसङ्गं संयम्य दोषभेदविकल्पनैः।
रोगं विदित्वोपचरेद्रसभेदैर्यथेरितैः ॥१३॥

---

(६) वातो वृद्धः पित्तं समं कफः क्षीणः। पित्तं वृद्धं वातः समः कफः क्षीणः। कफो वृद्धः वातः क्षीणः पित्तं समम्। कफो वृद्धः वातः समः पित्तं क्षीणम्। वातो वृद्धः कफः समः पित्तं क्षीणम्। पित्तं वृद्धं कफः समो वातः क्षीणः।—६

(७) वायुः क्षीणः पित्तकफौ वृद्धौ। पित्तं क्षीणं कफवायू वृद्धौ। कफः क्षीणो वायुपित्ते वृद्धे। वायुपित्ते क्षीणे कफो वृद्धः। पित्तकफौ क्षीणौ वायुर्वृद्धः। कफवायू क्षीणौ पित्तं वृद्धम् ॥—६

८—वायु पित्त कफ सम १ †

इस प्रकार ६+६+१=१३, कुल २५+२५+१३=३३ भेद हुए।

---

† "समवातपित्तश्लेष्मणां प्रकृतिस्थानां समा भवन्त्यग्नयः ॥" चरक वि० अ० ६।

भिषक् कर्ताऽथ करणं रसा दोषास्तु कारणम्।
कार्यमारोग्यमेवैकमनारोग्यमतोऽन्यथा ॥१४॥

दोष रक्तादि धातु और मलों से मिलकर असंख्येय बन जाते हैं। इसलिये दोष भेद विकल्पना का नियमन करके रोग को जानकर कहे हुए रस भेदों से चिकित्सा करे। वैद्य कर्त्ता है, रस-करण (साधन) हैं, दोष कारण हैं, आरोग्य कार्य है, अनारोग्य-अकार्य है।

वि० मन्तव्य—चिकित्सा कर्म में—वैद्य "कर्त्ता"—चिकित्सा करनेवाला है। मधुर आदि रस करण अर्थात् चिकित्सा के उपकरण हैं. इनके द्वारा चिकित्सा की जाती है—दोषों का शमन किया जाता है। वात आदि दोष रोगों का कारण—हेतु है। और आरोग्य (स्वास्थ्य) कार्य—कर्त्तव्य कर्म है। वैद्य (कर्त्ता) रसों (उपकरणों) द्वारा दोषों (रोगकारणों) का शमन करता है, यही कार्य—कर्त्तव्य कर्म है ॥१४॥

अध्यायानां तु षट्षष्ट्या ग्रथितार्थपदक्रमम्।
एवमेतदशेषेण तन्त्रमुत्तरमृद्धिमत् ॥१५॥

छयासठ अध्यायों में अर्थ पद क्रम से ज्ञान ऐश्वर्य से भरा यह सम्पूर्ण उत्तर तंत्र गूँथा हुआ है।

वि० मन्तव्य—इन ६६ अध्यायों द्वारा ग्रथित है, अर्थ-पद-क्रम जिसमें ऐसा यह उत्तर तन्त्र पूर्ण रूप से ऋद्धिमान्—वृद्धिमान्—महान् है ॥१५॥

स्पष्टगूढार्थविज्ञानमगाढमन्दचेतसाम्
यथाविधि यथाप्रश्नं भवतां परिकीर्तितम् ॥१६॥

स्पष्ट, गूढ अर्थ को बतानेवाला, मन्द बुद्धिवाले भी जिसको सरलता से जान सकते हैं, इसको विधि एवं प्रश्न के अनुसार आपको कह दिया है ॥१६॥

सहोत्तरं त्वेतदधीत्य सर्वं
ब्राह्मं विधानेन यथोदितेन।
न हीयतेऽर्थान्मनसोऽभ्युपेता-
देतद्वचो ब्राह्ममतीव सत्यम् ॥१७॥

कही हुई विधि के अनुसार उत्तर तंत्र के साथ इस सम्पूर्ण ब्राह्म (ज्ञान) को पढ़कर, मन से ग्रहण किये हुए (भली प्रकार समझे हुए) विषयों से अलग नहीं होता, यह ब्राह्म वचन (ब्रह्मा का वचन) पूर्ण सत्य है ॥१७॥

इति सुश्रुतसंहितायामुत्तरतन्त्रे दोषभेदविकल्पो नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

इति सौश्रुते आयुर्वेदशास्त्रे उत्तरस्थानं समाप्तम्।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः।

—— ।